विश्व की

कालयात्रा

कालपुरुष-इतिहासपुरुष
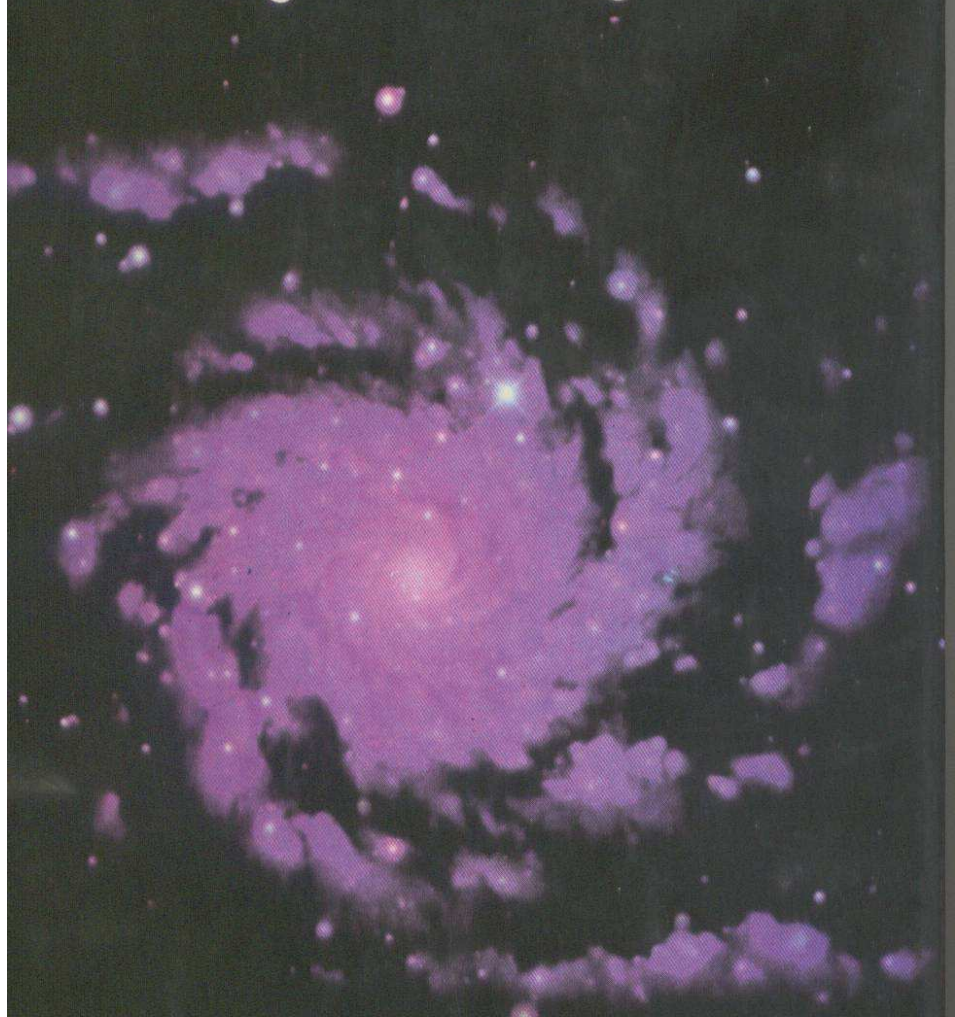
वासुदेव पोद्दार

ऋषिप्रज्ञाका विज्ञानदर्शन - 'विश्वकी कालयात्रा' में अपने साकार रूपमें प्रस्तुत हुआ है। अभी तक भारतीय ऋषियोंके प्रति किया गया स्तुतिवाचन ग्रन्थकी परिसीमामें आजके विज्ञानके समक्ष तुलनात्मक धरातल पर अपने सैद्धान्तिक पार्थक्य और साम्यके साथ प्रस्तुत है - लगता है आजका विज्ञान बड़ी शीघ्रताके साथ ऋषिप्रज्ञाके निकट पहुँचता जा रहा है। विज्ञानकी दृष्टि सर्वदा मुक्त-स्वतन्त्र एवं दुराग्रहसे परे सत्यान्वेषिणी है, अतः सम्भावना यह भी है, वह ऋषिप्रज्ञासे अनुप्राणित होता हुआ निकट भविष्यमें प्राचीन भारतवर्ष के कालजयी चिन्तनकी सिद्धान्त भूमि पर आरूढ़ होकर नवीन प्रयोगोंकी दिशामें गतिशील हो जाए। उदाहरणके लिए विज्ञानमें बिग-बैंगकी कालावधि दस अरबसे बारह, तेरह अरब वर्षोंके मध्य अनुमानित है। वहीं डॉ० पोद्दारने ऋषिविज्ञानके आधार पर उसे संख्यात्मक निर्देशके साथ प्रस्तुत कर दिया, जो १० अरब ६१ करोड़ २५ लाख ८९ हजार ९९ वर्ष है, इसी प्रकार आकाशगंगा, सूर्य, पृथ्वी आदि का काल भी ग्रन्थमें संख्यात्मक निर्देशके साथ प्रस्तुत हुआ है, वहीं विज्ञान द्वारा प्राप्त कालमान भी इसके आसपास ही अनुमानित है। यहाँ तक कि विश्वके आदिअण्डका कालमान भी डॉ० पोद्दारने यहाँ शास्त्रीय आधार पर स्पष्ट कर दिया है, जो ३ लाख ६० हजार वर्ष है। विभिन्न विषयोंके तुलनात्मक सन्दर्भके साथ सारे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है, अतः भूलकी सम्भावना नहीं। इसके साथ ही विज्ञानके अनेक आनुषंगिक विषय - जैवद्रव्यका स्वरूप और विकास, ब्रह्माण्डीयद्रव्यके विकासका संरचनात्मक स्वरूप, बिग-बैंग, स्टेडी स्टेट युनिवर्स, ओसिलेटिंग युनिवर्स, पल्संटिंग युनिवर्स आदि अनेक सिद्धान्तोंका स्वरूप प्रारम्भसे ही ऋषिप्रज्ञाके विज्ञानमें उपपत्तिके साथ विद्यमान है, उसे लेखकने 'विश्वकी कालयात्रा' में भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है, इसके साथ ही वे अनेक सन्दर्भ भी यहाँ उपस्थित हैं, जो विज्ञानके द्वारा अद्यावधि अदृष्ट हैं। मैं इस महत् कार्यके लिए डॉ० वासुदेव पोद्दारको शत-शत साधुवाद प्रदान करता हूँ।

राधेश्याम ब्रह्मचारी

राधेश्याम ब्रह्मचारी
फलित पदार्थविद्या
(Applied Physics) विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता
२७ दिसाम्बर १९९९
मूल्य : ३००.००

डॉ० वासुदेव पोद्दार

जन्म - कलकत्ता - १४ जून १९३५

कालपुरुष (काव्य संग्रह), रामायण महाभारतका कालप्रवाह, कालयात्रा आदि अनेक ग्रन्थों एवं अनेक शोध लेखोंके लेखक। विशेष - 'व्याख्यान-वाचस्पति' उपाधिके अतिरिक्त, महाराणा मेवाड़ फाउन्डेशन का 'हारीत ऋषि' पुरस्कार, 'अर्चना प्रतिष्ठा' पुरस्कार, 'हनुमान मन्दिर न्यास' पुरस्कार, आदि अनेक पुरस्कार - सम्मानसे सम्मानित, राजस्थान विद्यापीठ (विश्वविद्यालय) उदयपुर द्वारा भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं इतिहासके क्षेत्रमें मानद 'डी० लिट' उपाधिसे अलंकृत।

डॉ० वासुदेव पोद्दार विश्रुत विद्वान् हैं, अनेक रचनाओंसे इन्होंने मौलिक, प्रामाणिक व सारगर्भित नूतन अभिनिवेश साहित्य जगत्को दिए हैं। उनका अध्ययन गम्भीर, प्रेरक और उनके सारस्वत वैदुष्यका अकाट्य प्रमाण है। 'विश्वकी कालयात्रा' में डॉ० पोद्दारने अपने परम वैदुष्य द्वारा ज्ञान-विज्ञान-दर्शन और इतिहासकी शताधिक विधाओंसे सम्प्राप्त अनुशासनके समन्वित स्वरूपको अपने अध्यवसायसे पूर्णतः प्रतिपादित किया है। परिणामस्वरूप यह सिद्ध हो गया है कि सद्यः वैज्ञानिक विचारधारा भारतकी प्राचीन ऋषिप्रज्ञासे प्रभावित होकर उसके सन्निकट आयी है। मैं डॉ० वासुदेव पोद्दार को इस ग्रन्थके लिए साधुवाद देता हूँ।

कल्याणमल लोढा

कलकत्ता
पौष कृष्ण द्वादशी
वि० सं० २०५६

कल्याणमल लोढा
पूर्व कुलपति
जोधपुर विश्वविद्यालय
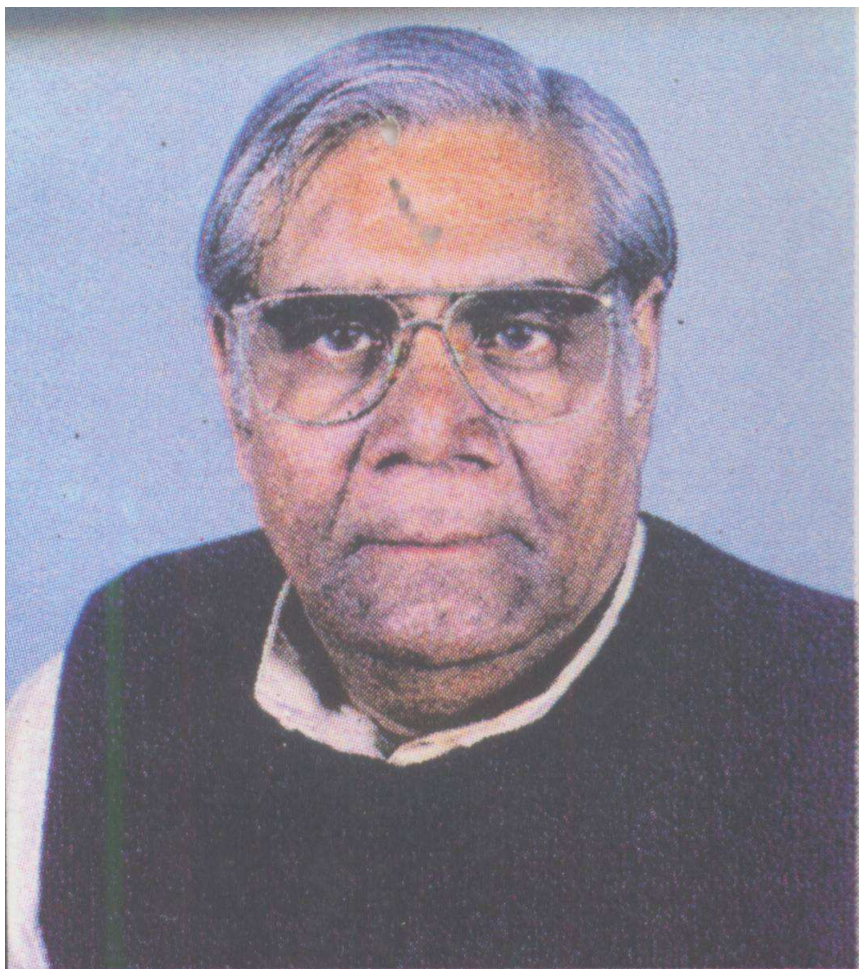
डॉ० वासुदेव पोद्दार

परम आदरणीय श्री अरुण कुमार जी उपाध्याय
I.P.S.

श्रद्धा सहित

अभिमत के लिए

वासुदेव पोद्दार

१०-१२-२०१५.

विश्व की
कालयात्रा

The Cosmic Passage of Time

Author –
Basudeo Poddar
40, Somnath Lahiri Sarani,
New Alipore,
Calcutta 700 053

Publisher –
Akhil Bharatiya Itihas Sankalan Yojana
Baba Saheb Apte Smriti Bhawan,
'Keshav Kunj'
Jhandewala,
New Delhi 110 055

विश्व की
कालयात्रा

ऋषिप्रज्ञा का विज्ञान चिन्तन
कालपुरुष - इतिहासपुरुष

वासुदेव पोद्दार

विश्व की कालयात्रा

४०, सोमनाथ लाहिरी सरणी (टालीगंज सर्कुलर रोड)
न्यू अलीपुर - कलकत्ता - ७०० ०५३
टेलीफोन - ४०० ४३३७
प्रथम संस्करण - संवत् २०५६ (ई. २०००)

प्रकाशक : अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे स्मृति भवन,
'केशव कुंज' झण्डेवाला,
नई दिल्ली - ११० ०५५

मूल्य : **300.00**

फोटो टाइप सेटिंग : कल्याणी खेतान
६ साउथ एण्ड पार्क, कलकत्ता - ७०० ०२९
टेलीफोन - ४६६ ०८१६

आवरण डिजाइन : माइक्रोग्राफिक्स
८/३ B मर्लिन पार्क, कलकत्ता - ७०० ०१९
टेलीफोन - ४७५ ९७६८ / ४७४ ६११६

शिष्य सहित वेदव्यास

वाङ्मय-विभव
महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वादरायण वेदव्यासके
परम विभूतियोगको पुण्यश्लोक की
लोकपावन स्मृति द्वारा
शत-शत प्रणामाञ्जलि

वाग्विस्तरा यस्य बृहत्तरङ्गा
वेलातटं वस्तुनि तत्त्वबोधः ।
रत्नानि तर्कप्रसरप्रकाराः
पुनात्वसौ व्यासपयोनिधिर्नः ॥

हमारी ऋषि परम्परा को पुष्पाञ्जलि

जिसकी ऋतम्भरा प्रज्ञासे सम्पूर्ण विश्वकी विज्ञानघन महासत्ता आलोकित है - उस सनातन आर्षपरम्पराके चरणोंमें समर्पित --

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा
आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।

हे स्तोताऋषि ! अपने वचनको भूलो मत, आनेवाले युगोंमें उसका उद्घोष (सर्वत्र) सुनाई देगा।

इदं नम ऋषिभ्य: पूर्वजेभ्य:
पूर्वेभ्य: पथिकृद्भ्य: ।।

हमारे पूर्वज – पूर्ववर्ती ऋषियोंको नमस्कार, जिन्होंने हमारे शोभनमार्गका निर्माण किया है।

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कवि: काव्येन परि पाहि राजन्।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्तां अमर्त्यस्त्वं न: ।।

हे महर्षिकवि ! पश्चात्, सम्मुख, नीचे और ऊपर तुम अपने दिव्य-काव्यसे हमारी रक्षा करो, तुम नित्य हो, नवीन हो, चिर किशोर, जरा हीन, तुम अमर हो। हम जराशंकित, मृत्युभीत, सहमर्मी मित्रकी तरह हैं। हे (कवि) राजन् ! हमारी तुम रक्षा करो।

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया
महावराहः स्फुटपद्मलोचनः।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः
समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन
त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्
तस्मै नमः कारणसूकराय ते॥

श्रद्धेय स्वर्गीय

पितृदेव श्री बजरंगलालजी एवं माताश्री कमलादेवीके

चरणोंमें

विषयानुक्रमणिका

ॐ

प्रस्ताविका

ऋषिप्रज्ञाके विज्ञानचिन्तन पर मेरी पुस्तक 'कालयात्रा' का प्रकाशन १९८५ के अन्तमें हुआ था। विश्वके सुप्रसिद्ध ब्रह्माण्डशास्त्री Stephen Hawking की बहुचर्चित पुस्तक A Brief History of Time १९८८ में प्रकाशित हुई, सृष्टिकालके इतिहास पर लिखी गई इस पुस्तकका आधार आजका विज्ञान है। 'कालयात्रा' का प्रकाशन इससे दो-ढाई वर्ष पूर्व हो गया था। इस ग्रन्थकी प्रधान विषयवस्तु आधुनिक विज्ञानके सन्दर्भमें ऋषिप्रज्ञाका विज्ञानचिन्तन है, जिसके आधार पर वहाँ विश्वके समुद्भवका कालक्रमागत इतिहास प्रस्तुत हुआ है। समय-समय पर हमारे देशके विद्वानों द्वारा अपनी अनुशंसाओंके साथ इसका स्वागत होता रहा, अनेक शोध एवं शिक्षण संस्थानोंका सम्मान प्राप्त हुआ एवं साथ ही ग्रन्थको पुरस्कृत भी किया गया। यहाँ तक कि राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय उदयपुरके द्वारा २७ जनवरी १९९१ को लेखकको डी० लिट० की सर्वोच्च मानद उपाधिके अलंकरणसे सम्मानित किया गया, विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्रद्धेय आचार्यप्रवर जनार्दनजी नागरसे जो स्नेह प्राप्त हुआ, वह मेरे लिए सर्वदा अविस्मरणीय है।

लगभग एक सहस्र पृष्ठोंके मूलग्रन्थ 'कालपुरुष एवं इतिहास पुरुष' के सार संक्षेप सहित इस 'कालयात्रा' की संरचनाका महत् श्रेय परम श्रद्धेय अग्रज स्व० हरिप्रसादजी लोहियाको है। उन्होंने मुझे वह तीक्ष्ण बौद्धिक

धार प्रदान की, जिससे मैं इस कार्यको सम्पन्न करनेमें समर्थ हो सका; उनका सर्वतोमुखी पाण्डित्य मेरे लिए सर्वदा नमस्य है। पण्डितप्रवर स्व० श्यामसुन्दरजी शुक्लसे मुझे सदैव प्रस्तुत विषय पर सत्परामर्श प्राप्त होता रहा, जिसे विस्मृत कर देना मेरे लिए असम्भव है। श्रद्धेय अग्रज श्रीपुरुषोत्तमजी हलवासियाने मूलग्रन्थ सहित सार संक्षेपको आद्योपान्त पढ़कर जो परामर्श मुझे प्रदान किया, उसके लिए मैं सदाके लिए उनका प्रशंसक बन गया। परम श्रद्धेय कविवर श्रीकन्हैयालालजी सेठियाके आशीर्वादको कदापि भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने इस पुस्तकके प्रकाशनकी बात सुनकर मेरा उत्साहवर्धक अभिनन्दन ही कर दिया। परम आदरणीय अग्रज कविश्रेष्ठ श्रीनथमलजी केडियाने शताधिक बार ग्रन्थकी प्रगतिके बारेमें पूछते हुए सर्वदा मुझे उत्साहित किया, जो अविस्मरणीय है। गणित एवं उर्दूके पारदर्शी पण्डित भाई रेवतीलालजी शाहका स्नेह और परामर्श मुझे प्रारम्भिक कालमें प्राप्त हुआ, उसे भूल पाना कठिन है। स्व० श्रीमुनिचन्दजी भण्डारी एक ऐसे श्रेष्ठ मित्र थे, जिनका अभाव मुझे सर्वदा स्मरण हो आता है। उनका सहयोग ग्रन्थके सन्दर्भमें अतुलनीय था।

'विश्वकी कालयात्रा' के प्रकाशनकी भावमय चतुर्भुज विभूति परम श्रद्धेय श्रीमोरोपन्त नीलकण्ठजी पिंगले, परम आदरणीय प्रो० ठाकुर रामसिंहजी, सुहृदय श्रेष्ठ डॉ० सुजितजी धर एवं मेरे श्रद्धाभाजन श्रीहरिमोहनजी पुरी हैं। इनकी सत्प्रेरणासे अभिप्रेरित होकर मैं 'विश्वकी कालयात्रा' के प्रकाशन कार्यमें प्रवृत्त हो सका हूँ, मेरे प्रति इनका अपार स्नेह ही इस कार्यमें हेतुभूत है; आदरणीय पुरीजी मेरे कार्यमें प्रतिबन्धक रूपसे उपस्थित मेरे ही स्वभावगत शैथिल्यको अपनी सन्निधि मात्रसे निवृत्त कर मुझे सक्रिय करते रहे हैं। श्री सत्यानन्द देवायतनके तपोवनकी महाविभूति परमश्रद्धेया मातुश्री अर्चनापुरीका पावन स्मरण मेरे लिए परम अभिप्रेत है, जिससे यह कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो पाया, साथ ही आश्रमके वरेण्य तपःपूत

महामुनि श्रीमृगानन्दजी एवं श्रीहीरानन्दजी महाराजका उत्साहवर्धक आशीर्वाद मुझे सम्पर्क मात्रसे ही प्राप्त हो गया, इसे भूल पाना सहज सम्भव नहीं – ये सभी मेरे लिए नमस्य हैं।

'विश्वकी कालयात्रा' के सन्दर्भमें मित्रप्रवर श्रीविनोदकृष्णजी कानोड़ियाके प्रभावी हस्तक्षेपने एक अनुशासनकी तरह मेरे बौद्धिक क्षितिजको घेर कर ग्रन्थको और भी समाहित और सज्जित कर दिया, ऐसे मित्रके प्रति आभार प्रदर्शन कर मैं उनसे उऋण होना नहीं चाहता। परम आदरणीया, प्रिय बहिन, कल्याणी वाक्स्वरूपा विदुषी कृष्णा खेतान एवं तद्रूप हितैषी श्रीदिलीपकुमारजी खेतान दोनोंने दिन-रात एक कर अपने सारे दैनिक कार्योंको गौण करते हुए पूरे ग्रन्थको अल्पकालमें ही अपने कम्प्यूटर पर उट्टङ्कित कर दिया। उनका स्नेहभरा यह महत्कार्य मेरे लिए जीवनमें एक बहुत बड़ा अर्थ रखता है। मुझे प्रतीत होता है, मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ; इतनी ममतामयी तो सहोदरा बहिन भी नहीं होती। इनके इस अनिर्वचनीय स्नेहने मुझे भी इस कृतज्ञता ज्ञापनके सन्दर्भमें अनिर्वचनीय बना दिया। ऐसी ही किंनिर्वाच्यमूढ़ताका अनुभव मुझे आदरणीय भाई श्रीकेशवजी कायाँके साथ होता है। उन्होंने ग्रन्थके संयोजनकी नवीनताका सारा भार अपने ऊपर लेकर मुझे सर्वथा भारमुक्त कर दिया – ऐसा एकात्म-बोध आज संसार में सुदुर्लभ है। पण्डितप्रवर आचार्य श्री कल्याणमलजी लोढाके परमपाण्डित्यका स्नेहभाजन मैं सर्वदा रहा हूँ, अतः इनके प्रति कृतज्ञताज्ञापनकी विधि मेरे लिए श्रद्धा निवेदन है। कला एवं पुरातत्त्वके अतलस्पर्शी पाण्डित्यके धनी डॉ० श्यामलकान्तजी चक्रवर्ती, निदेशक – भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (इण्डियन म्यूजियम) का मैं विशेष कृपाभाजन बन गया हूँ, फलतः मुझे इनसे वेदव्यासका वह दुर्लभ चित्र प्राप्त हो गया, जो टोकियो स्थित जापानके ओकुरा शूकोकान संग्रहालय में सुरक्षित, संवत् १४१४ की एक प्रस्तरमूर्तिका है। पुस्तक पर अपना वैदुष्यपूर्ण अभिमत प्रदानकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के Applied Physics के प्रख्यात विद्वान्

प्रो० श्रीराधेश्यामजी ब्रह्मचारीने मुझे कृतज्ञताज्ञापन का अधिकार प्रदान कर दिया - मैं सर्वदा उनका आभारी हूँ। परम आदरणीय अग्रज श्रीजुगलकिशोरजी जैथलिया इस कार्यमें मुझे सर्वदा उत्साहित करते रहे, उन्हें भूल पाना भी असम्भव है। आचार्यश्रेष्ठ श्रीरामजी पाण्डेय एवं डॉ० कमलाप्रसादजी द्विवेदीने प्रूफ देखकर मुझे भारमुक्त कर दिया है, अतः ये मेरी दृष्टिमें कृतज्ञताके प्रथम अधिकारी हैं। मैं श्रेष्ठ गीतकार एवं कवि बन्धुवर श्री मिलापजी दूगड़ का आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ, जिन्होंने ग्रन्थके अन्तिम परिशोधन पर दृष्टिपात करते हुए मुझे निश्चिन्त कर दिया।

अन्तमें मेरी सम्पूर्ण श्रद्धाका अन्वय महापण्डित अचार्यप्रवर श्रीशिवाधारजी सिंह (जौनपुर) के चरणोंमें होता है, जिनके परमपाण्डित्यकी कृपा प्राप्त कर मैं जीवनमें दो अक्षर लिख पढ़ सका।

सृष्टि संवत् - कलिअब्द ५१०१
मकर संक्रान्ति
वि० सं० २०५६ पौष शुक्ला ९ शनिवार
१५ जनवरी २००० ईसवी

वासुदेव पोद्दार

पुरोवाक्

विश्वकी कालयात्रा आनन्दघन महासत्ताकी आनन्दयात्राका इतिहास है। कहाँ नहीं है महाकालका परमानन्द — नभोमन्दाकिनियोंका परमनृत्य, महान् नक्षत्रोंकी पथ-परिक्रमा, पृथ्वीका नृत्य-निरत पर्वतक प्रसव, हिममण्डित चूड़ालोंका अनन्त सौन्दर्य, महासमुद्रका अनवरत उत्ताल नृत्य, फूलोंका मुक्त हास, कविताकी छन्दोमयी बृंहती, सङ्गीत, समाधि! कालातीत महासत्ता स्वयं — **एकोऽहं बहु स्याम्** का आनन्द प्राप्त करनेके लिए ही कालधर्मा हो जाती है। सूर्य-पृथ्वी-नक्षत्र सभी काल-कलाके चिद्-बिन्दु विलास हैं। पृथ्वी जिस आनन्द-स्वरूप चिद्धर्मकी सत्ताको हिरण्यगर्भके परमविस्फोटसे कालान्तरमें प्राप्त करती है — वही उसका आनन्दमय विकास, वही उसकी सर्पिल कालयात्रा और इतिहासयात्रा है, जो नगाधिराजके सौन्दर्यसे अलंकृत, सप्त-समुद्रोंकी मणिमेखलासे अनुगुञ्जित, द्रुतगामिनी नदियोंसे अभिशिञ्जित एवं वनराजिके विपुल वैभवसे अभिरञ्जित है। इसकी महान् संस्कृतियोंका प्राङ्गण स्थापत्यकी भव्यतासे विभूषित है, सङ्गीतकी महती वीणासे अनुरणित, काव्य एवं दर्शनसे दिव्य और विज्ञानसे प्रगतिशील है।

सर्वप्रथम 'सत्' था या 'असत्'— विश्वका प्रारम्भ सत्से है या असत् (शून्य) से? 'प्रारम्भ' कहनेके साथ ही कालकी अवधारणा स्वत: उपस्थित हो जाती है, जो स्वयंमें कालातीत होते हुए भी कालावच्छिन्न है। अनादि सत् या शून्यकी वह कौनसी तिथि थी — जब जगत्का समुद्भव हुआ, साथ ही वह कौनसा क्षण होगा जब यह अस्तित्व परममें समाहित हो जाएगा? 'सत्' और 'शून्य' दोनों इस बिन्दुपर पहुँचकर परस्पर सम्मुख हो जाते हैं; जिन्हें हम 'सनातन' और 'काल' इन दो शब्दोंके द्वारा पहचाननेका प्रयत्न करते हैं — एक नित्य है, दूसरा परिवर्तमान। कौन कह सकता है, वह अनादि तत्त्व 'असत्' था या 'सत्'? अत: यह भी कहा जा सकता है — ये दोनों ही कालकी धारणामें

विद्यमान हैं — **अहमेवाक्षय: काल:** (*गीता*)। परमचेतना ही अनादि अनन्त सनातन काल है, जो तरङ्गवत् सन्दोलनात्मक विश्वके रूपमें पुन:-पुन: प्रकट होता रहता है — वैसा ही सूर्य, वैसा ही चन्द्रमा, वैसी ही धरती, वैसा ही आकाश — **सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्** — (*ऋग्वेद १०. १९०. ३*)। शक्तिका अनन्त महासागर — जिसकी प्रत्येक तरङ्गभुजा स्वयंमें अनन्तकालकी ही एक तरङ्गभुजा है, जिस पर विश्वके अनन्त ब्रह्माण्ड-चक्र अपने बुद्बुदाकार अस्तित्वको प्राप्त करते हुए, अन्तमें उसीमें विलीन हो जाते हैं। यह विराट् विश्व सनातनी-ऊर्जाके महासमुद्रसे उत्पन्न होता है, उसमें ही इसकी कालयात्रा सनातन भावसे सम्पन्न होती रहती है।

दिक्-कालके अन्तरालकी अनन्तताको प्रकट करने वाला तत्त्व स्वयं अनन्त है। हमारी धारणाएँ चाहे 'कांटियन' दर्शनकी सीमामें विशुद्ध तार्किक हों या 'आइन्स्टीनियन' धरातलपर परमवैज्ञानिक ; वह हमारी आभ्यन्तर चेतनाका एक वर्गीकरण मात्र है — जो घटनात्मक और प्रतिघटनात्मक जगत्की धारणा और प्रतिधारणाको जन्म देता है। फ्रांसके सुप्रसिद्ध दार्शनिक Jean Paul Sartre ने काल के विषयमें एक बड़ी रोचक धारणा अपने ग्रन्थ Being and Nothingness में प्रस्तुत की है। Sartre के अनुसार काल उस मत्स्यकन्याकी तरह है जिसका मस्तक मानवीय और पूँछ मछलीकी तरह है। Geremy Campbell ने मानवीय जीवनमें कालके स्वरूप पर छानबीन करने वाली अपनी पुस्तक — 'Winston Churchill's Afternoon Nap' में मत्स्यकन्याके मॉडल की इस प्रकार व्याख्या की है —"The head symbolizes the power of the mind to construct a future which is 'unreal' in the sense that it exists only as a possibility toward which we aim. Unreal time is not given to us as a fact. We do not swim in it, moving with its currents as our bodies move in synchrony with the rhythms of the external environment. The mermaid, we could say, extending Sartre's image, represents the dual character of human time, with its two domains, one biological, the other psychological (Paladin Books 1989. P. P. 18). १९वीं शतीके प्रसिद्ध डेनिश दार्शनिक Kierkegaard, Soren कालको मानवीय अस्तित्वकी

सुरक्षा जाकेट कहते थे, जो उसके अस्तित्वको आगे-पीछेसे भली-भाँति जकड़कर सुरक्षित कर देती है — The Strait Jacket of Existense. विज्ञानके अनुसार दिक् और काल पृथक् नहीं; इनका स्वरूप अवधारणात्मक विश्वमें ही प्रतीत होता है, जो तात्त्विक कम और मनोवैज्ञानिक अधिक है। अत: दिग्जन्य विस्तार और कालकृत अवधि दोनों ही वहाँ प्रतीकात्मक हैं — हमारी ही व्यावहारिक चेतनाके प्रतीकीकरण। अनन्त में सनातनकी अवधारणा परम चेतनाका विषय है, वहीं घटनात्मक जगत्में दिक् और काल विश्वकी संरचनात्मक शक्तिके विघटित कार्य।

हम और हमारा संसार, दोनों ही एक उत्तरोत्तर गत्यात्मक विकासधर्मी निकाय हैं — अतीतकी उत्तरोत्तरता वर्तमानमें अनुक्रमणात्मक है, जो भविष्यकी उत्तरोत्तरताका प्रतिनिधित्व करती है। अतीत और वर्तमान दोनों ही भ्रमात्मक अवधारणाएँ हैं, ये उत्पन्न होनेके पूर्व ही विलीन हो जाती हैं। 'है' पदसे कहा जाने वाला तत्त्व सनातन है — कालका व्यक्त स्वरूप ही वैदिक चिन्तनमें 'ऋत' कहा गया है, जिसमें विद्यमान है — सनातन 'सत्'। यही है **सत्यं च ऋतं च** का सनातन वैदिक स्वरूप। सनातनका गतिशील प्रतिबिम्ब ही काल और महाकाल है, जिसकी पहचान 'ऋतम्'के रूपमें प्राप्त की गई। 'अव्यक्त' सनातन है — अक्षर, कालातीत, निरपेक्ष, स्वस्वरूपाश्रित ; कालका उदय व्यक्तका विषय है। यहाँ समस्या यही उत्पन्न होती है — कालका कालातीतसे क्या सम्बन्ध है ? व्यक्त विश्व सीमित है, चाहे उसका विस्तार १५ अरब प्रकाशवर्ष ही क्यों न हो, वह अव्यक्तका एक परमकण (Quark) मात्र है। वह कालातीतके परम अस्तित्वका एक अंश है — **एकांशेन स्थितो जगत्** (*गीता*)। अव्यक्त जहाँ कालातीत अनन्त है, वहीं व्यक्त काल-सापेक्ष, अनन्त या कालानन्त। यदि काल या कालिकता उस कालातीतका अंश है, तो अंशी (कालातीत) के धर्म भी उसमें विद्यमान हैं — चाहे वह पदार्थका अवस्था-भेद हो, संरचनामूलक प्रतिबद्धता हो, चाहे गणनात्मक संख्यानिर्देश ; कालातीत अस्तित्वकी धर्मिता वहाँ यथावत् विद्यमान है।

पदार्थभौतिकीके नोबेल पुरस्कारसे सम्मानित Prof. Freeman Dyson के अनुसार लोह धातुका अर्धकालमान $१०^{५००}$ वर्ष है, अर्थात् १ की संख्या पर गिनकर ५०० शून्य लगाते जाइए, तब अर्धकालमान प्राप्त होगा। इस कालमानमें विश्वकी संरचना और प्रलय कितने अरब बार घटित होंगे (सन्दोलनात्मक विश्व

के रूपमें) इसकी गणना भी अति कठिन है। इसी प्रकार प्रोटोन (Proton) कणिकाकी अर्ध-आयु १ पर ३२ शून्य अर्थात् $१०^{३२}$ वर्ष है। इसी प्रकार Nanosecond एक क्षण या सेकेण्डके एक अरबवें भागका संकेतक है। कालकी Chronon अवधारणा तो उसकी सूक्ष्मताको कालातीत परम तक पहुँचा देती है — १ सेकेण्डका $१०^{-२४}$वाँ विभाग अर्थात् १ पर २४ शून्य लगा देने पर एक सेकेण्डका जो विभाग शेष रह जाता है, इसे यों कहा जा सकता है — एक सेकेण्डके अर्बुदांश (अरबवाँ विभाग) के अर्बुदांशके अर्बुदांश के अर्बुदांशका भी अरबवाँ विभाग। Fred Alan Wolf ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Parallel Universes — (Pub. Simon & Schuster 1988. P. P. 322) में इस प्रकार स्पष्ट किया है — The billionth part of the billionth part of the billionth part of the billionth part of the billionth part of one second. वे आगे लिखते हैं — महाविस्फोट (Big Bang) इतने अल्प समयमें घटित हुआ था — The Big Bang took place in the first chronon. बिग-बैंगके पूर्व खगोलभौतिकी (Astrophysics) के अनुसार, काल उस समय Zero-point पर था। अर्थात् हम कह सकते हैं — कालातीत और काल उस समय अपने मीटिंग-पॉइन्ट पर थे — काल अंश रूपसे अपने अंशी कालातीतसे संयुक्त हो गया था — अंशीके गुण-धर्मके साथ। विज्ञानमें Chronon की यह अवधारणा क्या कालातीतकी परम सूक्ष्मताका संकेतक नहीं? परम चाहे सत् हो या असत्, उसकी यह आंशिक समग्रधर्मिता कालकी ब्लूप्रिण्टमें सुरक्षित है। वह कालातीत सनातनको सत् और असत्में बदलता हुआ विश्व-संरचनाके घटनात्मक स्वरूपको प्रस्तुत करता है। अव्यक्त निर्गुण है, व्यक्त सगुण। अत: विश्वातीत काल भी निर्गुण है — वहीं विश्वकी ब्लूप्रिण्टको लेकर प्रवहमान काल सगुण।

विज्ञानके अनुसार हमारे अस्तित्वकी गतिशीलताका नाम काल है। वह इसे विश्वके चतुर्थ आयामके रूपमें स्वीकार करता है। इस चतुर्थ आयाम या प्रस्थानके बिना दिक्के तीन आयाम शून्य हैं , इसका निरपेक्ष स्वरूप विज्ञानकी धारणासे परे है। 'कार्टेजियन' द्वैतके चक्रसे निकल कर विज्ञान इस दिक्-कालजन्य सापेक्ष द्वैतके चक्रजालमें चला आया है। सम्भवत: दृढ़ होती हुई Singularities की सैद्धान्तिक अवधारणा उसे निकट भविष्यमें इस द्वैतजन्य सापेक्षतासे भी छुटकारा

दिलाती हुई कालातीत और कालके अद्वैत तक पहुँचा दे, यह भी सम्भव है — वह कृष्णगह्वरके भीतर ही समा जाए — क्योंकि Singularities की एक सड़क Black Hole तक भी जाती है। विगत दो दशकोंसे विज्ञानने कालपुरुषके स्वरूपका चिन्तन करते हुए सम्पूर्ण रूपसे एक नई दिशामें सोचना और देखना प्रारम्भ कर दिया है — वह है विश्वका 'पुरुषविध' सिद्धान्त (Anthropic Principle)। यह कहना न होगा कि 'पुरुषसूक्त' ऋग्वेदका हृदय है — विज्ञान आज बहुत कुछ इस हृदयके पास तक पहुँचने का प्रयास कर रहा है। नोबेल पुरस्कार विजेता, नभोभौतिकीके उल्लेखनीय आचार्य Prof. Steven Weinberg ने अपनी नवीन प्रसिद्ध पुस्तक Dream of a Final Theory. Ed. 1993. P. P. 175 में इस सिद्धान्तको अति संक्षेपमें इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

.... Anthropic Principle, which states that the laws of nature should allow the existence of intelligent being that can ask about the laws of nature. इस सिद्धान्तकी विशद व्याख्याओंको हम भारतीय चिन्तनसे जोड़कर कह सकते हैं — मानव विराट्की एक आदर्श प्रतिमूर्त्ति है — जैसे हम, वैसा ही विराट् पुरुष। विशद व्याख्यासे मेरा तात्पर्य है — John D. Barrow एवं Frank J. Tipler — विज्ञानके उल्लेखनीय आचार्यद्वय द्वारा लिखित विशाल ग्रन्थ The Anthropic Cosmological Principle (Oxford University Press 1986)। अब तो मृतब्रह्माण्डों (Black Holes) के विशेषज्ञ Stephen W. Hawking जैसे वैज्ञानिक भी इस सिद्धान्तकी गम्भीरता स्वीकार करने लग गए हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार प्रकृतिकी यह महाकाल-यात्रा मनस्तत्त्वकी परम विकसित भूमिपर पहुँच कर सम्पूर्ण हो जाती है। इसीलिए मानवसे परम तक अनादि-अनन्तको अपनी नृत्यमुद्रामें व्यक्त करते हुए महाकाल-कालेश्वर नटराज भारतीय कलाके सनातन सौन्दर्यका प्राणतत्त्व बन गए हैं। मानव कलाके द्वारा गतिशील कालको भी सर्वदा स्थिर कर देता है, निरन्तर गतिमान सूर्य कलाकारकी छेनीके नीचे पहुँचकर अचल हो गया — यही तो हमारी महती कलाका परम भास्कर्य कोणार्क है। अथर्वाका कालसूक्त, सूर्यके रथचक्रका इस प्रकार वर्णन करता है — कालरूपी जरा रहित, परम बलशाली अश्व सात रश्मियों या वल्गाओं द्वारा निरन्तर गतिमान हैं, उसके रथचक्र सम्पूर्ण भुवन-मण्डलके ज्ञाता हैं, वह सहस्राक्ष है — उसपर परम ज्ञानी कवि (सूर्य) आरोहण करते हैं —

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितः तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥

(*अथर्ववेद*, १९.५३.१)

विज्ञानमें आज कालके लिए सर्वाधिक संकेतक शब्द — The Arrow of Time है। यहाँ काल अतीतसे भविष्यकी ओर बाणकी तरह गतिशील है। सर्वप्रथम इस शब्दका प्रयोग नभोभौतिकीके महान् आचार्य Sir A. Eddington ने 1927 में किया था। महाकवि तुलसीदासने हिन्दी साहित्यमें अधिब्रह्माण्डीय भूमिकापर कालकी व्याख्या करते हुए 'धनुष-बाण' पदका ही प्रयोग किया है —

लव निमेष परमानु युग, बरष कलप सर चण्ड ।
भजसि न मन तेहि रामकहँ, काल जासु कोदण्ड ॥

(*रामचरित मानस, लङ्काकाण्ड*, १)

लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष और कल्प जिसके प्रचण्ड बाण हैं, काल जिसका धनुष है, वही भजनीय राम हैं। विज्ञान ने 1961 के आस-पास Caesium Atomic Clock का निर्माण किया है। इसके निर्माता, प्रसिद्ध आंग्ल भौतिकविद् L. Essen थे। भारतवर्षमें भी हमें कालकी पारमाणविक अवधारणाका उल्लेख प्राप्त होता है, भागवतपुराणमें इसकी सूचना है —

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।

(*भागवतपुराण*, ३. ११. ४)

आचार्य श्रीधरने इस श्लोककी व्याख्यामें लिखा है — सूर्यको परमाणुका अतिक्रमण करनेमें जितना समय लगता है — वह कालका सूक्ष्मतम मान है। जैन दर्शनमें भी पारमाणविक कालकी धारणाका उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य कुन्दकुन्दके 'पञ्चास्तिकाय' की २५वीं गाथाकी टीकामें श्री अमृतचन्द्राचार्यने कालके सूक्ष्मतम स्वरूपका ग्रहण परमाणुसे ही किया है — **परमाणुप्रचलनायत्तः समयः ।** इस दर्शनके अनुसार पुद्गल तथा अन्य द्रव्योंके परिणमनका कारण 'काल' है। आचार्य उमास्वामीने (*तत्त्वार्थ सूत्र* ५. २१. २२) द्रव्योंकी वर्त्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व-अपरत्वमें कालको ही हेतुरूपसे कहा है — **वर्त्तना परिणामः**

क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य। यह दर्शन 'कालाणु' की सत्ताको स्वीकार करता है।

निरीश्वर सांख्य कालकी सत्ताको स्वीकार नहीं करता, ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिकाकी टीकामें आचार्य वाचस्पति मिश्रपादने कहा है — सांख्य-दर्शनमें कालपदार्थको न मानना ही समीचीन है। पर सांख्यशास्त्रके सभी आचार्य ऐसा स्वीकार नहीं करते, किसी-किसीके मतसे काल प्रकृतिका परिणाम है। मृगेन्द्रवृत्तिकी दीपिकामें कहा गया है —'एक व्यवस्थाक्रमके अनुसार वस्तुओंका रूपान्तरण उसका रूप परिणाम है, वही काल है।' आचार्य विज्ञानभिक्षुने सांख्यसूत्र (२.१२) के भाष्यमें कालके नित्य और अनित्य दो भेद कर दिये हैं। वृत्तिकार अनिरुद्ध भट्टने इसे अस्वीकार करते हुए, केवल 'खण्डकाल' को ही अपनी मान्यता प्रदान की है। इसके ठीक विपरीत, सेश्वरसांख्य कालकी सत्ताको स्वीकार करता है, वहीं बौद्धदर्शन कालको मान्यता प्रदान नहीं करता। पूर्वमीमांसा दर्शनमें भाट्टमत और गुरुमत दोनोंमें ही काल स्वीकार्य है। आचार्य कुमारिल भट्टके अनुसार द्रव्योंकी संख्या ग्यारह है, उसमें एक काल भी है। मीमांसकोंके मतसे काल रूपादि रहित होने पर भी सर्वेन्द्रिय ग्राह्य है। लघुचन्द्रिकाकारने इस मतको इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है, 'लोक-व्यवहारमें ऐसा कोई भी प्रत्यय नहीं, जिसमें काल न प्रतीत होता हो, सभी ज्ञान किञ्चित् कालावच्छिन्न होते हुए अपने विषयको ग्रहण करते हैं।' वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार काल एक नित्य विभु द्रव्य है। न्याय दर्शन भी कालकी सत्ताको स्वीकार करता है। आचार्य जयन्तभट्टने 'न्यायमञ्जरी' में कहा है — दिक्‌में जो 'पहले-पीछे' का व्यवहार है, वह कालमें उलट जाता है, यथा—'आगे-आगे युवक चल रहा है और पीछे-पीछे वृद्ध।' तात्पर्य यह है कि स्थानकी दृष्टिसे आगे-पीछे अन्य वस्तु है और कालकी दृष्टिसे अन्य। दीधितिकार आचार्य रघुनाथशिरोमणि कालको भिन्न पदार्थ स्वीकार नहीं करते हैं। शङ्कराचार्यके अद्वैतवेदान्तमें कालकी सत्ताका ग्रहण नहीं है। वहाँ व्यवच्छेदक -- व्यवच्छेद्य भावसे भूत, भविष्य और वर्तमानको पृथक् कर देना सम्भव नहीं, अत: कालकी सिद्धि नहीं हो पाती है। श्री मधुसूदन सरस्वतीने 'सिद्धान्त बिन्दु' के अष्टम श्लोककी व्याख्यामें कालको अविद्या कहा है। सुरेश्वराचार्यने अपने 'मानसोल्लास' ग्रन्थमें कालको ब्रह्मकी क्रियाशक्ति बताया है।

कालतत्त्वका सम्बन्ध दर्शन और विज्ञानकी तरह व्याकरणशास्त्रसे भी बहुत निकटका है। महाभाष्यकार पतञ्जलिने कालका लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है — मूर्त्तिमात्रमें जो क्षय और अभिवृद्धि देखी जाती है, वह कालकृत है — **येन मूर्त्तीनामुपचयाश्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते तं कालमाहुः** (*महाभाष्य,* २.२.५)। वैयाकरण कालके एकत्वको ही स्वीकार करते हैं, यहाँ आचार्यप्रवरने 'येनेति' पदमें एकवचनका ही प्रयोग किया है। कालके अनेकत्वमें आचार्य सूर्यकी क्रियाके सम्बन्धसे ही दिन, रात्रि, मास, सम्वत्सर आदि व्यवहारको मानते हैं। वाक्यपदीयकार श्रीभर्तृहरिने सर्वव्यापी कालको 'स्फोट' पदसे अभिहित किया है, 'स्फोट' शब्दकी स्वतन्त्र शक्तिका नाम है।

दिन-रात दरवाजेपर शब्द-स्फोट होता रहता है — कोई थपथपाहट, जो कालको हमारे घरके भीतर लेकर चली आती है, और वह भूत-भविष्य-वर्तमान बनकर हमारे भीतर बैठ जाता है। हम वैज्ञानिक बनकर चाहे उसे झुठलाते रहें, दार्शनिक बनकर उसके अस्तित्वको नकारते रहें, उसकी छेड़-छाड़ और चुनौतियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। वैज्ञानिक उसे लाख चुनौतियाँ देता है — कभी गणितसे, कभी 'क्वान्टम' भौतिकीसे, कभी नाक्षत्रिक परिवर्तनोंकी नभोभौतिकीसे, पर वह भी कालके नीचे दबा हुआ विवश है। हमारे शरीरके अंग-प्रत्यंगमें Bio-clocks का जाल फँसा हुआ है — D.N.A.और R.N.A.की Bio-clock ने मानवको चारों ओरसे घेर रखा है। वह दार्शनिककी तरह उसे बड़े सन्देहसे देखता है। महान् दार्शनिक Kant Immanuel ने उसकी सत्ताको ही असिद्ध कर दिया, पर सत्य तो यह है कि उनके दैनिक कार्य-कलापको देखकर लोग अपनी घड़ियाँ ठीक कर लेते थे। यहाँ कालतत्त्वके विख्यात चिन्तक G.J.Whitrow की प्रसिद्ध पुस्तक — What is Time (P.P. 43 Ed. 1972) से Guy Pentreath की कविताका अंश उद्धृत है, जो जीवन और कालके व्यापक सम्बन्धको स्पष्ट करती है —

> For when I was a babe and wept and slept, Time crept;
> When I was a boy and laughed and talked, Time walked;
> Then when the years saw me a man, Time ran,
> But as I older grew, Time flew.

हमारा भावनात्मक-जगत् समयकी अनुभूतिको सर्वतोभावेन प्रभावित

करता है। इसीलिए कवि और कलाकारके भीतर कालके प्रति बड़ी सहानुभूति है यह सह-अनुभूति उसके भाव-जगत्के कारण ही है। वह पञ्चक और दशकके नए परिवर्तनको देखकर ही नए युगकी घोषणा करता हुआ — उसे कभी छन्दसे, कभी छेनीसे, कभी सङ्गीतकी लयसे उसके नए-नए स्वरूपोंकी पहचान प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार वह स्वयंको जीर्ण होनेसे रोक लेता है और कालजयी बन जाता है। उसके पास अनन्तकी पहचान सुरक्षित है — वह कालके भीतर ही कालातीतको प्रस्तुत कर देता है। कालके तत्त्वको स्पष्ट करती हुई महाकवि T.S.Eliot की ये पंक्तियाँ परम विचारणीय हैं, वे Burnt Norton में कहते हैं —

> Time present and time past,
> Are both perhaps present in time future,
> And time future contained in time past.
> If all time is eternally present,
> All time is unredeemable.

प्रकृतिका अन्त, प्राणोंका अन्त, समग्र विश्वका अन्त — क्या कालके अन्तका इतिहास है ? Todd Siler ने Neurocosmology पर लिखे गए अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ — Breaking the Mind Barrier (p.p.233 ; 1990) में कहा है — You might say evolution just is ; neither forward nor backward, neither upward nor downward — but *mindward.* वे आगे लिखते हैं — Time, in neurospace, is not a form of control or device for measurement. It's an abstract means of measuring our growth from 'here' (which can be anywhere at anytime) to 'there' (which is the point from which we started, even though we give it a new name — as in *end*). Yet without time, we assume there's no motion. And without motion, we assume there's no movement of thought — अन्तमें लेखक अपने चिन्तनको महाकवि T.S.Eliot की पंक्तिमें सूत्रबद्ध कर देता है, जो *Four Quartets* से उद्धृत है — "At the still point of the turning world." फ्रांसके प्रसिद्ध कवि Paul Valery के अनुसार काल संरचनात्मक है — वे इसे भविष्य तक खींचकर नहीं ले जाते, इनका कथन है — "Time is a construction" ठीक इसके विपरीत महाकवि William Blake का कालसूत्र परम विस्फोटक है — "The ruins of time build mansions in eternity"

(Modern Critical Views – William Blake – Edited by Harold Bloom p.p. 62, 1985)

नोबेल पुरस्कार (1990) से अलंकृत महाकवि Octavio Paz ने कालके स्वरूपको अनेक रूपोंमें देखा है, यहाँ उनकी कविताके दो उदाहरण प्रस्तुत हैं। इन्होंने वर्तमानके सर्वभक्षी स्वरूपको अपनी प्रसिद्ध कविता Into the Matter में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

A clock strikes the time
now it's time
It's not time now
now it's now

now it's time to get rid of time
now it's not time
it's time and not now
time eats the now

Now it's time
windows close
walls close doors close
the words go home
now we are more alone........

अपनी प्रसिद्ध कविता Same Time में वे कालमें कालातीतको इन शब्दोंमें स्पष्ट करते हैं –

There is another time within time
still
with no hours no weight no shadow
without past or future
only alive
like the old man on the bench
indivisible identical perpetual
We never see it
It is transparency

साहित्यने कालको प्रारम्भसे ही अनुभूतिके रूपमें स्वीकार किया है, विज्ञान

भी उसे आज एक अनुभवके स्तरपर ही ग्रहण करता है। एक ऐसी अनुभूति जिसके साथ सारा विकास इतिहास-निर्माण-संहार और व्यवहार घटित होता रहता है। समय स्वयं आज परिवर्तनकी गतिको मापनेका एक यन्त्र बन गया है, जिसके बिना न एक वैज्ञानिकका काम चल सकता है, न ऑपरेशन थिएटरमें एक सर्जनका, न व्यापारीका और न स्पोर्ट्समें होनेवाली प्रतिद्वन्द्विताका। हमारे शरीरकी बायोक्लोक्स, क्वान्टम जगत्‌की सूक्ष्मतम हलचलको प्रकट करनेवाली घटिकाएँ, D.N.A. और R.N.A. के जैव-पटलमें समाहित जीवनकी पत्रिका, आदि-अण्डके परम विस्फोटक क्षणांश और हमसे उनकी कालकृत दूरियाँ, सभी कालाकाशमें लीन हैं। काल अनुभूति भी है, और अस्तित्व भी।

क्वाण्टम भौतिकीमें आज सब्जेक्टिव और ऑब्जेक्टिवका द्वैत समाप्त हो गया है— अत: वहाँ सम्पूर्ण परीक्षण-निरीक्षण और निष्कर्ष अनुभव सापेक्ष हैं। नवविज्ञानका सर्वाधिक चर्चित Superstring सिद्धान्त— जहाँ String का आयाम प्रोटोनका एक अरबवाँ विभाग माना गया है — वह शुद्ध अनुभव मात्र है, वस्तुनिष्ठ या ऑब्जेक्टिव नहीं। 1990 में Peter Coveney और Roger Highfield इन लेखकद्वय द्वारा लिखित 'विज्ञानके सभी क्षेत्रोंमें कालकी अवधारणा' पर The Arrow of Time नामका पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें कालको सर्वत्र अनुभवगम्य स्वीकार किया गया है। २०वीं शतीके महान् गणितज्ञ Kurt Godel, जिनसे गणितशास्त्रमें स्वयं Albert Einstein दिशा-निर्देश प्राप्त करते थे, उन्होंने गणितकी प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया है ; उनका तर्क है — गणित प्रामाणिक है, यह हम गणितसे ही कह सकते हैं, इसके लिए कोई अन्य प्रमाण नहीं ; यह तो स्वयंका स्वयंको ही प्रामाणिक मान लेनेवाली बात है, जिसके पास स्वयंसे हटकर किसी भी पर-प्रमाणका साक्ष्य नहीं। यह सत्य मानवीय ज्ञानमात्रपर उपस्थित है— ज्ञानकी प्रामाणिकताका आधार मानवीय बौद्धिकज्ञान है, और इसका आधार 'कार्बन-लाइफ' के विकासका मूल रूप, यदि जीवनके विकासका आधार 'कार्बन' न होकर भिन्न हो तो ज्ञान-विज्ञानके अनुभवका स्वरूप भी नितान्त भिन्न होगा।

कालके स्वरूपको ही हम यहाँ उदाहरणके अर्थमें लें — हमारे विश्वमें समयकी गतिका बाण विकासके जिस क्रमको प्रस्तुत करता है — वहीं प्रतिभावद्रव्य

या Anti-matter द्वारा निर्मित विश्वमें कालके बाणकी गति इससे ठीक विपरीत है — वहाँ प्रथम वृक्ष और अन्तमें अंकुर, प्रथम एक वृद्ध मानव और अन्तमें गर्भस्थ शिशु। इन दोनों ही विश्वोंमें कालकी अनुभूतिजन्य प्रामाणिकताका स्वरूप सर्वथा विपरीत और भेद-भिन्न है। भारतीय पुराणोंमें एक ऐसे विश्वका भी उल्लेख है — जहाँ दो विरुद्धधर्मी द्रव्योंका सन्तुलन परस्पर हो गया है, फलत: कालके बाणकी गति भी स्थिर और सन्तुलित हो गई है ; ऐसे विश्वका स्वरूप कालातीत कालका महाविषय है, जो सर्वदा एकरूप है। यह विश्व पौराणिक वाङ्मयमें 'उभयात्मक सर्ग' या सृष्टिके नामसे प्रसिद्ध है, जिसके चार प्रतिनिधियोंका नाम भारतीय संस्कृतिमें सनातनके नामसे जाना जाता है ; 'सना' पदका अर्थ है — जो सर्वदा विद्यमान है — सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार। इन्हें पौराणिक वाङ्मयमें विष्णुका अवतार कहा गया है, अर्थात् यह उभयात्मक सर्ग परमसत्ता वाचक विष्णुपदका ही वाच्य — **वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णु:** का ही अवतरण या विशेष अवतार है। यह जगत् महाकालकी आनन्दयात्रा है — चाहे वह भाव द्रव्यसे बना हो या प्रतिभावद्रव्यसे, चाहे उभयात्मक द्रव्यका सनातन स्वरूप हो; महाकालका आनन्दघन विस्तार और विकास सर्वत्र व्यापक है। महाकवि क्षेमेन्द्रके शब्दोंमें — कालके महासमुद्रमें कहीं संकोच जैसा अन्तराल नहीं, वहाँ महाकाय पर्वतोंकी तरह बड़े-बड़े युगान्त समाहित हैं —

अहो कालसमुद्रस्य न लक्ष्यन्तेऽतिसंतता:।
मज्जन्तोऽन्तरनन्तस्य युगान्ता: पर्वता इव॥

विश्व एक शक्ति-चक्र है, जिसकी पुन:-पुन: आवृत्ति होती रहती है। सृष्टि सन्दोलनशील है — उसके एक-एक सन्दोलनका काल-चक्र २५ अरब ९२ करोड़ वर्ष है। निखिल विश्वका प्रत्येक कण निरन्तर स्पन्दित होता रहता है, यही कालपुरुष शिवका नृत्य है, सृष्टिका प्रत्येक कण झूमता हुआ, किसी लीलानृत्यके आनन्दमें निमग्न है। जब यह महानृत्य अपनी छन्दोबद्ध नृत्यगतिके स्थिर-संतुलनपर पहुँचता है — काल स्थिर हो जाता है, विश्वद्रव्यकी महाकालयात्रा समाप्त हो जाती है। इसका समग्र तैजस प्रभविष्णु-द्रव्य कालाग्निमें प्रज्वलित होता हुआ — कृष्णद्रव्यमें बदल जाता है।

पश्चिमकी परम्परासे प्राप्त १९वीं शतीके सम्पूर्ण चिन्तनदर्शनने, चाहे वह

तुलनात्मक देवताशास्त्रके माध्यमसे प्रस्तुत हुआ हो, चाहे तुलनात्मक धर्मशास्त्र, भाषाविज्ञान और इतिहासके क्षेत्रसे — वहाँ महासत्ताके भारतीय सिद्धान्तका मूल्यांकन जूडोक्रिश्चियन मानदण्डोंके आधार पर हेमेटिक एवं सेमेटिक संस्कृतिकी कल्पित परिधिके भीतर किया गया, जिसका अन्धानुसरण अद्यावधि यथावत् विद्यमान है। यहाँ तक कि वह मिथकशास्त्रका मिथ्या आधार तक बन चुका है। महासत्ताकी भारतीय अवधारणा कहीं भी जूडोक्रिश्चियन सीमामें संकुचित नहीं — वह अनादि-अनन्त-सर्वरूप और सर्वव्यापक एवं दिक्-काल, कार्य-कारणातीत है। यहाँ तक तो आजका परम विकसित विज्ञान भी नहीं पहुँच पाया, ईसाइयतके धार्मिक विश्वासका तो प्रश्न ही नहीं, जिसका काल-आयाम विश्वके सन्दर्भमें छ: हजार वर्ष मात्र है। इस अनादि, अनन्त, दिक्-काल-कारणातीत, सर्वरूप, सर्वव्यापक महासत्ताका स्पष्ट स्वरूप हमें ऋग्वेदसे ही भलीभाँति प्राप्त होता है —

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(ऋग्वेद - १०.९०.१)

इसका ही परम निध्वान हमें भारतीय संस्कृतिके सर्वश्रेष्ठ विश्वकोश भागवत तक सुनाई देता है —

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्॥
आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते।
वैराज: पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रय:॥
पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे॥....
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्ग: पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च।
तद्भ्रूविजृम्भ: परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा॥
छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यम: स्नेहकला द्विजानि।
हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्ष:॥....

(भागवतपुराण, २-१-२४,२५,२६, ३०, ३१)

अति सक्षेपमें कहा जाए तो यह माया उस परमसत्ताकी मुस्कान है और यह विश्व उसका कटाक्षनिक्षेप। अपनी सम्पूर्ण कालयात्रामें व्याप्त यह महाविश्व उसमें ही स्थित है, वही उसका विराट् शरीर है। पाताल उसका पदतल है और यह आकाश उस विश्वमूर्तिकी महानाभि है। 'सहस्र' पद यहाँ 'अनन्त' का उपलक्षक है। सत्यलोक ही 'सहस्रशीर्षा' परमसत्ताके अनन्त मस्तक हैं, नेत्र अन्तरिक्ष, उसके देखनेकी शक्ति सूर्यादि तारे हैं। दोनों पलकें रात और दिन हैं, उसका भ्रूविलास ब्रह्मलोक है, सृष्टिका वेदस्वरूप सनातन ज्ञान ही उसका ब्रह्मरन्ध्र आदि। जूडोक्रिश्चियन दृष्टिके पास परमसत्ताकी ऐसी किसी अवधारणाका लेशमात्र भी नहीं है।

विज्ञानघन सत्ताका स्वरूपानुसन्धान भारतीय तत्त्वशास्त्रका प्रधान प्रतिपाद्य है, यहींसे वैदिक वाङ्मयकी सुविशाल संज्ञानधाराका विषयप्रवर्तन होता है। पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षके रूपमें किया गया समग्र चिन्तनदर्शन विज्ञानघन महासत्ताकी तत्त्वमीमासा है। विज्ञानके लिए जो आज रहस्यमय और अचिन्त्य है, वही ऋषि-प्रज्ञाके समक्ष अति सहज। यहाँ हमने ऋषि-मनीषाके विज्ञान-चिन्तन और इतिहास-चिन्तन तक ही प्रबन्धके प्रतिपाद्यको सीमित रखा है — परमसत्ताका स्वरूप क्या है ? वह विश्वरूपमें कब, क्यों और किस प्रकार प्रस्तुत होती है ? जीवनका प्रारम्भ और अन्त कहाँ है ? काल और महाकालका स्वरूप क्या है ? महाकालके आसंगमें विश्वके प्रथम विस्फोट और उसके ब्रह्माण्डीय विकासके इतिहासकी तिथियाँ क्या हैं ? कल्प-मन्वन्तर और महायुगके प्रवर्तनका वैज्ञानिक आधार और इतिहास क्या है ? आदि शताधिक प्रश्न और सिद्धान्त हैं, जिन्हें भारतीय तत्त्वशास्त्रके आधार पर यहाँ यथावत् प्रस्तुत किया गया है। विज्ञान आज जिन प्रश्नोंकी उत्थापना कर रहा है — चाहे वह आदि-अण्डका विस्फोट हो, चाहे स्थिर सन्तुलित विश्वका सिद्धान्त, या विश्व-द्रव्यके संकोच और विकासका क्रम, ब्लैक-होल और व्हाइट-होलकी समस्या, स्पन्दमान और सन्दोलनात्मक विश्वका सिद्धान्त — पर ये सभी सिद्धान्त वहाँ प्रबल अन्तर्विरोधोंसे ग्रस्त हैं। भारतीय शास्त्रोंमें इनकी मीमांसा प्रस्थानभेदके साथ विद्यमान है। विज्ञान चाहे तो इस प्रस्थान-दृष्टिसे इनके समन्वयाधिकरण पर पुनर्विचार कर सकता है। जहाँ तक सृष्टिके विकासकी तिथियोंका प्रश्न है, चाहे वह महास्वन विस्फोटकी तिथि

हो या पृथ्वी और सूर्य सहित आकाशगङ्गाके निर्माणका संरचनाकाल या प्रलय, वह यथार्थ और परम वैज्ञानिक है। आज विज्ञान विपुल सम्भावनाओंके साथ उसके बहुत सन्निकट पहुँच चुका है, वह चाहे तो निर्भ्रान्त भावसे भारतीय तिथिक्रमका यथावत् ग्रहण कर सकता है।

ग्रन्थमें सृष्टिके प्रथम विकाससे लेकर महाप्रलय एवं तत्पश्चात् सन्दोलनात्मक विश्वके पुनरावर्तन तक तुलनात्मक दृष्टिसे विज्ञान-कल्पित कालमानको प्रस्तुत करते हुए भी वैज्ञानिक शुद्धताकी दृष्टिसे भारतीय कालमानका ग्रहण ही यहाँ सिद्धान्तरूपसे किया गया है। मैं विज्ञानका छात्र नहीं, दर्शनका विद्यार्थी होनेके नाते वैज्ञानिक विकासके सैद्धान्तिक इतिहासके साथ मेरा सम्बन्ध है। अत: मैंने प्रबन्धमें विज्ञानकी अवधारणाको सूचनात्मक सीमाओंमें तुलनात्मक दृष्टिसे रखा है। जहाँ तक विश्वके काल-क्रमात्मक विकासकी निर्भ्रान्त तिथियोंकी शुद्धताका प्रश्न है — जो मुझे प्राप्त हुई, जिनके रहस्यका मैं अनावरण कर सका, वे आधुनिक विज्ञानकी तुलनामें सत्यके बहुत सन्निकट ही नहीं, यथार्थ हैं।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अबतक की परम्पराने १९वीं शतीसे ही भारतीय तत्त्वशास्त्र पर निरन्तर शोध और अन्वेषणका कार्य किया है , इस पद्धतिका नेतृत्व पश्चिमकी परम्पराके हाथमें रहा। शोधपद्धतिके मूलमें पश्चिमकी एक दूषित ग्रन्थि रही है — वह है — '६००४ वर्ष पूर्व विश्वका निर्माण'। इस ग्रन्थिने न केवल भारतीय तत्त्वशास्त्रका ही अहित किया, वहाँकी विज्ञान परम्परा और दर्शन एवं इतिहासदृष्टि भी इससे सर्वत्र आहत हुई है। १९वीं शतीके अन्त तक पश्चिमके अधिकांश इतिहासवेत्ता और वैज्ञानिक यह स्वीकार करते रहे — यह विश्व ६००४ वर्ष पूर्व ही बना है। ऐसी अवस्थामें आदिअण्डके विस्फोटसे लेकर कल्प-मन्वन्तर और महायुगकी कालगणनाके साथ समग्र भारतीय तत्त्वशास्त्र — 'माइथोलॉजी' व गपोड़कथामें बदल गया। इतिहास और विज्ञान दोनों ही ६००० वर्षों से पीछे नहीं पहुँच पाए, हाँ — वहाँ एक-दो प्रतिशत अपवाद भी थे, पर भीत और अनादृत। आदिअण्डके स्वन विस्फोटकी जानकारी विज्ञानको १९२६-२७ में हुई। इसीलिए १० अरब ६१ करोड़ वर्षोंके काल-मान सहित हमारा सम्पूर्ण तत्त्वशास्त्र मिथक स्वीकार कर लिया गया, उसी प्रकार आकाशगङ्गा सहित सूर्यके समुद्भव और प्रलयका काल, पृथ्वीकी संरचना, उसके प्रजातीय विकासका काल आदि सभी

कुछ मिथक और गल्पकथा बन गए। विज्ञानने तो एक लम्बे संघर्षके पश्चात् येन-केन प्रकारेण इस छः हजार वर्षोंके अन्धविश्वाससे अपना पीछा छुड़ा लिया, पर भारतीय तत्त्वशास्त्रके शोधकर्ता अभी तक उसी १९वीं शतीकी अन्धदासताकी गुरु-शिष्य परम्पराके अनुगामी बने हुए हैं। इस अन्धदासताकी गुरु-शिष्य परम्परामें होने वाली उल्लेखनीय शोधकी अतिसंक्षिप्त तालिका इस प्रकार है, जो योरोपमें भारतीय विद्याओंके अध्ययनके प्रारम्भ होनेके कुछ वर्ष उपरान्त हुई थी—

1. John Marsh — Asiatic Memorials of the Creation, Fall, Deluge etc.— Published by James Robins — Winchester. 1823.
2. H.W.Wallis — Cosmology of the Rig Veda London. 1887.
3. A.Roussel — Cosmologie Hindoue d'apresle Bhagavata Purana — Paris 1898.
4. Wilhelm Jahn — Uber die Kosmogonischen Grundunschauungen im Manav-Dharma-Sastram — Leipzig 1904.
5. W.Kirfel — Die Kosmography der Inder — Bonn. 1920.
6. Sampurnanand — Cosmogony in Indian Thought — Benaras. 1942.
7. D.C.Sarkar — Cosmography and Geography in Early Indian Literature — Calcutta. 1967.
8. N.N.Bhattacharyya — History of Indian Cosmogonical Ideas — New Delhi. 1971.

इसके अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण लेख हैं यथा— James Hastings की Encyclopaedia of Religion and Ethics में H. Jacobi का लेख — 'The Holy Science' आदि।

ये सभी ग्रन्थ एवं इस परम्परामें किया गया विपुल शोधकार्य भारतीय तत्त्वशास्त्रको विज्ञानके स्थानपर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपसे मिथकके मिथ्या गर्तमें ढकेलनेका एक भ्रमपूर्ण, असत्य प्रयासमात्र है। यह शोध विज्ञान और इतिहासपर आधारित नहीं — ईसामसीहके दो-चार हजार वर्ष पूर्व और पश्चात् मानवीय चिन्तनके विकास और इतिहासको खपा देनेका भूलभरा प्रयत्न है। मैंने पश्चिमकी इस अन्धविश्वासग्रस्त चिन्तनपरम्परासे हटकर भारतीय तत्त्वशास्त्रको विज्ञानके तुलनात्मक सन्दर्भमें देखा है। ग्रन्थका प्रतिपाद्य भारतीय चिन्तनके साथ आधुनिक विज्ञानका साम्यप्रदर्शन मात्र नहीं, इस तुलनात्मकताका परमप्रतिपाद्य है — विज्ञान आज त्वरितगतिके साथ ऋषि-चिन्तनके अति निकट आ चुका है। सत्यको जाननेकी प्रक्रिया और पद्धति भिन्न हो सकती है, जो है भी — मूलप्रश्न सत्यके फलितार्थका है, जहाँ विज्ञान भारतीय विज्ञानचिन्तनके बहुत सन्निकट पहुँच रहा है। वस्तुवादी पदार्थविज्ञान आज जड़शक्ति प्रधान विज्ञानके स्थानपर संज्ञानशक्ति प्रधान विज्ञानमें सर्वतोभावेन बदलता जा रहा है। मैंने ऋषिप्रज्ञाके आधार पर सृष्टिकी प्रथम संरचनासे लेकर महाप्रलय तकके तात्त्विकस्वरूपको विज्ञानके शताधिक साम्य और पार्थक्यके साथ यहाँ प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ मेरे एक दीर्घ निबन्ध 'कालयात्रा' का विस्तृत पुस्तकाकार स्वरूप है जिसमें सहस्र पृष्ठोंके मेरे अप्रकाशित प्रबन्ध **कालपुरुष और इतिहासपुरुष** का सार संक्षेप भी समाविष्ट हो गया है। ग्रन्थके अन्तमें पाठकोंके अवलोकनार्थ — मूलग्रन्थकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर दी गई है, जिसका प्रभावी ग्रहण इस प्रबन्धमें सर्वत्र हुआ है। अन्तमें विषयकी परिसीमामें रह जानेवाली भूल और न्यूनताके लिए मैं अपने विद्वान् पाठकोंसे क्षमा-याच्ञा कर लेता हूँ।

द्रष्टव्य — विश्वकी कालयात्रामें कालक्रम ईसवी सन् १९९९ को आधार मानकर प्रस्तुत किया गया है।

वासुदेव पोद्दार

सृष्टि संवत् – कलिअब्द ५१०१
मकर संक्रान्ति
वि० सं० २०५६ पौष शुक्ला ९, शनिवार
१५ जनवरी २००० ईसवी

१ – भारतीयदर्शन और आधुनिक विज्ञान

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चित-
स्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

(अथर्ववेद, १९. ५३. १)

कालरूपी, जरारहित, परम बलशाली अश्व सात रश्मियों या वल्गाओं द्वारा निरन्तर गतिमान है – उसके रथचक्र सम्पूर्ण भुवन-मण्डल के ज्ञाता हैं, वह सहस्राक्ष है – उसपर परम ज्ञानी कवि (सूर्य) आरोहण करते हैं।

१. परमसत्ताकी महाकाल यात्रा

मानव, विराट्की एक आदर्श प्रतिमूर्ति है – जैसे हम, वैसा ही विराट् पुरुष। अणु, परमाणु, जीवाणु, सूर्य, तारे एक ही मूल पदार्थकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। अन्तमें प्रकृतिकी यह महाकाल यात्रा मनस्-तत्त्वकी परम विकसित भूमिपर पहुँचकर सम्पूर्ण हो जाती है। विश्वका प्रथम विकास नक्षत्रखचित कालपुरुष है, अन्तिम इतिहासपुरुष मानव। सनातन महासत्ताकी चिद्घन लीलाका सर्वोच्च लीलापुरुष मनुष्य है, तारोंसे सजा आकाश उसका लीलाकमल। लीलाकमलपर लीलापुरुषका लीलानृत्य इन विराट् ब्रह्माण्डोंकी महाकाल यात्रा है, जो हिरण्यगर्भके महास्वन विस्फोटसे प्रारम्भ होती है, और इतिहासपुरुष मानवके रूपमें अपनी सम्पूर्णताको प्राप्त कर लेती है।

विकासधर्मी विश्वका मूल आधार सनातन है, उसका तत्त्व सनातन है,

उसका स्वरूप सनातन है, तत्त्ववाचक धर्म सनातन है। विश्व एक सनातन महासत्तासे उत्पन्न होता है, उसमें ही इसकी कालयात्रा सनातन भावसे सम्पन्न होती रहती है। उस सनातन तत्त्वके धर्मपरिणामसे उत्पन्न कोटि-कोटि ब्रह्माण्डमालिकाएँ प्रकाशके परम वेगसे स्पर्धा करती हुई, अन्तमें सनातन महासत्ताकी गोदमें पहुँचकर विलीन हो जाती हैं, उनका यह द्रुतधर्मी, क्षणस्थायी, द्रव्यपरिणामी व्यक्तित्व अपनी द्रव्यमयी भूमि का परित्यागकर सनातन चैतन्यके अनादि अनन्तमें एकाकार होता हुआ, स्वयं चिन्मय बन जाता है। लहर समाप्त होकर समुद्र बन जाती है। तत्त्वदृष्टिसे वह अपनी वर्तनधर्मितामें स्वयं समुद्र है — नाम और रूपकी मायाने ही उसे आयामधर्मी बना दिया। लक्ष-लक्ष प्रकाशवर्षोंके आयाममें फूलती-फैलती यह गगनगङ्गारूपा विश्वतरङ्ग महासत्ताकी लीलातरङ्ग है। कालके महासमुद्रमें इन नभोमन्दाकिनियोंका यह तरङ्गोत्सव — उद्भव और विलय, परमदृष्टिसे अद्वितीय सनातन तत्त्वकी लीलातरङ्गोंका नृत्योत्सव है।

सनातन महासत्ता सर्वत्र चिद्घन है — यह विश्वरूपा प्रकृति उसका चिदाभास — उसका ही एक धर्मपरिणाम है। सनातनका धर्मपरिणाम सनातन होता है, इसीलिए आदिहीन और अन्तहीन ब्रह्माण्डचक्रोंका समुद्भव और विलय सतत है, सनातन है। सन्दोलनात्मक विश्वके सिद्धान्तका यही ऋत-सत्य है। विश्व एक शक्ति-चक्र है, इसकी सम्पूर्ण कार्य प्रणाली एक शक्तियन्त्रकी तरह परिचालित होती है। फलत: सनातन महासत्ताके शक्तिपीठ पर विश्व एक शक्तियन्त्रकी तरह गतिशील हो उठता है। यह जगत् अनन्त तेजस्-कणिकाओंका समूह है। ये शक्ति-स्पन्दरूप कण-बिन्दु ही परमाणु-अणु, पिण्ड और ब्रह्माण्डके रूपमें समूहित होते हुए — नभोगङ्गाका परमव्योमव्यापी विस्तार बन जाते हैं। अत: विश्व परमदृष्टिसे महासत्ताका चिद्-बिन्दु विलास है। सनातन महासत्ता अनन्त है — इसका सभी कुछ अनन्त है — महाव्योमव्यापी नभोगङ्गाएँ अनन्त हैं, इनके भीतर टिमटिमाते हुए हिरण्यनाभ तारे अनन्त हैं, इनकी द्रव्यभूता एकतामें समूहित परमकण अनन्त हैं। महाविश्व अपनी स्वरूपभूता तात्त्विक एकतामें अनन्त होते हुए भी अखण्ड मण्डलाकार क्षेत्रीय सीमाओंमें विज्ञानघन सत्ताका एक सीमित विस्तार है। विश्व सनातन महासत्ताका एक शक्तिस्पन्दित संगठितक्षेत्र है — विज्ञानघन सत्ता क्षेत्रज्ञ

भारतीय तत्त्वशास्त्रका प्रधान प्रतिपाद्य विश्वकी आधारभूता तत्त्वस्थिति

है — परमसत्ताका स्वरूप क्या है ? जीवनका प्रारम्भ और अन्त कहाँ है ? व्यक्ति और विश्वात्माका सम्बन्ध क्या है ? परमसत्ता विश्वकी संरचनासे लेकर मानवीय अस्तित्वके महाबोधतक अपनी तत्त्वभूता एकताके साथ क्यों व्यक्त होती है ? इसकी अभिव्यक्तिका प्रकारगत स्वरूप और अनुशासन क्या है ? काल और महाकालका स्वरूप क्या है ? इसका दैर्घ्य और गति क्या है ? समग्र विश्वकी 'ब्लू-प्रिण्ट' को अपने कालसूत्रमें समेटकर वह किस प्रकार प्रधावित होता है ? महाकालके आसंगमें विश्वके प्रथम विस्फोट एवं ब्रह्माण्डीय निर्माणकी तिथियाँ क्या हैं ? प्रलय और महाप्रलयकी अन्तिम तिथि क्या है ? अनन्तसे अनन्त तककी इस महाकाल यात्राका उद्देश्य और अन्त क्या है ? भारतवर्षकी सनातन संस्कृतिने काल और इतिहासके सर्पिलवृत्तकी लघु और वृहद् गतिके चक्र-क्रमपर सर्वत्र गहनताके साथ सोचा है, जो युग, महायुग, मन्वन्तर, कल्प और महाकल्पके काल-क्रममें विभाजित है। इतिहास कालके क्षर कर्मकी एक लघुतम क्रिया है, जिसे हम यत्किंचित् दो-पाँच सहस्र वर्षोंके न्यूनतम मात्रकमें ही जान पाते हैं। सम्पूर्ण इसकी सीमासे सर्वथा परे है, वह काल-तत्त्वका विज्ञान है। भारतकी ऋषि-प्रज्ञाने सर्वदा सम्पूर्णके सन्दर्भमें सोचा है, वहाँ खण्ड जैसा कोई तत्त्व नहीं। फलत: इतिहास भी वहाँ कालके साथ सम्पूर्णकी सीमाओं तक पहुँचकर स्वयं विज्ञान बन गया है, युग, महायुग, मन्वन्तर और कल्प — कालके गहनतम गह्वरमें उतरकर इतिहासके दर्शनकी ही एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जहाँ काल और इतिहासमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है — काल बिम्ब है, इतिहास उसका प्रतिबिम्ब। भारतकी प्राचीन संस्कृतिने सम्पूर्णको ही अपने मन्त्रदर्शनमें देखा है। ऋषियोंकी सनातन संस्कृतिका यह प्रसिद्ध शान्ति-पाठ भारतीय चिन्तनदर्शनकी आत्मा है —

ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परम, सब प्रकारसे पूर्ण है, इसलिए इससे अनुस्यूत यह जगत् भी सम्पूर्ण है, क्योंकि उस सम्पूर्णसे ही यह सम्पूर्ण हुआ है, सम्पूर्णसे सम्पूर्णके सम्पूर्णतया पृथक् हो जानेपर सम्पूर्ण ही शेष रहता है। अत: विश्वमें कुछ भी अपूर्ण नहीं, न कोई परमाणु ही अपूर्ण है, न कोई जीवनकी जैव इकाई ही अपूर्ण है — चाहे वह

एककोशीय प्राणी हो या मनुष्य। यह भारतीय सभ्यताका सनातन सत्य सर्वत्र सम्पूर्ण है। यह महान् मन्त्र जीवनके गहन रहस्यवाद तक ही सीमित नहीं, सत्य यहाँ उच्चतम गणितका आश्रय लेकर ही कहा गया है — 'पूर्णको पूर्णसे पृथक् कर देनेपर पूर्ण ही शेष रहता है'। श्रुतिका स्पष्ट कथन है — **योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि**[१] 'यह जो वह है, वह परमपुरुष, मैं वही हूँ'। पूर्णपुरुषका लघुतम अंश —'मानव' स्वयं पूर्ण है, परम है।

पूर्णपुरुष व परमपुरुषसे लेकर मानवीय विकास तकका यह तत्त्वसन्दर्भ यहाँ चार भागोंमें बाँटकर समझाया गया है — (१) परमपुरुष, (२) विराट्पुरुष, (३) कालपुरुष और (४) इतिहासपुरुष। परमपुरुष विज्ञानघन है और विश्व उस परमसत्ताका विकास, जो विराट्-पुरुष व महद् ब्रह्माण्ड चक्रोंके रूपमें प्रकट होता है। विराट्पुरुष सृष्टिकी समग्र जड़-चेतनात्मक महासत्ताका नाम है तथा कालपुरुष अनन्त तारोंसे भूषित नक्षत्रखचित आकाशका विस्तार। इतिहासपुरुष अखिल विश्वके प्रमाण-प्रमेयात्मक स्वरूपका प्रमाता है। यह विभाजन सृष्टिके काल-क्रमात्मक विकासको समझनेकी दृष्टिसे किया गया है। अपने तत्त्वसन्दर्भमें वह **एकमेवाद्वितीयम्** — एक अद्वितीय महासत्ता है, 'द्वैत' 'त्रैत' आदि बहुत्व उस 'एकम्' का ही विस्तार है। यह अद्वैत सत्ता लघुसे लघुतर और महत्से महत्तर है — **अणोरणीयान्महतो महीयान्**।[२] इसकी तुलना आकाशसे की गई है, उदाहरणके लिए वही उसकी विभुताका एकमात्र संकेतक हो सकता है — **आकाशस्तल्लिङ्गात्**।[३] अद्वितीय परमपदार्थ आकाशकी तरह अखण्ड, अविभक्त और परमव्यापक होते हुए भी प्रतिपिण्डके सन्दर्भसे विभक्त और विभिन्न प्रतीत होता है। उसी प्रकार परमसत्ताका एक ही अद्वितीय अखण्ड स्वरूप घटनात्मक विश्वके विवर्तमें पहुँचकर दो भागोंमें विभक्त होता हुआसा प्रतीत होता है— (१) कालपुरुष और (२) इतिहासपुरुष। इन दोनोंकी अद्वैतसत्ताका अधिष्ठान विराट्पुरुष है, और इसकी विज्ञानघन सनातन सत्ताका स्वरूप है — परमपुरुष।

इतिहासपुरुष मानव अखिल विश्वके प्रमाण-प्रमेयात्मक स्वरूपका प्रमाता है। इस वामनने अनेक बार महाकाशकी ऊँचाइयोंको मापा है, हमारी यह वर्तमान अन्तरिक्ष यात्रा प्रथम नहीं। मानवने ही कभी सप्तऋषियोंकी अग्रपंक्तिको भेदकर परमव्योमकी असीम सीमाको तोड़ा था — महाराजा ध्रुवका आख्यान पुराण

प्रसिद्ध है। मानवके आकाशगमनकी अस्पष्टसी स्मृतियाँ हमारे पौराणिक साहित्यमें आज भी विद्यमान हैं। इस शतीके मानवने आकाशके जिन समुन्नत बिन्दुओंका स्पर्श किया है, भविष्यमें जहाँ पहुँचनेकी सुविस्तृत योजनायें बन रही हैं, उससे प्राचीन इतिहासकी वे धुँधली स्मृतियाँ सन्देहसे दूर विचारणीय सम्भावनाओंके द्वारतक चली आई हैं। प्रकारान्तरसे इन सम्भावनाओंका क्षितिज नवीन सन्दर्भोंके साथ इतना व्यापक हो उठा कि आज यह निश्चितसा हो गया है — इन अनन्त ब्रह्माण्डमालिकाओंमें हम अकेले नहीं। अन्य लोकोंपर भी मनस्तत्त्वकी महासत्ताका विस्फोट और विकास हुआ है। वहाँ भी सभ्यताएँ हैं, ज्ञान और विज्ञानसे समुन्नत इतिहासपुरुषकी महती सम्भावनाएँ हैं। इस सुविशाल नभोगङ्गामें अनेक जीवनधर्मी लोकोंका अस्तित्व विद्यमान है। विज्ञानके अनुसार हमारी १०० अरब ब्रह्माण्डोंवाली आकाशगङ्गामें कमसे कम १०० कोटि ब्रह्माण्डोंपर जीवनके विकासकी परम सम्भावनाएँ हैं।[४] महाकाल उनके पर्यावरणके इतिहासको अनेक बार बदलता है, कालान्तरसे उनके धरातलपर अनेक बार नवीन जैव-चेतनाके महद्-विस्फोट होते रहते हैं, जीवनकी नवीन हलचल प्रारम्भ हो जाती है, एक नया अस्तित्व प्रकट हो जाता है, एक नया इतिहास बन जाता है। हमारी पृथ्वी अपने ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंके इतिहासमें अनेक बार जैव चेतनाकी नवीन ऊर्जाका विस्फोट करती रहती है, फलत: इसके धरातलपर ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न जीवनका पुनरावर्तन होता रहता है। स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें १ अरब ९५ करोड़ ५८ लाख वर्ष पूर्व इस ग्रहपर जीवन चेतनाका महद् विस्फोट सर्वप्रथम हुआ, जो पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणकी लचकसे १ करोड़ ६९ लाख वर्ष पूर्व होनेवाले कल्प प्रवर्तनका प्रभाव व परिणाम था। पौराणिक इतिहासमें पृथ्वीके धरातलपर होनेवाला यह महत् परिवर्तन श्वेतवाराह कल्पके नामसे प्रसिद्ध है। हमारी वर्तमान जीवन चेतनाका विस्फोट इस कालक्रमके अनुसार सातवाँ है, जो पौराणिक सूचनाके अनुसार १२ करोड़ ५ लाख वर्ष पूर्व हुआ था। प्राचीन परम्पराके इतिहासमें इस नवीन चेतनाका विकास वैवस्वत मन्वन्तरके नामसे प्रसिद्ध है।

ऋषिमनीषाने महाकालके रहस्यको जिन तात्त्विक गहराइयोंमें उतरकर देखा है, वह परम वैज्ञानिक है। उनका शास्त्र चिन्तन जिन गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन करता है - वह इस विश्वकी वैज्ञानिक व्याख्या है। यह सृष्टि कहीं भी अस्तव्यस्त

(chaos) नहीं, न वह इस अव्यवस्थासे उत्पन्न होती है। ऋषिमतसे जगत्का परम आधार अतिवैज्ञानिक है। वहाँ यह सम्प्रसरणधर्मी विश्व अपने सम्पूर्ण संरचनाक्रममें एक 'विज्ञान-मूर्ति' व विज्ञान-मॉडलके रूपमें देखा गया है। आजका विज्ञान भारतीय ऋषिचिन्तनके बहुत निकटतक चला आया है — चाहे वह बिग-बैंग (Big-Bang Theory) के सन्दर्भमें प्रथम नाद-विस्फोटका महास्वन सिद्धान्त हो, चाहे स्थिर सन्तुलित विश्वका स्वरूप (Steady State Theory), चाहे स्पन्दमान (Pulsating Theory) एवं सन्दोलनात्मक विश्वकी अवधारणा (Theory of Oscillating Universe), चाहे इससे जुड़ी हुई कृष्णगर्त (Black-Hole) और शुक्लगर्त (White-Hole) की समस्या, चाहे जैव चेतनाके समुद्भवका सम्प्रश्न। आजके विज्ञानका सैद्धान्तिक जगत् इन प्रश्नोंकी उत्थापनातक ही सीमित है। आये दिन वहाँ नये-नये विश्व मॉडल्सकी कल्पना होती है, पर सत्य अन्तर्विरोधके मध्य कहीं खो गया है। वह समय भी अब बहुत दूर नहीं, ये सभी अस्पष्ट स्थितियाँ विज्ञानमें सदाके लिए समाप्त हो जाएँगी।

विज्ञानके भीतर समस्याओंका जगत् यहीं तक परिसीमित नहीं, वहाँ सिद्धान्तोंके संस्थापन और खण्डनका क्रम अनेक अन्तर्विरोधोंके साथ रोज बदलता रहता है। स्थापनाएँ कुछ दूर सम्भावनाओंके साथ आगे बढ़कर पुनः पीछेकी ओर लौट आती हैं — मात्र सिद्धान्तोंकी टकराहटसे उत्पन्न होनेवाली अनुगुंजें शेष रह जाती हैं, यथा — बिग-बैंग या स्थिर-सन्तुलित-विश्वका सिद्धान्त, पुनश्च संकोच और सम्प्रसारणकी सीमाओंके मध्य झूलता हुआ स्पन्दमान या सन्दोलनात्मक विश्व, वहीं उससे जुड़ा नवीन विश्व-चक्रोंके समुद्भव और संहारका सम्प्रश्न, इसी सन्दर्भसे सम्बद्ध ब्लैक-होल एवं व्हाइट-होलकी समस्याके साथ विश्वकी प्रथम अण्डावस्थाके स्वरूप और समुद्भवका सिद्धान्त, आदि अनेक प्रश्नों, संवादों और विसंवादोंमें उलझा हुआ विज्ञान आज स्वयंको कहीं भी स्पष्ट नहीं कर पाता। कहीं कभी किसी सिद्धान्तको प्रमुखता दी जाती है तो अन्य गौण बनकर रह जाते हैं। इन सभी स्थापनाओंके भीतर सत्यका कहीं स्वल्प और कहीं महदंश विद्यमान है, पर इनका समग्र समन्वित सत्य उभरकर स्पष्ट होनेके स्थानपर और भी उलझता जा रहा है। भारतीय चिन्तनदर्शनमें इन सभी वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी मीमांसा उपपत्तिके साथ विद्यमान है, जो प्रस्थानभेदके साथ विश्वकी

संरचनाके क्रमबद्ध इतिहासको उसके समन्वित अर्थके साथ प्रस्तुत करती है। विज्ञान चाहे तो इनपर भली-भाँति विचार करते हुए, अपने इन अन्तर्विरोधोंपर नये ढंगसे सोच सकता है — बहुत सम्भव है, इससे वह किसी महत्तम सत्यका उद्घाटन करनेकी दिशामें सक्षम हो सके। इतना तो निश्चित ही है — उसे बिग-बैंगसे लेकर विश्वके अन्तिम प्रलयतकके विकासकी सुनिश्चित तिथियाँ प्राप्त हो जाएँगी।

जीवनके समुद्भव और विकासको लेकर आज विज्ञानमें और भी विषम स्थिति उत्पन्न हो गई है, Charles Darwin का विकासवाद सौ, सवासौ वर्षोंकी गर्जनाके पश्चात् अब बहुत कुछ शान्त और निःस्पन्द हो चुका है। 'नर' के सन्दर्भमें वानरपुच्छकी पकड़ अब बहुत कुछ शिथिल हो गई है। आज नव्य-डार्विनवादके प्रतिपादक आनुवंशिकी (Genetics) की क्रान्तिकारी स्थापनाओंके समक्ष वह हतप्रभ है। नभोरसायनशास्त्र (Astro-chemistry) एवं नभोजैविकी (Astro-biology) की नवीनतम जानकारियोंके आधारपर अब जीवनके अधिपार्थिव अवतरणका सिद्धान्त अधिकसे अधिक सुदृढ़ होता जा रहा है। जीवनके आदिम रासायनिक संश्लेषणका सिद्धान्त जो मात्र तीन-चार दशक पूर्व (१९५३ में) प्रसिद्ध वैज्ञानिक Stanley Miller के द्वारा स्थापित हुआ था, वह भी कुछ अतिप्राचीन Bacterial Fossils के प्राप्त हो जानेपर अत्यन्त मलिन हो गया। इधर कुछ दशकोंसे Karl Popper जैसे प्रचण्ड संरचनावादी चिन्तकोंके प्रहार भी कम उग्र नहीं रहे, कुल मिलाकर आजके नवीन परिवेशमें डार्विनके बूढ़े विकासवाद की जड़ें विज्ञानमें सर्वत्र खोखली हो चुकी हैं। परमाणुसे लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त यह सम्पूर्ण द्रव्यमय जगत् एक सचेतन विज्ञान-धारामें बदलता जा रहा है, यहाँ तक्र कि चट्टान और स्फटिकतक संजीवित द्रव्य इकाईमें बदल चुके हैं। परमाणु विज्ञानके सुप्रसिद्धवेत्ता Bohr, Niels H.D. के अनुसार इलेक्ट्रॉन (Electron) का वैद्युतिक आचरण (Negative-charge) बौद्धिक है। साइबरनेटिक्सके उल्लेखनीय विद्वान् Dr. David Foster के अनुसार यह विश्व सूचनाधर्मी संगणनाका एक संसाधनमात्र (Computer) है। परमाणु स्वयं एक संगणना पत्रक (Computer-card) की तरह है, जिसमें तीन छिद्र कर दिये गए हैं – (१) परिकेन्द्रण व न्युक्लियस जिसमें परमकणोंकी संख्या (Number

of Particles) विद्यमान है, (२) इलेक्ट्रॉन (Electron) की संख्या जो इसके चतुर्दिक् घूमती है, (३) इलेक्ट्रॉनकी शक्ति – जो उसका लघुतम शक्तिमञ्जूषा (Parcel of energy – Plank's constant) है। आगे चलकर वह कहते हैं – निश्चितरूपसे द्रव्यका स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है, परमाणु विश्वकी वर्णमाला व अक्षर हैं, उनसे होनेवाला रासायनिक परिवर्तन शब्द है, D.N.A. एक लम्बा वाक्य है – यहाँ तक कि यह एक सम्पूर्ण पुस्तक है, जिसका विषय है हाथी, जिराफ या मनुष्य।[५]

ऋषि चिन्तनमें यही सत्य विधिके विधान व धर्मतत्त्वके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँकी जनभाषाओंमें मुहावरा प्रसिद्ध है – विधाताका लेख या भाग्यलिपि, जो प्रत्येक जैव इकाईके साथ उसके द्रव्यभूत आयाममें उसकी संस्कारधारा बनकर निविष्ट हो गई है, विज्ञान इसके भाषाशास्त्रको D.N.A. और R.N.A. के अर्थ सन्दर्भमें पढ़नेका प्रयास कर रहा है। धर्म शब्दका अर्थ जातियोंके साम्प्रदायिक विधिनिषेध तक ही सीमित नहीं, वह तो गौणार्थमात्र है, उसका व्युत्पत्तिपरक मौलिक अर्थ परमव्यापक है। धर्म सृष्टिका सनातन तत्त्व है, जो आधारभूत होता हुआ, उसके सम्पूर्ण प्रजातीय विकासको धारण करता है – **धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः।**[६] श्रुतिने धर्मको जगत्‌की एकमात्र प्रतिष्ठा व आधार कहा है – **धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा।**[७] धर्मपद लेटिन भाषाके Religion शब्दका अनुवाद नहीं। 'री' (Re) का अर्थ है पुनः या पीछे और Ligare लीजरका अर्थ है – ले जाना, अर्थात् जो परिदृश्यमान जगत्‌के पीछे उसके कर्त्ता ईश्वर तक जीवको ले जाए, वह रिलिजन है। धर्मपद 'धृ' धातुमें 'मन्' प्रत्ययके योगसे निष्पन्न होता है। 'धृ' अर्थात् धारण करना – जो धारण करे या किया जाए वह धर्म है। इसीलिए स्मृतियोंमें – **धर्मो धराधारकः।**[८] कहा गया है – धर्म ही पृथ्वीका धारक व आधार तत्त्व है। भारतवर्षके अतिप्राचीन भौतिकदर्शनके अनुसार विश्वका अभ्युदय और निःश्रेयस् धर्मतत्त्वपर ही आधारित है – **यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**[९] विश्वके सनातन धर्मका यही पारिभाषिक स्वरूप है। इस धर्मतत्त्वमें ही जगत्‌की सम्पूर्ण 'ब्लू-प्रिण्ट' सुरक्षित है। १९४८ में साइबरनेटिक्सपर अनुसन्धानकार्य प्रारम्भ हुआ तत्पश्चात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही एक सूचनाधर्मी महद् कम्प्यूटरमें बदल गया,

पर विज्ञानमें इसका 'फीडबैक सिस्टम' अभी तक अलक्षित है। इस पूर्व नियत सूचना सम्प्रेषककी कोई भी पहचान प्राप्त नहीं। इतना सत्य है कि विश्वकी विज्ञानघन महासत्ताके केन्द्रतक पहुँचनेकी यह प्रथम सीढ़ी निश्चित है। अत: विज्ञानके लिए आज D.N.A. और R.N.A. के संकेतकके साथ इस जगत्के अणु, परमाणुसे लेकर महत् तकका सम्पूर्ण द्रव्यमय विस्तार विज्ञानघन हो उठा है। इस सन्दर्भमें 'एस्ट्रो इंजीनियर' और 'एस्ट्रो इंजीनियरिंग', जैसे शब्दोंका विज्ञानमें होनेवाला प्रयोग बाहुल्य भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। विश्वकी तात्त्विक मीमांसाका नाम विज्ञान, इसका ज्ञाता और प्रयोक्ता वैज्ञानिक कहा जाता है, ऐसी अवस्थामें विश्वके मूलभूत स्वरूपको विज्ञानघन स्वीकर करना वैज्ञानिक दर्शन-शास्त्रकी दृष्टिसे समुचित ही नहीं, परम आवश्यक भी है। इन अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके मूलतत्त्वकी मीमांसाके पश्चात् ही भारतीय दर्शनने परमसत्ताको विज्ञानघन कहा है। सनातनका अर्थ है — सर्वदा रहनेवाला — **सदा भव: सनातन:** ।

२. ब्रह्म से ब्रह्माण्ड — विस्तारधर्मी विश्व — सिद्धान्त-स्वरूप-विज्ञान

विश्वकी आधारभूत परमसत्ताके दो नाम वैदिकदर्शनकी परम्परामें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं — विज्ञान और ब्रह्म। प्रथम नाम उसके स्वरूपको स्पष्ट करता है, दूसरा उसके कार्यरूप विश्वके अर्थको —

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। [१०]

'विज्ञान ब्रह्म है — इस प्रकार जाना' क्योंकि विज्ञानसे ही निश्चित ये समस्त भूतसमुदाय उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होनेके पश्चात् विज्ञानसे ही ये अस्तित्ववान् हैं, अन्तमें विज्ञानमें ही ये सम्पूर्णत: प्रविष्ट हो जाते हैं'। भारतीय दर्शनमें ब्रह्म किसी हाथ पाँव, नेत्रवाली महती आकृतिका नाम नहीं, वह विज्ञानको ही ब्रह्म स्वीकार करता है, उसकी ही वह उपासना व साधना करता है। अत: विज्ञान ही उस मूलपदार्थका स्वरूप लक्षण है, जो सम्पूर्ण रूपसे अपने विश्वरूप लक्ष्यपदार्थमें व्याप्त है। कारण ही कार्यकी सम्पूर्ण लक्ष्यभूता अवस्थाओंमें व्याप्त होता है, इसीलिए विज्ञान विश्वका कारणभूत स्वरूप लक्षण है — चाहे कालपुरुष हो या इतिहासपुरुष, विज्ञानघन महासत्तासे वह प्रकट होता है, उसमें ही उसकी यह

कालयात्रा सम्पन्न होती है। वह विज्ञानघन महासत्ताका ही परिणाम व विकास है, दूसरा शब्द है — ब्रह्म। एक ही अद्वितीय पदार्थ व विज्ञानतत्त्व विश्वरूपमें बृहत्से बृहत्तर होता चला जाता है, इसीलिए उसका उपपत्ति मूलक नाम ब्रह्म है। व्याकरणसे यह पद — **बृह, बृंहि** धातुसे **बृहति बृंहति** के अर्थमें **मनिन्** प्रत्यय करनेपर व्युत्पन्न होता है। अत: निरतिशय बृहत् होनेवाला या करनेवाला पदार्थ ही ब्रह्म है। विज्ञान विश्वको एक बृंहणशील व विकासधर्मी पदार्थके रूपमें देखता है, यही प्रसरणशील विश्वका सिद्धान्त (Theory of Expanding Universe) है। संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'ब्रह्म' शब्दका यही अर्थ है, जो उसके तटस्थ लक्षणको स्पष्ट करता है, जिस लक्षणके द्वारा मूलपदार्थका घटनात्मक कार्यरूप स्पष्ट होता है — वही उसका तटस्थलक्षण है। विश्वकी इस विकासधर्मिणी प्रसरणशीलताके विज्ञानको लक्ष्यमें रखकर ही इसके मूलपदार्थको निरतिशय बृहत्के अर्थमें ब्रह्म कहा गया है। अर्थात् — जो अपने विज्ञानलभ्य स्वरूपके अनुसार निरतिशय बृहत् होता है, उसी 'विज्ञान' पदार्थका नाम ब्रह्म है, जो जगदाकृतिमें बृंहित होता है — वह ब्रह्माण्ड। ब्रह्म-बृंहण और ब्रह्माण्ड तीनों एक ही अद्वितीय विज्ञानघन महासत्ताके अर्थविधायक पद हैं। विज्ञान यहाँ कारणभूता मूलसत्ताका स्वरूप लक्षण है, ब्रह्म उसी सनातनका कार्यरूप तटस्थ लक्षण। विश्वकी परमसत्ताके सन्दर्भमें — **विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्** श्रुतिका यही वैज्ञानिक तात्पर्य है — यह बृंहणधर्मी निरतिशय बृहत् विस्तारोन्मुख परमतत्त्व ही ब्रह्म है, और इसकी निरतिशय बृंहणधर्मिता या प्रसरणधर्मिता ही उसका विज्ञान व वैज्ञानिक स्वरूप। इस प्रसरणधर्मिता के विज्ञानसे ही विश्वके कारणभूत भूतसमुदायकी सृष्टि होती है, विज्ञानमें ही उनके अस्तित्वका नियमन होता है, अन्तमें उसमें ही उनका विलय हो जाता है।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि — परिणामवाद भी आचार्य शङ्करके अद्वैत सिद्धान्तके अनुसार विवर्त ही है। आचार्यपादके शिष्य श्री सुरेश्वराचार्यके परम उल्लेखनीय शिष्य पूज्यपाद श्री सर्वज्ञात्ममुनिका भी यही अभिमत है ब्रह्ममें विश्वकी कारणताके स्वरूप या सद्भावको बतानेके लिए कार्यकारणभावका प्रतिपादन अनिवार्य है। इसीलिए वहाँ परिणामवादकी व्यवस्था की गई है ; अत: विवर्तवाद वहाँ स्वयं प्रस्तुत हो जाता है ; क्योंकि परिणामवादके द्वारा प्रसक्त कूटस्थब्रह्मकी परिणामिता वहाँ सर्वथा अनुपपन्न है। इसलिए कथित परिणामवादका

पर्यवसान विवर्तवादमें हो जाता है —

विवर्त्तवादस्य हि पूर्वभूमिः
वेदान्तवादे परिणामवादः ।
व्यवस्थितेऽस्मिन्परिणामवादे
स्वयं समायाति विवर्त्तवादः ॥[११]

वह एक ही अद्वितीय पदार्थ व विज्ञान विश्वरूपमें बृहत्से बृहत्तर हो जाता है, इसीलिए उसका उपपत्तिमूलक नाम ब्रह्म है। भगवत्पाद आचार्य शङ्करने अपने शारीरक भाष्यमें व्याकरण लभ्य अर्थको केन्द्रमें रखकर कहा **ब्रह्मशब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य नित्यशुद्धत्वादयोऽर्थाः प्रतीयन्ते, बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्,**[१२] अर्थात् 'बृह्' धातुके अर्थका अनुगम होनेसे व्युत्पत्ति सिद्ध ब्रह्म शब्दसे नित्यत्व-शुद्धत्व आदि अर्थ प्रतीत होते हैं। भगवान् भामतीकार मिश्रपादने आचार्य शङ्करके अर्थको स्पष्ट करते हुए लिखा — **वृद्धिकर्मा हि बृहतिरतिशायने वर्तते। तच्चेदमतिशायनमनवच्छिन्नं पदान्तरावगमितं नित्यशुद्धबुद्धत्वाद्यस्याभ्यनुजानातीत्यर्थः।**[१३] भामतीके उपर्युक्त कथनका आशय है — बृह् धातुका अर्थ वृद्धि है। यह अर्थ जिस धातुका है वह अतिशय अर्थमें वर्तमान है। किसी की अपेक्षासे उसमें महत्त्व है, यह नहीं, किन्तु स्वतः है। अतः ब्रह्ममें निरपेक्ष महत्त्व है जो कि अन्यपद नित्यत्वादि बोधक नित्य आदि पदोंसे अवगत नित्यशुद्ध-बुद्धादिको स्पष्ट कर रहा है। भगवत्पाद रामानुजाचार्यने अपने श्रीभाष्यमें ब्रह्मपदकी निरुक्ति इस प्रकार की है .....**सर्वत्र बृहत्त्वगुणयोगेन हि ब्रह्मशब्दः, बृहत्त्वं च स्वरूपेण गुणैश्च यत्रानवधिकातिशयं सोऽस्य मुख्योऽर्थः।**[१४] यहाँ आचार्यपादने 'बृहत्त्वगुणयोग' के अर्थमें ब्रह्मशब्दका निर्वचन किया है। स्वरूपतः और गुणानुसार असीमता और अतिशयता ही बृहत्त्वका तात्त्विक अर्थ है। अतः निरतिशय बृहत् होनेवाला व करनेवाला पदार्थ 'ब्रह्म' है। आचार्यप्रवर हालास्यनाथ महोदयने अपनी सूत्रार्थचन्द्रिकामें ब्रह्मपदके व्याख्यानको श्री शङ्कर, श्री कण्ठ, श्री रामानुज एवं श्री आनन्दतीर्थके सिद्धान्त पक्षका उपबृंहण करते समय इसी अर्थमें संगृहीत किया है, जो वहाँ जिज्ञासाधिकरणमें भलीभाँति द्रष्टव्य है।[१५]

विज्ञान आज विश्वको बृंहणशील या विकासधर्मी कह रहा है, एक ही

तत्त्वका गुणयोगात्मक विकास या विस्तार। यही वर्तमान विज्ञानमें प्रसरणधर्मी विश्वका सिद्धान्त (Theory of Expanding Universe) है। वेदान्तदर्शनके सभी आचार्य अवधिभूत अतिशयके समर्थक नहीं, वे अनवधिक या निरपेक्ष अतिशयका प्रतिपादन करते हैं। इस दृष्टिसे वे विश्वद्रव्यकी सर्वतोमुखी प्रसरणशीलताके समर्थक हैं — अर्थात् — विश्वकी प्रसरणधर्मिता बद्ध नहीं, मुक्त — open system है। यह बृंहणधर्मी निरतिशय बृहत् महातत्त्व ही ब्रह्म है और इसकी निरतिशय प्रसरणधर्मिता ही उसका विज्ञान। विज्ञान आज सृष्टिकी मूलभूत सत्तामें Implicate-order की किंचित् अवधारणा कर रहा है ; वह उसके मूल वैज्ञानिक स्वरूपसे भिन्न नहीं, तद्वत् है। वेदमें इसे ही 'ऋत' के रूपमें देखा और समझा गया है। इस ऋतधर्मिणी प्रसरणधर्मिताके विज्ञानसे ही विश्वके कारणभूत भूतसमुदायकी सृष्टि होती है, विज्ञानमें ही उनके अस्तित्वका नियमन होता है, अन्तमें उसमें ही उनका परम विलय हो जाता है। विज्ञानका Implicate-order सृष्टिके 'ऋतधर्म' के अनुशासनसे परे नहीं। बृंहणात्मक विज्ञानघन महासत्ता स्वयं प्रवृत्तिनिमित्तात्मक है — उसका प्रवृत्तिनिमित्तोपपादकत्व सृष्टिकालमें समग्र विश्वप्रपञ्चका विस्तार करता हुआ जीवगत ज्ञानादिधर्मोंका बृंहण करता है एवं उसे परममुक्त अवस्था तक ले जाता है ; उसकी प्रसरणधर्मितामें कहीं कोई संकोचका भाव नहीं, अत: सृष्टिके कारणभूत बृंहण व्यापारके द्वारा ही ब्रह्म शब्दका तात्त्विक अर्थ स्पष्ट होता है। सृष्टिकी संरचनासे विश्वचैतन्यके जैवविकास तकका समग्र स्वरूप इस महान् शब्दकी अर्थभूता मर्यादामें समाहित है। इसीलिए श्रुति कहती है — **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**[१६] — जिससे ये आकाशादि सम्पूर्ण भूत समुदाय उत्पन्न होते हैं। प्रथम उसने सृष्टि संरचना की, तदनन्तर वह उसमें प्रविष्ट हो गया — **तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्** ।[१७] इसके अर्थको पुन: स्पष्ट करते हुए श्रुति कहती है — सभीका नियामक उसमें प्रविष्ट हो गया — **अन्त:प्रविष्टश्शास्ता जनानाम्**।[१८] वह विज्ञानघन सत्ता ही बृहत्तम है, उसीने सृष्टिको बृहत्तम विस्तारधर्मी बनाया इसीलिए उसे 'ब्रह्म' कहा गया है — **बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च यद्रूपं ब्रह्मसंज्ञितम्**।।[१९] प्रपञ्चनियमनकी दृष्टि (Implicate-order) से ही विज्ञानघन महासत्ताको 'ईश्वर' कहा गया है — **सकलजगदीशनशील ईश्वर:**, यहाँ 'ईशन' अर्थमें ईश्वर शब्द निष्पन्न हुआ है। यही प्रवृत्तिनिमित्तक नियमनके अर्थका बोधक है। प्रबन्धका उपर्युक्त कथन भगवान् श्रीमदप्पय दीक्षितेन्द्रकी

शिवार्कमणिदीपिकाके निम्नकथनका अति संक्षिप्त आशय है —

..........**बृंहतेर्धातोर्मन्प्रत्ययान्तस्य ब्रह्मशब्दस्यात्र त्रिविधपरिच्छेदरहितं वस्त्वर्थ इत्यभ्युपगन्तव्यम्। धात्वर्थानुगमात् प्रकरणोपपदादिसंकोचकाभावाच्च। ....मा भूद्वा गुणतो बृहत्त्वं ब्रह्मशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं तथापि प्रवृत्तिनिमित्तोपपादकत्वेन तदवश्यं ब्रह्मशब्दार्थे वक्तव्यम्। न हि तस्य बृहत्त्वमात्रं प्रवृत्तिनिमित्तम्। किं तु बृंहणविशेषितं बृहत्त्वम्। 'बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेत्यभिधीयत' इति स्मृतेः। बृंहणत्वं च सर्गकालोन्मिषत्सकलप्रपञ्चविस्तारयितृत्वमुक्तिकालविकसन्मुच्यमानजीवगतधर्मज्ञानविकासकत्वादिसर्वविधबृंहयितृत्वरूपं वाच्यम्। सङ्कोचकाभावात्। अपि च यत्प्रपञ्चसृष्ट्यादिकारणं तद्ब्रह्मशब्दार्थ इत्यभ्युपगन्तव्यम्। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्त' इत्यादितल्लक्षणानुसारात्। जगत्कारणस्य वस्तुनः सर्वनियन्तृत्वमभ्युपगन्तव्यम्।**[२०]

मीमांसा दर्शनमें यह प्रवृत्तिनिमित्तकत्व ही धर्मतत्त्वके नामसे परिभाषित हुआ है। ऋषिचिन्तनमें यही सत्य परमचेतनाके समारोपित विधि-विधान या सनातन धर्मके नामसे प्रसिद्ध है। सनातनका अर्थ है — सर्वदा रहनेवाला — **सदाभवः सनातनः** । सृष्टिके साथ उसका विधायक सनातनधर्म सर्वदा उसके साथ यथावत् विद्यमान है। जिस प्रकार परम चैतन्यका बुद्धि एवं तत्सम्भूत प्राणरूप कार्य 'क्वाण्टम्' जगत्का संचालन करता है, उसी प्रकार प्रतिजीव चैतन्यकी अपनी स्वरूपभूता संस्कारधारा या प्रकृतिके अनुसार उसके भावी विकासका स्वरूप निर्धारित करता है। इस धर्मतत्त्वमें ही जगत्की सम्पूर्ण 'ब्लू-प्रिण्ट' समाहित है। भारतीय धर्मदर्शनने इसे एक सनातन 'प्रेरक' तत्त्वके रूपमें देखा है। यह 'प्रेरक-धर्मिता' ही धर्मतत्त्वके रूपमें प्रकट होती है। इसीलिए पूर्वमीमांसाशास्त्रमें भगवान् जैमिनिने धर्मका लक्षण प्रवर्तक तत्त्वके रूपमें बताया है — **चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**।[२१] भगवान् भाष्यकार शबरस्वामीने 'चोदना' पदका व्याख्यान इस प्रकार प्रस्तुत किया है — **चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनमाहुः ....चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमित्येवं जातीयकमर्थं शक्नोत्यवगमयितुं नान्यत्किंचनैन्द्रियम्।**[२२] मीमांसादर्शनका प्रधान प्रतिपाद्य धर्मपदमें यागादिके द्वारा पुरुषविषयीभूत प्रवर्तनके अर्थको ही लक्ष्यमें रखकर

धर्मशास्त्र प्रधान हो गया है। **चोदनाजन्यप्रमाविषयः पुरुषनिःश्रेयसहेतुभूतश्च यः स धर्म इति प्रतिज्ञायत इति भावः** [२३] , अर्थात् — पुरुषके निःश्रेयस् या परमकल्याणमें हेतुभूत प्रवर्तनजन्य प्रमाका विषय ही धर्म है — वहाँ यही धर्मपदका तात्पर्यार्थ है। श्रुतिने धर्मका प्रतिपादन 'करण' अर्थमें प्रमाणित किया है ; इसके इतिकर्तव्यताभागको मीमांसाशास्त्रने पूर्ण बना दिया। इस सन्दर्भमें भगवान् भट्टपादका यही अभिमत है —

धर्मे प्रमीयमाणे हि वेदेन करणात्मना।
इतिकर्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति ॥[२४]

यह विज्ञानघन परमसत्ता ही कहीं ब्रह्म, कहीं धर्म, कहीं विज्ञानपदके द्वारा कही गई है , जो जलमें लवणखण्डकी तरह विश्वमें विलीन हो गई है —

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेवैवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव ॥[२५]

जिस प्रकार जलमें डाला हुआ लवणखण्ड जलमें ही विलीन हो जाता है, उसे पुनः निकाला नहीं जाता, जहाँसे भी जल ग्रहण किया जाए वह लवणाक्त ही जान पड़ता है, उसी प्रकार यह महद्भूत अनन्त अपार विज्ञानघन ही है। विज्ञानघन शब्दका अर्थ मन्त्रके भाष्यमें आचार्य शङ्करने इस प्रकार किया है — विज्ञप्तिका नाम विज्ञान है, जो विज्ञान हो और घन हो उसे विज्ञानघन कहते हैं। यहाँ विज्ञानके साथ 'घन' पदका ग्रहण अन्य जातिकी वस्तुका निषेध करनेके लिए है, जैसे सुवर्णघन, लोहघन आदि। 'एव' पद यहाँ निश्चयार्थक है — **विज्ञप्तिर्विज्ञानम्, विज्ञानं च तद्घनश्चेति विज्ञानघनः, घनशब्दो जात्यन्तरप्रतिषेधार्थः ; यथा सुवर्णघनोऽयोघन इति।**[२६]

३. महासत्ता — सम्प्रश्न और सिद्धान्त

ऋषि परम्पराके समक्ष विश्वकी विज्ञानघन महासत्ताका कोई भी तत्त्व अलक्षित नहीं — उसने महाकालकी सीमाको लाँघकर सृष्टिके परम वैज्ञानिक रहस्योंको जाना है। इस सन्दर्भमें भगवान् कृष्णका यह वचन परम प्रामाणिक है —

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।[२७]

'विज्ञान सहित इस सम्पूर्ण ज्ञानको मैं तुम्हें कहूँगा, जिसको जान लेनेके पश्चात् और कुछ भी जाननेके लिए शेष नहीं रह जाता।' साइन्स शब्द मूलतः लेटिन भाषाका पद है — जिसका सामान्य अर्थ है — ज्ञान (Knowledge), कालान्तरमें यह शब्द विषयगत शास्त्रविशेषके सन्दर्भमें रूढ़ व अनुशासित हो गया। भारतीय दर्शनमें यह शब्द प्रारम्भसे ही तत्त्वार्थके अर्थमें परिभाषित है। भगवत्पाद शङ्करके अनुसार — **ज्ञानं विषयः विज्ञानं विषयानुभूतिः** — ज्ञानका अर्थ विषयके बोधतक ही सीमित है, विज्ञान उस बोधकी तत्त्वानुभूतिका नाम है। भारतीय चिन्तनदर्शनका प्रधान प्रतिपाद्य विज्ञानघन सनातन महासत्ताका स्वरूपानुसन्धान है। उसने सृष्टि और उसके विकासके सन्दर्भमें निम्न प्रश्नोंपर सर्वत्र वैज्ञानिक गहराइयोंमें उतरकर सोचा है, प्रस्थानभेदके साथ उनकी मीमांसा प्रस्तुत की है।

(१) विज्ञानघन महासत्ताका स्वरूप क्या है ?
(२) महासत्ता पुनः-पुनः विश्वरूपमें क्यों प्रस्तुत होती है ?
(३) परमसत्ताका सनातनधर्म व धर्मपरिणाम क्या है ?
(४) यह विश्व क्यों और कैसे उत्पन्न होता है ?
(५) जगत्का उपादानकारण क्या है ?
(६) विश्वके विकासका स्वरूप क्या है ?
(७) महाकालकी यात्राका इतिहास क्या है ?
(८) आदिअण्डका विकास और विस्फोट क्यों और किस प्रकार होता है ?
(९) हिरण्यगर्भकी बाह्य और आभ्यन्तर संरचनाका स्वरूप क्या है ?
(१०) हिरण्मयअण्डकी आयु क्या है ?
(११) उसके विकास-विस्फोट और पुनः संरचनाका काल क्या है ?
(१२) विश्वके समुचित विकासकी कालक्रमागत तिथियाँ क्या हैं ?
(१३) प्राणकी महासत्ताका स्वरूप क्या है ?
(१४) जैवविकास क्यों होता है ?
(१५) इसका द्रव्योपादान क्या है ?
(१६) जीवनके पार्थिव अवतरणका सिद्धान्त क्या है ?

(१७) इसका पार्थिव और अपार्थिव आयाम क्या है ?

(१८) जीवनके रासायनिक संश्लेषणका सिद्धान्त और उसके प्रकारगत अनुशासनका स्वरूप क्या है ?

(१९) इस ग्रहपर जीवनके कालक्रमागत विकासका इतिहास क्या है ?

(२०) मनुष्यका अस्तित्व क्या एक आकस्मिक संयोगमात्र है, या इसकी पूर्व परियोजना व ब्लू-प्रिण्ट विश्व-द्रव्यके आदिम संरचना विधानमें सुरक्षित है ?

(२१) क्या मानव द्वारा विश्वके वैज्ञानिक स्वरूपपर किया गया प्रमाण-प्रमेयात्मक चिन्तन प्रामाणिक है, या आधारहीन और अमौलिक?

(२२) इस ग्रहके इतिहासमें मानवीय विकासका स्वरूप और इतिहास क्या है ?

(२३) विश्वके जीवन-चैतन्यका विकास मानवतक पहुँचकर शान्त और स्थिर क्यों हो जाता है, इससे परे पृथ्वीपर उसका विकास उपलब्ध क्यों नहीं होता ?

(२४) क्या जीवनका समुन्नत विकास और अस्तित्व अन्य लोकब्रह्माण्डोंपर विद्यमान है, या यह सौभाग्य इस ग्रहतक ही परिसीमित है ?

(२५) विश्वके समुचित विकासके परिप्रेक्ष्यमें सभ्यता और संस्कृतिका विकास, उसकी वैज्ञानिक अन्वेषणाका स्वरूप अर्थयुक्त प्रामाणिक एवं ब्रह्माण्डीय आयाममें कहीं सार्थक है, या अखिल विश्वकी यह सम्पूर्ण विज्ञानयात्रा आधारहीन और निरर्थक है ?

(२६) विश्वके प्रलय-महाप्रलय और परमप्रलयका आधार, स्वरूप और सिद्धान्त क्या है ?

विश्वकी महासत्ताके सन्दर्भमें इस तरहके अनेक सम्प्रश्न और सिद्धान्त हैं — जिनकी मीमांसा भारतीय तत्त्वदर्शनमें भलीभाँति की गई है। यह सत्य है कि आज भारतवर्षका अधिकांश वैज्ञानिक वाङ्मय विलुप्त और विनष्ट हो चुका है, तथापि इस विज्ञानचिन्तनके अनेक स्पष्ट और अस्पष्ट संकेत एवं सन्दर्भ पुरातन धर्मग्रन्थोंमें विद्यमान हैं। वेद-उपनिषद्-दर्शन-आगम-स्मृति और पुराण इन्हीं प्रश्नोंके वैज्ञानिक विमर्शका विशाल साहित्य है। प्रश्नोंके अन्वेषण, चिन्तन

और प्रतिपादनका प्रकारगत अनुशासन और स्वरूप एवं उनका आयाम जहाँ धर्मशास्त्रप्रधान है, वहीं विज्ञानचिन्तनका सिद्धान्तपक्ष भी उतनी ही प्रौढ़ताके साथ प्रस्तुत है। भारतीय वाङ्मयकी यह तत्त्वमीमांसा कहीं भी एकाङ्गी नहीं, जीवन और जगत्‌के बड़े-बड़े प्रश्न और वाद वहाँ भलीभाँति विवेचित हैं। इसके साथ ही योग, कर्मकाण्ड, उपासना, आत्मानुसन्धान आदि अनेक विषयोंपर सर्वत्र विचार किया गया है। विश्व-विज्ञान और आत्मानुसन्धान वहाँ पृथग् भावसे वर्गीकृत नहीं — वे परस्पर एक दूसरेके सम्पूरक हैं। यहाँ प्रबन्धके मूलप्रतिपाद्यको विश्वके विज्ञान और इतिहासके दर्शन तक ही परिसीमित रखा गया है, जो अपने विवेच्य विषयकी दृष्टिसे चतुर्धा विभक्त है — (१) भारतीय विज्ञानदृष्टि और इतिहासदृष्टिका सैद्धान्तिक स्वरूप, (२) वर्तमान विज्ञान और इतिहास चिन्तनसे उसका साम्य और पार्थक्य, (३) इस पार्थक्यका हेतु — स्थापना और सिद्धान्त, (४) भारतीय विज्ञानदृष्टि और इतिहासदृष्टिका वैशिष्ट्य। प्रस्तुत प्रबन्ध ८५० पृष्ठोंके अप्रकाशित ग्रन्थका संक्षिप्त दिग्दर्शन है, जिसमें मूलग्रन्थके विषय विस्तारको कालपुरुष और इतिहासपुरुष के आसंगमें, उपर्युक्त प्रतिपाद्यों और संप्रश्नोंके सन्दर्भमें कतिपय शीर्षकोंमें वर्गीकृत कर यहाँ उनका स्पर्शमात्र ही किया गया है।

४. भारतीय तत्त्वशास्त्र और आधुनिक विज्ञान

भारतीय तत्त्वशास्त्र और आधुनिक विज्ञानमें बहुत कुछ साम्य होते हुए भी वहाँ प्रयुक्त होनेवाली शब्दावली एवं विषयकी प्रतिपादनपद्धतिमें पर्याप्त अन्तर है — क्योंकि दोनोंके अनुसन्धानकी प्रक्रिया और लक्ष्य भिन्न-भिन्न हैं। आश्चर्य तो यह है कि वहाँ प्राप्त होनेवाला साम्य भी कुछ कम असाधारण नहीं, अन्तर सैद्धान्तिक कम है, पर कालक्रमसे प्राप्त तिथिक्रमका अधिक। भारतीय तत्त्वशास्त्रके पास अपनी वैज्ञानिक उपपत्तियोंके आधारपर विश्वके विभिन्न विकास स्तरोंकी कालक्रमागत सुनिश्चित तिथियाँ हैं — चाहे वह जैवविकासका क्रम हो, चाहे मानवीय उत्पत्तिका कालक्रम या महास्वन सिद्धान्तके अनुसार विश्वके प्रथम विस्फोटकी तिथि। वर्तमान विज्ञानके पास उपपत्तिके आधारपर विश्वके विकासकी कोई भी सुनिश्चित तिथि अभीतक प्राप्त नहीं है। उपपत्तिका मूलसिद्धान्त ही जब सम्पूर्णरूपसे विवादग्रस्त है, तब निश्चित तिथिका प्रश्न ही नहीं उठता। विज्ञानमें २०० करोड़ वर्षोंके कालान्तरालमें २० से ५० करोड़ वर्षोंका अन्तर सम्भावनामूलक

भूल और छूटके नामपर सर्वत्र स्वीकार्य है। उसी प्रकार ६ से २० अरब वर्षोंके कालखण्डमें १४-१५ अरब वर्षोंकी भूलको विज्ञान सम्भावनाके परिप्रेक्ष्यमें यथावत् ग्रहण कर लेता है। १०० अरब वर्षोंकी परिसीमामें इससे परे का कालान्तर चाहे वह ५०० अरब वर्ष हो या ५०० सहस्र अरब वर्ष या इससे भी बहुत अधिक — यह भी वहाँ सम्भावना मूलकताके नामपर सर्वत्र ग्राह्य है। इस प्रथम भूल व छूटकी प्रासंगिकता पृथ्वीके जैवप्राकृतिक इतिहासके सन्दर्भमें देखी जा सकती है, द्वितीयका सीधा सम्बन्ध बिग-बैंगकी कालावधिसे है, तृतीयका सन्दोलनात्मक विश्वकी आवृत्तियोंसे। भारतीय तत्त्वशास्त्रमें इन सम्भावनाजन्य भूलोंके लिए कोई स्थान नहीं, वह इनसे सर्वथा मुक्त है। वहाँ उपपत्तिके साथ तीनों स्थलोंपर ही कालकी अवधिभूता संख्या निश्चित है। भारतीय तत्त्वशास्त्र वैज्ञानिक ही नहीं, वह परम वैज्ञानिक है। पाठक स्वयं ऋषि-चिन्तनकी वैज्ञानिकतापर सहज भावसे विचार करते हुए प्रबन्धके मूल विषयमें प्रवेश करें, इसी सुविधाके लिए प्रारम्भमें ही सिद्धान्तोंके साम्य और पार्थक्यकी निम्न तालिका यहाँ प्रस्तुत है।

४. भारतीय तत्त्वशास्त्र / आधुनिक विज्ञान

भारतीय तत्त्वशास्त्र	आधुनिक विज्ञान
१. विश्वकी प्रथम अवस्था — आदिअण्ड।	१. विश्वकी प्रथम अवस्था — (Cosmic egg) आदिअण्ड।
२. संकोचशक्तिके द्वारा — आदिअण्डका निर्माण।	२. संकोचशक्तिके द्वारा — आदिअण्डका निर्माण।
३. आदिअण्डकी द्रव्यावस्था — अग्नि और सोम प्रधान।	३. आदिअण्डकी द्रव्यावस्था — Plasma
४. आदिअण्डकी आभ्यन्तर अवस्था — परमघनतम।	४. आदिअण्डकी आभ्यन्तर अवस्था—परमघनतम।
५. आदिअण्डकी बाह्यअवस्था — परमभास्वर।	५. आदिअण्डकी बाह्यअवस्था — परमभास्वर।
६. आदिअण्डका तापमान — परम प्रचण्ड।	६. आदिअण्डका तापमान — परम प्रचण्ड।
७. आदिअण्डका काल—संरचनासे विस्फोटतक — ३,६०,००० वर्ष।	७. आदिअण्डका काल—संरचनासे विस्फोटतक—अनिश्चित।

८. तापशक्तिके वर्द्धनसे—अण्डका विस्फोट।

९. आदिअण्डका 'नाद' विस्फोट।

१०. एक क्षणके नगण्यतम भागमें तड़िद् वेगसे—विश्वद्रव्यका विस्फोट।

११. आदिअण्ड व हिरण्यगर्भका संरचनाकाल —
१०,६१,२९,४९,०९९ वर्ष,
— १० अरब, ६१ करोड़,
२९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष।

१२. आदिअण्डका विस्फोट —
काल १०,६१,२५,१७,०९९ वर्ष।
— १० अरब, ६१ करोड़,
२५ लाख, १७ हजार, ९९ वर्ष।

१३. विस्फोटसे आदिमद्रव्यकी उत्पत्ति—पाञ्चभौतिक तेजोमेघ।

१४. सन्दोलनात्मक विश्वका सिद्धान्त — विश्वचक्रकी पुनः-पुनः आवृत्ति।

१५. सृष्टिका प्रथम सन्दोलनात्मक विश्व—१५,५५,२१,९७,२९,४९,०९९ वर्ष,
— १५ नील, ५५ खरब,
२१ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख,
४९ हजार, ९९ वर्ष।

१६. विश्वका वर्तमान संदोलनचक्र— ६,००१वाँ विश्व-दोलन।

८. तापशक्तिके वर्द्धनसे—अण्डका विस्फोट।

९. आदिअण्डका 'बिग-बैंग' विस्फोट।

१०. एक सेकेण्डके नगण्यतम भागमें— विश्वद्रव्यका विस्फोट।

११. आदिअण्ड व कॉस्मिक एगका संरचनाकाल प्राय: अनिश्चित,
— बहुसम्मत रचनाकाल
१० अरब वर्षके निकट,
११ से १५ अरबके मध्य।

१२. आदिअण्डका विस्फोट —
काल प्राय: १० अरब वर्ष।
— बहुसम्मत सम्भावना
१० अरब वर्ष ; अल्प सम्भावना ११ अरबसे १५ अरबके मध्य।

१३. विस्फोटसे आदिमद्रव्यकी उत्पत्ति — डस्टक्लाउड, वा नोबुला।

१४. सन्दोलनात्मक विश्वका सिद्धान्त— विश्वचक्रकी पुनः-पुनः आवृत्ति।

१५. सृष्टिका प्रथम सन्दोलनात्मक विश्व १०० अरब वर्षसे बहुत पूर्व
— अनिश्चित।
— सम्भावना — १००० वर्ष
या इससे भी पूर्व —
अनिश्चित।

१६. विश्वका वर्तमान संदोलनचक्र — अनिश्चित।

१७. सृष्टिके सन्दोलनात्मक विश्वचक्रोंकी सम्पूर्ण संख्या — १२,००० विश्वदोलन।	१७. सृष्टिके सन्दोलनात्मक विश्वचक्रोंकी सम्पूर्ण संख्या — अनिश्चित।
१८. विश्वके एक सन्दोलन-चक्रका सम्पूर्णकालमान — एक अण्डसृष्टिसे नवीन अण्ड संरचनातक — २५ अरब, ९२ करोड़ वर्ष।	१८. विश्वके एक सन्दोलन-चक्रका सम्पूर्णकालमान — एक अण्डसृष्टिसे नवीन अण्ड संरचनातक — २० से ३० अरब वर्षोंके मध्य — अनिश्चित।
१९. सृष्टिके सम्पूर्ण सन्दोलनात्मक विश्वचक्रोंका कालमान — ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष। — ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष।	१९. सृष्टिके सम्पूर्ण सन्दोलनात्मक विश्वचक्रोंका कालमान — अनिश्चित।
२०. वर्तमान आकाशगङ्गाके आदिम-द्रव्यका संरचनाकाल — १०,६१,२५,१७,०९९ वर्ष, — १० अरब, ६१ करोड़, २५ लाख, १७ हजार, ९९ वर्ष।	२०. वर्तमान आकाशगङ्गाके आदिम-द्रव्यका संरचनाकाल — १० अरबसे १३ अरब वर्षोंके मध्य, — अधिक सम्भावना १० अरब वर्ष।
२१. आकाशगङ्गामें सूर्य सहित तारोंका संरचना काल — प्रथम काल — ८,४५,२९,४९,०९९ वर्ष, द्वितीय काल— ६,२९,२९,४९,०९९ वर्ष।	२१. आकाशगङ्गामें सूर्य सहित तारोंका संरचना काल — ६ अरबसे १० अरब वर्ष।
२२. नभोगङ्गाकी आभ्यन्तर आकृति — सर्पकी तरह कुण्डलाकार।	२२. नभोगङ्गाकी आभ्यन्तर आकृति — सर्पिल व स्पाइरल (Spiral)।
२३. नभोगङ्गाकी बाह्य आकृति — पद्माकृति व पद्मनाभ।	२३. नभोगङ्गाकी बाह्य आकृति — थाल या डिश या सिगरेटकी तरह।
२४. आकाशगङ्गाका आभ्यन्तर द्रव्य — सोम।	२४. आकाशगङ्गाका आभ्यन्तर द्रव्य — हाइड्रोजन।

२५. आकाशगङ्गाका आभ्यन्तर तापमान — परम शीतल।

२५. आकाशगङ्गाका आभ्यन्तर तापमान — परम शीतल।

२६. आकाशगङ्गाकी ब्रह्माण्डीय विविधता — तारों आदिका स्वरूप और प्रकार — (१) हिरण्यगर्भ, (२) तेजोमेघ, (३) नीहारिका, (४) सुपर्ण, (५) भ्राज, (६) पटर, (७) पतङ्ग, (८) स्वर्णर, (९) श्वेतवामन, (१०) उग्रतारा, (११) कृष्णतारा, (१२) महाविष्णु, (१३) धूमकेतु, (१४) ग्रह, (१५) उपग्रह, (१६) उल्का आदि।

२६. आकाशगङ्गाकी ब्रह्माण्डीय विविधता— तारों आदिका स्वरूप और प्रकार — (१) कॉस्मिक एग, (२) डस्टक्लाउड, (३) नेबुला, (४) सुपरनोवा, (५) क्वासर, (६) पल्सर, (७) नोवा, (८) रेड- जाइन्ट्स् (९) ह्वाइट-ड्वार्फ, (१०) न्यूट्रॉन स्टार, (११) ब्लैक-होल, (१२) ह्वाइट-होल, (१३) कॉमेट, (१४) प्लैनेट, (१५) सटेलाइट, (१६) मेटोराइट्स् आदि।

२७. सूर्यका जन्मकाल — ६,२९,२९,४९,०९९ वर्ष, अर्थात् ६ अरब, २९ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष

२७. सूर्यका जन्मकाल — ६ से ७ अरब वर्षोंके मध्य।

२८. सूर्यकी सम्पूर्ण आयु — १२ अरब, ९६ करोड़ वर्ष।

२८. सूर्यकी सम्पूर्ण आयु — १२ अरब से १४ अरब वर्ष के मध्य।

२९. सूर्यकी प्रथम अवस्था — वर्तमान अवस्थाकी तुलनामें १६ गुणा अधिक बृहत्।

२९. सूर्यकी प्रथम अवस्था — वर्तमान अवस्थाकी तुलनामें १० से १६ गुणा अधिक बृहत्।

३०. सूर्यका आभ्यन्तर द्रव्य—भृगु अङ्गिरा तत्त्वका एक अग्नि-चक्र। —भृगुका अर्थ है—प्रज्वलित सोम इन्धन, अङ्गिरा प्रज्वलनके पश्चात् अङ्गाररूपा द्रव्य-राशि, जो पुनः सोमरूप होती हुई भृगु बन जाती है।

३०. सूर्यका आभ्यन्तर द्रव्य—हाइड्रोजन और हीलियमका ताप-चक्र।

३१. सूर्यके द्वारा आकाशगङ्गाके केन्द्रकी परिक्रमाका औसत काल — ३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्ष।

३२. सूर्यकी प्रधान पदार्थ अवस्था — भृगु-अंगिरा।

३३. सौर ब्रह्माण्डकी प्रथम द्रव्य अवस्था—तेजोमेघ वा प्रवहमान वायुके चक्रमें घूर्णित — सूक्ष्ममहाभूत।

३४. प्रकाशमें द्रव्यमान।

३५. प्रकाशके वर्ण परिवर्तनके आधार पर तारोंके स्वरूप विनिर्णयका सिद्धान्त या लेश्या विज्ञान — सांख्यके गुणात्मक परिवर्तनका आधार।

३६. प्रकाशमें अवरोधजन्य प्रकाशकता है—वह स्वयं प्रकाशित नहीं।

३७. तेजस् तत्त्वका धात्वन्तर — हिरण्य।

३८. धातुके तेज:क्षरणका सिद्धान्त।

३९. लोह एक अमृत धातु।

४०. द्रव्य — एक शक्ति स्पन्द।

४१. पदार्थ और शक्ति परस्पर विनिमयधर्मी हैं।

४२. पदार्थका सूक्ष्मतम स्वरूप शक्तिकी प्रमात्रा व तन्मात्रा है।

४३. विश्व एक शक्ति-चक्र।

४४. विश्व एक विज्ञानघन संज्ञानधारा है।

३१. सूर्यके द्वारा आकाशगङ्गाके केन्द्रकी परिक्रमाका— वर्तमान दृष्टकाल— २० करोड़, नवीन संशोधित काल— २६ करोड़ वर्षोंके मध्य।

३२. सूर्यकी प्रधान पदार्थ अवस्था — हाइड्रोजन, हीलियम।

३३. सौर ब्रह्माण्डकी प्रथम द्रव्य अवस्था — डस्टक्लाउड वा गैसके बादल।

३४. प्रकाशमें द्रव्यमान (mass)।

३५. प्रकाशके वर्ण परिवर्तनके आधारपर तारोंके स्वरूप विनिर्णयका सिद्धान्त — Hertzsprung Russell diagram.

३६. प्रकाशमें अवरोध जन्य प्रकाशकता है — वह स्वयंप्रकाशित नहीं।

३७. तेजस् तत्त्वका धात्वन्तर — युरेनियम।

३८. धातुके तेज:क्षरणका सिद्धान्त।

३९. लोह एक तेज:क्षरण हीन धातु।

४०. द्रव्य — एक शक्ति स्पन्द।

४१. पदार्थ और शक्ति परस्पर विनिमयधर्मी हैं।

४२. पदार्थका सूक्ष्मतम स्वरूप शक्तिकी प्रमात्रा वा Quantum है।

४३. विश्व एक शक्ति-चक्र।

४४. विश्व एक अनन्तसूचनाधर्मी कम्प्यूटरकी तरह है।

४५. विश्वका मूल पदार्थ सोम है।	४५. विश्वका मूल पदार्थ हाइड्रोजन है।
४६. विश्वका सूक्ष्मतम आदिद्रव्य— गुण या सूत्र (सांख्यदर्शनका गुण सिद्धान्त) इस दर्शनमें गुणका अर्थ धागा है।	४६. विश्वका सूक्ष्मतम आदिद्रव्य Superstring
४७. द्रव्यकी सूक्ष्म अवस्था — कण- परमाणु- अणु- स्कन्ध है।	४७. द्रव्यकी सूक्ष्म अवस्था — कण- परमाणु- अणु- है।
४८. विश्वकी अमृतधातु — लोह।	४८. विश्वकी दीर्घतम स्थायी धातु — लोह। लोह धातुकी अर्द्ध आयु — १०^{५००} वर्ष।
४९. विश्वके परम पदार्थमें कार्य- कारण नियमका अभाव।	४९. विश्वके परम पदार्थमें कार्य- कारण नियमका अभाव (Uncertainty Principle)।
५०. स्थूल विश्वमें कार्य-कारण नियमकी व्यवस्था।	५०. स्थूल विश्वमें कार्य-कारण नियमकी व्यवस्था।
५१. आकाशतत्त्वका निश्चित अस्तित्व।	५१. आकाशतत्त्वकी गाणितिक अवधारणा।
५२. दिक्‌की मण्डलाकार वक्रता।	५२. दिक्‌की वक्रताका सिद्धान्त।
५३. घटनात्मक विश्वमें दिक्-काल सापेक्षताका सिद्धान्त।	५३. दिक्-काल सापेक्ष है।
५४. कालकी गति सर्पिल (कुण्डलाकार) है।	५४. कालकी गति सर्पिल (Spiral) है।
५५. परम गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त — महासङ्कर्षण तत्त्व।	५५. परम गुरुत्वाकर्षण वा Supergravity का सिद्धान्त।
५६. गुरुत्व तमःपदार्थका धर्म है।	५६. गुरुत्वके पृथक् द्रव्यका अनुमान या अवधारणा — Graviton, Gravitino.

५७. तमोमण्डल व कृष्णगर्तका सिद्धान्त—संकोचात्मक प्रत्याकर्षण शक्ति, जो विश्वको बीज रूपमें संकुचित करती हुई—उसे तम: पदार्थके रूपमें परम गुरुत्वधर्मी बना देती है—'अप्रकाशित ब्रह्माण्ड'।

५७. ब्लैक-होलका सिद्धान्त — संकोचात्मक प्रत्याकर्षण शक्ति, जो विश्वको बीजरूपमें संकुचित करती हुई — उसे परम गुरुत्वधर्मी बना देती है —'अप्रकाशित ब्रह्माण्ड' ।

५८. महाविष्णु — जिसकी नाभिके नालसे विश्वकमलकी उत्पत्ति होती है।

५८. ह्वाइट-होलका सिद्धान्त — श्वेतगर्तके नाल व साइफनसे विश्वका विकास।

५९. असन्तुलित विश्वका गुण-क्षोभका सिद्धान्त—प्रकृतिका त्रिगुणात्मक असन्तुलन—त्रिगुणका विषम सन्तुलन।

५९. स्थिर सन्तुलित विश्वका सिद्धान्त विश्वद्रव्यका मात्रात्मक सन्तुलन। (The Steady-state-Theory)

६०. प्रसरणशील विश्वका सिद्धान्त — बृंहणधर्मी व विस्तारधर्मी विश्व।

६०. प्रसरणशील विश्वका सिद्धान्त — विस्तारधर्मी विश्व। (Theory of Expanding Universe)

६१. स्पन्दमान विश्वका सिद्धान्त — विश्व शक्तिका लयबद्ध स्पन्दन।

६१. स्पन्दमान विश्वका सिद्धान्त — विश्व शक्तिका लयबद्ध स्पन्दन। (Theory of Pulsating Universe)

६२. संकोचशील विश्वका सिद्धान्त —महाशक्तिका संकोच और विश्वद्रव्यका अण्डरूप विकास।

६२. संकोचशील विश्वका सिद्धान्त — महाशक्तिका संकोच और विश्वद्रव्यका अण्डरूप विकास। (Theory of Contracting Universe)

६३. विस्फोटका सिद्धान्त — आदि अण्ड व हिरण्यगर्भका विस्फोट — विश्वद्रव्यका विकास।

६३. विस्फोटका सिद्धान्त — बिग-बैंग, आदिअण्ड के विस्फोटसे — विश्वद्रव्यका विकास। (Big-Bang Theory)

६४. सन्दोलनात्मक विश्वका सिद्धान्त — विश्व-चक्रोंकी पुनः-पुनः आवृत्ति।	६४. सन्दोलनात्मक विश्वका सिद्धान्त — विश्व-चक्रोंकी पुनः-पुनः आवृत्ति। (Theory of Oscillating Universe)
६५. विश्वकी द्रव्यभूता ब्रह्माण्डीय संरचनाका प्रकार — शक्तिका संकोच और विकास।	६५. विश्वकी द्रव्यभूता ब्रह्माण्डीय संरचनाका प्रकार — शक्तिका संकोच और विकास। (Theory of Contracting and Expanding Universe)
६६. विश्वकी संरचनाका क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ सिद्धान्त। विश्व — क्षेत्रज्ञ शक्तिका संगठित क्षेत्र।	६६. विश्वकी संरचनाका संगठित क्षेत्र सिद्धान्त — विश्व शक्तिका संगठित क्षेत्र। (Unified Field Theory)
६७. सीमित और सान्त विश्वका सिद्धान्त—अखण्ड मण्डलाकार क्षेत्रीय सीमामें परिसीमित।	६७. सीमित और सान्त विश्वका सिद्धान्त — अखण्ड मण्डलाकार क्षेत्रीय सीमामें परिसीमित। (Theory of Closed System)
६८. पृथ्वीकी उत्पत्तिका काल— ४,१३,२९,४९,०९९ वर्ष।	६८. पृथ्वीकी उत्पत्तिका काल — ४ अरब, ५० करोड़ वर्ष।
६९. पृथ्वी पर प्रथम विकृत जैव विकास —सूक्ष्म जीवाणु युग — पृथ्वीकी संरचनाके १ करोड़, ७० लाख, ६४ हजार वर्ष उपरान्त—मधु कैटभ युग—४,११,५८,८५,०९९ वर्ष, ४ अरब, ११ करोड़, ५८ लाख, ८५ हजार, ९९ वर्ष।	६९. पृथ्वी पर प्रथम जैव विकास सूक्ष्म जीवाणु युग लगभग — ३ अरब, ५० करोड़ वर्ष पूर्व — Eukaryotes-Prokaryotes
७०. जैव विकासका द्वितीय युग — भूजलीय प्राणिज काल — हिरण्याक्ष युग —	७०. जैव विकासका द्वितीय युग — भूजलीय प्राणिज विकास — २ अरब वर्ष।

१,९७,२९,४९,०९९ वर्ष अर्थात्
१ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख,
४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व ।

७१. अन्तरनक्षत्रीय परिवर्तनके द्वारा उत्पन्न गुरुत्वाकर्षणकी लचकसे पृथ्वीपर नवीन कल्पका प्रारम्भ श्वेतवाराह कल्प —
१,९७,२९,४९,०९९ वर्ष।

७२. पृथ्वीपर व्यवस्थित जैवयुगका प्रारम्भ — स्वायम्भुव मन्वन्तर १,९५,५८,८५,०९९ वर्ष।

७३. पृथ्वीपर मानवका प्रथम विकास १ अरब, ९५ करोड़ वर्ष पूर्व। नवीन विकास — वैवस्वत मन्वन्तर १२ करोड़ वर्ष पूर्व।

७४. महाकाशसे पृथ्वीपर जीवनके आगमनका सिद्धान्त।

७५. पृथ्वीपर जीवनके अतिपार्थिव आगमनका माध्यम — 'आतिवाहिक देह'।

७६. पृथ्वीपर जीवनके रासायनिक संश्लेषणका सिद्धान्त।

७७. जीवनके क्रमिक विकासका सिद्धान्त — 'गुणात्मक विकास'।

७८. अन्य लोक ब्रह्माण्डोंपर जीवनके सुनिश्चित अस्तित्वका सिद्धान्त।

७९. अन्य लोकोंके द्वारा पृथ्वीपर बौद्धिक सम्पर्कोंके सन्दर्भ और उल्लेख।

७१. गुरुत्वाकर्षणकी लचकसे पृथ्वी पर नवीन युगका प्रारम्भ — २ अरब वर्षोंसे कुछ कम।

७२. पृथ्वीपर व्यवस्थित जैवविकासका प्रारम्भ — २ अरब वर्षोंसे कुछ कम।

७३. पृथ्वीपर मानवका प्रथम विकास — प्रोटीन सिन्थिसिसके आधारपर सम्भावित अनुमान — साढ़ेसात करोड़ वर्ष पूर्व।

७४. महाकाशसे पृथ्वीपर जीवनके आगमनकी सैद्धान्तिक स्थापनाका प्रारम्भ।

७५. पृथ्वीपर जीवनके अतिपार्थिव आगमनका माध्यम — सम्भावित 'अदृश्य रॉकेट'।

७६. पृथ्वीपर जीवनके रासायनिक संश्लेषणका सिद्धान्त।

७७. जीवनके क्रमिक विकासका सिद्धान्त — डार्विनवाद।

७८. अन्य लोक ब्रह्माण्डोंपर जीवनके सुनिश्चित अस्तित्वकी सम्भावना।

७९. अन्य लोकोंके द्वारा पृथ्वीपर बौद्धिक सम्पर्कोंकी सम्भावना।

८०. अन्य लोक ब्रह्माण्डोंपर परम समुन्नत सभ्यता और संस्कृतिका सुनिश्चित अस्तित्व।

८१. पृथ्वीपर सम्पूर्ण जैव जीवनका प्रलय—२,३६,४१,१४,९०१ वर्ष पश्चात्।

८२. पृथ्वी ग्रहका सम्पूर्ण प्रलय व उसकी शेष आयु — ४,५०,७०,५०,९०१ वर्ष पश्चात् अर्थात् ४ अरब, ५० करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ९ सौ, १ वर्ष।

८३. सूर्यकी शेष आयु व सूर्य प्रलय — ६,६६,७०,५०,९०१ वर्ष अर्थात् ६ अरब, ६६ करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ९ सौ, १ वर्ष।

८४. नवीन सन्दोलनात्मक विश्वके प्रथम अण्डकी संरचना — भविष्यमें—१५,३०,७०,५०,९०१ वर्ष पश्चात्।

८५. सृष्टिके महासन्दोलनात्मक विश्वका शेष काल—५९९९ विश्वके आगामी सन्दोलन चक्रोंके पश्चात्— १५,५५,१८,०२,७०,५०,९०१ वर्ष।

८६. सौर ब्रह्माण्डकी 'ताप' मृत्यु — 'उग्रतारा' अवस्था।

८७. परम विश्वकी 'प्रकाश' मृत्यु।

८०. अन्य लोक ब्रह्माण्डोंपर परम समुन्नत सभ्यता और संस्कृतिकी सुनिश्चित सम्भावना।

८१. पृथ्वीपर सम्पूर्ण जैव जीवनका प्रलय — अनिश्चित।

८२. पृथ्वी ग्रहका सम्पूर्ण प्रलय व उसकी शेष आयु — ४ अरब ५० करोड़ वर्ष सम्भावित।

८३. सूर्यकी शेष आयु व सूर्य प्रलय — सम्भावित — ६ अरब वर्ष।

८४. नवीन सन्दोलनात्मक विश्वके प्रथम अण्डकी संरचना — भविष्यमें — अनिश्चित।

८५. सृष्टिके महासन्दोलनात्मक विश्वका शेष काल — अनिश्चित।

८६. सौर ब्रह्माण्डकी 'ताप' मृत्यु — न्यूट्रॉन स्टार।

८७. परम विश्वकी 'प्रकाश' मृत्यु।

आधुनिक विज्ञानके साथ भारतीय तत्त्वशास्त्रका यह तुलनात्मक साम्यदर्शन और पार्थक्य ऋषि-प्रज्ञाके वैज्ञानिक स्वरूपको भली-भाँति स्पष्ट कर देता है। जहाँ तक सृष्टिके कालक्रमात्मक विकासकी सुनिश्चित तिथियोंका प्रश्न है — वहाँ विज्ञान करोड़ों वर्षोंकी सम्भावनाके साथ उसके आस-पास ही भटककर रह गया है। ब्रह्माण्डीय काल अपनी परिणामधर्मितामें प्रकृतिका एक नियमबद्ध अटल सत्य है, वहाँ क्षणार्द्धकी भी सम्भावनाके लिए कोई स्थान नहीं, चाहे वह भूभ्रमणका काल हो या सूर्यका महाव्योम परिभ्रमण, चाहे तारेकी मृत्यु हो या आकाशगङ्गाका समुद्भव और विलय, चाहे आदिअण्डका जन्म हो या विस्फोट, चाहे सन्दोलनात्मक विश्व-चक्रोंकी पुन:-पुन: आवृत्ति। सृष्टि और प्रलयका यह महाछन्द सर्वत्र लयबद्ध है — कालके क्षणांशका व्यतिरेक सम्भव नहीं, वह अपनी परात्पर इकाई तक समाहित है। भारतीय ऋषि-मनीषाने सृष्टिके महाछन्दपर आरूढ़ होकर विश्वके विकास और प्रलयकी सुनिश्चित काल घटिकाका साक्षात्कार किया है। वहाँ विज्ञानके बहुसम्मत कालक्रमका ग्रहण उपर्युक्त तालिकामें किया गया है, जो प्राय: भारतीय तिथिक्रमके बहुत सन्निकट है। उल्लेखनीय पार्थक्य है, वह केवल मानवके प्राचीन समुद्भवको लेकर, जहाँ तक नवीन समुद्भवका प्रश्न है — वह भारतीय मतके बहुत पास तक चला आया है। १९वीं शतीमें अनुमान था कि मानवीय विकास २५-५० हजार वर्ष पूर्व हुआ था — वहीं Protein Electrophoresis के आधारपर अब ३ करोड़से ७ करोड़के मध्य और इससे अधिक भी अनुमानित किया जा रहा है। इस साम्यदर्शनसे यह तथ्य भी उजागर होता है कि वर्तमान विज्ञान जिन सैद्धान्तिक स्थापनाओंको आज प्रस्तुत कर रहा है, वे भारतीय तत्त्वशास्त्रमें तिथिक्रमके साथ प्रारम्भसे ही विद्यमान हैं। यह साम्यदर्शन उस महासत्ताके विज्ञानघन स्वरूपका भी उपलक्षक है — जिसका ऊर्जा विस्फोट समय समयपर लोक ब्रह्माण्डोंपर होता रहता है। प्राचीन कालमें कभी यह विस्फोट भारतवर्षकी धरतीपर हुआ था — आज पुन:इस ग्रहके धरातलपर सर्वत्र हो रहा है। इतिहासपुरुषका यह प्रमाण-प्रमेयात्मक चिन्तन कहीं भी अमौलिक और अप्रामाणिक नहीं, इसका मूल और प्रमा दोनों ही विज्ञानघन सत्ताके स्वरूपमें अनादि कालसे विद्यमान हैं। यह विश्व परम सनातनकी क्रीड़ाका रङ्गमञ्च है — कालपुरुष और इतिहासपुरुष उसीका उपबृंहण और विस्तार।

२ – भारतीय दर्शनकी विज्ञान यात्रा

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे
भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋग्वेद, १०. १२१. १)

सृष्टिके पूर्व सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही विद्यमान था, इससे ही सभी भूततत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, वही इनका एकमात्र विधाता व स्वामी है, उसीने पृथ्वीसे गगन पर्यन्त सभी (तत्त्वों) को आधार व अस्तित्व प्रदान किया है, हम उस आदिदेवको छोड़कर किसे अपना हवि प्रदान करें।

अग्नीषोमौ पक्षावोंकार: शिरो बिन्दुस्तु नेत्रं मुखं रुद्रो रुद्राणी चरणौ बाहू कालश्चाग्निश्चोभे पार्श्वे भवत: ।........ एषोऽसौ परमहंसो भानुकोटिप्रतीकाशो येनेदं व्याप्तम्।

(हंसोपनिषद्)

विश्व एक ऊर्ध्वगतिमान उड़ते हुए पक्षीकी तरह है – 'ओंकार' इसका शिरोबिन्दु है, अग्नि और सोम इसके दो पंख, रुद्र और रुद्राणी इसके नेत्र एवं मुख, काल और अग्नि इसके दोनों पार्श्वभागमें स्थित चरण एवं भुजाएँ हैं। ....यह परमहंस करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान है, एवं इससे ही यह सब ओरसे परिपूर्ण है।

१. विश्वका प्रथम रङ्गमञ्च

विश्व चेतना, गति और गुरुत्व इन तीनों तत्त्वोंसे बना हुआ एक विराट् रङ्गमञ्च है, प्रकृति इसका संगठित क्षेत्र। महाप्रलयमें ये तीनों ही तत्त्व सदृश

परिणाममें पहुँचकर सन्तुलित हो जाते है। अतः प्रलय इन तत्त्वोंकी सन्तुलित अवस्थाका क्रम है। विश्वकी महाकालयात्रा इस सन्तुलनभंगके साथ प्रारम्भ होती है। सांख्यशास्त्रमें यही प्रकृतिके असन्तुलित गुणात्मक विश्वका सिद्धान्त है। सृष्टिके संरचनाकालमें यही तीनों तत्त्व गुणक्षोभ (chaos) के द्वारा प्रकृतिके महागुणात्मक सन्तुलनको भंग करते हुए शक्तिके संगठित क्षेत्रका निर्माण करते हैं। फलतः परिणामधर्मी सन्दोलनात्मक विश्व-चक्रोंकी आवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है। जब तक शक्तिकी गुणात्मक तन्मात्राका प्रमात्रक स्वरूप अपने धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाममें गतिशील रहता है — यह विश्व तब तक अपने गुणात्मक असन्तुलनकी शक्ति-स्पन्दस्वरूपा संकोच-विकासात्मक गतिपर पुनः-पुनः सन्दोलित होता रहता है। संकोच और विकास, यही प्रकृतिकी छन्दोबद्ध लय है, जो अनवरत सृष्टि और प्रलयके दोलायमान विश्व-चक्रों (oscillations) में सनातन भावसे निरन्तर झूलती हुई, अन्तमें प्रलयकी गोदमें पहुँचकर विश्रान्त हो जाती है। ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षों तक सृष्टि और प्रलयका यह सन्दोलन १२००० (बारह-सहस्र) विश्व-चक्रोंको सन्दोलित करता हुआ — पुनः इतने ही वर्षोंके लिए महाशान्तिकी चिरनिद्रामें पहुँचकर पुनः गतिशील हो जाता है। सृष्टिसे प्रलय तक विश्वके एक सन्दोलनचक्र (oscillation) का सम्पूर्ण कालमान २५ अरब ९२ करोड़ वर्षका है।

प्रकृतिका यह गुणक्षोभ (chaos) रजोगुणके बलमात्रकको गतिशील बना देता है — फलतः तमोगुण और सत्त्वगुणकी यह निष्क्रिय अवस्था समाप्त हो जाती है। तमोगुण सत्त्वगुणसे प्रभावित होता हुआ विश्वकी संरचनात्मक स्थितियों तक चला आता है। तमोगुण प्रकृतिका परम गुरुत्वधर्मी वह कृष्ण-गर्त है, जिसमें महाप्रलयसे ग्रस्त द्रव्य-राशि तन्मात्ररूपमें संकुचित होती हुई — अत्यन्त घनतम अवस्थामें विद्यमान है। कालान्तरमें गुणक्षोभके द्वारा तमोगुण सत्त्वगुणसे अभिभूत होता हुआ एक प्राकृत अण्डमें बदल जाता है। सत्त्वगुणकी प्रकाशधर्मिता तमोमण्डलके परम संकुचित तन्मात्र द्रव्यमें प्रचण्ड तापकी सृष्टि करती हुई, उसके परम संकुचित आयतनको एक घनतम अण्डके रूपमें किंचिद् विस्तार प्रदान कर देती है जो बिन्दु रूप है। आदिअण्डकी यह प्रथम अवस्था 'ज्योतिर्लिङ्ग' है। सत्त्वगुणके प्रथम स्पर्शमात्रसे प्रलयकी दग्ध द्रव्यराशि प्रज्वलित हो उठती है।

सत्त्वगुण प्रकाशस्वरूप चैतन्यकी महासत्ता है, जो प्रलयकालमें क्रियाशून्य हो जाती है। सृष्टिकालमें वही रजोगुणके बलमात्रक द्वारा सक्रिय होती हुई, तमोमण्डलको आवृतकर, अपने प्रचण्ड तापमान द्वारा उसे परम विस्फोटक सीमाओं तक ले आती है। गुणक्षोभके द्वारा सत्त्वगुण सोमतत्त्वमें बदलता हुआ, सृष्टि संरचनाकी नवीन दिशाओंमें गतिशील हो उठता है। फलत: तमोमण्डलकी दग्ध द्रव्यराशि इस प्रकाशस्वरूप सोमधाराके अभिषेकसे प्रज्वलित होती हुई उसे एक प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्गमें बदल देती है। सृष्टिके इस प्रथम जागरणकी स्मृति आज भी हिन्दू सभ्यतामें यथावत् विद्यमान है। भगवान् ज्योतिर्लिङ्गपर कलशद्वारा जलबिन्दुका अभिषेक प्रलयके तमोलिङ्गपर होती हुई सोमधाराके महाभिषेककी स्मृतिको जागृत कर देता है। सत्त्वमण्डल (गुण) और तमोमण्डलकी तुलना कुछ अंशोंमें — श्वेतगर्त (White-hole) और कृष्णगर्त (Black-hole) की प्रकृतिसे की जा सकती है। पर विज्ञानमें इन दोनोंका स्वरूप ही अभी तक भलीभाँति स्पष्ट नहीं, वह रहस्यकी घनी धुंधसे ढका है। श्वेतगर्तकी स्थिति तो और भी अस्पष्ट है, वह विज्ञानमें एक काल्पनिक अवधारणासे अधिक नहीं। वैदिक चिन्तन दर्शनके अनुसार यह विश्व अग्नि और सोम इन दो तत्त्वोंका संघात है — **अग्नीषोमात्मकं जगत्** । तमोमण्डलके कृष्णगर्तमें समाहित विश्वकी प्रलयदग्ध द्रव्यराशि सत्त्वमण्डलकी प्रकाशस्वरूपा सोमधाराके अभिषेक द्वारा परम प्रज्वलित होती हुई अग्नितत्त्वमें बदल जाती है। तम:पदार्थका एक नाम कालाग्निरुद्र है। आगम ग्रन्थोंके अनुसार प्रकृतिकी यह तमोलिङ्ग अवस्था — सहस्रों सूर्योंकी तरह परम भास्वर होती हुई, एक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रोद्भासित हो उठती है।[२८]

२. आदिअण्डका विस्फोट — सृष्टिका प्रथम क्षण

यह ज्योतिर्लिङ्ग ही विश्वका आदिअण्ड है, जिसके विस्फोटसे विश्वद्रव्यकी सृष्टि होती है। इसकी ही अपर परमविकसित अवस्थाका नाम हिरण्यगर्भ है। हिरण्यगर्भके सोमतत्त्वमें जगत्की समग्र 'ब्लू-प्रिण्ट' विद्यमान है, जिस प्रकार मयूरके अण्डरसमें उसके भावी विकासकी सम्पूर्ण वर्णछटा, रूप, रस, नृत्य, संगीत समाहित है,उसी प्रकार आदिअण्ड के भीतर अखिल विश्वका रसरहस्य और विज्ञान अपनी देशकालगत अनन्तताके साथ विद्यमान है। सन्दोलनात्मक

विश्वकी २५ अरब ९२ करोड़ वर्षोंकी महाकाल यात्राका 'कालसूत्र' आदिअण्डके सोमद्रव्यका ही परिणाम है। ऐतरेयश्रुतिकी विज्ञानपरम्परा इस हिरण्मयअण्डके आदिम विस्फोटको निम्न प्रकारसे स्पष्ट करती है —

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग् वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राण: प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्य: कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्यु: शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आप: ।।[२१]

इस वैज्ञानिक कथनके माध्यमसे आदिअण्डके क्रमश: होनेवाले विस्फोटोंकी सूचना दी गई है। विश्वका सम्पूर्ण विस्तार अण्डके विस्फोटित द्रव्यका ही विकास है। सत्त्वगुणके 'अम्भस्' में सर्वप्रथम इन्द्रिय स्वरूपा संज्ञानधारा उत्पन्न होती है, वही तमोगुणकी तन्मात्रभूता द्रव्यराशिको अपनी संचेतनाके द्वारा भूतरासायनिक दृष्टिसे अनुशासित करती है — कालान्तर में इसके महास्वन विस्फोटके अनुसार ही काल-पुरुष और इतिहास-पुरुषकी संरचना हो जाती है। तडिद्गतिसे क्षणके लक्षांशसे भी अल्पकालमें आदिपरमाण्डके एक नहीं क्रमश: आठ विस्फोट हुए थे। ऊपर उद्धृत उपनिषद् श्रुतिका स्पष्टार्थ इस प्रकार है।

वह अण्ड तप व तापशक्तिके वर्धनसे उत्तप्त हो उठा था। पूर्व अण्ड (पूर्व सन्दोलनात्मक विश्वका हिरण्यगर्भ) की तरह इसके मुख व मुख्य छिद्रका विस्फोट हुआ, मुख्यछिद्रसे वाक् इन्द्रिय प्रकट हुई — अर्थात् — सर्वप्रथम महास्वन विस्फोट हुआ, वाक्तत्त्वसे इसका अधिष्ठाता अग्नि प्रकट होता है। पुन: इस छिद्रके पास ही नासिका स्थानीय दो छिद्रोंका एक साथ विस्फोट हुआ, उससे विश्वका प्राणवायु अस्तित्वमें आया, इससे वायुकी उत्पत्ति हुई, तदनन्तर नेत्र स्थानीय दो छिद्रोंका विस्फोट होता है, इससे नेत्रेन्द्रियकी चेतनाके साथ आदित्यतत्त्व अस्तित्वमें आया, अर्थात् प्रकाशस्वरूपा इस द्रव्यराशिसे आदित्यरूप तारे अस्तित्वमें आए। पुन: कर्ण स्थानीय दो छिद्रोंका विस्फोट हुआ — इससे विश्वकी श्रोत्रेन्द्रिय प्रकट हुई, जिससे दिशाओंका स्वरूप अभिव्यक्त हुआ। तत्पश्चात् हिरण्मय-अण्डकी

आवरण स्थानाय सम्पूर्ण त्वचाका विस्फोट हो गया, जिससे आगे चलकर औषधियाँ और वनस्पतियाँ प्रकट हुईं। पुनः हिरण्यगर्भके हृदय व केन्द्रभागका विस्फोट होता है, इसके द्वारा मनस्तत्त्वकी महासत्ता अस्तित्वमें आई, इससे कालान्तरमें ब्रह्माण्डीय सोमका आविर्भाव हुआ। यह सोम ही विश्वके मनस्तत्त्वकी आनन्दमय – आह्लादक सत्ता है। इसीलिए उसके लिए यहाँ – **चदि आह्लादे** – धातुसे निष्पन्न चन्द्र पदका प्रयोग किया गया है। तदनन्तर उस परमाण्डकी महती नाभिका विस्फोट हुआ, जिसके द्वारा अपान वायुके रूपमें प्रलय अस्तित्वमें आया; फलतः जिसके प्रभावसे यह जगत् कहीं भी स्थिर नहीं हो पाता, उत्पत्तिके प्रथम क्षणभङ्गके पश्चात् ही यह प्रतिक्षण प्रलयके गर्भमें समाहित होता रहता है। सर्वान्तमें हिरण्यगर्भके शिश्न स्थानीय स्थलका विस्फोट होता है, इससे ही जीवनके उद्भावक शुक्रतत्त्वकी उत्पत्ति होती है ; जिससे आगे चलकर जीवनके आधारभूत जलतत्त्वका द्रव्यमय स्वरूप व्यक्त होता है। यहाँ मुख, नासिका, नेत्र, श्रोत्र, त्वक्, हृदय आदि नामोंका प्रयोग स्थल निर्देशात्मक विस्फोटके विज्ञानको समझनेके लिए रूपककी सीमामें किया गया है। इन नामोंके माध्यमसे अण्डके क्रमिक विस्फोटकी सूचना प्राप्त होती है, जिससे तत्-तत् स्थानीय इन्द्रिय चैतन्यके साथ विश्वकी द्रव्यमयी सत्ता अस्तित्वमें आई। यह सम्भव नहीं कि सृष्टिके आदि परमघनतम परमाण्डका अवसान एक ही विस्फोटमें हो गया हो। इस सूचनाके अनुसार सम्पूर्ण अण्डके विभिन्न स्तरोंका अवसान इन आठ महाविस्फोटोंके माध्यमसे हो जाता है। यह क्रमागत स्पष्टता विस्फोटके कालगत तारतम्यको स्पष्ट करती है, जो क्षणांशके भी परमसूक्ष्म भागमें विद्युद्वेगकी तरह घटित हो गया। आदिअण्डके इन क्रमिक विस्फोटोंको विश्वद्रव्यके मौलिक विकासकी दृष्टिसे इस प्रकार रेखांकित किया गया है –

हिरण्यगर्भका क्रमिक विस्फोट

विस्फोट-स्थल	इन्द्रिय-चैतन्य	भूतभौतिक-द्रव्य
(१) मुखछिद्र या मुख्यछिद्रका विस्फोट	वाक्	अग्नि
(२) नासिका स्थानीय छिद्रका विस्फोट	प्राणवायु	वायु
(३) नेत्र स्थानीय छिद्रका विस्फोट	नेत्र	आदित्य (तारा)
(४) कर्ण स्थानीय छिद्रका विस्फोट	श्रोत्र	दिशा
(५) त्वक् स्थानका विस्फोट	स्पर्श (रोम)	वनस्पति-औषधि

(६) हृदय या केन्द्रस्थानका विस्फोट	मन	सोम
(७) नाभि स्थानका विस्फोट	अपानवायु	प्रलय, काल
(८) शिश्न स्थानका विस्फोट	शुक्र	जल

यहाँ इस विज्ञान रूपकके माध्यमसे विश्व-द्रव्यके सम्पूर्ण विकासकी आदिम परियोजना प्रस्तुत की गई है। भागवतके अनुसार इस सन्दोलनात्मक विश्वके हिरण्मयअण्डका सम्पूर्ण कालमान इसकी प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग अवस्थासे लेकर महास्वन विस्फोट तक एक सहस्र दिव्य वर्ष, अर्थात् — ३ लाख ६० हजार मानवीय वर्ष है —

सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः।
साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥[३०]

यह अण्ड एक सहस्र दिव्यवर्षोंसे कुछ अधिक कालतक प्रकृतिके कारणाब्धिमें पड़ा रहा। मनुस्मृतिकी टीकामें आचार्य कुल्लूकभट्ट लिखते हैं — **तस्मिन्नण्डे हिरण्यगर्भो जातवान्**[३१] उस अण्डमें हिरण्यगर्भ हुआ या वह अण्ड कालान्तरमें हिरण्यगर्भ हो गया। यह विश्वका क्षेत्रज्ञ अधिष्ठित प्रथम प्राकृतसर्ग है, जिसका महास्वन विस्फोट एक क्षणके लक्षांशसे भी अति स्वल्प कालमें तडिद्वेगसे सम्पन्न हुआ। इस सन्दर्भमें मार्कण्डेयपुराणकी प्रामाणिक सूचना इस प्रकार है —

इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥[३२]

अर्थात् — इस प्रकार यह क्षेत्रज्ञ अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि सर्वप्रथम स्वाभाविक रूपसे तडित् व विद्युत्की तरह प्रकट हुई। तडित्का वेग प्रकाशकी तरह एक सेकेन्डमें २,९९,७९२ किलोमीटर है। अतः अण्डके ये आठों क्रमिक विस्फोट एक सेकेन्डके लक्षांशसे भी अल्पभागमें सम्पन्न हो चुके थे। विज्ञानकी सूचनाके अनुसार विस्फोट एक हुआ था, श्रुति आठ विस्फोटोंकी सूचना देती है। इस पार्थक्यकी सत्यताको जाननेका कोई भी साधन अब तक उपलब्ध नहीं, पर सहज अनुमानके अनुसार उस परमघनतम परमाण्डका अवसान एक ही विस्फोटमें हो गया हो यह सम्भावना स्वल्प है। विस्फोट एकसे अधिक निश्चित ही रहे

होंगे। अण्डके आयतनका घनत्व सर्वत्र एक जैसा सम्भव नहीं, इससे भी एकसे अधिक विस्फोटोंका अनुमान लगाना ही समीचीन है, वैसे अण्डछिद्रकी संख्याके अनुसार ये आठके स्थानपर एकादश हैं। विस्फोटकी गतिके सन्दर्भमें मार्कण्डेयपुराणका उपर्युक्त कालगत निर्देश — 'तडिद्वेग' आज विज्ञान द्वारा सर्वत्र अनुमोदित है। हम सेकेण्डके क्रमको चाहे अर्बुदांशके अर्बुदांश और इससे भी आगेतक विभाजित क्यों न करते चले जाएँ, इतनी तो प्रकाशकी भी गति नहीं है — पर 'तडिद्वेग' पदसे प्राप्त होनेवाला बिम्ब-बोध हमारे समक्ष विस्फोटकी त्वरित गतिको एक चित्रकी सीमामें लाकर प्रस्तुत कर देता है। नोबुल पुरस्कारसे सम्मानित टेक्सास विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध आचार्य Steven Weinberg की पुस्तक १९७७ में प्रकाशित हुई — जिसमें प्रथम सेकेन्डके नगण्यतम भागसे लेकर प्रथम तीन मिनटमें होनेवाली विश्वद्रव्यकी प्रारम्भिक स्थितियोंका वैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनके अनुसार अण्डका विस्फोट व बिग-बैंग १० अरब से १५ अरब वर्षोंके मध्य हुआ था।[३३] सामान्य अनुमान यह भी है कि विस्फोट ६ अरब से २० अरब वर्षोंके मध्य कभी हुआ हो, पर वैज्ञानिकोंके बहुमतके अनुसार यह सम्भावना १० अरब वर्षोंके आसपास ही कहीं सुनिश्चित है। भारतीय विज्ञानके अनुसार भी यह दश अरबके आसपास ही नहीं, वहीं उसके अत्यन्त सन्निकट है, जिसकी काल अवधि १० अरब, ६१ करोड़, २५ लाख, १७ हजार ९९ वर्ष है। १९९९ तकका श्वेतवाराहकल्पका गतकाल पाद्मकल्प और ब्राह्मकल्पके साथ जोड़ देने पर यह संख्या सहज ही प्राप्त हो जाती है। इसमें ब्राह्मकल्पके आदिमें होनेवाले अण्डके ७२ हजार वर्षोंके सन्धिकालके साथ उसके ३ लाख ६० हजार वर्षोंके संरचनाकाल अर्थात् ४ लाख ३२ हजार वर्षोंके कुल कालको विस्फोटके समय-सन्दर्भसे पृथक् कर दिया गया है, यदि इन वर्षोंको यहाँ जोड़ दिया जाय तो अण्डका प्रारम्भिक संरचनाकाल — १०,६१,२९,४९,०९९ वर्ष है, यही काल वर्तमान सृष्टि सन्दोलनके ब्राह्मकल्पके प्रवर्तनका प्रथम दिन है, ऊपर भागवतके उद्धरणमें — 'वर्ष साहस्रम्' के पूर्व — 'साग्रं' पद दिया गया है, जिसके द्वारा यहाँ ३६-३६ हजार वर्षोंकी दो संख्याएँ अर्थात् ७२ हजारका ग्रहण सन्धिकालके रूपमें गृहीत है। इस दृष्टिसे भारतीय कालमान दश अरब वर्षोंके आसपास ही नहीं, वह उपपत्तिके साथ ईसवी संवत्के अनुसार ९९ वर्षोंकी परम निर्दिष्ट संख्याके साथ अत्यन्त स्पष्ट है। विज्ञानके पास आदिअण्डके निर्माण व संरचना कालकी

कोई भी कालगत अवधारणा नहीं, वहाँ विस्फोटके कालका ही सम्भावित अनुमान मात्र है। विश्वके आदिमद्रव्यके सन्दर्भमें भारतीय तत्त्वदृष्टिको यहाँ विज्ञानके तुलनात्मक परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा।

३. विश्वद्रव्यका विकास

विज्ञानजगत्‌में आदिअण्डके सम्बन्धमें सर्वप्रथम १९२७ में प्रसिद्ध वैज्ञानिक Abbe Georges Lemaitre ने कुछ उल्लेखनीय जानकारियाँ प्राप्त कीं, जिनके आधारपर आगे चलकर और भी महत्त्वपूर्ण तथ्योंका उद्‌घाटन हुआ। सर्वप्रथम इन्होंने १९२७ से १९३३ के मध्य Big-bang के प्रारम्भिक स्वरूपकी रूपरेखा प्रस्तुत की, इसका नाम रखा — Hypothese de I'atom primitif अर्थात् Hypothesis of the primordial atom. इस सन्दर्भमें इनका कथन था — महाविश्वकी उत्पत्ति एक ही आदिम 'Atom' या 'Quantum' से हुई है — जिसे इन्होंने — 'Energy' या शक्ति कहा है। प्राप्त तथ्य और अन्य जानकारियोंके अनुसार विस्फोटसे पूर्व कोटि-कोटि सहस्र नभोमन्दाकिनियाँ (Galaxies) इस परमाण्डके गर्भगृहमें परम संकुचित अवस्थामें विद्यमान थीं। उस समय इसका बाह्य स्वरूप एक परम प्रज्वलित अग्निपिण्डकी तरह था, जिसकी भास्वरता सहस्र-सहस्र सूर्योंकी तरह प्रखर थी। विज्ञानमें इसे कहीं कॉस्मिक एग (Cosmic Egg) और कहीं फायर बॉल (Fire Ball) के नामसे अभिहित किया गया है। भारतीय वाङ्मयमें इसके अनेक नाम प्राप्त होते हैं, यथा अण्ड, महाण्ड, ब्रह्माण्ड, हिरण्यगर्भ, नारायण आदि। इसकी आभ्यन्तर अवस्था परमघनतम थी, विस्फोटके पूर्व समग्र विश्वका महाद्रव्य वहाँ परमसंकुचित अवस्थामें विद्यमान था। Lemaitre के द्वारा प्रस्तुत कॉस्मिक एगके सिद्धान्तको अनेक अन्वेषण और संशोधनके पश्चात् — Sir A.S.Eddington, P.A.M.Dirac, G.Gamow एवं इनके सहयोगी बन्धु Alpher R., Herman R., तथा Follin J.W. आदि अनेक विद्वानोंने गहराईमें उतरकर इसे और भी वैज्ञानिकता प्रदान की है। आजकी नभोभौतिकी (Astrophysics) में बिग-बैंग (Big-Bang) के सिद्धान्तका सीधा सम्बन्ध कॉस्मिक एगके विस्फोटसे है। अण्डका अधिकांश द्रव्य प्रोटोन्स (Protons) और न्यूट्रोन्स (Neutrons) था, जिसका प्रचण्ड तापमान दश सहस्र कोटि अंश (Degree) तक उग्रतम अनुमानित है। फलतः इसकी समग्र

आभ्यन्तर द्रव्यराशि अव्यवस्थित व आयोनिक (Ionic) हो चुकी थी।

विज्ञानके लिए यह प्रश्न कम महत्त्वका नहीं — आदिअण्ड किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? इसकी संरचना प्रक्रिया क्या थी ? इसका मूलद्रव्य क्या था ? पर इसकी उत्पत्तिका प्रकार और कारण विज्ञानमें आज भी स्पष्ट नहीं है। इसकी संरचनाको लेकर कल्पनाके आधारपर वैज्ञानिकोंके द्वारा अनेक तर्क और अनुमान समय-समयपर प्रस्तुत किये गये हैं। एक अनुमानके अनुसार असीमित द्रव्यकी असीमित राशि असीमित चापके फलस्वरूप संकोचधर्मिणी होती हुई, कालान्तरमें एक अण्ड व पिण्डके रूपमें संकुचित हो गई। अन्य कल्पनाके आधारपर सम्भावना यह भी है कि कोई असीमित विश्व-द्रव्यकी महातरङ्ग अपने ही केन्द्रीय महा-गुरुत्वाकर्षण (Super Gravity) के प्रभावसे लचककर एक महाण्डके रूपमें मण्डलाकार हो उठी, जिसने भग्न विश्वके महाद्रव्यको जकड़कर एक पिण्डमें बदल दिया। शाक्त दर्शनके अनुसार — भग्न विश्वकी द्रव्यभूता महाशक्तिका परमसंकोच व कंचुकित स्वरूप ही विश्व-द्रव्यकी महासत्ताका विकास है। वहाँ विश्वके सम्प्रसरणका सिद्धान्त (Theory of Expanding Universe), इस परमसंकोच सिद्धान्त (Theory of Contracting Universe) का ही अनुवर्तक सिद्धान्त है।

कॉस्मिक एग वा हिरण्यगर्भके अन्त:स्वरूपको जान लेनेका विज्ञानके पास कोई सीधा व प्रत्यक्ष मार्ग नहीं, विश्वके बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूपके आधारपर ही इसके द्रव्यमय स्वरूपका बहुत कुछ अनुमान लगाया गया है। कालके क्रमपर झूलते हुए सन्दोलनात्मक विश्वके आधारपर यत् किंचित् कल्पना की जा सकती है। वर्तमान विश्वका ९० प्रतिशत द्रव्य हाइड्रोजन है, शेष ९ प्रतिशत हीलियम एवं १ प्रतिशतमें अन्य जटिल परमाणु हैं। कालके क्रममें जैसे-जैसे विश्व आगेकी ओर बढ़ता है — हाइड्रोजन द्रव्य हीलियममें रूपान्तरित होता चला जाता है। वही अन्य जटिल परमाणुओंमें बदल जाता है, जैसा कि तारोंके जगत्में देखा गया है। ठीक इसके विपरीत — यदि हम कालक्रममें पीछेकी ओर लौटते हुए चले जाएँ, तो यह स्थिति वहाँ बदल जाती है। वहाँ हीलियम सहित अन्य जटिल परमाणुओंका अस्तित्व क्रमश: क्षीण होता चला जाता है, हाइड्रोजन द्रव्यका परिमाण वहाँ उसी क्रमसे बढ़ता रहता है। यदि हम कालके शून्य बिन्दु व जीरो पॉइन्टपर पहुँच जाएँ तो देखेंगे कि वहाँ केवल हाइड्रोजनका

ही अस्तित्व है, अन्य द्रव्यकी कोई सूचना नहीं। द्रव्य वहाँ शक्तिकी घनतम अवस्थामें विद्यमान है, इसे द्रव्य और शक्तिकी अद्वैत स्थिति कहा जा सकता है। कालके इस शून्य बिन्दुपर हाइड्रोजन द्रव्यके समग्र परमाणु संचूर्णित द्रव्यस्थितिमें घनतम हो उठते हैं। यह द्रव्यकी शक्तिस्वरूपा प्लाज्मा (Plasma) अवस्था है। हाइड्रोजन परमाणुकी संरचना मात्र दो कणोंके संयोगसे होती है, इसमें केन्द्रस्थानीय प्रोटोन (Proton) धनात्मक विद्युद्-अभियुक्ति (Positive Electric Charge) से युक्त है और दूसरा वृत्तस्थानीय बाह्य कण इलेक्ट्रोन – ऋणात्मक विद्युद् अभियुक्ति (Nagative Electric Charge) से युक्त। जब इस संकोचजन्य दबाव द्वारा ये दोनों कण अपनी पृथक् स्थितिको त्यागकर परस्पर एकीभूत हो जाते हैं, तब इनकी यह राशि अपनी विद्युद्-अभियुक्तिसे विहीन हो जाती है। इस विद्युद्-अभियुक्ति विहीन कण अवस्थाका नाम न्यूट्रोन्स (Neutrons) हैं। न्यूट्रोन्सकी यह घनीभूत द्रव्यराशि न्यूट्रोनियम (Neutronium) के नामसे जानी जाती है। इस द्रव्यराशिका घनत्व भी सामान्य नहीं, यह किसी भी श्वेतवामन (White Dwarf) तारेकी घनतासे भी अधिक घनतम है, एक घन सेन्टीमीटरमें यह घनता $१०^{१४}$ ग्राम है।

विज्ञान ब्रह्माण्डीय द्रव्यकी मौलिक अवधारणा भिन्न-भिन्न तेजस्कणिकाओं (Particles) के रूपमें करता है, इनमें – फोटोन (Photon), न्यूट्रिनोस (Neutrinos), इलेक्ट्रोन (Electron), मूओन (Muon), पाइ मेसॉन्स (Pi Mesons), न्यूट्रोन (Neutron) आदि प्रमुख हैं। आदिअण्डके आभ्यन्तर स्वरूपपर फोटोन और न्यूट्रोन इन दो कणिकाओंका ही सर्वाधिक प्रभावी हस्तक्षेप है। ये दानों ही अण्डके द्रव्यमय स्वरूपके आधारभूत ढाँचेका निर्माण करते हैं, ये फोटोनशक्ति और कृष्णरज (Black-Body) के प्रतिनिधि हैं। फोटोन एनर्जी तेजस्शक्ति वा तेजस्इंधनकी तरह है, न्यूट्रोन – कृष्णरज व प्रलय रेणुका परिचायक शब्द है, जो पूर्वविश्वकी प्रलयग्रस्त द्रव्यराशिका संकेतक है। न्यूट्रोन-स्टार (Neutron Star) प्रलयग्रस्त कृष्णतारा है, जिसकी समग्र द्रव्यराशि कृष्णरज वा ब्लैक-बॉडीमें बदल चुकी है। सांख्यशास्त्रकी तत्त्वदृष्टिसे फोटोन तत्त्व प्रकाशशक्तिका उपलक्षक सत्त्वगुण वा सत्त्वपदार्थ है, न्यूट्रोन गुरुत्वप्रधान कृष्णतत्त्व या तमस्पदार्थ (गुण) है। आदिम द्रव्यके स्वरूप एवं उसकी प्रथम कार्यपद्धतिको सांख्यकारिकाने

निम्न प्रकारसे प्रस्तुत किया है ...

....................प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः ।
अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ।।[३४]

सत्त्व, रज और तम इन तीनोंका अपना प्रयोजन है, सत्त्वगुण प्रकाश या प्रकाशक है, रजोगुणका प्रयोजन प्रवृत्ति एवं तमोगुणका नियमन है। प्रारम्भमें आदिमद्रव्यका स्वरूप तन्मात्ररूपा शक्ति है, अतः वहाँ प्रकाश, प्रवृत्ति और नियमन, इसी रूपमें शक्तिकी प्रथम क्रिया उपलब्ध होती है, इसी अर्थमें गुण शब्दका वहाँ व्यवहार किया गया है – शक्तिके गुण या सूत्र (Strings) ही आगे चलकर विश्वके रूपमें व्यक्त हो उठते हैं। सांख्यदर्शनमें 'गुण' शब्दका अर्थ ही सूत्र,धागा या string है। विज्ञान आज Cosmic String तथा Super String के अर्थमें विश्वके परमसूक्ष्मतम अधिसूत्रात्मक स्वरूपकी पहचान प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील है। प्रकृतिका दूसरा नाम शक्ति भी प्राचीन दर्शनमें प्रयुक्त हुआ है। शक्तिका स्पन्द ही द्रव्य रूपमें प्रस्तुत होता है, वही इस विश्वकी द्रव्यवाचक सत्ताकी विधायिका है। शक्तिका स्पन्द और गुणक्षोभ दोनों एक ही तत्त्वार्थके वाचक हैं, शाक्तदर्शनकी परम्परा स्पन्दपदका व्यवहार करती है, सांख्यशास्त्रमें गुणक्षोभ पद अधिक प्रचलित है। विज्ञान 'कण' (Particles) की अवधारणा शक्ति-स्पन्द व एनर्जी पार्सल्स (Energy Parcels) के रूपमें करता है, इनके ही गुणक्षोभसे विश्वद्रव्य अस्तित्वमें आ जाता है। शक्तिका आद्यस्पन्द तीन गुणोंसे युक्त है, ये गुणप्रयोजन ही उपर्युक्त कारिकामें – प्रकाश-प्रवृत्ति और नियमनके अर्थमें प्रयोज्य हैं। विज्ञान आदिमद्रव्यकी कल्पना जिन शक्ति-स्पन्दरूप परमकणोंके रूपमें कर रहा है – उनके पदार्थ विधायक क्रियात्मक स्वरूपको उसने चार भागोंमें बाँटकर समझा है – (१) रेस्ट एनर्जी (Rest Energy) (२) थ्रेशहोल्ड टेम्परेचर (Threshold Temperature) (३) इफेक्टिव नम्बर ऑफ स्पेसीज़ (Effective Number of Species) और (४) मीन लाइफ (Mean Life)।

आदिमद्रव्यके क्रियात्मक सन्दर्भमें सांख्यदर्शनका अपना सिद्धान्त भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं, उसने प्रकृतिके गुणक्षोभको नवीन विश्वसंरचनाके परिप्रेक्ष्यमें चार भागोंमें बाँटकर प्रस्तुत किया है। तुलनात्मक दृष्टिसे सांख्यका वैशिष्ट्य यहाँ असाधारण है। इस दर्शनके अनुसार आदिमद्रव्यका क्रिया-शक्त्यात्मक

स्वरूप इस प्रकार है – (१) **अन्योन्याभिभव वृत्ति**, (२) **अन्योन्याश्रय वृत्ति**, (३) **अन्योन्यजनन वृत्ति** और (४) **अन्योन्यमिथुन वृत्ति**। आचार्य वाचस्पति मिश्रपादने अपनी टीका में वृत्ति शब्दका अर्थ 'क्रिया' किया है, जो उपर्युक्त पदोंके साथ अन्वित है – **वृत्तिः क्रिया, सा च प्रत्येकमभिसम्बध्यते**।[३५] प्रथम अन्योन्याभिभव वृत्तिसे प्रत्येक गुण अन्य दो गुणोंकी शक्तिका अभिभव करता हुआ, इनके विरुद्ध एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी पदार्थको उत्पन्न करता है। इस अभिभव क्रियासे ही नवीन द्रव्य पदार्थोंकी सृष्टि होती रहती है। सत्त्व, रज, तम – इन गुणोंमें से कोई एक गुण अपने धर्माधर्म निमित्तक प्रयोजनके बल द्वारा स्वकार्य जननोन्मुख होकर अपनेसे भिन्न दो गुणोंका अभिभव कर देता है, अर्थात् उन्हें निर्बल-सा बना देता है। गुणोंके अभिभवकी यह प्रक्रिया इस प्रकार है – सत्त्वगुण – रज और तमको निर्बल बनाकर प्रकाशवृत्तिको अन्य दो वृत्तियों या क्रियाओंके प्रबल प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें विकसित कर देता है। उसी प्रकार रजोगुण शेष दोनों गुणोंको निर्बल बनाता हुआ वेगशक्तिको प्रबल कर देता है, और इसी तरह तमोगुण अन्य दो गुणोंका अभिभव करता हुआ द्रव्यके गुरुत्वको प्रबल बना देता है। अन्योन्याश्रय वृत्तिमें गुणोंका आधार-आधेय भाव तो नहीं होता, वह 'घटभूतल' या 'कुण्डबदर' की तरह असम्भव है। यहाँ जिसकी अपेक्षासे जिसकी क्रिया होती है, वही उसका आश्रय हो जाता है। अर्थात् – जिस क्रियामें जो सहायक व सहकारी के रूपमें प्रस्तुत होता है, वह सहकारी ही वहाँ उस सहायक कार्यका आश्रय है। उदाहरण के लिए – सत्त्वगुण, रज और तमके प्रवृत्ति एवं नियमनरूप कार्यको अपने सहायक व सहकारीके रूपमें स्वीकार कर अपने 'प्रकाशात्मक' कार्यके द्वारा अन्य दो गुणोंका उपकारक हो जाता है। उसी प्रकार रजोगुण शेष दो गुणोंके प्रकाश (सत्त्व) और नियमन (तम) कार्यको अपने सहकारीके रूपमें स्वीकार कर अपने 'प्रवृत्ति' रूप कार्यद्वारा इन दोनों गुणोंका उपकारक बन जाता है। उसी प्रकार तमोगुण सत्त्व और रजके प्रकाश और प्रवृत्तिरूप कार्योंका सहकारी बनकर अपने नियमनरूप कार्यके द्वारा उनके स्वरूपका निर्धारण करता हुआ उनका सहायक हो जाता है।

तृतीय है अन्योन्यजनन वृत्ति. इसके अनुसार तीन गुणोंमें से कोई एक गुण अन्य गुणका आश्रय लेकर कार्यको उत्पन्न करता है। यहाँ हम उदाहरणके

लिए प्रलय अवस्थाको ही लेते हैं। इस समय कोई एक गुण जैसे 'सत्त्वगुण' अपनी अपेक्षासे किसी अन्य गौण गुणका आश्रय (अपेक्षा) लेकर, गौण गुणके समान ही 'परिणाम' से युक्त हो जाता है, वह वहाँ अपने स्थूल परिणामसे युक्त नहीं होता; कहनेका तात्पर्य है कि प्रकाश अपने परिणामको संकुचितकर रज और तमके प्रवृत्ति एवं नियमन व्यापारको संकोचयुक्त बना देता है। उसी प्रकार 'रजोगुण' अपने प्रवृत्ति परिणामको संकुचित करता हुआ सत्त्व और तमोगुणके प्रकाश एवं नियमन परिणामको और भी संकुचित व संकोचधर्मी बना देता है। उसी तरह तमोगुण भी अपने नियमन परिणाम द्वारा शेष दोनों गुणोंके प्रकाश, प्रवृत्ति परिणाम को और भी संकोचधर्मी कर देता है। सांख्यके इस सिद्धान्त द्वारा कृष्ण-गर्त (Black-hole) के स्वरूपको भली-भाँति समझनेका प्रयास किया जा सकता है — वहाँ संकोचका महासाम्राज्य क्यों और किस प्रकार है ? सत्त्वधर्मी प्रकाश वहाँ तिरोहित क्यों हो गया है ? विश्वद्रव्य वहाँ बीजरूपसे परमसंकुचित क्यों हो उठा है ? वहाँका वह अप्रकाशित ब्रह्माण्ड घन से घनतम होता हुआ परम गुरुत्वधर्मी क्यों हो गया है ? यहाँ जननपदसे नवीन वस्तुका प्रादुर्भाव संकेतित नहीं, तद्रूपेण परिणमन ही वहाँ जनन शब्द का अर्थ है। सांख्यदर्शन सत्कार्यवादी है, अत: उसे उत्पत्तिपरक अर्थ सिद्धान्तपक्षमें ग्राह्य नहीं, वहाँ परिणामवाद है। वैसे स्थूल दृष्टिसे अन्योन्याश्रय वृत्ति और अन्योन्यजनन वृत्तिमें एक जैसा ही अर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि प्रथमत: बताया गया है कि 'कोई गुण' अन्यतम किसी एक गुणका आश्रय लेकर प्रवृत्त होता है, एवं अन्योन्यजनन वृत्तिसे भी वही कहा जा रहा है कि गुण अन्यतमगुणकी अपेक्षा के अनुरूप परिणत होता है। अत: यहाँ पुनरुक्तिका आभास-सा हो जाता है। पर तत्त्वत: यह स्थिति नहीं, अन्योन्याश्रय वृत्तिसे 'विसदृश परिणाम'— असाधारण प्रकाशादिरूप कार्यमें कोई गुण, अन्यतमगुणको अपना आश्रय बनालेता है, पर अन्योन्यजननवृत्तिसे 'सदृश परिणाम' में कोई गुण अन्यतमगुणकी अपेक्षा करता है — अत: इन दोनों वृत्तियोंका प्रतिपाद्य भिन्न-भिन्न है। चतुर्थ अन्योन्यमिथुनवृत्तिका तात्पर्य है — ये तीनों गुण परस्पर सहयोग करते हैं, इनका साहचर्य नित्य है। यही इनका अविनाभाव सम्बन्ध है। यहाँ विश्वद्रव्यकी उत्पत्ति और प्रलयके सन्दर्भमें सृष्टिके विसदृश एवं सदृश परिणामको लक्ष्यमें रखकर प्रकृति व शक्तिकी चार तत्त्वभूता क्रियाओंके अर्थको स्पष्ट किया गया है — वे (१) अभिभव, (२) आश्रय, (३) जनन

और (४) संयोग या मिथुन स्वरूपा हैं। इनसे ही सृष्टिके यावन्मात्र पदार्थ अव्यक्तसे व्यक्त हो जाते हैं।

इससे आगेकी कारिकामें तीनों गुणोंके मौलिक स्वरूपको स्पष्ट किया गया है — सत्त्वगुण लघु और प्रकाशक है, तमोगुण गुरुत्वधर्मी और आच्छादक, रजोगुण उत्तेजक, यह दोनोंको ही परम सक्रिय बना देता है। आज विज्ञान गुरुत्वकी पृथक् पदार्थके रूपमें किंचिद् अवधारणा कर पाया है — Graviton और Gravitino शब्द उसीके संकेतक हैं। उसी प्रकार रजोगुणकी भी Energy-parcel के रूपमें किंचिद् अवधारणा हो पाई है। प्रकाशके विषयमें विज्ञानने आज़ बहुत कुछ सोच और खोज लिया है। सांख्यके तीनों गुणपदार्थोंका मौलिक स्वरूप निम्न कारिकामें भली-भाँति स्पष्ट हुआ है —

सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः ॥[३६]

लघु यहाँ गुरु शब्दके विपरीत अर्थको स्पष्ट करता है अर्थात् — प्रकाशमें भार तो है, पर तमः पदार्थकी तुलनामें अल्प है, अतः वह अधिक क्रियाशील व वेगधर्मी है। प्रकाशमें Mass है, इस वैज्ञानिक सत्यका पता सर्वप्रथम इस शतीके प्रारम्भमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक A.Einstein ने लगाया था। सांख्यशास्त्र इस सत्यका उद्घाटन अपने प्रारम्भिक कालसे ही कर रहा है। प्रकाशकी गतिका लाघव भी इस लघु गुरुत्वके कारण ही सिद्ध होता है, जो अधिक गुरुताके कारण तमोद्रव्यमें सम्भव नहीं। प्रकाशमें अन्य पदार्थोंकी तुलनामें सर्वाधिक लघुता है। रजोगुण— सत्त्वगुण और तमोगुण दोनोंको ही सक्रिय बना देता है , इसीलिए उसे 'उपष्टम्भक' व उत्तेजक कहा गया है। तमः पदार्थ परम गुरुत्वधर्मी है, इसीलिए वह आच्छादक व आवरक हैं। तमस्तत्त्व प्रलयमें परम संकुचित अवस्थामें चला जाता है, इसीलिए वह स्वय ही अपनी द्रव्यराशिका आवरणभूत हो जाता है, पर इस अतिशय संकोचरूपा आवरणधर्मितामें वह लघु नहीं हो जाता, उसका गुरुत्वधर्म वहाँ यथावद् विद्यमान है। ये तीनों गुण परस्पर विरोधी होते हुए भी दीपवत् विराट् पुरुषके लिए विश्वरूप अर्थको भली-भाँति प्रकाशित करते हैं। दीपकमें तेल-बाती और वह्नि तीनों परस्पर विरुद्धधर्मी होते हुए भी एक दूसरेके सम्पूरक बन

जाते हैं।

सांख्यशास्त्रके अनुसार शुक्लवर्णधर्मी प्रकाश सत्त्वगुण है, कृष्णवर्णधर्मी विदग्ध द्रव्य तमोगुण। विज्ञानके फोटोन और न्यूट्रोन पदार्थ उपर्युक्त सत्त्व और तम इन दोनों पदार्थोंसे अपना बहुत कुछ साम्य रखते हैं। न्यूट्रोन विद्युद् अभियुक्तिसे रहित जड़ द्रव्यमात्र है। वेदमें इस तमोद्रव्यको ही अनेक स्थलों पर **कृष्णा रजांसि** कहा गया है। सभी तारक तारिकाओंमें यह **कृष्णा रजांसि** तत्त्व विद्यमान है। यह कृष्णरज सूर्य सहित सभी पिण्डोंमें व्याप्त है। ऋग्वेदमें सूर्यके सन्दर्भमें कृष्णरजका उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है — **आकृष्णेन रजसा वर्तमानः**[३७] और भी — **कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः** ।[३८] जब मण्डलके भीतर इस कृष्णरज व प्रलयरेणुका अतिशय हो जाता है, तब उस तारेकी मृत्युका काल प्रारम्भ होता है। इस मृत तारेका नाम ही कृष्ण-तारा व उग्र-तारा है। विज्ञान कृष्ण-द्रव्य (Black Body) के प्राधान्यसे ही Neutron Star, Black Dwarf Star, यथासम्भव Black Hole आदि नामोंसे इन अप्रकाशित ब्रह्माण्डोंके अर्थको स्पष्ट करता है। तमःपदार्थ ही इन कृष्ण तारिकाओंमें प्रधान है। सत्त्वगुण तो यहाँ अत्यन्त गौण हो गया है, इसीलिए ये अप्रकाशित ब्रह्माण्ड हैं। विश्वके परमप्रलयमें महाशक्तिका संकोच बढ़ जाता है, जिसके फलस्वरूप इन अप्रकाशित ब्रह्माण्डोंकी समग्र द्रव्यराशि एक परमाण्डके रूपमें घनीभूत हो उठती है। उस परमाण्डका द्रव्य ही सृष्टिका परमगुरुत्वधर्मी तमः पदार्थ है, सृष्टिके गुणक्षोभके समय सत्त्वपदार्थके उद्रेकसे वह अप्रकाशित अण्ड प्रकाशधर्मी हो उठता है, कृष्णद्रव्यका सन्तुलित स्वरूप ब्रह्माण्डोंकी संरचनामें सहायक।

४. हिरण्यगर्भका स्वरूप — संरचना — काल और सिद्धान्त

सृष्टिके इस आदिम परमपिण्डकी अवधारणा एक स्वर्णिम अण्डके रूपमें की गई है। इसका प्रभामण्डल सहस्राधिक सूर्योंसे भी अधिक भास्वर था। $१०^{१२}$ अंश अर्थात् One Trillion Degree तापमानसे इसके विस्फोटक स्वरूपकी प्रचण्डताका अनुमान बड़ी सहजतासे लगाया जा सकता है। विज्ञानके पास आज भी इसके यथार्थ स्वरूपकी कोई भी उल्लेखनीय पहचान प्राप्त नहीं, न इस Golden Egg के Yelm की कालयात्राका स्वरूप ही अपने तिथिक्रमके साथ

स्पष्ट हो पाया है। आधुनिक विज्ञानमें अण्डके अस्तित्वकी जानकारियोंका इतिहास मात्र ६०-७० वर्षोंका है, पर भारतीय चिन्तनमें इसका उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेदमें प्राप्त होता है। वैदिक ऋषि इसे पाञ्चभौतिक विश्वका आदिकारण मानकर, इसके वैज्ञानिक स्वरूपकी उपासना करता है —

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[३९]

अर्थात् — सृष्टिके पूर्व सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही विद्यमान था, इससे ही सभी भूततत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, वही इनका एकमात्र विधाता व स्वामी है, उसीने पृथ्वीसे गगन पर्यन्त सभी (तत्त्वों) को आधार व अस्तित्व प्रदान किया है, हम उस आदिदेवको छोड़कर किसे अपना हविष्य प्रदान करें।

आचार्य सायणने इस मन्त्रकी अत्यन्त स्पष्ट और वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है जो यहाँ प्रसंगत: परम विचारणीय है — **हिरण्यगर्भ: हिरण्मयस्याण्डस्य गर्भभूत: प्रजापतिर्हिरण्यगर्भ:**। अर्थात् — इस हिरण्मय अण्डके गर्भभूत प्रजापतिका नाम हिरण्यगर्भ है। संम्पूर्ण विश्वके फलरूप प्रजातीय विस्तारका आदिकारण होनेके कारण यहाँ प्रजापति शब्दका व्यवहार इसकी गर्भभूता तत्त्वस्थितिके लिए हुआ है। वह प्रथम अवस्था अण्डरूप व अण्डाकृत थी, इसलिए यहाँ अण्ड पदका प्रयोग है। वह अण्ड परम भास्वर था, इसीलिए 'हिरण्मय' पदको भाष्यमें रखा गया है। तैत्तिरीय श्रुति प्रकारान्तरसे शब्दत: हिरण्यगर्भको प्रजापति अर्थमें अपने अनुरूप कार्यकी दृष्टिसे सम्बन्धित करती है — **प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भ: प्रजापतेरनुरूपत्वाय**।[४०] आचार्य पुन: इसी तत्त्वसन्दर्भकी दूसरी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं — यह हिरण्मय अण्ड सूत्रात्माके उदरभूत गर्भमें समाहित है, इसलिए भी यह हिरण्यगर्भ कहा जाता है — **यद्वा हिरण्मयोऽण्डो गर्भवद्यस्योदरे वर्तते सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ इत्युच्यते**। इसके पश्चात् वे **अग्रे** पदकी व्याख्यामें कहते हैं — **अग्रे प्रपञ्चोत्पत्ते: प्राक् समवर्तत** अर्थात् — इस विश्व प्रपंञ्चकी उत्पत्तिके पूर्व वह विद्यमान था। इसके आगेके पदोंकी व्याख्यामें आचार्य स्पष्ट करते हैं — भूततत्त्वके विकृत परिणामरूप ब्रह्माण्ड आदिकी उत्पत्तिकी दृष्टिसे भी वही इस सम्पूर्ण विश्वका जनक व स्वामी है — **भूतस्य विकारजातस्य**

ख

ब्रह्माण्डादे: सर्वस्य जगत: पति: ईश्वर आसीत्।[४१]

निरुक्तने हिरण्यपदकी व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुतकी है — **हिरण्यगर्भो हिरण्यमयो गर्भो हिरण्यमयो गर्भोऽस्येति वा।**[४२] अर्थात् — हिरणमय गर्भवाला या जिसका गर्भ हिरण्यमय है, वह। हिरण्यगर्भका एक अर्थ वहाँ विज्ञानमय है — **हिरण्यमय: विज्ञानमय:। गर्भ: सर्वभूतानां तत्कृतत्वाद् अन्त:प्रकाशस्य। हिरण्यमयश्चासौ गर्भश्चेति सामानाधिकरण:। अथ वा हिरण्यमय: गर्भोऽस्येति हिरण्यगर्भ:। ......सोऽस्य हिरण्यमयो हिरण्यप्रकृतिर्गर्भ इति हिरण्यगर्भ इति दुर्ग:।।**[४३] हिरण्य तेज व प्रकाशका नाम है। भारतीय धातुशास्त्रके अनुसार उत्कृष्ट धातुएँ तेजस्तत्त्वके ही रूपान्तर हैं, इसलिए भी वे हिरण्य हैं। वैशेषिक दर्शनके विज्ञानकी मान्यताके अनुसार हिरण्यधातु सौरतेज वा अग्नितत्त्वका ही घनीभूत परिणाम है। आज विज्ञानमें युरेनियम आदि तैजस धातुओंके विकीर्णन व क्षय (Radioactivity) के आधारपर जगत्की आयु एवं उसके अवस्थागत मौलिक स्वरूपका अनुमान लगाया जाता है। हिरण्यपद अपने मूल अर्थमें तेजस्तत्त्वका पर्याय होनेके कारण कालान्तरमें वह तैजसधातुके अर्थमें ही रूढ़ हो गया। प्रचलित अर्थमें वह सुवर्णधातुका पर्याय बन गया। निघण्टुका पर्यवलोकन करनेपर लगता है — वह सुवर्णसे भी उत्कृष्टतर कोई तैजसधातु है। क्योंकि वहाँ इसके पन्द्रह पद पढ़े गये हैं। वैदिक भाषामें पर्यायका अर्थ मात्र एकार्थ विधायकपद नहीं — वहाँ पर्याय अर्थमें गुणसाम्य और अर्थसाम्यकी प्रधानता है। इन निघण्टु पठित पदोंमें कुछ पद गुणीभूत लक्षणकी दृष्टिसे एकार्थके विधायक पद हैं, पर कुछ पद भिन्न धातुके निर्देशक पद भी हैं, जो उन धातुओंके तैजसतत्त्वके ही कम और अधिक तारतम्य भेदके परिचायक हैं। जहाँ तक पर्यायरूप एकार्थताका प्रश्न है — वहाँ पठित सभी धातु एक ही तैजसतत्त्वका परिणाम होनेके कारण — एकार्थके निर्देशक भी हैं। निघण्टुमें हिरण्यपदके पर्यायभूत अर्थमें पढ़े गए पद इस प्रकार हैं — (१) **हेम**, (२) **चन्द्रम्**, (३) **रुक्मम्**, (४) **अय:**, (५) **हिरण्यम्**, (६) **पेश:**, (७) **कृशनम्**, (८) **लोहम्**, (९) **कनकम्**, (१०) **कांचनम्**, (११) **भर्म**, (१२) **अमृतम्**, (१३) **मरुत्**, (१४) **दत्रम्**, (१५) **जातरूपम् इति पञ्चदश हिरण्यनामानि।**[४४]

विज्ञानके अनुसार युरेनियम धातु अपने तेज:क्षरणके क्रममें ९ से १० अरब वर्षोंके मध्य सम्पूर्ण रूपसे सीसेमें परिवर्तित हो जाता है। अत: धातुतत्त्वदृष्टिसे युरेनियमसे सीसे तक एक होने पर भी तेज:क्षरणकी मात्राके तारतम्यगत भेदसे उसके अनेक भेद हो जाते हैं। धातुओंकी संग्रहसूचीमें तेज:क्षरणवाले धातुओंके साथ 'अमृत' धातुका भी ग्रहण है, जो क्षरणमुक्त है। यहाँ हिरण्य, चन्द्र, अयस् आदि पद सुवर्णके अर्थमें गृहीत हो गए यह भिन्न बात है, पर निघण्टुमें पठित यह नामभेद उनके तैजस स्वरूपकी समानताका परिचायक नहीं, उनके तेज:क्षरणसे होनेवाले अर्थभेदसे जन्य नामभेदका भी परिचायक है, नहीं तो 'अयस्' पदका अर्थ सुवर्ण, लोहधातु के सन्दर्भमें स्पष्ट ही नहीं होगा। उसी प्रकार 'चन्द्रम्' पदका अर्थ 'रजत' है — चाँदी इसीका अपभ्रंश, पर यह अमरकोश तकमें भी सुवर्णके पर्याय अर्थमें पढ़ा गया है। इनमें कुछ धातु तत्त्वदृष्टिसे कालान्तरमें होनेवाले तेज:क्षयके परिचायक हैं। निरुक्तके मतसे कोई शब्द किसी भी अन्य शब्दका पर्याय नहीं होता — वह अपने गुणभेदसे होनेवाले स्वरूपभेदका ही परिचायक है — न कि मात्र नामके अभिधार्थका। इसी सन्दर्भमें बारहवाँ पद — 'अमृत' परम विचारणीय है। दीर्घकालीन तेज:क्षरणको लक्ष्यमें रखकर ही हिरण्य अर्थवाले धातुओंके पर्याय अर्थमें अमृत कहा गया है। भारतीय धातुशास्त्रकी दृष्टिसे — लोह ही तत्त्वार्थमें 'अमृत' धातु भी है — जो यहाँ निघण्टु पाठमें अष्टम स्थानपर पढ़ा गया है, वैसे दीर्घकालिक तेज:क्षरणकी दृष्टिसे ये सभी धातु अमृत कहे जा सकते हैं — **सर्वं च तैजसं लोहम्।**[४५] अपने अभिधार्थमें लोह ही एकमात्र अमृत धातु है, शेष लाक्षणिक पर्याय मात्र हैं। ये निम्न आठों धातु एक ही तैजसतत्त्वके विकार हैं — यहाँ हिरण्यसे लेकर सीसे तकका ग्रहण किया गया है —

सुवर्णं रजतं ताम्रं रीति: कांस्यं तथा त्रपु।
सीसं कालायसं चैवमष्टौ लोहानि चक्षते॥[४६]

उपर्युक्त निघण्टुमें पठित 'अमृत' पद यथार्थमें लोहधातुके मौलिक स्वरूपका परिचायक है। यह धातु ही अमृत व अविनाशी है। विज्ञानने हाल ही में लोहधातुके अमृत स्वरूपकी पहचान प्राप्तकी है — जिसके अनुसार १ की

संख्यापर ५०० शून्य अर्थात् — १०^५०० वर्षोंमें लोहधातुकी अर्ध आयु समाप्त हो जाती है। विज्ञानके सुप्रसिद्ध आचार्य C.Sagan ने यह सूचना इस प्रकार प्रस्तुत की है — But we are less familiar with the idea that every atom except iron is radioactive, given a long enough period of time. Even the most stable atoms will radioactively decay, emit alpha and other particles, and fall to pieces, leaving only iron, if we wait long enough. How long ? The American physicist Freeman Dyson of the Institute for Advanced Study calculates that the half-life of iron is about 10^{500} years, a one followed by five hundred zeros.[47] आदिअण्डके तेज:क्षरणसे उत्पन्न होनेवाली तन्मात्रस्वरूपा तैजसकणिकाका कालगत दैर्घ्य भी सामान्य नहीं, विज्ञानके अनुसार प्रोटोन (Proton) कणिकाकी अर्ध आयु $१०^{३२}$ वर्ष है। सूर्य आदि तारोंका तैजसद्रव्य हिरण्य है, इसका ही एक अपर नाम गांगेय है — **गांगेयं भर्म कर्बुरम्।**[४८] येह तेजोमय हिरण्यरूप तारकसमूहका द्रव्य विस्फोट होनेके पश्चात् आकाशगंगामें नीहारिका (Nebula) के रूपमें उत्पन्न होता है — नभोगंगासे प्रसूत होनेके कारण इसका अपर नाम गांगेय है। पुराणोंमें इसे विज्ञानकथाके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भमें वायुपुराणकी महत्त्वपूर्ण सूचना इस प्रकार है —

यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम्।
तदुल्बं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं प्रत्यपद्यत॥[४९]

वैदिक वाङ्मयमें आदिअण्डका वैज्ञानिक नाम हिरण्यगर्भ है, जो इसके वैज्ञानिक स्वरूपको लक्ष्यमें रखकर ही किया गया है। इस नामके द्वारा इसके चार विभिन्न वैज्ञानिक पक्षोंका उद्घाटन होता है। वैदिक भाषाके अनुसार नाम स्वयं नामीके तत्त्वार्थका उपलक्षक है, इसीलिए दोनोंमें अभेद सम्बन्ध स्वीकार किया गया। 'हर्य' धातु — गति और कान्ति अर्थमें प्रसिद्ध है, जिससे हिरण्यपद निष्पन्न होता है। आदिअण्ड परमभास्वर होनेके कारण कान्ति अर्थमें 'हर्य' धातुके अर्थको स्पष्ट करता है। अमरकोश पर आचार्य नीलकण्ठकी सुप्रसिद्ध टीका सुबोधिनीके अनुसार — **हर्यते स्वप्रभया दीप्यते इति**[५०] अर्थात् — स्वप्रभासे दीप्त होनेके अर्थमें 'हर्य' धातु — 'हिरण्यगर्भ' पदके परमप्रकाशित

स्वरूपार्थका ही परम परिचायक है। तापशक्तिके असीमित वर्धनके कारण — अग्निके अर्थमें भी यह पद रूपोपमा द्वारा सिद्ध है .... 'हिरण्यरूप' — अर्थात् — हिरण्य व अग्निके रूपवाला। **हृञ्-हरणे** — धातुसे भी हिरण्यपदकी सिद्धि निरुक्तकार आचार्य यास्कको स्वीकार्य है।[५१] इस धात्वर्थसे सोचा जाए तो, पूर्व प्रलयमें विनष्ट विश्वकी द्रव्यराशिके संकोच रूप आहरणके द्वारा इस अण्डका निर्माण होता है, वह आहृत द्रव्यराशि ही उसके गर्भमें है, इसीलिए वह हिरण्यगर्भ है। यह द्विधातुज शब्द है, अत: दूसरा धातु **हिनोते: रमतेश्च** के अर्थमें है — **हितं रमणं च भवतीति वा**। भारतीय दर्शनके अनुसार यह अखिल विश्व उस एक ही अद्वितीय तत्त्वकी क्रीड़ा, लीला व रमण है — **लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**।[५२] अत: लीला व रमण अर्थमें भी यह पद सार्थक है — विश्वरूप लीला जिसके गर्भमें है — वह लीलागर्भ ही हिरण्यगर्भ है। अब यह कहना न होगा कि वैदिक ऋषियोंके द्वारा दृष्ट — 'हिरण्यगर्भ' पद व नाम अपने आधारभूत चार वैज्ञानिक तत्त्वोंकी युगपत् अर्थसमष्टिका ही परमबोधक पद है। संक्षेपमें यह अर्थ प्रतीति इस प्रकार है —

(१) हिरण्यगर्भ पद अपने परम भास्वर अर्थका परिचायक है।

(२) अग्निगर्भ व अग्निस्वरूप होनेके कारण भी वह हिरण्यगर्भ है।

(३) पूर्व विश्वकी द्रव्यराशिका आहरण वा हरण इसके गर्भ वा उदरमें हुआ है — 'हृञ्-हरणे' इसलिए भी वह हिरण्यगर्भ है।

(४) हिरण्यगर्भ ही इस विश्वका लीलागर्भ है, उसके गर्भसे इस लीलाविश्व वा रमणीय विश्वका विस्फोट होता है, इसलिए भी उसका हिरण्यगर्भ नाम समुचित है।

लीलाविश्वके इस हिरण्यगर्भका निर्माण दो तत्त्वोंसे होता है, इसमें एक सत्त्वप्रधान प्रकाशतत्त्व है, दूसरा गुरुत्वधर्मी तमोद्रव्य। विज्ञानकी भाषामें इस अण्डका अन्तर्द्रव्य Plasma है। पूर्वविश्वका प्रलयग्रस्त द्रव्य संवर्तकाग्निमें दग्ध होनेके पश्चात् — पुन: प्रकाशधर्मी सत्त्वगुणके आश्रयसे प्लाज़्माके रूपमें प्रकट हो गया। विज्ञानमें जहाँ प्लाज़्मा शब्दका प्रयोग है, वहीं भारतीय विज्ञानमें इसे रस, नार, सोम आदि शब्दोंके द्वारा स्पष्ट किया गया है। यही विश्वका हिरण्यरूप अग्नितत्त्व है, जो इसके गर्भभूत सोम पदार्थके कारण प्रज्वलित हो उठता है।

तमोगुणकी द्रव्यराशिका स्वरूप अचल और जड़ है। रजोगुणके प्रवर्तक वेगसे संयुक्त होनेपर वह तन्मात्र रूपसे सक्रिय हो उठता है। रजोगुण ऊर्जाधर्मी सक्रियताका प्रवर्तक बलवेग है। प्रलयकालमें यह क्रमश: अपनी उत्तरोत्तर अवस्थाओंमें निष्क्रियताकी ओर बढ़ता हुआ — अन्तमें बलमात्रकके रूपमें अचल हो जाता है। वही सृष्टिकालमें ऊर्जारूपमें सक्रिय होता हुआ — सत्त्वगुण और तमोगुणको एकाकार कर देता है। इन गुणत्रयके सम्मिलित विक्षोभसे ही इस मनोभौतिक विश्वका विस्फोट होता है, महाकालका डिम्-डिम् नाद पुन: जागृत हो जाता है। इससे पूर्वकी द्रव्यावस्थाके दो स्तर और हैं — (१) महत्तत्त्व और (२) अहंकार। वैदिकदर्शनके अनुसार पदार्थवाची सत्ताके तीन रूप हैं — (१) शक्ति, (२) चेतना और (३) द्रव्य। प्रकृतिको ही शक्ति कहा गया है, चेतना इसका ही महत्तत्त्वके रूपमें प्रथम परिणाम है, इसका द्वितीय परिणाम अहंकार है, जो आगे चलकर इन्द्रिय, तन्मात्रा और तज्जन्य पञ्चमहाभूतोंके रूपमें प्रकट होता है।

शक्ति ही सर्वप्रथम चेतनाके रूपमें रूपान्तरित होती है, और यही अगले विकासमें पहुँचकर द्रव्यरूप हो जाती है। यही सृष्टिकी संरचना प्रक्रिया है, संहार वा प्रलयकालमें इस प्रक्रियाका क्रम उलट जाता है — द्रव्य और चेतना दोनों ही शक्तिके प्रमात्रकमें बदल जाते हैं। आज विज्ञानका महाक्षेत्र द्रव्य और शक्ति तक ही सीमित हैं, जिसके अनुसार शक्ति द्रव्यमें रूपान्तरित हो जाती है, द्रव्य शक्तिके प्रमात्रकमें बदल जाता है। पर विज्ञान इस पर-चेतनाके लोक तक नहीं पहुँच पाया, विश्वकी कार्यवाहिका 'ब्लू-प्रिण्ट' इस संविदाकार पराचेतनाका महाविषय है। परमप्रलयके पश्चात् संरचना कालमें सृष्टिका 'अहं' — 'इदं' विमर्श यहींसे प्रारम्भ होता है। यह विश्व उस संविदाकार —'अहं' रूप महाचेतनाका 'इदं' रूप विमर्श है। प्रकृति-पुरुषके संयोगके साथ ही इस विमर्शकी प्रक्रियाका प्रारम्भ हो जाता है। प्रकृति जड़ पदार्थ है, पुरुष चेतन। पुरुषसे संयोग ही प्रकृतिको सक्रिय और सचेतन बना देता है। पराचेतनाका 'अहं' अर्थरूप विमर्श ही महत्तत्त्वके परिणामरूपमें 'अहंकार' को जन्म देता है। सत्त्वगुण पराचेतनाके 'अहं' विमर्शका परिणाम है, तमोगुण 'इदम्' रूप विमर्शका, रजोगुण उसका शक्तिरूप बलमात्रक है। गुणविक्षोभके पश्चात् महत्तत्त्व अवस्थामें 'विश्व-पदार्थ' वहाँ चेतनाके रूपमें संस्थित है।

सचेतन पुरुषसत्ताके संयोगसे जड़ प्रकृतिमें गुण-क्षोभ होता है, इसके फलस्वरूप विश्वकी द्रव्यमयी प्रथम चेतना जागृत हो उठती है। फलत: प्रकृतिकी सुप्त एवं परमगुरुत्वधर्मिणी जड़ अवस्था भंग हो जाती है। इस प्रथम अवस्थाका नाम ही महत्तत्त्व है, जो तीनों गुणोंकी संक्षुब्ध अवस्थाका प्रथम परिणाम है। आगे चलकर यही अहंकारके रूपमें विकृत व परिणामधर्मिणी हो उठती है। यह प्रकृतिका द्वितीय विकसित स्तर है। इसे विश्वचेतनाका आवृत व बद्ध स्वरूप कहा जा सकता है। महत्तत्त्व जहाँ प्रकृतिका प्रथम परिणाम है, वहीं अहंकार विश्वकी संरचनाके सन्दर्भमें नियतिप्रधान द्रव्यचेतनाका द्वितीय विकास है। नियतिका अर्थ है — पूर्व विनिश्चय — सृष्टिके सन्दर्भमें एक पूर्वनियोजित द्रव्यावस्था। यह एक प्रकारसे पूर्व अभियोजित विश्वके 'ब्लू-प्रिण्ट' का अन्त:संविधान है। इसकी संयोजनाके अनुसार ही विश्वके भावीस्वरूपका संविधान अहंकार तत्त्वके रूपमें प्रकट होता है। यहाँ —'अहं' — 'इदं' भावापन्न चेतना —'कार' प्रत्ययके द्वारा प्रकृतिके परिच्छिन्न स्वरूपको स्पष्ट करती है। अहंकारतत्त्वमें विश्वका नियतिरूप निर्धारणकार्य सम्पूर्ण हो जाता है, भावी विश्वकी संयोजनाका सम्पूर्ण अन्त:संविधान यहाँ अपनी पूर्णता प्राप्त कर लेता है। प्रकृतिका इससे पश्चाद्भावी विकास तो विश्वकी कार्यस्वरूपा सिद्धिका बहिर्मुख इतिहास है। अहंकारतत्त्वमें विद्यमान रजोगुणका बलमात्रक अपने प्रबल वेग द्वारा वहाँ अव्यक्तरूपसे विद्यमान सत्त्वगुण और तमोगुणको पृथक् कर देता है। सत्त्वगुण सृष्टिका सचेतन प्रकाश तत्त्व है। विश्वके भावी सचेतन विकासको लक्ष्यमें रखकर, उसके पूर्वविधायक स्वरूपको ग्यारह विभागोंमें विभक्त करके समझा गया है। इसके ही विभक्त स्वरूपको इन्द्र कहा गया है, प्रतिक्षण होनेवाले प्रलयके सन्दर्भसे यही एकादश रुद्र हैं। इन्द्र तत्त्वरूपसे सोम और कार्यरूपमें बल है — **इन्द्रो वै बलम्।**[५३] वेदमें सोम संस्था इन्द्रके साथ एक हो गई है। इन्द्र सोमप्रिय हैं, वे सोमपान करते हैं, और इससे उनका बल और शक्ति वर्धित होती है। सोमके संयोगसे वह इन्द्र हो जाता है, उसके अभावमें रुद्र। इस सोमधर्मी इन्द्रके द्वारा जो सचेतन विकास सम्पन्न होता है — उसका नाम इन्द्रिय है। ये सोमतत्त्व प्रधान इन्द्रस्वरूपा इन्द्रियाँ ही आगे चलकर — पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ,

पाँच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवें मनके रूपमें व्यक्त हो जाती हैं। यही सृष्टिकी आधारभूता – 'ब्लू-प्रिण्ट' अथवा पूर्व नियति है, जिसके द्वारा हिरण्यगर्भके तन्मात्र द्रव्यका स्वरूप अनुशासित होता है। विस्फोटके पूर्व वह इन्द्रियसत्ताके द्वारा अनुशासित होकर ही अण्डकी द्रव्यमयी सत्ताको एक विशेष दिशा प्रदान करता है। कालान्तरमें होनेवाला विस्फोट सर्वत्र इस सत्ताके द्वारा पूर्वनियत या नियोजित है, जिसे ऊपर कथित ऐतरेयश्रुतिके विज्ञानरूपकमें भलीभाँति स्पष्ट किया गया है। वह इन्द्र वा इन्द्रियतत्त्व ही सृष्टिका तैजस बलमात्रक है, जिसके द्वारा विश्वका संचालन और नियमन होता है। तमस् द्रव्य इन्द्रियरूप सचेतन बलमात्रकसे युक्त होता है, इसके अभावमें वह विश्वरूप कार्यावस्था तक नहीं पहुँच पाता। चेतन पुरुषके चिदाभाससे ही सत्त्वगुणका मौलिक स्वरूप रजोगुणके द्वारा सक्रिय होता है, तमोगुण अचिदात्मक द्रव्यराशिका संग्रह है। पराचेतनाका विमर्श ही विश्व चेतनाका परम विधायक है।

सृष्टिके संरचनाकालमें चेतनाशक्ति ही भौतिकशक्तिमें बदलती हुई – अन्तमें विश्वका द्रव्यधातु बन जाती है। विश्वकी कार्यवाहिका – 'ब्लू-प्रिण्ट' का कम्प्यूटरीय संरचनाविधान इस संविदाकार परम चेतनाका ही महाविषय है, सृष्टिका 'अहं', 'इदं' विमर्श यहींसे प्रारम्भ होता है। इसे ही उपनिषद् 'ईक्षण' वा परमसत्ताकी संकल्पशक्ति कहते हैं। यह विश्व उस ईक्षणात्मक 'अहं' का 'इदं' रूप विमर्श है। इसके पश्चात् ब्रह्माण्डातीत नादकी सृष्टि होती है, जो सर्वतोभावेन अभौतिक है। जहाँ संरचनाके पूर्व यह विश्व नादतत्त्वकी परावाक् में समाहित है। इस बिन्दुपर शिव-शक्ति, द्रष्टा-दृश्य, अहं-इदं जैसा कोई भेद वा द्वैत नहीं, यही नादतत्त्वका उद्भव स्थल है। शक्तिके संयोगसे कूटस्थ व अविचल शिवतत्त्वमें प्रथम स्पन्द वा स्पन्दनका आभास होता है। शक्तिसे शिवकी इस अभिन्न अवस्थाको योगी – 'उन्मनी' अवस्था कहते हैं। यह उन्मनी शक्ति ही आगे चलकर सृष्टिके संरचना कालमें 'समनी' कही जाती है। उन्मनी और समनी शक्तिके सन्धिस्थल वा मीटिंग पॉइण्ट पर ही नादका आविर्भाव होता है। इसे शाक्त और शैव आगमोंमें शिव और शक्तिकी संयुक्त स्थिति कहा गया है। सांख्यशास्त्रके अनुसार यही प्रकृति और पुरुषका संयोग है, और गुणक्षोभ वहाँ

नादस्थानीय कहा जाता है। इस संयोगसे ही सर्वप्रथम नादका आविर्भाव होता है, जिसके फलस्वरूप सृष्टिका प्रथम संरचना बिन्दु अस्तित्वमें आया है —

सच्चिदानन्दविभवात्सकलात्परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः ॥[५४]

शिवतत्त्व समन्वित शक्तिसे ही नाद एवं इस नादसे ही विश्वके परमकारण बिन्दुका उदय होता है। शाक्तग्रन्थोंमें शक्तिके इस प्रथम बिन्दुका स्वरूप बड़ा विलक्षण है, वह गणित द्वारा प्रस्तुत बिन्दुकी परिभाषासे भी अधिक सूक्ष्म और विलक्षण है, यहाँ तक कि क्वान्टम् विज्ञानकी 'तरंग' और 'कण' रूप शक्ति Wave Particle Theory की व्याख्यासे भी परम सूक्ष्म है। रेखागणित बिन्दुके परिमाणको स्वीकार नहीं करती, पर उसके नियत स्थानगत अस्तित्वको स्वीकार करती है। शाक्तोंका यह परमबिन्दु परिमाणातीत ही नहीं, देशातीत भी है। शक्ति जिस कारणावस्थासे बहिर्भूत होकर विश्वके संरचनाक्रममें सर्वप्रथम पहुँचती है, वही दिक् और कालसे अतीत बिन्दुतत्त्वकी प्रथम अवस्था है। यहाँ 'प्रथम क्षण' या 'प्रथम अवस्था', 'क्रम' एवं 'संख्या' आदि शब्दोंका व्यवहार, मात्र निर्देशात्मक है — तात्त्विक नहीं। बिन्दुतत्त्वकी अपर अवस्थासे ही दिक्-काल और संख्याका व्यावर्तन होता है। यह 'ईक्षण' के पश्चात् शक्तिकी 'संविद्' स्वरूपा अवस्थिति है। इसमें यह पराशक्ति 'चित्' स्वरूप होती हुई, अपने ही भीतर अव्यक्तरूपसे 'पूर्वविलीन विश्व' के 'इदम्' स्वरूपको चिन्मय रूपमें प्रस्तुत कर देती है। इस बिन्दुरूपा संविदाकार शक्तिमें समग्र विश्वका यह 'इदम्' रूप वहाँ संवित्स्वरूप है। यही ज्ञान वा चित् स्वरूप कहा जाता है। शक्तिकी इस प्रथम अवस्था का नाम 'चिद्बिन्दु' अवस्था है। समझनेकी दृष्टिसे यों कहें कि — 'अहम्' अपनी अखिल चेतनामें इस सम्पूर्ण 'इदम्' तत्त्वको देखता है। 'अहम्' और 'इदम्' का यह तत्त्व स्वतन्त्र होनेके कारण दिक्-काल और संख्याके बन्धनसे सर्वतोभावेन मुक्त है। यहाँ मात्र समझनेकी दृष्टिसे — मनको, उदाहरणके रूपमें रखा जा सकता है, क्योंकि वह स्वयं एक परिमाणहीन पदार्थ है। मनके भीतर ही पूर्वदृष्ट विश्वके पदार्थोंका निर्माण स्वप्न और जाग्रत् अवस्थामें होता रहता है, पर यह कारणस्वरूप आदिबिन्दु परिमाणमुक्त एक अनादि अनन्त

तत्त्व होनेके कारण — अनादि अनन्त संवित्स्वरूप है, जहाँ दिक्-काल और संख्याका कोई अस्तित्व नहीं।

बिन्दुतत्त्वमें 'अहम्-चित्' इस 'इदम्-विश्व' को संरचनासे पूर्व अपनी उन्मीलित संवित्स्वरूपा रश्मियोंके द्वारा एक व्यक्त होते हुए चित्रकी तरह देखता है। बैन्दवीकलामें निविष्ट, साकार होती हुई महाभगवतीके दिव्य मूर्तस्वरूपके बिम्बभावको महाकवि कालिदासने कुमारसम्भवमें इस प्रकार स्पष्ट किया है —

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं
सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि
वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥[५५]

नादमें जो क्रियाशक्ति व्यक्त होती है — बिन्दुमें उसका 'अहम्' स्वरूप 'निमेष' रूप है और यह 'इदम्' विश्व वहाँ 'उन्मेष' है। बिन्दुमें इस अहम् और इदम्का अर्थगत सन्दर्भ भी परमव्यापक है। यहाँ तक कि इस 'अहम्' और 'इदम्' में समग्र दिक् और कालकी सत्ता संविद्रूपमें प्रतिबिम्बित है। यह निमेष अवस्थाका अहम् वहाँ परमप्रलयकी अन्तिम अवस्थासे सम्बन्धित है, जो पूर्वमें हो चुकी है। भविष्यमें होनेवाले 'इदम्' विश्वका विमर्श यहाँ 'अहम्' भावापन्न 'बिन्दु' में आकर सुरक्षित हो जाता है, जो सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर परमप्रलय तक अतीतमें था। इसी संविदाकारशक्तिके बिन्दुसे 'पूर्व सदृश विश्व' का निर्माण पुन: हो जाता है — वैसा ही सूर्य, वैसा ही चन्द्र, वैसी ही धरित्री, वैसा ही आकाश, वैसी ही सन्दोलनात्मक सृष्टि (Oscillating Universe) के नवीन विश्व-चक्रोंमें वैसे ही कालपुरुष और इतिहासपुरुष बार-बार उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं —

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।[५६]

सर्ग और प्रतिसर्गका यह क्रम घड़ीके पिण्ड-दोलक (पेण्डुलम) की तरह निरन्तर चलता रहता है।

व्यवहारमें हम देखते हैं 'कुम्भकार' स्मृतिके पूर्वविमर्शके अनुसार मिट्टीके

नये-नये बर्तन बनाता है। इस उपर्युक्त कथनकी तुलना स्मृति ज्ञानसे की जा सकती है। पर स्मृति ज्ञानमें क्रम है, एक क्षणमें एक ही देश, काल और वस्तुकी स्मृति होती है, संविदाकार शक्तिमें 'अहं' 'इदं' विमर्शको स्मृति नहीं कहा जा सकता। वहाँ इन्द्रिय व्यापारके अभावमें सभी अवस्थाएँ, समग्र दिक्-काल, संख्या, परिणाम, सभी कुछ सर्वदा युगपद् भावसे विद्यमान है। बिन्दुतत्त्व तक आते-आते पराशक्ति त्रिगुणात्मक सृष्टिकी संरचनाके लिए प्रस्तुत हो उठती है। सकलब्रह्ममें व्यक्तावस्था ज्ञानप्रधान है, अतः महाशक्ति संवित्स्वरूपा कही गई है, वही नादतत्त्वमें रजोगुणप्रधान क्रियारूप हो जाती है। बिन्दु तक आते-आते वह महाशक्ति इच्छा और क्रिया समन्वित बल प्रधान होती हुई — तमोरूपसे घनीभूत हो उठती है। इन तीनों अवस्थाओंमें त्रिगुण पृथक् रूपसे व्यक्त नहीं, वे शक्तिमें ही अन्तर्विलीन हैं। पराचैतन्यशक्ति ही हिरण्यगर्भसे लेकर पिण्डाण्ड एवं तज्जन्य जैवविकासमें चेतन नियन्ताके रूपमें ओत-प्रोत है। यही महाशक्ति मायारूपसे घड़ेमें मिट्टीकी तरह उपादानधर्मिणी होती हुई, विश्वकी द्रव्यमयी सत्ता बन जाती है।

इस विज्ञानको प्रत्यभिज्ञादर्शनमें इन शब्दोंके द्वारा स्पष्ट किया गया है — स्वयं यही शक्ति बोध स्वरूप होती हुई, कर्तृरूपमें अनेक बुद्धिभेदरूपा मायाशक्ति है, विद्येश्वरोंके सम्बन्धसे इसे विद्या कहकर सम्बोधित किया जाता है —

भेदधीरेव भावेषु कर्त्तुर्बोधात्मनोऽपि या।
मायाशक्त्येव सा विद्येत्यन्ये विद्येश्वरा यथा॥[५७]

यह माया शक्ति ही अपने अंशसे सम्पूर्ण जीव समुदायमें भेदबुद्धिरूपा है, जिस प्रकार अपरिमित वैभव सम्पन्न समुद्र अपने ही तटसे अवरुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार यह आत्माके परमस्वतन्त्र स्वरूपको अवरुद्ध कर देती है —

माया विभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु।
नित्यं तस्य निरंकुशविभवं वेलेव वारिधे रुन्धे॥[५८]

तत्त्वतः इस कारण बिन्दुसे ही क्रमानुसार कार्यबिन्दु, इससे ही नाद एवं इस नादसे बीजकी उत्पत्ति होती है। ये ही शाक्तशास्त्रोंमें क्रमशः पर-बिन्दु,

सूक्ष्म-बिन्दु एवं स्थूल-बिन्दु कहे गये हैं —

अस्माच्च कारणबिन्दोः सकाशात्क्रमेण कार्यबिन्दुस्ततो नादस्ततो बीजमिति त्रयमुत्पन्नम् तदिदं परसूक्ष्मस्थूलपदैरप्युच्यते।[५९]

शास्त्रमें सूक्ष्म बिन्दुका नाम हिरण्यगर्भ है, एवं स्थूल बिन्दुको विराट् (विश्व) कहते हैं। जब महाशक्ति परमप्रलयमें अभिन्न स्वरूप होती हुई — 'ब्रह्म' तत्त्वमें विलीन हो जाती है, तब वहाँ शक्तिकी पृथक् स्थिति नहीं। यह पुनः चैतन्य होती है — ब्रह्म कला बन जाता है, यही सकल ब्रह्मका स्वरूप है। कहा जा चुका है कि शक्तिकी दो अवस्थाएँ हैं —'उन्मनी' और 'समनी'; प्रथम अवस्थामें वह ब्रह्मविलीन है, द्वितीय 'समनी' में वह कलायुक्त। विश्वके सन्दर्भमें शक्तिकी सोलह कलाएँ स्वीकार की गई हैं। इस षोडशीसे ही विश्वका उन्मेष होता है। जहाँ ये कलाएँ संख्यात्मक दृष्टिसे न्यून हैं, वहाँ शक्ति न्यून कलामूर्ति है। कला स्वयंमें शक्तिका एक विशिष्ट मात्रक है। विश्वातीत पराशक्ति जब विश्वके निर्माणकी दिशामें उन्मुख होती है — तब इसका अनादि-अनन्त परम व्यापक स्वरूप संकुचित हो जाता है। शक्तिका यह परम संकोच शाक्तआगममें 'कंचुक' के नामसे प्रसिद्ध है। कला इस अवस्थामें स्वयं शक्तिके संकोच व 'कंचुक' का एक अंश बन जाती है। शक्तिके इस संकोच क्रममें जितनी कलाएँ वा शक्तिके विशिष्ट मात्रक युक्त होते चले जाते हैं, पुरुषकी चैतन्य शक्ति उसी सीमामें पूर्णसे पूर्णतर होती चली जाती है। सृष्टिके संरचना कालमें यह 'कंचुकित' शक्ति वा आच्छादिनी संकोचशक्ति 'अस्मि' से आच्छादित 'अहं' के रूपमें व्यक्त हो जाती है। समग्र विश्व विस्तारोन्मुख हो उठता है। महाशक्ति विश्वकी संरचनाके लिए छः रूपोंमें संकुचित होती है — (१) माया, (२) काल, (३) नियति, (४) राग, (५) विद्या और (६) कला।

महाशक्तिका प्रथम संकोच मायातत्त्वके रूपमें होता है। यही विश्वका द्रव्यभूत उपादान या Matter है। **मा-परिमाणे** धातुसे निष्पन्न माया ही विश्वकी सम्पूर्ण द्रव्यावस्था है। 'मा' धातुका अर्थ है —'माप' जो पदार्थ अपने मापरूप परिमाणसे निश्चित है — वह माया है। शक्ति ही अपने निश्चित प्रमात्रक वा परिमाण द्वारा पदार्थ रूपमें अवस्थित होती है, चाहे वह परमाणु हो या ब्रह्माण्ड

या सम्पूर्ण विश्व-द्रव्य। विश्वपदार्थके सन्दर्भमें महाशक्तिकी प्रमात्रकता सुनिश्चित है, 'मा' धातु इसी अर्थमें शक्तिकी प्रमात्रकताको पदार्थके सन्दर्भमें व्याख्यात करते हुए मायातत्त्वके अर्थको स्पष्ट करता है। माया शब्द भ्रम अर्थमें भी प्रचलित है, क्योंकि वहाँ पदार्थकी प्रतीति मात्र भ्रम है, आभास है, तत्त्व रूपसे वहाँ शक्ति ही है, पदार्थका तात्त्विक अस्तित्व मृगमरीचिकासे अधिक नहीं। माया शब्द अपने इण्डोयोरोपियन भाषिक सम्बन्धोंके प्राचीन इतिहासमें Mass और Matter बन गया, विज्ञान विश्वके उपादान अर्थमें इन शब्दोंको सर्वत्र बार-बार दुहराता है। Mass शब्द भी शक्तिकी प्रमात्रकताके स्वरूपको केन्द्रमें रखकर ही शब्दके तत्त्वार्थको स्पष्ट करता है। मैटर शब्दके मूलमें भी शक्तिकी प्रमात्रकताका ही अर्थ निहित है। विज्ञानके अनुसार Matter की परिभाषा इस प्रकार है — "Matter is a specialized form of energy which has the attributes of mass and extension in space and time."[६०]

विज्ञानमें विश्व-द्रव्यके लिए 'मास' और 'मैटर' शब्दका प्रयोग सर्वत्र प्रचलित है। शाक्तआगमके अनुसार महाशक्तिका प्रथम कंचुक माया है। कला शब्दके द्वारा शक्तिकी प्रमात्रकताका ग्रहण होता है। महाशक्तिका द्वितीय संकोच काल है, जिसके द्वारा सृष्टि और प्रलयके परिणामधर्मका स्वरूप स्पष्ट होता है। काल पद कलनाके अर्थमें है, जो द्रव्यके परिसंख्यान, विस्तार व परिणामको बतलाता है। विश्वका निधन और उदय कालशक्तिका ही कार्य है, इससे ही विश्वपदार्थ सतत परिणामधर्मी होता रहता है। यही नियत रूपसे विश्वका परिच्छेदक भी है।[६१] तृतीय नियतिशक्ति कृत्य और अकृत्यके सन्दर्भमें इस व्यापक आत्मतत्त्वका नियमपूर्वक नियमन करती है। यह नियतिरूपा संकोचशक्ति ही विश्वको कार्यकारण सम्बन्धमें नियमित करती हुई — नियतिरूपसे प्रकट होती है।[६२] जब नित्य परिपूर्ण तृप्ति संकुचित होती हुई — इस आत्माको भिन्न प्रकारके भोगोंमें अनुरक्त करती है — तब वह राग कही जाती है।[६३] सर्वज्ञताशक्ति संकुचित होकर परिमित ज्ञानके स्वरूपका उत्पादन करती है, तब वह विद्याशक्ति है।[६४] सर्वकर्तृताशक्ति संकुचित होकर कतिपय अर्थोंसे संयुक्त होती हुई, आत्मतत्त्वको किंचित् कर्ता बना देती है — तब इसे ही कला कहते है। यह आत्मतत्त्वपर शक्तिकी क्रियाशील प्रमात्रकताका आरोपण है, जिससे किंचित् कर्तापनका आभासमात्र होता है, वैसे कलातत्त्वके अन्त: और बाह्य दो भेद हैं। बाह्य कलाके पुन: सोलह उपभेद

हैं। निर्वाणकलाको लेकर यह संख्या सत्रह हो जाती है। 'अमा' सोलहवीं कला है, इसे सर्वयोनिरूपा कहा गया है। बन्धनका हेतु होनेके कारण यही 'अमृत-कला' है। निर्वाणकला ही इसे पाश मुक्त करती है। स्थूल दृष्टिसे पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तन्मात्ररूप पञ्चमहाभूत सोलहवाँ मन है — **षोडशकलो वै पुरुषः।**[६५] आगमशास्त्रके आचार्योंका भी यही अभिमत है — **कला सप्तदशी यासावमृताकाररूपिणी।**[६६] हिरण्यगर्भ (सूक्ष्म-बिन्दु) हो या विराट् विश्व (स्थूल-बिन्दु) दोनों ही कलातत्त्वके द्वारा नियन्त्रित हैं।

आगमग्रन्थोंमें कार्यभेदसे कलाओंके अनेक नाम प्राप्त होते हैं। इन सोलह कलाओंमें (१) निवृत्ति, (२) प्रतिष्ठा, (३) विद्या और (४) शान्ति — ये चार नाम सर्वत्र समान रूपसे प्राप्त हैं। पर अन्य बारह नाम क्रियाभेदसे होनेवाले पर्यायभेदके कारण भिन्न भी प्राप्त होते हैं। इन कलाओंके निम्नलिखित नाम नेत्रतन्त्रके आधारपर वर्गीकृत किये गये हैं —[६७]

(१) समनी — (१) सर्वज्ञा, (२) सर्वगा, (३) दुर्गा, (४) सवर्णी, (५) स्पृहणी, (६) धृति और (७) समनी।

(२) अर्जनी — (१) सूक्ष्मा, (२) सुसूक्ष्मा, (३) अमृता, (४) अमृतसम्भवा और (५) व्यापिनी।

(३) महानाद — (१) ऊर्ध्वगामिनी।

(४) नाद — (१) इन्धिका, (२) दीपिका, (३) रोचिका और (४) मोचिका।

इन कलाओंके माध्यमसे विश्वकी आधारभूता तत्त्वस्थिति स्पष्ट की गई है। विश्वकी संरचना और उसका विकास इन कलाओंकी अभिव्यक्तिके अनुसार होता है, जो अपने तत्त्वसन्दर्भमें त्रिगुणात्मक है। 'समनी' कला सत्त्वगुण प्रधान सोमतत्त्व स्वरूपा है। इसका प्रथम स्वरूप विज्ञानघन है, इसीलिए इसे 'सर्वज्ञा' कहा गया है। विश्व इस कलाके प्रभावसे ही विज्ञानघन चैतन्यसे संयुक्त होता है। संविदाकार महाशक्तिका प्रमात्रक सर्वप्रथम विश्वचैतन्यके रूपमें सत्त्वगुणका आलम्बन कर संकुचित हो जाता है। 'सर्वगा' का अर्थ है — सभी पदार्थोंके रूपमें गमन करनेवाली कला, यह सर्वतोगामिनी सर्वगा कला ही विश्वकी सम्पूर्ण पदार्थ वाचक मूर्तियोंके रूपमें प्रस्तुत होती है। 'दुर्गा' इसके एक ही अद्वितीय

तत्त्वकी परिचायिका कला है, जिसमें द्वितीय तत्त्वका प्रवेश वा गमन ही असम्भव है। दुर्गाका अर्थ ही है, जिसमें अन्य तत्त्वका गमन दुस्साध्य वा असम्भव है। 'सवणी' का अर्थ है — सोमतत्त्व प्रधान, 'सवन' शब्द सोमके निकालनेके अर्थमें प्रसिद्ध है, अत: जिससे सोमका आविर्भाव होता है, वही सवणी कला है। 'स्पृहणी' का अर्थ है, सभीके द्वारा काम्य, विश्वमें स्पृहा प्रधान कामना तत्त्व इसीसे प्रकट होता है, इसीलिए यह स्पृहणी वा काम्या है। 'धृति' का अर्थ है — आधाररूपसे इस विश्वको धारण करनेवाली कला, इसीलिए यही विश्वकी तत्त्वाधाररूपा धृति है, जो महागुरुत्वाकर्षणरूप (Super Gravity) होकर अभिव्यक्त होती है। मनोरूप संविद् भी इस सोमस्वरूपा कलासे ही उत्पन्न होता है, अत: यह 'समनी' है। विश्वातीत अवस्थाके सम्बन्धसे यही संविद् कही जाती है, और विश्वके सम्बन्धसे यही मनस्तत्त्वकी विधायिका कला है।

'अर्जनी' कला रजोगुण स्वरूपा है। रजोगुण जब सत्त्वगुण और तमोगुणसे संयुक्त होता है — तभी विश्वके आधिभौतिक और मनोभौतिक पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। तमोगुणसे संयुक्त होनेपर जो द्रव्य अवस्था उत्पन्न होती है, उसे तन्मात्रा वा भूततन्मात्रा कहते हैं। सत्त्वगुणसे जब रजोगुण संयुक्त होता है — तब विश्वका कार्यवाहक इन्द्रियचैतन्य प्रकट होता है। 'सूक्ष्मा' और 'सुसूक्ष्मा' के द्वारा यहाँ विश्वके सूक्ष्म तन्मात्र द्रव्यका ग्रहण किया गया है। सूक्ष्मकलाके द्वारा वायु, अग्नि, जल और पार्थिव जगत्‌की सूक्ष्म तन्मात्रसत्ता उत्पन्न होती है। सुसूक्ष्माके द्वारा आकाशतत्त्वकी परमसूक्ष्म तन्मात्राका ग्रहण है। 'अमृता' और अमृतसम्भवा' के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका स्वरूप व्यक्त होता है। 'व्यापिनी' कलाके द्वारा इस विश्वकी संरचनात्मक विराट् व्यापकताका ग्रहण है — प्रसरणधर्मी विश्व (Expanding Universe) इस व्यपनधर्मिणी कलाका ही परिणाम है।

महानाद और नाद यहाँ तमस् तत्त्वप्रधान शक्तिके कलातत्त्वात्मक विस्फोटकी सूचना देते हैं। महानादका सन्दर्भ ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षोंके उपरान्त होनेवाले आदि हिरण्यगर्भके विस्फोटसे है। महाशून्यमें इस कलाके ऊर्ध्वगमनसे ही कालक्रममें २५ अरब, ९२ करोड़ वर्षोंके अन्तरसे सन्दोलनात्मक विश्वोंके अपने-अपने हिरण्यगर्भोंका विस्फोट होता रहता है। आदि हिरण्यगर्भके प्रथम महानाद विस्फोटकी जहाँ एक ही कला है, वहीं सन्दोलनात्मक विश्वके हिरण्यगर्भोंके

नाद विस्फोटमें चार कलाओंका स्वरूप स्पष्ट होता है — (१) इन्धिका, (२) दीपिका, (३) रोचिका और (४) मोचिका। प्रथम इन्धिका हिरण्यगर्भकी इन्धीभूत प्रज्वलित होनेवाली प्रथम अवस्थाकी परिचायिका कला है। यहाँ अण्डके भीतरकी अग्नीषोमात्मक अवस्था सर्वप्रथम व्यक्त होती है। सत्त्वगुण इन्धन है, अग्नि तमोगुणका द्रव्य — यही हिरण्यगर्भकी प्रथम प्रज्वलित अवस्था है, जिसे इन्धिका कला कहा गया है। १ लाख ४४ हजार वर्षों तक अण्डकी प्रथम इन्धिका अवस्था है। दीपिका कला इस अण्डकी मध्यम परिणामवाली परमभास्वर ज्योतिर्लिङ्ग अवस्था है। अण्डकी ज्योतिर्लिङ्ग अवस्थाका कालमान १ लाख ८ हजार वर्ष है। इसके पश्चात् अण्ड रोचिका कलासे आवेष्टित हो जाता है, जो इसकी परम उत्तप्त अवस्था है, इस कला स्थितिका काल अण्डमें ७२ हजार वर्ष है। तापमानके इस बिन्दुपर हिरण्यगर्भ प्रचण्डतम विस्फोटक स्थितियों तक चला आता है। मोचिका कला इसके उन्मुक्त विस्फोट जन्य विमोचनको सूचित करती है। रोचिका कलाके पश्चात् अण्डके विस्फोटका ३६ हजार वर्षोंका लघुकाल व्यतीत होता है। जन्मसे विस्फोट तक इन चार कलाओंकी स्थितिको पार करनेमें अण्डको ३ लाख ६० हजार वर्षोंका समय लगता है। विस्फोटसे पूर्व यही सोलह कलाओंसे युक्त हिरण्यगर्भ है। विस्फोटको स्पष्ट रूपसे रेखांकित करनेके लिए ही यहाँ — 'मोचिका' कलाका ग्रहण सत्रहवीं कलाके रूपमें किया गया है। महाशक्तिके इस कंचुकित स्वरूप (अण्ड) से नाद विस्फोटके द्वारा विश्व-द्रव्य किस प्रकार विस्तृत और विकासधर्मी होता है — इसका तात्त्विक स्वरूप इस प्रकार है।

विश्वका सम्पूर्ण तात्त्विक अस्तित्व तीन भागोंमें विभक्त है — (१) आधिदैविक, (२) आधिभौतिक और (३) आध्यात्मिक। इसके द्वारा ही मनोभौतिक जगत्की संरचना सम्पूर्ण होती है। ब्रह्माण्डसे लेकर मानवीय विकास तक कम और अधिक २८ कलाओंका संमिश्रण देखा जाता है। कुछ कलाएँ सत्त्वगुण प्रधान हैं, शेषका सम्बन्ध अन्य दो गुणोंसे है। इसी आधार पर उन कलाओंके आधिदैविक तत्त्वकी सैद्धान्तिक अवधारणा की गई, जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके नामसे प्रसिद्ध है। जब सृष्टिके प्रारम्भमें नाद रूप ओंकार तत्त्वका विस्फोट होता है, तब शक्तिकी प्रथम तीन कलाएँ व्यक्त होती हैं — 'अ' 'उ' और 'म्'। इनका सम्मिलित स्वरूप ही ओंकारका नादतत्त्व है। 'अ' के शब्द शक्तिजन्य विस्फोटका नाम ब्रह्मा तत्त्व है, जिसकी आठ उपकलाएँ

हैं — (१) सिद्धि, (२) ऋद्धि, (३) द्युति, (४) लक्ष्मी, (५) मेधा, (६) कान्ति, (७) धृति और (८) सुधा। 'उ' का शब्द शक्तिजन्य नाद विस्फोट ही विष्णु नामका तत्त्व है, जिसकी तेरह उपकलाएँ हैं — (१) रजा, (२) रक्षा, (३) रति, (४) पाल्या, (५) काम्या, (६) बुद्धि, (७) माया, (८) नाड़ी, (९) भ्रामिणी, (१०) मोहिनी, (११) तृष्णा, (१२) मति और (१३) क्रिया। 'म्' के शब्दजन्य नादस्फोटका नाम रुद्र है — जिसकी सात उपकलाएँ हैं — (१) तमोमोहा, (२) क्षुधा, (३) निद्रा, (४) मृत्यु, (५) माया, (६) मया और (७) जडा। इनके अंशांशोंके संमिश्रण और विस्तारसे ये कलाएँ असंख्य हो जाती हैं। महानादका ऊर्ध्वगमन ही नादतत्त्वका — 'ओंकार' रूप 'अ', 'उ', 'म्' स्वरूप है, जो विश्वकी संरचनामें — ८+१३+७=२८ कलाओंसे समूहित जिस नादाण्डका निर्माण करता है — वही हिरण्यगर्भका आदि परमाण्ड है, जिसके द्वारा कालतत्त्वका आश्रय लेकर ये अनन्त ब्रह्माण्ड चक्र बहिर्भूत होते हैं। नादाण्डके बलवेगसे विस्फोटित द्रव्यराशिमें जिन कलातत्त्वोंका मिश्रण प्रधान होता है, वैसा ही उस ब्रह्माण्ड और उसकी जीवनधाराके विकासका स्वरूप हो जाता है। कालान्तरमें यह द्रव्यराशि आकाशमें कलाक्रमके प्राधान्यके अनुसार वहाँ स्थित हो जाती है। विस्फोटके स्थितिस्थापक बलवेगसे जहाँ जो द्रव्य निपतित होता है, वहाँ वैसे ही ब्रह्माण्डकी संरचना होती है। जिस द्रव्यमें जिन कलांशोंका प्राधान्य होता है, तज्जन्य पिण्ड उन कलांशोंके नियति तत्त्वसे प्रभावित होता हुआ — आकाशमें उसी कलागर्भित क्षेत्रका निर्माण करता है। महाण्डपिण्डोंका यह स्थिति विलयरूप नर्तन कालके छन्दपर निरन्तर होता रहता है, जो शक्तिके शिवताण्डवके रूपमें — परमकणसे ब्रह्माण्ड और नादाण्ड तक समान लयसे गतिशील है। अत: कहीं भी नियमजन्य व्यतिरेक नहीं हो पाता, चाहे परमाणुमें इलेक्ट्रोनका परिक्रमा पथ हो, चाहे सूर्यका गगनगंगाके केन्द्रका परिक्रमा पथ। शक्तिके शिवताण्डवसे समुद्भूत विश्वकी यह गाणितिक व्यवस्था गणितकी सीमासे परेकी परात्पर स्थितियोंसे संयुक्त है। आकाशके भचक्रका दिक्कृत विभाजन भी इन २८ कलाओंके आधारपर हुआ है, जो भारतीय ज्योतिषशास्त्रके अनुसार २८ नक्षत्रोंमें विभक्त है, जो द्रव्य जिन कलांशोंके प्राधान्यके साथ अण्डसे बहिर्भूत होता है, वह उन्हीं कलाओंकी विद्युच्चुम्बकीय शक्तिसे आवेष्टित अपने स्थितिस्थापक वेगके द्वारा आकाशमें अपने पृथक् विद्युच्चुम्बकीय नक्षत्रक्षेत्रका निर्माण कर लेता है। इन लोक ब्रह्माण्डोंसे परे विश्वकी सत्ता और

भी परम व्यापक है। इस महासत्ताका विस्तार आगमग्रन्थोंके अनुसार चार भागोंमें विभक्त है — (१) ब्रह्माण्ड, (२) मूलाण्ड, (३) मायाण्ड और (४) शक्त्यण्ड। शक्त्यण्डमें शान्ताकलाका प्रभाव अधिक है, मायाण्डमें विद्याकलाका प्रचुर विकास हुआ है, वैसे पृथ्वीसे लेकर मायाण्ड तक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रतत्त्वका विपुल प्रभाव है। शाक्त आगमोंमें विश्वके इन विभिन्न अण्ड-ब्रह्माण्डोंकी सूचना इस प्रकार है —

शक्त्यण्डमृत्पिण्डमुपाददानो मायाण्डचक्रभ्रमणक्रमेण।
मूलाण्डदण्डेन मुहुर्विधत्ते ब्रह्माण्डभाण्डं भगवान् कुलालः ॥[६८]

ऊपर कहा जा चुका है, पूर्व विश्वकी दग्ध व मृत द्रव्यराशि महाशक्तिके परमसंकोचसे जिस मृताण्ड अवस्थामें पहुँच जाती है, वही प्रलयग्रस्त सृष्टिका मृतपिण्ड है। इन्धिकाकलाके संयोग वा प्रभावसे यह मृतपिण्ड पुनः जीवित हो उठता है। इसका द्वितीय विकास अण्डकी ज्योतिर्लिङ्ग अवस्था है, इसकी सम्पूर्ण द्रव्यराशि दीपिकाकलाके संयोगसे उद्दीप्त हो उठती है। हिरण्यगर्भ इसका तृतीय विकास स्तर है, रोचिकाकलाके प्रभावसे इसकी पूर्व द्रव्यअवस्था अपनी प्रमात्रकतामें परिसीमित होती हुई शक्तिको पञ्चमहाभूतोंकी तन्मात्राके रूपमें निर्धारित कर देती है। चतुर्थ विकासमें यह अण्ड तापशक्तिके असीमित वर्धन द्वारा परम विस्फोटक स्थितियों तक पहुँच जाता है, मोचिका कलाके प्रभावसे अण्ड नादविस्फोटके द्वारा अपनी द्रव्यराशिका विस्फोट करता है। अतः यह हिरण्यगर्भकी नादाण्ड अवस्था कही गई है, विस्फोटके पूर्व अण्डका विकास चार स्तरों पर होता है — कालक्रमानुसार यह विकास यहाँ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है —

अण्डका जन्मसे लेकर विस्फोट तकका सम्पूर्ण काल — ३,६०,००० **वर्ष**

१. इन्धिका कलाका प्रारम्भिक काल	—	१,४४,०००
२. दीपिका कलाका ज्योतिर्लिङ्ग काल	—	१,०८,०००
३. रोचिका कलाका हिरण्यगर्भ काल	—	७२,०००
४. मोचिका कलाका नादविस्फोट काल	—	३६,०००
		३,६०,००० वर्ष

विस्फोटके समय वह परमाण्ड सहस्र सूर्योंके प्रभामण्डलकी तरह स्वर्णिम हो उठा —

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।[६९]

शक्तिके संकोचरूप बलमात्रककी लचक ही आदिमद्रव्यको उसका यह अण्डभूत सुदृढ़ आकार प्रदान करती है। वही उसका घनतम आवरण बन जाती है, उसके भीतर होनेवाला तापशक्तिका असीमित वार्धक्य उसे परमस्वन विस्फोटकी सीमाओं तक ले आता है। फलत: इस सुदीप्त पावकपिण्डके विस्फोटसे उत्पन्न स्फुलिंगोंसे सारा आकाश भर जाता है, अन्तमें ये सारे स्फुलिंग प्रलय कालमें पुन: विलीन हो जाते हैं।

मुण्डकश्रुतिके अनुसार यह विराट् विश्व उस आदिम पावकपिण्डकी ही पावक क्रीड़ा है। वही उसका अक्षर-तत्त्वस्वरूप अमृतधातु है, जो बार-बार प्रलयके पश्चात् अण्डरूपमें उपस्थित होता है। आकाश जब इसके विस्फोटित पावक स्फुलिंगोंसे भर जाता है, तब यह विविध भावमयी सृष्टि उत्पन्न होती है। जब महाप्रलय होता है — सूर्य, तारे आदि महास्फुलिंग पुन: उस अमृतस्वरूपा तैजसधातुमें विलीन हो जाते हैं — **तदेतत्सत्यम्** — वह यही तो महान् सत्य है — आकाशगंगाके ये सम्पूर्ण तारे उस आदिपिण्डके ही स्फुलिंग भाव हैं —

यथा सुदीप्तात्पावकाद् विस्फुलिङ्गा:
सहस्रश: प्रभवन्ते सरूपा: ।
तथाक्षराद् विविधा: सोम्य भावा:
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ।।[७०]

ये स्फुलिंग ही सृष्टिके वे आदिम तैजसमेघ हैं, जो आगे चलकर ब्रह्माण्डोंके रूपमें व्यक्त हो उठते हैं, इनका ही अपर नाम नीहारिका Nebula है। सृष्टिकी यह पावकलीला सनातनभावसे निरन्तर चलती रहती है — कभी यह पावक पिण्ड-हिरण्यगर्भ, कभी इसका विश्वरूप स्फुलिंग भाव, यही तो सृष्टि और प्रलयका सनातन धर्म-चक्र है, जो निरन्तर गतिशील रहता है। पावक और स्फुलिंग दो तत्त्व नहीं, एक ही हैं । उसी प्रकार हिरण्यगर्भके ये स्फुलिंगरूप तारे भिन्न नहीं, वे उसीके अंश हैं। अत: वे स्वयं हिरण्यगर्भ हैं , इसी आधार पर उपचारवृत्तिसे सूर्य आदि तारोंको हिरण्यगर्भ कहा जाता है। इस अभेदको श्रुतिने मकड़ीके तन्तुजालके उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है — जिस प्रकार मकड़ी जालेको

ग

बनाती और निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वीमें नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार जीवित मनुष्यके केश और लोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षरतत्त्वसे सब कुछ उत्पन्न होता है।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥[७१]

विश्व अक्षरतत्त्वसे उत्पन्न होता है और अन्तमें उसीमें विलीन हो जाता है, यह एक ऐसा तैजसधातु है, जो अक्षर तत्त्वधर्मी है, उसका विनाश कभी नहीं होता। वह कभी विश्वरूपसे मकड़ीके तन्तुजालकी तरह विस्तृत हो जाता है, कभी वह अपने मूलाधारमें विलीन, यही विश्वकी स्पन्दमान कालयात्राका स्वरूप है। इस क्रियाका महाकालके आसंगमें पुनः पुनः आवर्तन ही सन्दोलनात्मक विश्वचक्रोंकी आवृत्ति है। यह अक्षरतत्त्व बिना क्षरण व विनाशके पुनः पुनः विश्वरूप विस्तारको प्राप्त होता रहता है, जैसे हिरण्यधातु विभिन्न आभूषणोंमें बदलता है। इनका विलयन और गलन हो जाने पर वह पुनः हिरण्यपिण्डमें बदल जाता है। इन विविध आभूषणोंमें आभूषणका भाव तात्त्विक नहीं, आरोपित है। विज्ञानदृष्टिसे आभूषण स्वयं हिरण्य है। उसी प्रकार यह गगनगंगारूपा ब्रह्माण्डीय प्रवाह उस विस्फोटित द्रव्यकी ही तत्त्वस्थिति है। प्रलयमें यह प्रवाह पलटकर हिरण्यगर्भके पावकपिण्डमें बदल जाता है। उसकी अतीतावस्था भी वही है, वर्तमान उसका ही स्फुलिंग भाव है। सृष्टिकी परम तैजसधातुको निघण्टुकारने 'अमृत' कहा है। विज्ञान तैजस द्रव्यकी अमृतसत्ताका अनुमान गणितकी महासंख्याके द्वारा लगानेके लिए प्रयत्नशील है। अभी तकके उपलब्ध साक्ष्योंके आधार पर Proton तेजस्कणिकाकी अर्ध आयु $१०^{३२}$ वर्ष है, जो हमारे विश्वकी आयुसे कई कोटि अरबसे भी बहुत अधिक है।

५. अग्नीषोमात्मक विश्व

आदिअण्डका यह महास्वन विस्फोट सामान्य नहीं, एक क्षणके लक्षांशसे भी न्यूनतम कालमें महाशून्य अग्नि और वायुके संघातरूप तैजसमेघों (Dust

Clouds) से भर गया, सृष्टिके इन प्रथम तैजसमेघोंकी नवीन द्रव्य स्थिति अग्निगर्भित वायु थी, जिसे विज्ञानकी भाषामें गैस व डस्ट क्लाउड कहा जाता है। इनके भीतर शक्तिकी तन्मात्राएँ अणु-परमाणु एवं कणस्वरूपा होती हुई पञ्चमहाभूतोंके रूपमें विकसित हो रही थीं। जहाँ जिस रूपमें शक्तिकी जो प्रमात्रकता (Quantum) है — वही उस तत्त्वकी तत् मात्रा या तन्मात्रा कही जाती है — **तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता।**[७२] तैत्तिरीय श्रुतिके अनुसार साम या सोम तत्त्वका सनातन स्वरूप ही तेजस् है — **सर्वं तेजः सामरूपं ह शश्वद्।**[७३] यजुर्वेदने ब्रह्माण्डीय सोमको तैजसतत्त्व या ज्योतिके रूपमें स्पष्ट किया है —

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवाना ँ समित् त्व ँ सोम....[७४]

हे सोम ! तुम सभी विश्वरूप देवोंको भलीभाँति प्रकाशित करनेवाली ज्योति हो। यह विश्व इस सोमतत्त्वका ही परिणाम व विकास है — ब्रह्माण्डीयसोम ज्योतिरूप है, जीवनके सन्दर्भसे यही जल कहा जाता है, अग्निके सन्दर्भसे सोम घृत है, पार्थिव सम्बन्धसे दिव्य ओषधि है। वैदिक ऋषियोंकी सोमसंस्थाका स्वरूप विराट् है। सृष्टिके तत्त्वात्मक सम्बन्धसे प्रकाशस्वरूप होते हुए भी, जलकी सभी अवस्थाओंमें सोमतत्त्वका ही प्राधान्य है। ऐतरेयश्रुतिके अनुसार सोम चार लोकोंपर चार अवस्थाओंमें स्थित है — द्युलोक वा परमव्योममें वह — 'अम्भस्' है, अन्तरिक्षमें —'मरीचि', पृथ्वीके ऊपर 'मर' एवं भीतर 'आप' तत्त्वके नामसे प्रसिद्ध है —

अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः।[७५]

यह सोमकी ही परम शीतल अवस्था है, जो आकाशगंगामें इस श्रुति वाक्यके अनुसार सर्वत्र व्याप्त है। बृहदारण्यक श्रुतिके अनुसार यह शीतलता जलीय आर्द्रताका परिणाम है, जो आदि बीज वा रेतस्से उत्पन्न है, इसका ही नाम सोम है — **अथ यत्किञ्चेदमार्द्रं तद्रेतसोऽसृजत तदु सोम....।**[७६] विज्ञानने विगत कुछ वर्ष पूर्व ही आकाशगंगामें सर्वत्र हिमसे भी लक्षाधिक गुणित अधिक शीतल आर्द्रताकी जानकारियाँ प्राप्तकी हैं।[७७] यह परम शीतल आर्द्रता सोम अम्भस्की महाव्याप्तिका ही परिणाम है। अन्तरिक्षमें यह प्रकाशस्वरूप मरीचि

है, जो सोमकी ही द्वितीय ब्रह्माण्डीय अवस्था है। पृथ्वी पर यह 'मर' के नामसे प्रसिद्ध है, इसके भीतर व्याप्त स्थितिका नाम 'आप' है। 'आप' में सोम और अग्नि यह दोनों तत्त्व विद्यमान हैं।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजी: ।।[७८]

अर्थात् — जलके भीतर स्थित सोमने कहा कि जलमें समस्त भेषज विद्यमान है, विश्वकी कल्याणकारी अग्नि भी वहाँ विद्यमान है, इसीलिए जलका नाम **विश्वभेषजी** है। जलमें सोम और अग्नि दोनोंका अस्तित्व ऋग्वेद और अथर्ववेदमें अन्यत्र भी सूचित है। विश्व ही अग्नीषोमात्मक है —

अग्नीषोममयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।[७९]

सोम उत्पादक पदार्थ है, अग्नि दाहक और शोषक है — विश्वपदार्थ दो भागोंमें विभक्त हैं — (१) भोग्य और (२) भोक्ता। अत: विश्वकी सम्पूर्ण द्रव्य-संस्था सोमतत्त्व प्रधान है, जीवसंस्था भोक्तापदार्थ है, उसमें अग्नितत्त्वका प्राधान्य है ; इसीलिए उसे अतिसृष्टि कहा गया है —

एतावद्वा इद ९ सर्वमन्नं चैवान्नादश्च सोम
एवान्नमग्निरन्नाद: सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टि: ।[८०]

अग्नितत्त्व ही प्राणरूपसे व्यक्त होता है, सोम 'रयि' है। अग्निके प्राधान्यसे प्राण अंगिरा है, भृगु सौम्य प्राणस्वरूप रयि है, अत: वह सोमतत्त्वात्मक है ; अर्थात् — प्राण अग्नि है, रयि सोम, इनका ही अपर नाम अंगिरा और भृगु है। अग्नीषोमात्मक प्राण-रयिसे ही विश्वकी संरचना होती है। सोमस्वरूपा रयि ही संकोचसे मूर्छित होती हुई पिण्ड रूपमें प्रस्तुत होती है। सोम संकोच या उसका घनभाव है, जो मूर्ति व पिण्ड बन जाता है। यही विश्वकी द्रव्यावस्था है। यही अग्निगर्भित सोमका स्वरूप है, यहाँ यह अग्नि वैश्वानर स्थानीय है। विज्ञानकी भाषामें कहा जाय तो सोम धनात्मक विद्युत् है, अग्नि ऋणात्मक, इन दोनों प्रकारकी शक्तियोंसे ही इस पारमाणविक विश्वकी संरचना होती है। जिस प्रकार वैदिक परम्परामें समग्र विश्वद्रव्य अग्नि और सोम इन दो पदार्थोंमें विभक्त है,

उसी प्रकार आजका विज्ञान भी विश्वद्रव्यको दो भागोंमें बाँटकर समझनेका प्रयत्न कर रहा है – Leptons और Baryons। शक्तितत्त्वमें अग्नि और सोम दोनों पृथक् तत्त्व नहीं, कार्य अवस्थामें ही यह अन्योन्याश्रित होते हुए विश्वद्रव्यकी संरचनामें प्रवृत्त होते हैं। कभी सोम अग्निमें बदल जाता है, कभी अग्नि सोमभावापन्न होता है, कभी सापेक्ष होकर – परस्परकी अपेक्षासे युक्त होकर विश्वद्रव्यकी संरचनामें प्रवृत्त। प्रलयकालमें सोमतत्त्व ही तमस् (तमोगुण) में बदल जाता है, सृष्टि कालमें वह क्रमशः सत्त्वगुणके अग्निप्रधान प्रकाशमें बदलता है, कालान्तरमें ये अन्योन्याश्रित होते हुए विश्वके प्राण और रयिरूप पदार्थ अवस्थाका निर्माण करते हैं। फलतः प्रकृतिका विद्युच्चुम्बकीय क्षेत्र अस्तित्वमें आ जाता है। सृष्टिकालमें सोमतत्त्वके प्रभावसे विश्वकी मृत द्रव्यराशि पुनः जागृत व प्रज्वलित हो उठती है, पर यह जागरण शोषक नहीं पोषक है। उदाहरणके लिए – मृतप्राय अग्निमें जब घृतकी आहुति दी जाती है, अग्नि पुनः प्रज्वलित हो जाता है। सोमका एक नाम घृतपृष्ठ भी है। तमोद्रव्यके दग्ध कृष्णमण्डलपर रजोगुणके बलाघातसे सत्त्वरूप सोमका उन्मेष होता है, वही उसपर आहुति बनकर छा जाता है। फलतः तमोद्रव्य तन्मात्र रूपसे पुनः जागृत होता है। सूर्यके भीतर और बाहर 'आप' रूप सोम सर्वत्र विद्यमान है, इसीका नाम भृगु है, यही अंगिरा रूपसे वहाँ प्रज्वलित हो उठता है। सौरद्रव्य – भृगु-अंगिरा अग्निका चक्र बन जाता है। नभोगंगाके परमव्योममें सोम चतुर्दिक विद्यमान है – प्रलयका तमोद्रव्य ही वहाँ सोम रूपमें बदल गया है, फिर भी वहाँ तमस् या कृष्णद्रव्य कम नहीं, वह एक और चारके अनुपातमें है। यह कृष्णद्रव्य चारगुना अधिक आज भी है, इसीलिए आकाश कृष्णनील है। विश्व इससे बहिर्भूत होनेवाली सोमधाराका ही परिणाम है – तापमानके भेदसे ही विश्वकी विविधताका मूर्त्तिभेद व्यक्त होता है। उसकी ही एक धारा अग्निरूप होकर पृथ्वी बन जाती है, दूसरी धारा वायु व गैस बनकर अन्तरिक्षमें व्याप्त होती है, उसकी ही तीसरी अवस्था परमव्योममें सूर्य आदि तारोंके रूपमें प्रकट होती है।

विश्वद्रव्य सोमधाराके कम और अधिक तापमानक तारतम्यके अनुसार तीन भागोंमें विभाजित है (१) वायु व गैस, (२) तारे और (३) पृथ्वी (ग्रह

आदि)। विश्वमें रसद्रव्य तीन रूपोंमें उपलब्ध होता है — (१) तरल, (२) विरल और (३) घन। उपर्युक्त सिद्धान्तके सन्दर्भमें श्रुतिका मन्तव्य अत्यन्त स्पष्ट है —

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानाना ९ रसान्प्रावृह-
दग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥[८१]

इस वैज्ञानिक कथनका तात्पर्य है — प्रजापतिने जगत्को तपाया वा जगत्में तापकी सृष्टिकी — उससे रसस्वरूप कारणद्रव्य प्रवाहित हुआ — वही अग्नितत्त्व बनकर पृथ्वी हो गया, वायु वा गैस बनकर अन्तरिक्षमें फैल गया, वही आकाशमें सूर्य आदि तारोंके रूपमें प्रकट हुआ; जिस प्रकार पृथ्वी अग्निगर्भा है, उसी प्रकार आकाश सोमधर्मी इन्द्रतत्त्वसे गर्भित है। वेदमें इन्द्रतत्त्व ही सोमका सबसे बड़ा ग्रहीता वा ग्रहण करनेवाला है।

यथाऽग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।[८२]

यहाँ इन्द्र सोमग्रहीता होनेके कारण वह सोमतत्त्वका ही उपलक्षक है।

हिरण्यगर्भका विस्फोट इस अग्निगर्भित सोमतत्त्वकी ही परम प्रचण्ड उत्तप्त स्थितियोंका परिणाम है। इन कोटि-कोटि सहस्र नभोगङ्गाओंकी संरचना तक अपने अणु-परमाणु-स्कन्ध आदि सन्तुलित परिणाम तक पहुँचनेमें इन पाञ्चभौतिक तैजस मेघोंको ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंका दीर्घ काल लग जाता है। इस कालखण्डमें सृष्टिके ये आदिम तेजोमेघ (Dust Clouds) अपने तापमानको अनेक बार द्रुत और मन्द भावसे बदलते रहते हैं, फलतः यह तापमान वहाँ कितनी ही बार घटता-बढ़ता है। कितने ही संकोच-विकासके अनवरत चक्रोंमें घूमती हुई — सृष्टिकी यह आदिम पाञ्चभौतिक द्रव्यराशि विभिन्न मण्डलाकार वृत्तोंमें सपिण्डित होती, नये गुरुत्वाकर्षणके महाक्षेत्रोंका निर्माण करती हुई, उनकी विद्युच्चुम्बकीय धाराओंमें घूमती — अनेक आकृतियोंमें बदल जाती है। विश्व महाशक्तिके संकोच और विकासके क्रम आवर्तनसे ही उत्पन्न व विनिर्मित होता है।

६. महाकाशका महावैभव

हिरण्यगर्भके विस्फोटके साथही सर्वप्रथम शब्द तन्मात्राका जन्म होता है, — जिसके द्वारा आकाशतत्त्व अस्तित्वमें आता है। आकाशसे पूर्व वहाँ

महाशून्य ही था। आकाश और महाशून्यमें अन्तर है। महाशून्य जब भूततत्त्वसे आच्छादित होकर उसे अवकाश व आधार प्रदान करता है, तब इस अवकाशप्रदा स्थितिके कारण उसकी आकाश संज्ञा हो जाती है, इस प्रक्रियामें कार्यकारण भावापन्न होता हुआ — वह स्वयं एक स्वतन्त्र द्रव्य बन जाता है। परमाणुके भीतर भी आकाश विद्यमान है, जो उसके परिकेन्द्रण (Nucleus) से खण्डाणु (Electron) तक विस्तृत होता हुआ, उन्हें आधार प्रदान करता है। यदि परिकेन्द्रण और खण्डाणुको सटाकर उनके मध्यके आकाशको हटा दिया जाए तो परमाणुका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। ब्रह्माण्डके भीतर जब उसका अन्तर्व्याप्त आकाश समाप्त हो जाता है, वह एक कृष्णकूप व अप्रकाशित ब्रह्माण्ड (Black-Hole) में बदल कर महागुरुत्वधर्मी तमोद्रव्यमें परिणत हो जाता है। आकाश एक विभुद्रव्य है। विज्ञान अभी आकाशतत्त्वकी अवधारणा तक नहीं पहुँच पाया, उसकी दृष्टिमें वह शून्य है। स्पर्शतन्मात्रासे वायुतत्त्व उत्पन्न होता है, जिसके प्रभावसे परमाणुके सभी कण उसके परिकेन्द्रणसे बँधे हुए, उसे स्वरूप प्रदान करते हैं। इस स्पर्शतन्मात्राके प्रभावसे ही वे अणु रूपमें संगठित होते हैं। किसी परमाणुमें एक स्पर्श तन्मात्राका विकास होता है, किसीमें एकसे अधिक, जैसे हाइड्रोजन परमाणुके पास एक तन्मात्रा है, ऑक्सीजनके पास दो। इन परमाणुओंकी इन स्पर्शतन्मात्राओंसे ही जलतत्त्वकी सृष्टि होती है, जिसका स्पर्शतन्मात्रा उपलक्षक (Valency) रासायनिक संकेत H_2O है। सांख्यशास्त्रका विज्ञान, शब्द तन्मात्राके विकाससे विश्वके प्रथम भौतिक विकासको स्वीकार करता है, जो हिरण्यगर्भके उद्भेदसे उत्पन्न होता है। आधुनिक विज्ञानमें इसके लिए Big Bang शब्दका प्रयोग है, या फिर Whimper जो आदिअण्डके विस्फोटसे अपना सम्बन्ध रखता है। कालान्तरमें तन्मात्राओंके परस्पर होनेवाले परिणामसे ही पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। प्रत्येक तत्त्वशक्तिका तन्मात्रक एक महाभूतको जन्म देता हुआ, नवीन तन्मात्राके विकाससे संयुक्त हो जाता है। इससे पुनः नये महाभूतकी सृष्टि होती है। हिरण्यगर्भकी संरचनासे लेकर आकाशगंगाकी प्रथम द्रव्य-स्थिति तककी ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंकी यह कालयात्रा भारतीय तत्त्वशास्त्रके इतिहासमें ब्राह्मकल्पके नामसे प्रसिद्ध है। सृष्टिका द्वितीय विकास पाद्मकल्प है, जिसमें इन नभोगंगाओंकी वर्तुलाकार

पद्माकृतिका निर्माण और विकास होता है, कोटि-कोटि सहस्र ब्रह्माण्ड-चक्रोंकी संरचना सृष्टिके इस पाद्मकल्पमें सम्पन्न होती है।

विश्वकी प्रथम हिरण्यगर्भ अवस्थामें द्रव्य और शक्ति दो नहीं, एक है, जो महत्तत्त्वके नामसे प्रसिद्ध है — **महत्तत्त्वं हिरणमयम्**।[८३] यह विभेद द्रव्यकी पश्चाद्भावी परिणमन अवस्थामें कल्पित होता है। वैदिक विज्ञानकी भाषामें कहा जाए तो हिरण्यगर्भ अग्निगर्भित सोमतत्त्वका परमबिन्दु है। महाशक्तिका एक प्रसिद्ध नाम 'उमा' है, उमा भावसे युक्त तत्त्वका नाम सोम। 'उ' का अर्थ है — 'ताप', 'मा' नहींके अर्थमें प्रयुक्त है, अर्थात् — सोमतत्त्वमें स्वरूपत: तापशक्तिका अभाव है। ठीक इसके विपरीत महाकाली कालरूपा प्रलयकी विधायिका रुद्र शक्ति है। ऐतरेय ब्राह्मणमें रुद्रको अग्नि कहा गया है — **अग्निर्वै रुद्र:**।[८४] शतपथ ब्राह्मणने भी इसी मतको दुहराया है — वहाँ अग्निको रुद्र कहा गया है — **अग्निर्वै रुद्र:**।[८५] इस विषयमें निरुक्तका भी यही मत है — **अग्निरपि रुद्र उच्यते**।[८६] उमा यहाँ विश्वकी संरचनाशक्ति होनेके कारण 'सोमा' वा सोमस्वरूपा है। हिरण्यगर्भमें उमा या सोमशक्तिके संयोगसे रुद्रतत्त्व घोरभावसे हटता हुआ — शान्त शम्भुभावकी ओर उन्मुख होता है। देवताशास्त्रकी दृष्टिसे हिरण्यगर्भ अग्नीषोमीय है — अर्थात् — उमामहेश्वरकी युगनद्ध स्थिति। महास्वन विस्फोटके साथ नृत्यमुद्रामें झूमता सा लय-तालबद्ध द्रव्यमयी स्थितियोंमें विश्वपदार्थ प्रकट होता है — यही शिवके डमरू वा ढक्काका नाद है। महाकाशके नादसमुद्रमें इन अनन्त द्रव्यशक्त्यात्मक तेजस्कणिकाओंका महान् नर्तन ही इन ब्रह्माण्डचक्रोंका असीमित विस्तार है। भौतिक विज्ञानके प्रसिद्ध वेत्ता Capra Fritjof ने इन तेज:कणिकाओंके गतिमय प्रकम्पनकी तुलना गणितके भाषाशास्त्रकी गहराइयोंमें उतरकर नटराज शिवके नृत्यलाघवसे की है।[८७] जहाँ विश्व-द्रव्य नटराजकी नृत्यगतिके अनुसार नृत्य निरत है, वैसे इस तत्त्वचर्चाका गहन विषय शैव और शाक्त आगमोंकी गूढ़तम भाषाका महाविषय है।

हिरण्यगर्भमें सोमतत्त्वकी अभिव्यक्ति सत्त्वगुणमें रजोगुणके बलाघात द्वारा होती है, जो प्रलयकालमें कृष्णद्रव्यमें बदल चुका था। इस नवीन जागरणसे कृष्ण-द्रव्यका एक अंश पुन: सत्त्वगुणके रूपमें शुक्लभावापन्न हो जाता है।

यही कालान्तरमें शक्तिके विभिन्न प्रमात्रकोंमें बदलता हुआ — नवीन तेजस् कणिकाओंको जन्म देता है। प्राय: विश्वके सभी श्वेतवामन तारों (White Dwarfs) की द्रव्य-रासायनिक अवस्था बहुत कुछ आदि अण्डके जैसी ही है। वैसे सभी तारे हाइड्रोजनके विचूर्णित इन्धन Plasma के प्रज्वलित स्वरूप हैं। वहाँ अन्तर, द्रव्यकी घनता और तापमानका है। इस भेदके कारण कोई तारा सूर्यके नामसे पहचाना जाता है, कोइ भाज, पटर, पतंग, सुपर्ण आदि नामोंसे। विज्ञानने कई प्रकारके नभ:पिण्डोंकी सूचना प्रस्तुतकी है, यथा — Quasar, Pulsar, Nova, Super Nova, Red Giants, White Dwarf आदि। भाज — वह हिरण्यनाभ तारा है, जो स्वयं अपने द्रव्य-विस्फोट द्वारा नये-नये महापिण्डोंकी सृष्टि करता है, इसके तापमानकी प्रचण्डता इसके अभिधार्थसे ही अत्यन्त स्पष्ट है। पटरकी ज्योतिर्धारा क्रमश: मन्द और निष्पन्द होती जा रही है, इसकी विस्फोटक शक्ति बहुत कुछ शान्त हो चुकी है। पतंग एक ऐसा तारा है, जिससे समय-समय पर उसकी अंगभूता द्रव्यराशिका महद् विस्फोट होता रहता है —'पतत्-अंग'— पतंग यही उसका अभिधामूलक नाम है। इसकी तुलनामें सुपर्ण और भी महद् विस्फोटक तारा है — इससे बहिर्भूत होनेवाली द्रव्यराशिसे महापिण्डोंका निर्माण होता रहता है। बहुत सम्भव है, हमारे बृहस्पति ग्रहका निर्माण सुपर्णके पर्णपातसे हुआ हो, वैदिक वाङ्मयमें सुपर्णके साथ बृहस्पतिका उल्लेख प्राप्त होता है, हमारा सूर्य स्वयं एक वामन हिरण्यगर्भ है। पर वह सुपर्ण, पतंग,भाज आदि तारोंकी तरह विस्फोटक नहीं, जिनके बहिर्भूत द्रव्यसे महापिण्डोंकी संरचना होती है। नवीन द्रव्योद्भवकी दृष्टिसे वह मृताण्ड है, इसीलिए इसका एक नाम मार्तण्ड है। यह जैव विकासका विधायक तारा है, जो सोमद्रव्यकी प्राणस्वरूपा महासत्तासे युक्त है। इसके द्वारा ही प्राणतत्त्वका ब्रह्माण्डीय विकीर्णन निरन्तर होता रहता है, इससे ही जीवनका विकास और पोषण होता है । ऋग्वेदके अनुसार सभी जन या प्राणी सूर्यसे उत्पन्न होते हैं —

नूनं जना: सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।[८८]

सूर्य ही जीवनकी प्राणमय महासत्ताका उत्स है, वही पार्थिव प्राणोंका प्रसविता है। विज्ञानके अनुसार सौरऊर्जासे ही पार्थिव प्राणका संश्लेषण होता है, वही कालान्तरमें प्रजातीय विकासकी संरचनामें प्रवृत्त होता है —

जीवनं सर्वभूतानाम् ।[८९]
सविता सर्वस्य प्रसविता ।[९०]

सर्वप्रथम ऋग्वेदमें सूर्यके लिए यन्त्र शब्दका प्रयोग किया गया है, द्युलोकके पिण्ड उसके मध्याकर्षणक्षेत्र द्वारा आधार प्राप्त करते हैं —

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा-
दस्कम्भने सविता द्यामबृंहत् ।[९१]

जन शब्द मात्र मनुष्य तक ही सीमित नहीं — यह पद प्राणिमात्रका बोधक है। विज्ञान के Genus, Gene, Genetic-Code आदि बहुचर्चित शब्द — 'जनि प्रादुर्भावे' से व्युत्पन्न जन शब्दके ही भारोपीय (Indo European) भाषिक परिणाम वा विकार हैं। सूर्यसे प्रसूत 'जन' इसके द्वारा ही निरामय होते हैं, इसीलिए इसका एक नाम 'आरोग' है। विशाल वैदिक वाङ्मयमें इन विभिन्न प्रकारके हिरण्यनाभ तारोंकी सूचना अनेक रूपोंमें प्राप्त होती है। कालान्तरमें यही विभेद गुणधर्मके कुछ कम और अधिक साम्यके आधारपर सूर्यके पर्याय अर्थमें प्रसिद्ध हो गया। आज भी व्यवहारमें चाहे विज्ञान हो या लोक — सर्वत्र इस प्रकारके प्रयोग देखे जाते हैं, यथा — 'आकाशगङ्गाके सभी तारे या सभी सूर्य'। शब्दका पर्याय तो एक भाषिक प्रयोग मात्र है। तारोंके इस विभेदकी सूचना आरण्यक श्रुतिके अनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होती है —

आरोगो भाजः पटरः पतंगः । स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवमापतन्ति । ऊर्जं दुहाना अनपस्फुरन्त इति । काश्यपोऽष्टमः ॥[९२]

अर्थात् — आरोग, भाज, पटर, पतंग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान्, विभास और काश्यप ये आठ प्रकारके सूर्य हैं। इनमेंसे अनेक तो इतनी दूर हैं, कि उनका प्रकाश हम तक नहीं पहुँच पाता। ऋग्वेद भी आठ प्रकारके तारोंकी सूचना देता है, जिसके अनुसार सात प्रकारके आदित्य तो ऊपर परमव्योममें हैं — आठवाँ यह मार्तण्ड व मृताण्ड हमारा सूर्य है। ये सभी अदिति पुत्र कहे गए हैं, अदितिका अर्थ है — अखण्डनीया प्रकृति —

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥[९३]

शाक्तआगमोंमें उग्रताराकी अनेकविध सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनके अनुसार एक तारा प्रलयकी कालाग्निमें दहकता हुआ, अन्तमें एक उग्रतारेमें बदल जाता है। वहाँ दश महाविद्याके क्रममें शक्तिका यही निविद है। उग्रतारा एक अप्रकाशित मृत ब्रह्माण्डकी तरह है, जिसका सोमद्रव्य कृष्णद्रव्यमें बदल चुका है। सांख्यकी भाषामें कहा जाय तो यह तमोद्रव्यका एक महागुरुत्वधर्मी पिण्ड है। विज्ञानके अनुसार सूर्य बड़ी मन्दगतिसे श्वेतवामन तारेकी प्रक्रियामें आगे बढ़ रहा है। भारतीय मतसे यह प्रक्रिया वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भ कालमें ही प्रारम्भ हो चुकी थी — वामन अवतारकी घटना इसका ही उपलक्षक है। विज्ञानके अनुसार इसके सम्पूर्ण वामनस्वरूप तक पहुँचनेमें अभी ६ अरब वर्ष शेष हैं। भारतीय मतसे यह — ६,६६,७०,५०,९०१ वर्षोंमें अपनी वामन यात्राके कालको समाप्त कर एक उग्र तारेमें बदल जाएगा। भारतीय वाङ्मयमें प्रकाशकी गति का भी संकेत प्राप्त होता है, जैसा कि कृष्ण यजुर्वेदके तैत्तिरीय ब्राह्मणके दिवोक्म मन्त्रके भाष्यमें आचार्य सायणने सूर्यको नमस्कार करते हुए इसका उल्लेख किया है —

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने।
एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तु ते ॥[९४]

अर्थात् प्रकाश अर्द्ध निमेषमें २२०२ योजन जाता है, अतः गणना करने पर यह लगभग एक सेकेण्डमें १,८७,००० मील होता है।

विज्ञानके अनुसार सूर्यका वर्तमान आकार प्रारम्भिक कालमें प्रस्तुत आकारकी तुलनामें १० से १६ गुणा विशाल था। पुराण परम्पराके अनुसार वह आकार १६ गुणा अधिक था, जिसके फलस्वरूप पृथ्वीकी संरचनात्मक क्रियाएँ अव्यवस्थित थीं। आकार क्षयके सम्बन्धमें वहाँ एक अत्यन्तरोचक विज्ञानकथा प्राप्त होती है, जिसके अनुसार सूर्यका १६ भागमें से १५ भाग आकार क्षय हो गया, इससे उसकी प्रभा और भी कान्त हो गई, उसका मण्डल विमल और सुन्दर हो गया

तेजसः षोडशं भागं मण्डलस्थमधारयत् ॥
शातितैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा ।
अतीवकान्तिमच्चारु भानोरासीत्तदा वपुः ॥[१५]

तारे सोम इन्धनके प्रज्वलित भण्डार हैं। उनका यह महाप्रज्वलन अपने मन्द और तीव्र तारतम्यके अनुसार सूर्य, भाज, पटर, पतंग, स्वर्णर आदि नामोंसे जाना जाता है। कहीं तापशक्तिकी उग्रताका अन्तर है, कहीं पिण्डकी द्रव्यगत घनताका विभेद। कितने ही भेदोंसे भिद्य है — इन छोटे-बड़े हिरण्यगर्भोंका यह गणवैभव। इन सबका महागणपति है — आदिअण्ड हिरण्यगर्भ। ओंकारके ऊर्ध्वनादसे इसका महास्वन विस्फोट होता है, इसके पश्चात् — 'गं' 'गं' की नादध्वनिके साथ मूलाण्डकी सम्पूर्ण द्रव्यराशि एक क्षणके लक्षांशसे भी अल्पभागमें परमव्योममें व्याप्त हो जाती है। भारतीय विज्ञान चिन्तनके अनुसार यह 'बिग-बैंग' मात्र नहीं, वह ओंकारका सुव्यवस्थित नाद विस्फोट है, 'गं' कार उसकी द्रव्यभूता अनुगूँज। तारोंकी स्थिति आकाशमें कहीं भी पृथग् भावसे नहीं — उनका अपना एक क्षेत्रगत स्वरूप है, जिसे गण कहते हैं, जिसमें तारोंका समूह विद्यमान है। तारोंसे लेकर नभोगंगा तक यह गणवैभव सर्वत्र देखा जा सकता है। उनका भ्रमण एवं क्रमविन्यास — समूह व गण अनुवर्ती है। विज्ञानकी भाषामें Cluster-Stars, Globular-Cluster, Clusters of Galaxies — इस गणके अर्थको ही स्पष्ट करते हैं। विश्वमें इन नभोगंगाओंका गणवैभव भी परम आश्चर्यजनक है, इनका वितरण भी असामान्य है। इनमेंसे कुछ विराट् समूहके साथ अनुबन्धित Number of Larger Structures हैं, हमारी नभोगंगा स्थानीय गण (Local-Group) में अधिष्ठित है, जिसमें ६०० Kilo Parsecs दूरवर्ती देवयानी नभोगंगा (Andromeda Galaxy M31) सम्मिलित है। हमारे स्थानीय गणमें भी बीस सदस्य हैं। Coma Cluster of Galaxies में एक सहस्र सदस्यगण हैं। इसके पश्चात् इन नभोगंगाओंका महागणपति तत्त्व प्रारम्भ होता है — Super Cluster, जिसके गणवैभवका विस्तार Mega Parsecs के आयाममें व्याप्त है। सम्पूर्ण विश्वके गणवैभवका विस्तार तीन सहस्र Three Thousand Mega Parsecs है। आदि हिरण्यगर्भ ही इस महागणभूता तारकीय द्रव्यराशिका महागणपति है, श्रुतिमें यही ब्रह्मणस्पति कहा गया है। इस मूलाण्डका विस्फोटजन्य नाद —

'ओम्', है, और विस्फोटित द्रव्यकी गमन क्रियासे उत्पन्न होनेवाला निध्वान 'गं'। अत: उसकी महाशक्तिका मन्त्रराज अपने बाह्य और आभ्यन्तर नादतत्त्वके समवायकी दृष्टिसे — **ॐ गं गणपतये नम:** है। यही गाणपत्य सम्प्रदायका सिद्ध-साधन तत्त्व है। गणपति शब्दकी व्युत्पत्ति इस सम्प्रदायमें दो प्रकारसे प्राप्त होती है, यथा — **महत्तत्त्वादि तत्त्वगणानां पति: गणपति:** एवं द्वितीय है — **गणशब्द: समूहस्य वाचक: परिकीर्तित:**। प्रथम व्युत्पत्तिका सम्बन्ध आदिअण्डके विस्फोटसे है, जिससे महत्तत्त्वादि प्रकट होते हैं, द्वितीयका सम्बन्ध विश्वके महाविस्तृत गणवैभवसे, सृष्टिके मूल सन्दर्भके साथ ये दोनों उपपत्तियाँ ही यहाँ संगत हैं। गगनगंगाकी सर्पिल वा वलयाकृत भुजाओंके मध्य 'गं' कारका महानाद अपने विभिन्न बलाघातों (Frequencies) के साथ निरन्तर गूँजता रहता है, और इसकी अनुगूँज Radio Astronomy के वैज्ञानिक उपकरणोंके पटलपर सर्वदा उपलब्ध है।

विज्ञान आज आकाशगंगाके बाह्य एवं आभ्यन्तर स्वरूपको अनेक प्रकारके प्रतिमान वा मॉडल्सके माध्यमसे प्रस्तुत करनेका प्रयत्न कर रहा है। इनमें थाल (Disc), सिगरेट, सर्पिल (Spiral), आदि अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रारम्भके दो प्रतिमानोंका सम्बन्ध नभोगंगाकी बाह्य आकृतिसे है, सर्पिल (Spiral) उसके आभ्यन्तर संरचनात्मक स्वरूपको स्पष्ट करता है। भारतीय विज्ञान परम्परामें भी हमें अनेक उल्लेखनीय प्रतिमान प्राप्त होते हैं — यथा — कमल या पद्म, कश्यप, भुजंग, मृदंग आदि, जो आधुनिक विज्ञानके सन्दर्भमें परम विचारणीय हैं। आकाशगंगाका पद्माकृत प्रतिमान सर्व प्रसिद्ध है — जिसके मध्यभागमें ब्रह्माकी आकृति इसके स्वरूप नियामक तत्त्व प्रतिनिधिके रूपमें कल्पित हैं। आकाशगंगाका यह पद्माकृत प्रतिमान उसके बाह्य एवं आभ्यन्तर आकृति प्रधान संरचनात्मक स्वरूपको स्पष्ट करता है। पद्मकी वृत्ताकार स्थिति जहाँ उसके वर्तुलाकार स्वरूपको स्पष्ट करती है — वहीं एकके पश्चात् अनेक गुम्फित पटल या पत्रक आकाशगंगामें निविष्ट ब्रह्माण्ड-चक्रोंके समूहके अर्थगत प्रतिमानको स्पष्ट करते हैं। विज्ञानमें दूसरा चर्चित मॉडल सिगरेटकी आकृतिसे मिलता जुलता है। पर यह कोई श्रेष्ठ प्रतिमान नहीं है — यह बाह्य आकृतिके अंशांशका ही प्रतिनिधित्व कर पाता है — इसमें उसकी लम्बाईका निर्देश तो है, परन्तु दोनों छोरोंके दिशाबिन्दु नुकीले नहीं।
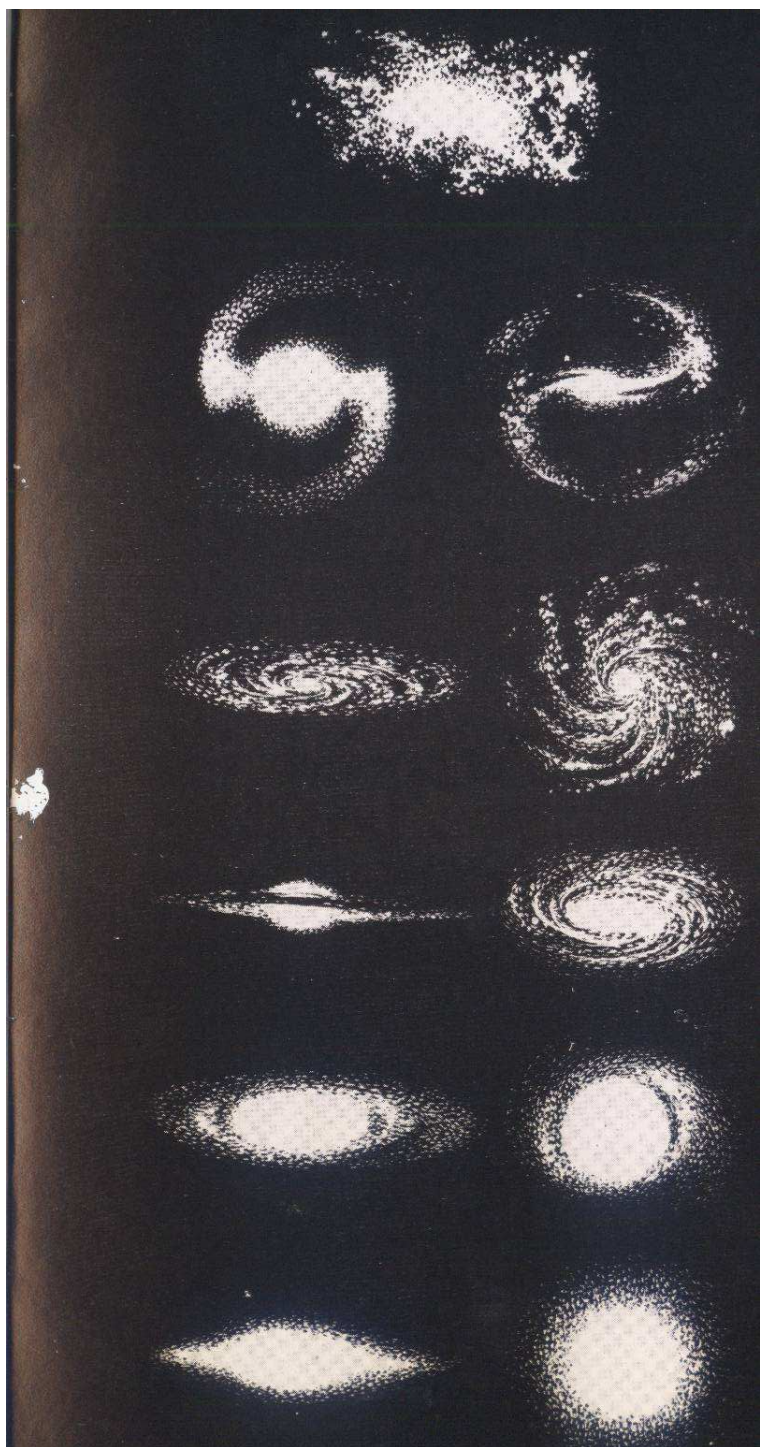
गैलेक्सीके मध्यभागका उन्नतोदर उभार Bulge कहीं भी स्पष्ट नहीं। इसकी तुलनामें मृदंगाङ्कित आकाशगंगाका प्रतिमान यथार्थके अति सन्निकट है, जिसमें अन्तिम दोनों छोरोंके दिग्बिन्दु नुकीले होनेके स्थानपर आकाशगंगाके उन्नतोदर स्वरूपके क्रमशः क्षीण होते हुए अन्तिम बिन्दुपर अपनी वर्तुल-धर्मिताके साथ प्रस्तुत हैं। इस मॉडलकी चर्चा जैनपुराणोंमें प्राप्त होती है।

आकाशगंगाका कश्यपाकृत (Tortoise) स्वरूप उसके बाह्य एवं आभ्यन्तर गठनात्मक स्थितिको अन्तस्तारकीय ब्रह्माण्डचक्रोंके साथ भली-भाँति स्पष्ट कर देता है। अभीतकके विज्ञानमें चर्चित बाह्य एवं आभ्यन्तर आकृति निविष्ट मॉडल्समें कोई भी प्रतिमान कश्यपके समकक्ष नहीं है। कश्यपाकृत प्रति-मानमें जहाँ नभोगंगाके मध्यभागका उभार अति स्पष्ट है, वहीं दोनों ओरके शिरोबिन्दुओंका क्रमशः क्षीण होता हुआ वर्तुलाकार स्वरूप भी निर्देशित है। कश्यपाकृतिके पृष्ठ भागका कटाफटा स्वरूप आकाशगंगाके मध्यवर्ती तारकांकित क्षेत्रोंका प्रतिनिधित्व करता है। आकाशगंगारूपी कश्यपके आभ्यन्तरीण महातारकित क्षेत्रका विभाजन वहाँ तीन वर्गोंमें वर्गीकृत हुआ है — (१) अदिति, (२) दिति, (३) दनु। पुराण वाङ्मयमें इन्हें कश्यपकी पत्नियाँ कहा गया है — क्योंकि ये इसके आभ्यन्तर स्वरूपमें अंगांगीभावसे समाहित हैं। इनमें आकाशगंगा के तारोंका अखण्डित भावसे परम विस्तृत क्षेत्र अदिति कहा गया है, वहीं खण्डित रूपमें व्याप्त तारकीय राशि (Cluster of Stars) दिति है, इससे भी अति खण्डित तारकीय क्षेत्र 'दनु'। हमारा ब्रह्माण्डचक्र अदिति क्षेत्रवर्ती है। वहाँकी द्रव्यराशिसे इस विशाल तारकीयक्षेत्रकी संरचना, निर्माण एवं उनके क्षेत्रगत संघीय ढाँचेका निर्माण हुआ है। इसीलिए प्रतिनिधि रूपमें अदितिको आदित्यकी जननी कहा गया है, इसी आधारपर सूर्यका एक नाम आदित्य है। 'दो-अवखण्डने' धातुसे व्युत्पन्न अदिति पदका अर्थ है — अखण्डित प्रकृति, अतः नभोगंगाओंका परस्पर प्रतिघात घटित होने पर भी वहाँ विद्यमान अन्तस्तारकित राशि, विनष्ट नहीं होती। हमारे सौर ब्रह्माण्डपर इसका इतना विशाल प्रभाव है कि सभी कुछ अदितिमय हो गया है, जिसका स्वरूप ऋग्वेदके इस मन्त्रमें भलीभाँति स्पष्ट हुआ है — 'आकाश-अन्तरिक्ष यह सभी कुछ अदिति है। वही जन्म देनेवाली माता-पिता एवं वही पुत्र है। यह प्रकाश स्वरूप देव, पञ्चजन सभी अदितिरूप हैं, संसारमें जो कुछ उत्पन्न हुआ और होगा, वे सभी अदिति हैं' —

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्
अदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्च जना-
अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।।[१६]

हमारे पार्थिव प्राणमण्डलपर सर्वाधिक प्रभाव अदितिके महाक्षेत्रका है — इससे प्रभावित प्राणतत्त्वका स्वरूप दैवप्राण कहा गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि दिति एवं दनु क्षेत्रोंका प्रभाव हमतक नहीं पहुँच पाता है, वे भी हमारी आकाश-गंगाके अन्तस्तारकीय क्षेत्र हैं। आदित्य आकाशगंगाके केन्द्रकी परिक्रमा करते समय उनके प्रभाव क्षेत्रसे भी गमन करता है — दैत्यप्राण व असुरप्राण और दानव-प्राणके प्रभावसे संयुक्त होता है। इन्हें विकृत प्राण कहा गया है — यह दिति एवं दनु तारकीयक्षेत्रोंका ही प्रभाव है। जैवविकासके पार्थिव सन्दर्भमें इस प्रभावको दानवासुर या डायनासोरकी प्राणधाराके गतिशील स्वरूपमें हम भलीभाँति समझ सकते हैं जो युगानुवर्ती है। पुराणोंमें कारणरूपसे दितिको दैत्य एवं दनुको दानवीय विकासके सन्दर्भमें देखा गया है। आज विज्ञानमें सम्प्रति आकाशगंगाके सर्पिल मॉडलकी चर्चा उसके आभ्यन्तर स्वरूपके सन्दर्भमें सर्वाधिक है। भारतीय तत्त्वचिन्तनमें नभोगंगाका भुजंगभाव या सर्पिल आकृति अति प्रसिद्ध है। आकाश-रूपी क्षीरसागरकी सर्पिल शय्यापर सोई हुई आकाशगंगा महाविष्णुतत्त्वका प्रतिमान है, जिसका स्वरूप इसी परिच्छेदमें आगे भलीभाँति स्पष्ट किया गया है।

यह सम्पूर्ण विश्व एक ही अखण्ड विज्ञानघन सत्ताका विकास है, चाहे वह ब्राह्मकल्प हो या पाद्मकल्प और वाराहकल्प। भारतीय वाङ्मयने इस विज्ञानात्मक ब्रह्माण्डीय विकासको कथारूपकके माध्यमसे बड़े ही सहज भावसे स्पष्ट किया है। यह अन्तस्तारकित व्योमपथ ही क्षीरसमुद्र है, इसका मध्याकर्षण-क्षेत्र ही उसकी संकर्षणात्मक शेषशय्या है, यह विश्वरूपसे व्यापक व्यपनशील महासत्ता **'विष्लृ व्याप्तौ'** धातुसे निष्पन्न महाविष्णु है, जो दिङ्निर्देशकी दृष्टिसे आकाशगंगाका केन्द्रभाग भी कहा जाता है। सृष्टिका आदिकारण यह श्वेत महाविष्णु है, यहाँ 'नाल' का रूपक साइफन-ट्यूबकी तरह है, जिसके माध्यमसे ब्रह्माण्डीय-द्रव्यका निक्षेप व्योमपथपर होता है। विज्ञान आज 'ह्वाइट होल' के साथ साइफन

सिस्टमकी कल्पना कर रहा है, जिससे विश्व-द्रव्यका निक्षेप हुआ है। इस नालपर कमल, यहाँ ब्रह्माण्डीय-द्रव्यकी प्रथम विकास अवस्थाका संकेत है। कमलपर विराजमान ब्रह्मा — सृष्टिसे लेकर उसके पौरुषेय विकास तकका सम्पूर्ण प्रतिनिधि है, जो इस बहिर्भूत ब्रह्माण्डीय द्रव्यकी चरम विकसित अवस्थाके स्वरूपको स्पष्ट करता है। इसके चार मुख पौरुषेय प्रज्ञाके चतुर्मुखी व सर्वतोमुखी विकासके सूचक हैं। प्रतीकोंसे युक्त इसकी चारों भुजाएँ — अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, इन चार अर्थोंको स्पष्ट करती हैं, ये भारतीय वाङ्मयमें पुरुषार्थ या पुरुषके अर्थरूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। पुरुषार्थका अर्थ है — पुरुषकी सक्रियताका कर्मक्षमताके सन्दर्भमें व्यापक अर्थबोध, जो उपर्युक्त चार भागोंमें विभक्त ब्रह्माके चारों हाथों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

क्षीरसागरपर विश्वद्रव्य वाचक महाविष्णु अकेले नहीं, विश्व-द्रव्यको परिणामोन्मुख करने वाली श्रीस्वरूपा महाशक्ति वहाँ विद्यमान है। देवर्षि नारद वीणा सहित वहाँ सम्मुख हैं। 'नार' का अर्थ जल, 'द' का अर्थ है देनेवाला। जगत् और जीवन दोनों का आधार जल है, इसीलिये यहाँ देवर्षि नारद इस विज्ञानकथामें प्रस्तुत हैं। विश्वका निर्माता और संचालकतत्त्व नाद है, सारी सृष्टि नादमुखर है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संगीतसे आपूरित। अत: देवर्षिके हाथोंमें वीणा अपने प्रतीकभूत विज्ञानार्थको स्पष्ट करती है। इस अन्तस्तारकित (Interstellar) आकाशरूपी क्षीरसागरमें मध्याकर्षणक्षेत्र स्वरूपा शेषशय्या पर सोया हुआ महा-विष्णु विशिष्ट प्रतीकोंसे युक्त है, जिसमें एक तो नाभिसे बहिर्भूत होता हुआ द्रव्यस्थानीय कमलनाल है, जिसपर पूर्णपुरुष ब्रह्मा हैं, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। विष्णु स्वयं अपने चार हाथोंमें चक्र-गदा-पद्म और शंखसे युक्त हैं। विष्णुका सुदर्शन-चक्र इन ब्रह्माण्डीय द्रव्योंकी सर्वदा विद्यमान चक्रगति है, वही विश्वद्रव्यको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय विकासमें बदलती है, यही विष्णुके हाथोंमे घूमते हुए सुदर्शन-चक्रका निदानभूत अर्थ है। गदा सृष्टिके विकासमें उत्पन्न होनेवाले अवरोधके अपसारणका प्रतीक है, कमल ब्रह्माण्डीय संरचनाका प्रतीक। नभो-गंगाके विस्तारको वैज्ञानिक एक मुख्य प्रोजेक्शनसे थालकी तरह देखते हैं, ऋषियोंने कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सर्वतोमुख-व्याप्तिको लक्ष्यमें रख कर एक कमलकी तरह देखा है। शंख जैवसृष्टि का प्रतीक है। पृथ्वीके प्रारम्भिक जैवविकासके

इतिहासमें शंख प्रतिनिधि रूप है। विष्णुके उदरसे सम्भूत होने के कारण — उपादान कारणकी दृष्टिसे सृष्टिके प्रत्येक कणको विष्णु कहा गया है। पदार्थके मौलिक स्वरूपकी दृष्टिसे ही इस '**सर्वम्**' को '**सर्वं विष्णुमयं जगत्**' कहा जाता है। यह विश्व महाविष्णु तत्त्वकी स्वरूप-समष्टि है। विष्णु शब्दका व्याकरण वा विज्ञानलभ्य अर्थ है — एक ही अद्वितीय व्यापनशील तत्त्व। आकाशगंगामें फैले हुए अनेक प्रकारके छोटे-बड़े तारे स्वयं हिरण्यगर्भ विष्णु हैं, जो सृष्टिकी संरचनामें विस्फोटक्रमसे प्रवृत्त होते हैं। ये सभी आदि हिरण्यगर्भ विष्णुसे बहिर्भूत होते हुए — तारोंके रूपमें प्रोद्भासित हो रहे हैं। हमारा सूर्य भी एक मध्यम परिणामका हिरण्यगर्भ विष्णु है। संरचनात्मक कालभेदके अनुसार ही इसके मण्डलकी द्रव्यमय स्थितियाँ बदलती रहती हैं, उसीके अनुसार इनका वर्णभेद व रंगभेद होता है। नभोभौतिक विज्ञान (Astrophysics) के आचार्य अनन्त दूरियोंपर विस्तीर्ण इन हिरण्यगर्भोंके वर्ण-भेद द्वारा इनके द्रव्यमय क्रियात्मक स्वरूपका निर्धारण करते हैं। भारतीय पुराण परम्पराके अनुसार विष्णु श्वेतवर्ण विशिष्ट हैं, तत्त्वत: श्वेत होते हुए भी वे ही कालद्रव्यके फलस्वरूप उपाधिभेदसे कभी रक्त और कभी कृष्णवर्ण प्रतीत होते हैं। इस वर्ण परिवर्तनके अनुसार उस एक ही तत्त्वके तीन नाम हैं —

(१) श्वेत वर्ण — विष्णु।
(२) रक्त वर्ण — ब्रह्मा।
(३) कृष्ण वर्ण — शिव वा रुद्र।

भागवतके अनुसार यही उस एक तत्त्वकी वर्णव्यवस्था वा रंगभेद स्थिति है —

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया
बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मन:।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥[१७]

यह श्वेतवर्ण विष्णु ही विज्ञान दृष्टिसे देखा जाए तो White Hole

का परम भास्वर स्वरूप है, जिससे हिरण्यगर्भकी सृष्टि होती है। कृष्णवर्ण रुद्र ही Black Hole का पर्याय है — जो अपने भीतर सब कुछ निगल जाता है। यही Black Hole कालान्तरमें श्वेत-विष्णु या White Hole के रूपमें पुन: प्रस्तुत होता है। श्रुतिमें यह विज्ञान बड़े स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है — यह रुद्र ही सभी शक्ति स्वरूप देवोंको उत्पन्न करता है — यही उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भका प्रथम द्रष्टा है —

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षि: ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।[९८]

रुद्रको विश्वके आधारतत्त्वके रूपमें ग्रहण करते हुए, श्रुति उसके क्रियात्मक स्वरूपका उल्लेख इस प्रकार करती है — वह रुद्र अपनी नियामक शक्ति द्वारा सभी लोकोंका नियमन करता हुआ, अन्यका आश्रय नहीं लेता, वह संहाररूप वा संकोचरूप होकर सभी जीवोंके भीतर संस्थित है — वही प्रलयकालमें इन सबको अपने भीतर समेट लेता है। यहाँ मंत्रमें रुद्रकी क्रियात्मक अवस्थाको स्पष्ट करनेके लिये 'संचुकोच' क्रिया विशेषतया ध्यान देने योग्य है। 'संचुकोच' शब्दका अर्थ है — अपने भीतर संकुचित कर लिया, जो Black Hole की प्रमुख क्रियात्मक अवस्था है —

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभि: ।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा: ।।[९९]

अन्तिम पंक्तिका संकेत White Hole के सृजन अर्थमें है। पिछले मन्त्रमें इसे शब्दत: स्पष्ट कर दिया गया है —

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।

अर्थात् — प्रलयके पूर्व रुद्रने ही हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया था। यह

देखा जाय तो रुद्रकी घोर मूर्ति है, श्रुतिमें इसकी ही अघोर मूर्तिका नाम विष्णु है। इसे यों भी कहा जा सकता है — विष्णु ही अवर्ण (वर्णरहित) या कृष्णमूर्ति रुद्र है। कृष्णवर्ण दृष्टिका अविषय होने के कारण अवर्ण, कृष्ण या ब्लैक है, यही अर्थ यहाँ इस उपनिषद्में स्पष्ट हुआ है। रुद्र अवर्ण या कृष्ण-वर्ण होते हुए भी —'निहित अर्थ' वाला है — अर्थात् प्रयोजन युक्त है। इसीलिये सृष्टिके प्रारम्भ कालमें — अनेक प्रकारकी शक्तियोंके सर्जनात्मक समन्वयके द्वारा अनेक रूप और रंग धारण कर लेता है। तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो वह ब्रह्मा-विष्णु आदि विभिन्न भेदोंसे भेद्य नहीं। अन्तमें वह रुद्र ही इस विश्वको अपने भीतर विलीन कर लेता है — यहाँ 'व्येति' पद — वि+एति है, जिसका अर्थ है विलीन हो जाना या विशेष रूपसे लीन होना। निम्नमन्त्रका स्पष्ट एवं संक्षिप्त अर्थ है — जो रंग, रूप आदिसे रहित होकर भी, छिपे हुए प्रयोजनसे युक्त होनेके कारण, विविध शक्तियोंके सम्बन्धसे, विश्वके प्रारम्भमें अनेक रूप और रंग धारण कर लेता है, एवं अन्तमें यह सम्पूर्ण उसमें विलीन भी हो जाता है, वह परमदेव एक है, वह हमें शुभ बुद्धिसे युक्त करे।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥[१००]

इससे आगेके तीन मन्त्रोंमें एक ही तत्त्वके अनेक प्रतिनिधि रूपोंके नाम गिनाये गए हैं। यह रुद्र ही सृष्टि कालमें अग्नि और आदित्य बन जाता है, यही वायु, चन्द्रमा, जल और वीर्य हो जाता है, यही प्रजापति है, इसे ही ब्रह्म कहा गया है। यह विश्व एक ही अद्वितीय संकोचधर्मी रुद्र तत्त्वका विस्तार है। यहाँ तक कि यह एक तत्त्व ही अपनी सनातन कालयात्रामें स्त्री, पुरुष, कुमार-कुमारी भी बन जाता है। यही नीले, हरे और लाल रंगवाले पतंग व तारेके रूपमें प्रकट होता है, यही बादल, ऋतु और समुद्र बन जाता है — यही इस अनादि प्रकृतिका जनक है। इतिहास-पुरुष और काल-पुरुषका तात्त्विक समन्वय इस अनादि तत्त्वमें ही विद्यमान है।

यह अनादि तत्त्व वैदिक दर्शनकी चिन्तन-परम्परामें तात्त्विक एवं व्यावहारिक दोनों धरातलों पर सर्वत्र तीन रूपोंमें विद्यमान है —

(१)	कारणातीत महासत्ता	—	सत्	चित्	आनन्द
(२)	विश्वरूप महासत्ता	—	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र (शिव)
(३)	विश्वकारणरूप महासत्ता	—	ईश्वर	जीवात्मा	प्रकृति
(४)	ईशनात्मक महासत्ता	—	ईश्वर	हिरण्यगर्भ	विराट्
(५)	प्रकृति	—	सत्त्व	रजस्	तमस्
(६)	पुरुष व जीवात्मा	—	प्राज्ञ	तैजस्	विश्व
(७)	जीवात्मा-चेतस्तत्त्व	—	मन	बुद्धि	अहंकार
(८)	जीवात्मा — बद्ध-केन्द्र	—	शरीर	इन्द्रिय	विषय

तत्त्वदृष्टिसे समग्र विश्व एक ही मूलतत्त्वका परिणामसापेक्ष महाविस्तार है, यह विभाजन अन्योन्याश्रित एवं व्यावहारिक है। इसे भलीभाँति समझे बिना विश्वकी रहस्यमय परतों तक पहुँच पाना सम्भव नहीं।

आज विज्ञानकी साम्प्रतिक स्थिति अति विषम है, वह मूलकारणके पास तक पहुँच कर भटक गया, फलत: वहाँ सभी कुछ संशय, रहस्य और केयॉस (Chaos) में बदल जाता है। मूल प्रश्न अपनी अन्तिम सीमापर पहुँचकर भी अनुत्तरित ही रह गया है। Einstein देशकाल, कारण, घटना सभीको एक मायामय लोकमें कल्पितकर छोड़ देते हैं। नभोगंगाओंका प्रकाशकी गतिसे प्रधावित होकर अन्तमें सहसा विलोप — इस विश्वको और भी रहस्यमय बना देता है। उसी प्रकार Heisenberg का सम्भावनामूलक अनिश्चयवाद विश्वके महद् अस्तित्वको संरचनाके सन्दर्भमें कहीं भी स्पष्ट नहीं कर पाता, वह हमें अनिश्चय और असम्भावनाके दण्डकारण्यमें अंधेकी तरह भटकनेके लिए विवश कर देता है। उसी प्रकार विश्वका आभ्यन्तर स्वरूप Schrodinger's Cat की तरह है, जिससे किसी निश्चयपर यथार्थरूपसे नहीं पहुँच पाते। विकासवादके महान् वेत्ता इस विकासको ही अर्थहीन और उद्देश्यहीन सिद्ध करनेमें आज सर्वतोभावेन जुट गये हैं, जबकि निरुद्देश्य तो एक क्रिया भी नहीं होती; फिर सूर्य सदृश

अनन्तकोटि महापिण्डोंका अस्तित्व एवं लक्ष-लक्षाधिक प्राणिज प्रजातियोंका विपुल विकास और विस्तार — यह सब निरुद्देश्य किस प्रकार सम्भव है ? विज्ञानके पास आज इसका कोई संगत व समुचित उत्तर नहीं है।

७. विश्व — लीलापुरुषका महारास

यह विश्व आनन्दघन महातत्त्वकी एक आनन्द यात्रा है। कहाँ नहीं है यह आनन्द—नभोगंगाओंका नृत्य, महानक्षत्रोंकी पथ परिक्रमा, पृथ्वीका पर्वतक प्रसव, हिममण्डित चूड़ालोंका अनन्त सौन्दर्य, समुद्रका अनवरत उत्तालनृत्य, फूलोंका मुक्तहास, हरितपंख रक्तनेत्र शुकपक्षी, कला, काव्य, संगीत, प्रसव, प्रजनन, समाधि लगता है — आनन्दघन महासत्ता '**(एकोऽहं) बहु स्यां प्रजायेय**'[१०१] का आनन्द लाभ करनेके लिए प्रसवधर्मिणी होती है। सूर्य, पृथ्वी, नक्षत्र सब उसी सनातन महासत्ताके चिद्-बिन्दुविलास हैं। पृथ्वी जिस '**एकोऽहं बहु स्याम्**' के आनन्दरूप सर्वज्ञ चित्तधर्मकी सर्वज्ञ सत्ताको लेकर हिरण्यगर्भसे बहिर्भूत होती है — वही उसका आनन्दमय विकासवाद है, वही उसकी इतिहास यात्रा है, जो नगाधिराजके सौन्दर्यसे अलंकृत है, सप्तसमुद्रोंकी मणिमेखलासे अनुगुञ्जित है, नदियोंसे अभिसिञ्चित एवं वनराजिके अनन्त सौन्दर्यसे अभिरञ्जित है। इसकी संस्कृतियोंका प्रांगण स्थापत्यकी भव्यतासे विभूषित है, संगीतकी महतीवीणासे अनुरणित, कवितासे सम्पूरित, दर्शनसे दुःखमुक्त और विज्ञानसे प्रगतिशील है।

विश्वकी यह स्वरसंगीतात्मक आनन्दलहरी सर्वव्यापक है। वर्तमान पार्थिव वंशीका सप्तम स्वरनिपीडन — 'ऋ' — इसकी महाव्योम यात्राका नादजन्य दबाव है, जो सूर्य द्वारा आकाशगंगाके केन्द्रकी महती परिक्रमाके फलस्वरूप समुद्भूत होता है। वैज्ञानिकोंको सन् १९५१ में पता चला कि आकाशगंगाकी सर्पिल आकृतिका प्रमुख कारण वहाँ व्याप्त हाइड्रोजनका संगीत है।[१०२] हाइड्रोजनके परमाणुओंसे समुत्थित होनेवाला यह एक ऐसा संगीत है, जो परमव्योममें बिखरी हुई द्रव्यराशिको एक ऐसी घनता प्रदान करता है, जिससे नभोगंगाका आभ्यन्तर स्वरूप भुजंगाकार वा सर्पिल हो उठता है। नभोगंगाके इस भुजंगभाव (Spirality) पर स्थित तारे आकाशमें ऐसे शोभायमान होते हैं, मानों भगवान् शेषनागके अगणित मस्तकोंपर अगणित मणिदीप प्रज्वलित हो

उठे हों। लगता है, जैसे कोई अनन्त फणोंवाला महानाग अपने फणोपर अनन्त लोकोंको धारणकर रहा है। सर्पिल भुजाओंके मध्य झाँकता हुआ नीला आकाश शेषशय्यापर सोये हुए महाविष्णुकी झाँकी प्रस्तुत कर देता है। यह सर्पिल कुण्डलाकार महाशक्ति एक होते हुए भी प्रत्येक ब्रह्माण्डके स्थिति भेदके अनुसार पृथक्-पृथक् भावसे फणावेष्टित प्रतीत होती है। भगवान् कृष्णके ब्रह्माण्डव्यापी इस महारासकी मुरलीका यही परम रहस्यमय संगीत है।

व्यापक संगीतके इस प्रभावसे अनन्त ब्रह्माण्ड मालिकाएँ चक्राकार नर्तन करती हुई — एकके पश्चात् एक मण्डलाकार परिकरोंमें समूहित कालके छन्द पर झूमती रहती हैं। प्रतिक्षण यह नृत्य छोटी बड़ी रासमण्डलियोंमें बँधा चलता रहता है। हिरण्यगर्भसे लेकर सम्पूर्ण विश्व सतत स्पन्दित संगीतके आनन्दका महापिण्ड है। आनन्दमय स्पन्दनसे बँधी ये नयी-नयी रासमण्डलियाँ अनन्तके महारासका रोज नया सृजन करती हैं। यही है विश्वचित्तके घनानन्दका महाविस्फोट। इन रासमण्डलियों (नभोगंगाओं) की संख्या सौ अरबसे भी अधिक है, प्रत्येक रासमण्डलीके भीतर मुरलीवादन करनेवाले सौ अरबसे अधिक सूर्य हैं। प्रत्येक रासमण्डली अन्य रासमण्डलीके साथ झूमती हुई इस महारासकी संसृष्टि करती है। प्रत्येक सदस्य अन्य सदस्यके साथ इस नृत्यमें एक-वृत्ताकार मुग्धताके साथ नृत्य करता है। भारतीय दृष्टिसे यह सब आत्मा है, विश्व इसकी सर्वज्ञ चेतनाका बहिर्भूत प्रमाण है, महारास इस आनन्दघन आत्माका परम विस्फोट। आदि नादका यह संगीत इतना सघन है — सौ-सौ अरब सूर्योंके साथ नृत्य करती हुई नभोमन्दाकिनियाँ कालके छन्द पर नर्तित महाहिरण्यगर्भ से निकलती हैं। विज्ञानका कथन है — विस्तारोन्मुख विश्व फैलता जा रहा है। भारतीय मतसे यह **एकोऽहं बहु स्याम्** का महारास — १५ नील, ५५ खरब, २१ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९१ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था — इस रास के अभी — १५ नील, ५५ खरब, १८ अरब, २ करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ९ सौ, ०१ वर्ष शेष हैं। आत्माके चार पाद हैं, तीन पाद कूटस्थ वा अविचल, मात्र एक ही इस महारासके क्रममें उतरता है। यह एक पाद ही **एकोऽहं बहु स्याम्** के महामात्रक — ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षों तक विस्तारोन्मुख होता रहता है। सृष्टिका यह विस्तार कभी संकोच और कभी विकासके चक्रक्रमसे होता रहता है। विश्वकी आदिम

अण्ड अवस्था ही उसका संकोच है, उसका विक्षोभ व विस्फोट ही सृष्टिका विकास। क्षुब्ध होनेवाला और करनेवाला पुरुषोत्तमतत्त्व एक ही है, जो संरचनाक्रममें प्रकृति वा प्रधानके रूपमें व्यक्त होता है। विश्वका आदिअण्ड हिरण्यगर्भ इस आत्मतत्त्वका ही प्रथम उन्मेष है। शाक्तआगमोंकी भाषामें कहा जाए तो आनन्दस्वरूपा महाशक्ति अपने विश्वरूप आरोहके प्रथम प्रयाणमें जहाँ परम प्रकाशमान है, वहीं अवरोह क्रममें या प्रलयकालमें अमृत तत्त्वरूपा है, यह आनन्द स्वरूप महासत्ता ही अमृतस्वरूपा है, जिससे यह विश्व पुन: प्रकाशस्वरूप होकर अभिव्यक्त होता है। समष्टि और व्यष्टि दोनों ही स्तरोंपर यह आनन्दतत्त्वरूपा महाशक्ति शाक्तोंके लिए ध्येय है, निम्न श्लोकका संक्षेपमें यही आशय है –

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्त:पदव्यामनुसञ्चरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ।।[१०३]

पिण्ड हो या ब्रह्माण्ड दोनों एक ही शक्ति-तत्त्वकी संरचना हैं – विश्व स्वयं एक शक्तिचक्र है, इसीलिए आगम शास्त्रोंमें श्रीचक्र वा शक्ति-चक्रके द्वारा इनके यथार्थ स्वरूपकी पहचान प्राप्त की गई है –

पिण्डब्रह्माण्डयोर्ज्ञानं श्रीचक्रस्य विशेषत:।[१०४]

आगम ग्रन्थोंमें तत्त्वपदसे शक्तिका ही ग्रहण किया गया है, ब्रह्माण्ड शक्तितत्त्वसे ही उत्पन्न होता है, उससे ही उसका परिवर्धन वा विस्तार होता है, उसमें ही उसका विलय ; इस सन्दर्भमें आगमकल्पद्रुमका यही अभिमत है –

तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्धते।
तत्त्वे विलीयते देवि तत्त्वाद्ब्रह्माण्डनिर्णय: ।।[१०५]

इस शक्तितत्त्वके अनुसार ही उस ब्रह्माण्डके स्वरूपका निर्णय भी होता है। शक्तिकी 'पर' वा अधिब्रह्माण्डीय अवस्थामें स्वरूप भेदका प्रश्न नहीं, वह विकल्प भेदसे सर्वथा मुक्त है –

विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते।[१०६]

विश्वब्रह्माण्डोंकी सम्पूर्ण द्रव्यराशि दो भागोंमें विभक्त है — (१) भृगु और (२) अंगिरा। भृगु सौम्य इंधन है, अंगिरा इसका ही प्रचण्डतम अंगाररूप। प्रलयकी विदग्ध अंगारधर्मा द्रव्यराशि भृगुरूप सोमतत्त्वके संयोगसे पुनः प्रज्वलित हो उठती है। सूर्य हो या तारे, चाहे हिरण्यगर्भ, ये सभी महत् पिण्ड भृगु-अंगिरा तत्त्वके ही प्रज्वलित अग्नि-चक्र व ऋषि-चक्र हैं। ऋषि शब्दका अभिधामूलक अर्थ है — तेज, प्राण और गति, तेज या प्रकाश स्वयं अग्निधर्मी है। त्रिगुणात्मक होते हुए भी अपने प्रारम्भिक कालमें सोमतत्त्वके प्राबल्यसे ये शुक्लवर्णधर्मी सत्त्वगुण प्रधान हैं। अपनी मध्यमावस्थामें रजोगुणके गतिवेगसे अपक्षयकी ओर अग्रसर होते हुए अधिकसे अधिक रक्तवर्ण हो उठते हैं और अन्तमें तमोगुणके वर्द्धनसे मृत्युकी ओर अग्रसर होते हुए कृष्णवर्ण वा ब्लैकबॉडीमें बदल जाते हैं। विज्ञान आज तारोंके वर्ण परिवर्तनके आधार पर उनके आयुष्य और द्रव्यगत स्थितियोंका पता लगानेका प्रयास कर रहा है। शुक्ल, रक्त और कृष्ण वर्ण तक पहुँचते हुए, इनकी मध्यवर्ती अवस्था गुणत्रयके न्यूनाधिक्यके तारतम्यसे — नील, पीत, नीललोहित, पीतलोहित आदि अनेक वर्ण आभाको धारण करती है। विज्ञान इस वर्ण परिवर्तनसे उपलक्षित होनेवाले तारोंके स्वरूप परिवर्तनका स्पष्टार्थ — Hertzsprung Russell-Diagram द्वारा प्रस्तुत करता है। श्वेताश्वतरश्रुतिमें प्रकृतिके इस वैज्ञानिक परिवर्तनका रहस्योद्घाटन निम्न प्रकारसे हुआ है —

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।[१०७]

अर्थात् — यह अजन्मा प्रकृति अपने गुणभेदके अनुसार लोहित — शुक्ल और कृष्ण वर्णवाली है, जिससे उसके सदृश ही प्रजारूप भूतसमुदाय उत्पन्न होता है। जैनदर्शनमें इस विषयको लेश्या विज्ञानके अन्तर्गत विस्तारसे समझाया गया है। लेश्याका अर्थ है — प्रकाश, जो होनेवाले पुद्गल भेदसे अनेक वर्ण पर्यायोंको प्राप्त होता रहता है। उन पर्यायोंके अनुसार ही पिण्ड-पदार्थोंका स्वरूप विनिश्चित होता है। प्रकृतिका तैजसधातु सोमगर्भित अग्नि है, जो अपनी तत्त्वभूता स्थितिके अनुसार प्रधानतया सात वर्णपर्यायोंको प्राप्त करता है —

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वा: ।।[१०८]

वैदिकोंके अनुसार प्रकृतिका गुणात्मक परिवर्तन एक सृष्टि-यज्ञकी तरह है। विराट्पुरुष इस विश्व-यज्ञका होता है, विश्व स्वयं एक यज्ञ-चक्र। इस यज्ञके प्रधान ऋषि भृगु और अंगिरा हैं। इस प्राकृत हवनसे ही ये सात — (१) काली, (२) कराली, (३) मनोजवा, (४) सुलोहिता, (५) सुधूम्रवर्णा , (६) स्फुलिङ्गिनी और (७) विश्वरुची नाम्नी एक ही अग्निकी सात वर्णशिखाएँ उत्पन्न होती हैं। इनमें प्रथम काली प्रलय विधायिका महाज्वाला है, द्वितीय कराली उसका ही उग्रतम उग्रतारा स्वरूप, शेष पाँच ज्वालाएँ सृष्टिके भिन्न-भिन्न विकास स्तरोंकी परिचायिकाएँ हैं। उपर्युक्त मन्त्र हमारे हवनकुण्डकी अग्नि-शिखाओंसे सम्बन्धित है, जो व्यष्टिभावापन्न स्थितियोंको स्पष्ट करता है। विज्ञानमें भी व्यष्टिभूत प्रयोगशालाका प्रयोग समष्टिके अर्थको स्पष्ट कर देता है। उसी प्रकार समष्टिरूप विश्व-यज्ञमें भी — **यथा अण्डे तथा ब्रह्माण्डे** के अनुसार — विश्वरूपा महाज्वालाओंका भी यही स्वरूप है, समष्टिके सन्दर्भसे उनका आयाम भी तदनुरूप विराट् है। वैज्ञानिक Stanley Miller ने छोटेसे पात्रमें कुछ रासायनिक पदार्थोंको जल सहित ग्रहण करते हुए — प्रयोग द्वारा पृथ्वीके आदिम समुद्रमें जीवनके प्रथम उद्भवकी प्रक्रियाके अर्थको स्पष्ट कर दिया था। वैदिकोंका व्यष्टि-यज्ञ भी इसी प्रकार समष्टि यज्ञके विज्ञानको स्पष्ट कर देता है। विज्ञान प्रयोगशालागत वर्णप्रयोगोंके आधारपर ही तारोंके वर्णभेदके अनुसार उनके विकासकी भिन्न स्थितियोंका अध्ययन प्रस्तुत करता है। वैसे भारतीय विज्ञानदृष्टिसे नील, हरित और लोहिताक्ष तीन वर्णके तारे ही प्रधानरूपसे जीवित हैं। यदि इनके साथ तीन तथ्य और जोड़ दिये जाएँ तो वहाँके ब्रह्माण्डीय लोकोंपर जीवनका उत्कृष्ट अस्तित्व सुनिश्चित है — ये तीन अतिरिक्त तथ्य हैं — (१) मेघ, (२) ऋतु और (३) समुद्र। श्रुतिने इन तीन वर्णोंवाले तारोंके साथ, इन तीन तथ्योंको जोड़कर एक जीवनगर्भित पूर्ण ब्रह्माण्डकी सूचना इस प्रकार प्रस्तुत की है।

नील: पतङ्गो हरितो लोहिताक्ष-
स्तडिद्गर्भ ऋतव: समुद्रा: ।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे
यतो जातानि भुवनानि विश्वा ।।[१०९]

अर्थात् – तुम नील, हरे और रक्त नेत्रोंवाले तारे (पतङ्ग) मेघ, ऋतु और समुद्रसे युक्त हो। तुमसे ही सारे भुवन उत्पन्न हुए हैं, तुम ही अनादिरूपसे व्यापक हो। यहाँ **गङ्गायां घोष:** की तरह लक्षणावृत्तिसे – मेघ, ऋतु और समुद्रका सम्बन्ध इनके उपान्त भागवर्त्ती ग्रहपिण्डोंके साथ समझना चाहिए। विश्व महाशक्तिका एक संगठित क्षेत्र है, समुद्र, ऋतु, मेघ, पृथ्वी, सूर्य, तारे एक ही शक्तितत्त्वके विभिन्न प्रकार भेद हैं। महाविश्व महाशक्तिकी महाकाल यात्रा है – कालपुरुष और इतिहासपुरुष इसका ही परम विकसित स्वरूप।

३ — विश्व — महाशक्तिका संगठितक्षेत्र

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६.८)

उसका न कार्य है, न साधनरूप करण, न उसके समान और न उससे बढ़कर ही दिखाई देता है। इसकी परमसत्ता अनेक प्रकारकी स्वभावसिद्ध पराशक्ति ही ज्ञान-बल-क्रियारूप सुनी जाती है।

१. क्षेत्रज्ञशक्तिका संगठितक्षेत्र

विश्वकी पदार्थवाची सत्ताका स्वरूप त्रिविध है — (१) चेतना, (२) शक्ति और (३) द्रव्य। सर्वप्रथम महाचेतना वा परमचेतना महाशक्तिके रूपमें प्रकट होती है, वही कालान्तरमें द्रव्यरूप हो जाती है। फलत: एक ही शक्तिपदार्थके दो भेद हो जाते हैं — (१) चेतना-शक्ति और (२) द्रव्य-शक्ति। महाशक्ति ही इस विश्वकी परमविधायिका वह चैतन्य-शक्ति है, जो संरचनाके लिए परम स्वतन्त्र रूपसे व्यक्त होती है, वहाँ कार्यकारण शृंखलाका कोई महत्त्व नहीं — वह कार्यकारणातीत है। इस सन्दर्भमें शाक्तदर्शनका एक विज्ञानसूत्र है — **चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि-हेतु:।**[११०] विश्वकी कार्यस्वरूपा सिद्धिके लिए ही यह 'चिति' कही जाती है, जो स्वयंमें महाशक्तिकी अपनी परम स्वतन्त्र अभिव्यक्ति है। चेतना शक्ति वा चिति ही इस मूर्त और अमूर्त विश्वकी विधायिका है, अर्थात् वही सम्पूर्ण विश्व

पदार्थोंके रूपमें प्रकट होती है। विज्ञान शक्तिके पदार्थ परिवर्तनको अनेक प्रकारसे पहचाननेका प्रयत्न कर रहा है। अहिर्बुध्न्य संहिताके तीसरे अध्यायमें शक्तिका विवेचन बड़ी स्पष्टताके साथ किया गया है। तात्पर्य संक्षेपमें इस प्रकार है — सभी पदार्थोंकी द्रव्यभूता विभिन्न भावावस्थाओंमें शक्ति अपृथग् भावसे संस्थित है, उसके अस्तित्वका विनिश्चय हम उन पदार्थोंकी कार्यावस्थाको देखकर ही कर सकते हैं। शक्तिकी परमसूक्ष्म मात्राएँ ही तत्तत् पदार्थमूर्तियोंके स्वरूपको निर्धारित, विनिर्मित और नियत करनेके लिए प्रवृत्त होती हैं। समग्र विश्वकी इस 'इदंता' रूप प्रतीतिका मूल कारण यह शक्ति है — जिसका निषेध हम कहीं भी नहीं कर सकते ; जिस प्रकार चन्द्रमाके किरणसमूहसे यह ज्योत्स्ना सर्वत्र गमन करती है, उसी प्रकार जगत्के सभी पदार्थोंकी तत्त्वस्थिति शक्तिके द्वारा ही प्रस्तुत और अनुचालित होती है —

शक्तयस्सर्वभावानामचिन्त्या अपृथक्स्थिताः।
स्वरूपे नैव दृश्यन्ते दृश्यन्ते कार्यतस्तु ताः ॥
सूक्ष्मावस्था हि सा तेषां सर्वभावानुगामिनी।
इदन्तया विधातुं सा न निषेद्धुं च शक्यते ॥
सर्वैरननुयोज्या हि शक्तयो भावगोचराः।
एवं भगवतस्तस्य परस्य ब्रह्मणो मुने ॥
सर्वभावानुगा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीधितेः।
भावाभावानुगा तस्य सर्वकार्यकरी विभोः ॥[१११]

सम्पूर्ण विश्व शक्तिका ही परिणाम विकसित तत्त्वान्तर है। यह इसीसे उत्पन्न होता है और अन्तमें इसीमें विलीन हो जाता है। भारतीय दर्शनमें उसके आधारभूत स्वरूपको 'आत्मा' वा 'परम-आत्मा' कहा गया है। शक्तिकी मध्यवर्त्ती क्रियात्मक अवस्था — 'सर्ग' और 'प्रतिसर्ग' है, अर्थात् — सृष्टि और प्रलय उसका ही विवर्त है। सनातन महासत्ता बार-बार जगत्रूपसे व्यक्त होती रहती है — **अजायमानो बहुधा विजायते।**[११२] 'शक्लृशक्तौ' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर यह पद निष्पन्न होता है। पदार्थमात्रमें कार्योत्पादन उपयोगी अपृथक्-सिद्ध सामर्थ्य या धर्मका नाम शक्ति है। शक्ति ही स्वयं पदार्थका आकार धारण करती है। ब्रह्माण्डकी संरचनासे लेकर जीवचैतन्यके विकासतककी सम्पूर्ण

स्थितियोंको शक्तिकी कार्यावस्थाके भेदसे पाँच भागोंमें बाँटा गया है — (१) तिरोभाव, (२) सृष्टि, (३) स्थिति, (४) संहार और (५) अनुग्रह, इनमें मध्यवर्त्ती तीनका सम्बन्ध पदार्थकी संरचना, अवस्थिति और प्रलयसे है। तिरोभावका अर्थ है — जीवचैतन्यका परमचैतन्यके सम्बन्धसे कर्मजनित अविद्या द्वारा आच्छादन। अनुग्रहका अर्थ है — इस आच्छादनसे निकलकर जीवचैतन्यकी परमचैतन्यमें अवस्थिति। श्रीलक्ष्मीतन्त्रके निम्नश्लोकका यही सारसंक्षेप है —

तिरोभावस्तथा सृष्टिस्स्थितिस्संहृतिरेव च।
अनुग्रह इति प्रोक्तं मदीयं कर्मपञ्चकम्॥[११३]

विश्वके विकासकी प्रत्येक धारा परमशक्तिका ही विकास है। विष्णुपुराणका स्पष्ट कथन है — यह क्षेत्रज्ञशक्ति ही विकासको सम्पूर्णरूपसे आवेष्ठित करती है, वही अन्तमें इससे सम्भूत सभी योनियोंमें गमन करती है, या प्रविष्ट होती है—

यया क्षेत्रज्ञशक्तिस्सा वेष्ठिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान्॥[११४]

विष्णुपुराणमें संरचनाके सन्दर्भसे शक्ति-तत्त्वको तीन भागोंमें बाँटकर स्पष्ट किया गया है — (१) पराशक्ति — यही देशकालातीत विष्णुशक्ति है, (२) अपराशक्ति — इस जगत्‌रूप संगठित क्षेत्रके निर्माणकी दृष्टिसे यही अपराशक्ति या क्षेत्रज्ञशक्ति कही गई है, (३) जीव-संस्थाके कर्म सहकृत समुद्‌भवके कारण इसका तृतीय नाम अविद्या है —

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥[११५]

विश्वकी संरचनाके सन्दर्भमें शक्तिका भेदक्रम यही है —

(१) परा — देशकालातीत विष्णुशक्ति।
(२) अपरा — विश्वकी विकासस्वरूपा क्षेत्रज्ञ-शक्ति।
(३) अविद्या — जीव-संस्थाकी उद्‌भाविका कर्मजनित विपाक-शक्ति।

इस अविद्या नामक कर्म विपाक जनित शक्तिके विपाक द्वारा जीव अनेक प्रकारके

जागतिक तापोंको प्राप्त करता हुआ — भिन्न-भिन्न योनियोंके जैवविकासको प्राप्त होता रहता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे शक्तितत्त्वका समग्र स्वरूप अचिन्त्य है। अस्तित्वकी इन पृथक्-पृथक् भावमूर्तियोंके निर्माणमें एक ही अद्वितीय महाशक्तिका महास्रोत कार्यरत है —

शक्तय: सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचरा:।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तय:।
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता ।।[११६]

अग्नि और उसकी उष्णता दो नहीं एक है। पदार्थ और शक्तिके इस अभेदपर ही शक्ति और शक्तिमान्‌के अभेदका सिद्धान्त आधारित है ; जिस प्रकार सूर्य और उसका प्रकाश भेद-भिन्न भी है और अभेद-अभिन्न भी, उसी तरह दोनोंका स्वरूप भेद और अभेद दोनों है। यहाँ 'प्रकाश' स्वयं शक्ति है और 'सूर्य' शक्तिमान्। जब हम भेददृष्टिसे देखते हैं — तब वह सूर्यका प्रकाश है, अभेद द्वारा मात्र इतना ही कहा जाता है — यह 'प्रकाश' है। विज्ञानके सूक्ष्म क्वाण्टम जगत्‌में कण और तरंग दो हैं, पर अभेददृष्टिसे वह शक्ति-तरंग मात्र हैं। ऋग्वेदके द्वारा शक्तिका अभेद दर्शन इस प्रकार स्पष्ट किया गया है —'मैं शक्ति ही रुद्र, वसु, आदित्यों और विश्वदेवोंके रूपमें प्रकट होती हूँ, उसी प्रकार मैं ही सूर्य, वरुण, इन्द्र और अश्विनीका रूप धारण करती हूँ।'

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्य-
हमादित्यैरुत विश्वदेवै:।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्य-
हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।[११७]

विश्वका समग्र स्थूल और सूक्ष्म घटना प्रवाह, उसका बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूप 'पर' कही जानेवाली सनातन शक्तिका परिणाम है। यदि विकासवादके सिद्धान्तको पदार्थविज्ञानके आधारपर विश्लेषित किया जाए तो यह सनातन शक्ति ही इस विकासके बाह्य और अभ्यन्तर योनिज आकारोंको स्वयं ही धारण करती है। जैवविकासकी समग्र योनिज एवं अयोनिज मूर्तियोंसे लेकर नीहारिकाओंके आयाममें व्याप्त 'हाइड्रोजन' पदसे निर्दिष्ट सोमाग्नि तक उस सनातन महाशक्तिके

ऊर्जित तत्त्वसे भिन्न नहीं है। विज्ञानका यही प्रमेय प्रधान प्रतिपाद्य है, विश्व अपनी प्रथम अवस्थाके पूर्वक्षणमें शक्तिकी महासत्तामें विलीन था। तारोंसे लेकर मानवतकका यह विकास उस अव्यक्त सत्ताका ही व्यक्त विकास है। नीहारिकाओंके समुद्भवसे लेकर प्राणिज गर्भाशय तक शक्तिकी चिति वा चैतन्य-विस्फोट ही सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर गमन करता है। अचेतन द्रव्य-पिण्ड हो या सचेतन जैव-पिण्ड, उसमें अन्तर्निहित ऊर्जाके तन्मात्रक ही उसे अस्तित्व, वृद्धि, सम्पोषण, सम्वर्द्धन और अन्तमें अपक्षय एवं विनाश तक ले आते हैं।

शक्तिकी दो अवस्थाएँ हैं — (१) सुप्त-चैतन्य और (२) जागृत्-चैतन्य। प्रथम शक्तिका संचित स्थिर चैतन्य स्वरूप है, जो कारणात्मक है, दूसरा गतिशील कार्यरूप। विज्ञान इसे ही स्थिरशक्ति (Potential Energy) और गतिशक्ति (Kinetic Energy) कहता है। विश्व शक्तिकी धाराओंका गतिपुंज है। Bohr. Niels Model के अनुसार पृथ्वीके प्रत्येक परमाणुका इलेक्ट्रोन एक सेकेण्डमें अपने केन्द्राणुके न्यूनाधिक डेढ़ लाख चक्कर लगाता है, हाइड्रोजन परमाणुके इलेक्ट्रोनकी यही चक्रगति है। फिर पृथ्वीका अपना भिन्न आणविक प्रकम्पन है। इसकी अहोरात्ररूपा दैनिक गति अलग है। अपनी धुरीपर मँडलानेकी भिन्न गति है। यह एक वर्षमें सूर्यकी सम्पूर्ण परिक्रमा सम्पन्न करती है, जिससे ऋतु परिवर्तन होता है। इसकी छठी गति सूर्यकी पथ परिक्रमासे अन्वित है — सूर्य अपने ग्रह आदि पिण्डपरिवारको लेकर आकाशगंगाके केन्द्रकी महापथीय परिक्रमा भारतीय मतसे ३० करोड़ ६७ लाख २० हजार वर्षोंमें करता है, जिससे मन्वन्तर परिवर्तन होता है। फलत: यह पृथ्वी भी सूर्यकी आकर्षण शक्तिसे बँधी हुई, बड़ी तेजीके साथ नभोगंगाके परिक्रमा पथ पर लुढ़कती रहती है। ये नभोगंगायें भी अपने अन्तर्वर्त्ती नक्षत्रविस्तारके साथ परस्परके आकर्षणसे बँधी एक दूसरेकी पथ परिक्रमा पर अपसर्पण करती रहती हैं। पृथ्वी भी वहाँ अपनी इस आकाशगंगाकी अपसर्पणधर्मा स्थितिसे संयुक्त है, यह इसकी सातवीं गति है। विज्ञानके अब तकके गणितके अनुसार इस विराट् विश्वमें सहस्र अरबसे भी अधिक आकाशगंगायें हैं, प्रत्येकमें कुछ कम और अधिक सौ अरब तारे हैं। तात्पर्य है कि परमाणुके खण्डाणु (Electron) से लेकर इन नभोमंदाकिनियोंके अपरिमित विस्तार तक यह 'इदम्' रूपसे कहा जाने वाला विश्व गतिशक्तिका ही विमर्श है। यह परमविश्व

हिरण्यगर्भकी स्थितिस्थापिका गतिशक्तिका एक महाचैतन्य विस्फोट है, जिसकी महत्-तरंगभंगों पर ये कोटि-कोटि सहस्र नभोगंगायें शक्ति-गुच्छकोंकी तरह झूलती रहती हैं। इसके द्वारा इन सुविशाल द्वीप-विश्वोंकी संसृष्टि होती है। प्रत्येक पिण्ड गतिशक्तिका एक पुंजीभूत संघात है। यह गति ही अस्तित्व है, गति ही जीवन है। जन्मसे मृत्यु पर्यन्त हृदय, रुधिर, परमाणु, पृथ्वी, सूर्य, नभोगंगा सभी कुछ गतिशील है। विश्वका विमर्शरूप आधारतत्त्व 'प्रकाश' स्वयं सर्वाधिक गतिशील है, इसकी गति प्रति सेकेण्ड — २,९९,७९२ किलोमीटर है।

विश्व धनात्मक और ऋणात्मक इन दो विरुद्ध गतियोंका एक संगठित महाक्षेत्र है। सृष्टिके संरचनाकालमें द्रव्य और शक्तिका यह परस्पर विनिमय धारावाहिक रूपसे निरन्तर होता रहता है। फलत: शक्तिकी प्रथम तन्मात्राके साथ ही विश्वकी पदार्थवाची कालयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। परस्पर विरुद्ध गतियोंका एक महाक्षेत्र अस्तित्वमें चला आता है। विरुद्ध गतियोंका यह धारावाहिक विनिमय ही विश्व रूपमें व्यक्त होता है। यह महासत्ता स्वयंसे ही उत्पन्न विरुद्ध गतियोंके कारण स्वयं ही विश्वरूप संरचनाका संगठितक्षेत्र बन जाती है। अत: इस अद्वितीय पदार्थसत्ताके कारण यह महाशून्य एक विद्युत्-चुम्बकीय महाक्षेत्रमें बदलता हुआ — धनात्मक और ऋणात्मक (Positive and Negative) दो विरुद्ध शक्तिधाराओंके संगठितक्षेत्रका निर्माण कर लेता है। महाक्षेत्रमें शक्तिके विरुद्ध विनिपातके द्वारा ही विश्वके सम्पूर्ण स्वरूपकी संरचना होती चलती है। परमाणुसे लेकर सूर्य और नभोगंगाके परम विस्तारतक इस विरुद्ध गतिशक्तिका स्वरूप सर्वत्र विद्यमान है। यही लघु-से-लघुतर और महत्-से-महत्तर ब्रह्माण्डके स्वरूपकी परम नियतिका आधारतत्त्व है। श्रीमद्‌भागवतके अध्यात्मचिन्तनमें यह सत्य इस प्रकार से कहा गया है —

यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति
विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात्।
तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य -
मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ।।[११८]

'जिससे जिसके भीतर उत्पन्न होकर धारावाहिक रूपसे विरुद्ध गतियाँ,

आनुपूर्व्यभावसे विविध विद्या आदि शक्तियोंके रूपमें निरन्तर गिरती रहती हैं, वह अनन्ततत्त्व ही इस विश्वका आदिकारण है, इस परिणाममुक्त वा विकारमुक्त आनन्दस्वरूप तत्त्वको मैं प्राप्त करता हूँ।'

धनात्मक और ऋणात्मक विरुद्ध गतिशक्तियोंका धारावाहिक विनिपात परमाणुसे लेकर हिरण्यगर्भ तक सर्वत्र विद्यमान है। गतिका एक बलमात्रक प्रबल होता हुआ विश्वको संरचनात्मक अस्तित्वकी सम्पूर्णता तक ले आता है, दूसरा विरुद्धगतिका बलमात्रक उसको प्रलयके कृष्णगर्तमें ढकेलता हुआ पुन: संरचनात्मक अस्तित्वके द्वारतक पहुँचा देता है। विश्वके निर्माण और विध्वंसका यह संतुलितस्वरूप अपने विकास और संकोचके क्रममें निरन्तर सन्दोलित होता रहता है। संतुलित-विश्व और सन्दोलनात्मक-विश्वके सिद्धान्तका यही समन्वित स्वरूप है। भारतीय सृष्टिविज्ञानके अनुसार हिरण्यगर्भके महास्वन विस्फोटके साथ ही विश्वका विकास प्रारम्भ होता है, जो १२ अरब ९६ करोड़ वर्षों तक निरन्तर विकसित होता हुआ संकोच क्रमका अवलम्बनकर, इतने ही वर्षोंमें पुन: हिरण्यगर्भमें बदल जाता है। सृष्टिका वैसा ही विकास पुन: प्रारम्भ हो जाता है — वैसी ही पृथ्वी, वैसा ही सूर्य, चन्द्र और आकाशगंगा, मनुष्य, इतिहास — **यथापूर्वमकल्पयत्** — संदोलनात्मक विश्वका यही सिद्धान्त और स्वरूप है।

विश्वकी ये विरुद्धगति-शक्तियाँ जड़ नहीं, विज्ञानधर्मा हैं, इनके द्वारा ही विज्ञानधर्मी विश्व अस्तित्वमें आता है। इसीलिए श्रीमद्भागवतने इन्हें 'विद्या' पदसे अभिहित किया है। शाक्तदर्शनमें ये शक्तियाँ महाविद्याके नामसे प्रसिद्ध हैं। फलत: संकोच और विकासके सनातन दोलकमें झूलता हुआ विश्व उस परमसत्ताके महाक्षेत्रमें अपनी आकृतियोंको बार-बार बदलता रहता है। महाकालके शून्य-बिन्दुपर पहुँच कर विश्वकी महाकालयात्रा समाप्त हो जाती है। जगत्का सम्पूर्ण द्रव्यमात्रक (Mass) महाशक्तिके महामात्रकमें बदल जाता है। सृष्टिके संरचना कालमें महाशक्ति पुन: विश्व-द्रव्यके महामात्रकमें बदल जाती है। अद्वितीय परमपदार्थ स्वयंमें शक्ति और द्रव्य दोनोंकी अद्वैतअवस्थाका अभिधान है। संरचनाके संदर्भसे उसे 'सत्' पदार्थ कहा जाता है, प्रलयके संदर्भसे 'असत्'। अत: तत्त्वदृष्टिसे उसे सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण कहना अधिक समीचीन होगा। विश्व प्रतिक्षण प्रलयके मुखमें समाहित हो रहा है, इसीलिए अद्वैत वेदान्तमें

उसकी वर्तमान प्रतीयमान सत्ताको 'असत्' स्वीकार किया गया है। बौद्धदर्शन जगत्के क्षणभंगको लक्ष्यमें रखकर अस्तित्वको विज्ञानधाराके रूपमें स्वीकार करता है। यह अद्वितीय परमपदार्थ विश्वके सन्दर्भमें क्षेत्र कहा गया है, विज्ञानदृष्टिसे वही क्षेत्रज्ञके नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनोंका सम्यक् ज्ञान विश्वकी वैज्ञानिक सत्ताका उद्घाटन करता है, क्योंकि परमसत्ता विश्वके समग्र क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ रूपसे प्रकट होती है। भगवद्गीताका मन्तव्य अत्यन्त स्पष्ट है —

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥[११९]

वह अद्वितीय तत्त्व ही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दो रूपोंमें व्यक्त होता है, वह इसके बाहर और भीतर सर्वत्र परिपूर्ण है, क्षेत्रकी चल और अचल दोनों शक्ति अवस्थायें भी वही है, परम सूक्ष्म होनेके कारण अज्ञेय है। वह एक ही तत्त्व समीपसे समीप और दूरसे दूर है। तत्त्वत: अविभक्त होते हुए भी वह एक ही समस्त द्रव्यावस्थाओंके भीतर विभक्त हो उठा है, उस एक ही तत्त्वसे यह जगत् उत्पन्न होता है, उसीमें यह स्थित है, उसीमें वह प्रलयापन्न होता है। विश्वके तत्त्वसन्दर्भमें गीताका परम वैज्ञानिक मन्तव्य है —

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥[१२०]

ख्यातिलब्ध वैज्ञानिक Albert Einstein ने प्रकृतिके संगठितक्षेत्रके आधारपर अपने शक्तिसिद्धान्तकी स्थापना भौतिक विज्ञानमें प्रस्तुत की ; भगवान् श्रीकृष्णने प्रकृतिके संगठितक्षेत्रके मूलमें क्षेत्रज्ञकी सत्ता का ग्रहण अनिवार्य बताया है। सनातन क्षेत्रज्ञकी सत्ताके अभावमें संगठितक्षेत्रकी संरचना ही असम्भव है। Einstein क्षेत्रज्ञके स्थानपर शक्तिके प्रमात्रकको ग्रहण करते हैं, जो इस संगठित-क्षेत्रके स्वरूपका विधायक, नियामक और संचालक है। भारतीय चिन्तनमें भगवान् श्रीकृष्णका 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ' सिद्धान्त विश्वके मूलभूत सत्यका उद्घाटन करता है, वैसे इसका मूल श्रुति है। क्षेत्रज्ञ ही वह वैज्ञानिक महासत्ता है, जो कालान्तरमें

प्रकृतिके संगठितक्षेत्रका निर्माण करती है। फलत: सनातन शक्तिका एक अंश विश्वके द्रव्यमात्रकमें बदलता हुआ — द्रव्यशक्तिके संगठितक्षेत्रमें बदल जाता है। क्षेत्रज्ञतत्त्वकी त्रिपाद महासत्ता दिक् कालातीत, कार्य-कारणकी परिणाम-शृंखलासे मुक्त एक अद्वितीय अक्षरतत्त्व-स्वरूपा सनातनसत्ता है — उसका क्षरतत्त्वरूप चतुर्थपाद ही सर्वप्रथम ईक्षणात्मक महाशक्तिके रूपमें प्रकट होता हुआ — त्रिगुणात्मक प्रकृतिके सन्तुलित क्षेत्रका निर्माण करता है —

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।[१२१]

यह भूततत्त्वप्रधान चतुर्थपाद ही ईक्षणात्मक 'संकल्प-शक्ति' के द्वारा पुन: पुन: विश्व रूपसे प्रस्तुत होता है। यह संकल्पशक्ति ही चिति वा चिच्छक्ति है। यह चिच्छक्ति ही त्रिगुणात्मक प्रकृतिकी कारणस्वरूपा है। वटबीजमें जिस प्रकार वटवृक्ष सूक्ष्म रूपसे विद्यमान रहता है, और उत्पन्न होकर एक प्राकृत विशालवृक्षमें परिणत हो जाता है, वैसे ही यह प्राकृत ब्रह्माण्ड चिच्छक्तिसे उत्पन्न होता है —

कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजस्सत्त्वतमोगुणै:।
यथैव वटबीजस्थ: प्राकृतोऽयं महाद्रुम:॥[१२२]

विश्व एक शक्तिचक्र है, श्रीचक्र व श्रीयन्त्र विश्व-ब्रह्माण्डकी शक्ति-तत्त्वस्वरूपा संरचनाका मानचित्र। शिव बिन्दु है, जीवभूता प्रकृति उसका चैतन्य त्रिकोण। बिन्दु अन्तर्मुख महाशक्तिका अधिष्ठान वा केन्द्रस्थान है, त्रिकोण उस बहिर्मुख विलास करनेवाली विमर्श शक्तिका आधार। शक्ति तापगतिशास्त्र (Thermodynamics) के प्रथम नियमके अनुसार न उत्पन्न होती है और न नष्ट, वह केवल व्यक्त होती है। शक्ति तत्त्वदृष्टिसे सनातन है, पर अभिव्यक्तिके क्रममें वह श्रयणाधिष्ठित होती है — इसीलिए उसे 'श्री' कहा जाता है, 'श्रयणात् — श्री' यही इस पदका व्याकरण है। श्रयणका अर्थ है — अधिष्ठान या आश्रय। विज्ञानदृष्टिसे शक्ति वा श्री अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी, कार्यरूप अभिव्यक्तिके क्रममें अधिष्ठानके आश्रित है। इस अधिष्ठानगत आश्रयका नाम ही श्रयण है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक Einstein के Mass Energy Equation के अनुसार — पिण्ड शक्तिमात्रकका ही घनीभूत स्वरूप है, शक्तिकी ही घनतम अवस्था है। पिण्डको रूपान्तरित किया जाए तो वह शक्तिके एक विपुल मात्रकमें

बदल जाएगा, द्रव्यराशि (Mass) और शक्तिमात्रकके सम्बन्धमें उनका प्रसिद्ध सूत्र — $E = mc^2$ है।

श्रीयन्त्र शब्दका अर्थ है — शक्तिका घर या पावरहाउस। ब्रह्माण्ड स्वयं शक्तिका घर है। नियमार्थक 'यम्' धातुसे निष्पन्न —'यन्त्र' शब्दका अर्थ गृह है। भारतीय शक्तिविज्ञानके अनुसार यह विश्व स्वयं अपने तात्त्विक सन्दर्भमें — एक 'शक्ति-गृह' वा 'शक्ति-यन्त्र' है — चाहे वह पिण्ड हो या ब्रह्माण्ड। अत: श्रीचक्रका शक्तिविज्ञानात्मक स्वरूप ब्रह्माण्डाकार है —

चक्रं त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि।[१२३]

प्रलयके समय यह महाशक्ति प्रकाशमें बदल जाती है, जैसे निरावरण आकाशमें सूर्यका प्रकाश बिना अवरोधके प्रकाशित नहीं हो पाता, उसी प्रकार प्रलयके यावन्मात्र अवरोधके विलीन हो जाने पर यह शक्ति स्वयं प्रकाश स्वरूप होती हुई भी प्रकाशित नहीं हो पाती। इस सत्यका पता विज्ञानको १९वीं शतीमें लगा था — प्रकाश बिना अवरोधके स्वत: प्रकाशित नहीं होता। देवीभागवतमें इस तथ्यका उद्घाटन इस प्रकार हुआ है —

चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत्।
स्वप्रकाशश्च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम्॥[१२४]

'पर' तत्त्व निराकार, निरंजन, निर्गुण और निष्कल है, अत: शक्ति भी वहाँ तद्रूप हो जाती है। सृष्टिके संरचनाक्रममें जब वह व्यक्त होती है, तब उसका यह विश्वरूप वितान अपने त्रिपुरकी सृष्टि करता है। त्रिपुरके त्रिभुजसे दिक्के तीन आयाम यहाँ स्पष्ट होते हैं। कालरूप होकर यही शक्ति दिक्कृत तीनों आयामोंको धारण करती है। अत: दिक् और काल दोनों ही यहाँ अन्योन्याश्रित हैं, जिससे विश्वकी स्थूल आयामिकताके सन्दर्भमें इनकी सापेक्षता स्वत: सिद्ध हो जाती है। यही चार आयामोंवाले स्थूल विश्वका स्वरूप है, जिनमें तीन आयाम दिक् कृत हैं, चौथा आयाम है काल। बिन्दु प्रकाशका विमर्शस्थान है, जहाँ दिक् और काल दोनों ही शून्य-बिन्दु व जीरो पॉइण्ट पर हैं। प्रकाशके विमर्शके साथ ही इस दिक्-काल सहकृत चतुर्थ आयामी विश्वका प्रवर्तन होता

है। प्रकाशकी विमर्शरूपा गति ही देश-काल सातत्यधर्मी (Space time continuum) विश्वके विधानको प्रस्तुत करती है। स्पष्ट है कि Einstein का सापेक्षता सिद्धान्त शाक्तदर्शनके सिद्धान्तोंसे बहुत कुछ साम्य रखता है।

विश्वप्रलय शक्तिकी विश्रान्त अवस्था है, सम्पूर्ण स्थूल जगत् यहाँ पहुँच कर परमकारण तत्त्वमें विलीन हो जाता है। इसका अपरनाम शाक्तपरम्परामें — 'शिव-विश्राम' है — **सुप्त्याह्वयं किमपि विश्रमणं शिवस्य।**[१२५] इस प्रकार समग्र विश्वको यह विमर्शरूपा महाशक्ति अपने भीतर विलीन करती हुई स्वयं प्रकाशस्वरूप हो जाती है। विज्ञान भी आज कुछ ऐसा ही अनुभव कर रहा है, ये नभोमन्दाकिनियाँ अन्तमें प्रकाशकी वेगगतिसे प्रधावित होती हुई स्वयं प्रकाश-स्वरूप हो जाती हैं। विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय 'अहंभावद्योतक' शक्तिके आदिबिन्दुमें निहित है। विश्वके शक्तिस्वरूपात्मक मानचित्र श्रीयन्त्रका आधार यह बिन्दु ही है। यह विमर्श-शक्ति ही सृष्टि संरचनाको सम्पन्न करनेके लिए सर्वप्रथम बिन्दुरूपमें प्रकट होती है —

सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तथा।
विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्॥[१२६]

कालान्तरमें यह बिन्दु ही त्रिधा प्रसरित हो उठता है —

कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते॥[१२७]

सृष्टि वागर्थ स्वरूपा है, अर्थसृष्टि कहीं भी स्वतन्त्र नहीं इसका मूल व क् है। प्रलयकालमें यह अर्थमय जगत् परावाक्‌में विलीन हो जाता है और संरचना कालमें पुनः उससे प्रकट —

विश्रान्तमात्मनि पराह्वयवाचि सुप्तौ।
विश्वं वमत्यथ विबोधपदे विमर्शः॥[१२८]

यह बिन्दुस्वरूपा परावाक् पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी — शब्दसृष्टिके त्रिकोणको जन्म देती है। परावाक् कारण बिन्दु है, शेष तीन उसके कार्य बिन्दु। इन चारोंको ही तन्त्रमें शान्ता, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री कहा गया है। ये ही आगम ग्रन्थोंमें

अम्बिका, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये ही शक्तिविज्ञानके चार पूजापीठ हैं — (१) कामरूप, (२) पूर्णगिरि, (३) जालन्धर और (४) औड्डियान। यही व्यष्टि सन्दर्भसे मूलाधारमें स्थित कुण्डलिनी शक्ति है, जिस प्रकार बिन्दुस्थानीय परावाक्से शब्द और अर्थकी सृष्टि होती है, उसी प्रकार बिन्दुरूपा महाशक्तिसे विश्वके ३६ अर्थरूप तत्त्व प्रकट होते हैं — (१-५) पञ्चमहाभूत, (६-१०) पाँच ज्ञानेन्द्रिय, (११-१५) पाँच कर्मेन्द्रिय, (१६-२०) पाँच इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषय, (२१) मन, (२२) बुद्धि, (२३) अहंकार, (२४) प्रकृति, (२५) पुरुष, (२६) कला, (२७) अविद्या, (२८) राग, (२९) काल, (३०) नियति, (३१) माया, (३२) शुद्ध विद्या, (३३) ईश्वर, (३४) सदाशिव, (३५) शक्ति और (३६) शिव। इनमें सृष्टिक्रमके अनुसार ३६वाँ शिवतत्त्व आधार रूपसे प्रथम है। अत: इससे ही अन्य तत्त्व क्रमश: उत्तरोत्तर भावसे एकके पश्चात् एक उत्पन्न होते हुए — अन्तमें पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्डके रूपमें संस्थित हो जाते हैं।

२. विश्व क्यों उत्पन्न होता है ? — कल्प और सन्दोलनात्मक जगत्का स्वरूप और सिद्धान्त

प्रकृतिमें गुणक्षोभ क्यों होता है ? विश्वकी संरचना क्यों और किस प्रकार होती है ? कल्प प्रवर्तन और प्रकृतिके सन्दोलनात्मक चक्रोंके मूलमें कौनसी कारणमाला कार्यरत है ? ये सामान्य प्रश्न नहीं, इनका रहस्य दिक्-कालसे अतीत है। कैसे होता है ? — इसके उत्तरमें पुरुषके साथ प्रकृतिके संयोगको ही कारण माना जाता है। क्यों होता है का उत्तर निम्न प्रकारसे दिया गया है। प्रलयकालमें प्रसुप्त होने वाली प्रकृति मात्र जड़ नहीं, वहाँ द्रव्यमें जीवशक्ति वा जीवनशक्ति विद्यमान है, इसका ही अपर नाम जैव-तत्त्व और जैव-सत्ता है, जिसमें जीवचैतन्यके रूपमें अनन्त जैवपदार्थ विलीन हैं। जैवपदार्थको अपनेसे पृथक् वा मुक्त करनेके लिए ही प्रकृति बार-बार विश्वरूपमें विकसित होती रहती है, क्योंकि प्रकृतिमें विलीन जैव-द्रव्य सजातीय पदार्थ नहीं, वह उसका विजातीय पदार्थ है। अत: विजातीय पदार्थको अपनेसे पृथक् करनेके लिए ही प्रकृतिमें परिणाम क्रिया होती है। सांख्यदर्शनमें इस जैव-द्रव्यकी पुरुष संज्ञा है, जिसका प्रकृतिसे संयोग हो गया। इस संयोगके विच्छेदार्थ प्रकृतिमें क्रियाशक्तिका संचार होता है। जब तक जैवविकासका एक परिपक्व स्तर प्रकृतिसे पृथक् नहीं

हो जाता तब तक विश्वका सन्दोलन चक्र गतिशील रहता है। जैवपदार्थके भी ब्रह्माण्ड भेदसे अनन्त आयाम हैं। ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षोंके महासन्दोलनमें प्रकृति १२ सहस्र सृष्टिके लघु सन्दोलनात्मक विश्व-चक्रोंको जन्म देती है, जिसके प्रत्येक चक्रका आयाम २५ अरब ९२ करोड़ वर्ष है। इन बारह सहस्र सन्दोलनचक्रोंमें झूलती हुई प्रकृति, अन्तमें अपनी सम्पूर्ण द्रव्य-मात्राको शक्तिरूपमें परमसंकुचित करती हुई, इतने ही कालमें शक्तिके सचेतन-रूपमें बदल जाती है। यह प्रकृति और पुरुषकी अद्वैत व संयुक्त अवस्था है, शक्ति और शक्तिमान्का अभेद है। अत: जो क्षुब्ध करता है — वह भी वही है, जो क्षुब्ध होता है — वह भी वही, संकोच और विकास उस एक ही तत्त्वके स्वरूप हैं, जिससे विश्वका विकास और संहार होता है। विष्णुपुराणके निम्न कथनका यही संक्षिप्त आशय है —

स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तम: ।
स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थित: ।।[१२९]

२५ अरब ९२ करोड़ वर्षोंकी इस महाकाल यात्रामें सन्दोलनका कारणभूत जैव-द्रव्य विशुद्ध महाशक्तिके परममात्रकमें बदल जाता है। सृष्टिके सन्दोलन-चक्रमें जो नवीन जैव-द्रव्य सन्तान परम्पराके रूपमें प्रस्तुत होता है, उसका अधिकांश मात्रक मुक्त नहीं हो पाता। महाप्रलयमें वह प्रकृतिमें ही विलीन हो जाता है, और वही पुन: नवीन सृष्टिके सन्दोलन-चक्रका हेतु बनता है। इस प्रकार न तो जैव-द्रव्य ही प्रकृतिके भीतर समाप्त हो पाता है, न इसके हेतुभूत सन्दोलन-चक्र ही रुकते हैं। अत: विश्वकी शक्तिस्वरूपा संकोच विकासात्मक कालयात्रा अनादि भावसे निरन्तर गतिशील रहती है। इस सन्दर्भमें श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्का स्पष्ट कथन है — मेरी जीवस्वरूपा पराप्रकृतिके द्वारा ही — यह विश्व आधार प्राप्त करता है या धारण किया जाता है —

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।[१३०]

३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष उपरान्त होनेवाले परमप्रलयमें सम्पूर्ण विश्व-द्रव्य चाहे वह जैव हो या अजैव, शक्तिके महामात्रकमें पूर्णरूपसे बदल

जाता है। परमप्रलयके पश्चात् महाशक्तिके 'अहं-इदम्' विमर्शसे उत्पन्न होनेवाला लीलागर्भ — हिरण्यगर्भ सन्दोलनात्मक विश्वका आदिअण्ड है। इससे ही सन्दोलनात्मक विश्वके १२ सहस्र सन्दोलन-चक्रोंकी महाकाल यात्रा प्रारम्भ होती है। देखा जाए तो विश्वका प्रथम सन्दोलन-चक्र अवान्तर सन्दोलन-चक्रोंकी तुलनामें द्रव्यशक्ति प्रधान परम भौतिक सन्दोलन है। इस क्रममें हमारा वर्तमान विश्व-चक्र ६०,००१ वाँ सृष्टिचक्र है। फलत: इस विश्वके विकासमें शक्ति और द्रव्य दोनोंके ही प्रमात्रक अन्य सन्दोलन-चक्रोंकी तुलनामें परमसन्तुलित हैं। अत: भूतभौतिक दृष्टिसे इस सृष्टि-चक्रका विकास सम है। पर सम होते हुए भी पूर्व सन्दोलन-चक्रोंकी तुलनामें शक्तितन्मात्राकी दृष्टिसे यह अधिक दिव्य है, उत्कृष्ट संज्ञानधर्मी है। क्योंकि अब तक मूलप्रकृतिका आधा द्रव्यमात्रक पूर्व सृष्टि-चक्रोंके द्वारा महाशक्तिके महामात्रकमें बदल चुका है। प्रकृतिका वर्तमान काल-चक्र अपने अर्धपथको लाँघकर परार्धकी ओर गमन कर रहा है। इस सिद्धान्तदृष्टिसे भविष्यमें होनेवाले सन्दोलन-चक्र द्रव्यतन्मात्राके वर्धमानक्षयके फलस्वरूप उत्तरोत्तर दिव्यताकी दिशामें अग्रसर होंगे, उनकी विकासधारा उत्तरोत्तर संज्ञानधर्मा होगी। सृष्टिका १२ सहस्रवाँ अन्तिम सन्दोलन-चक्र अपने पूर्ववर्ती सन्दोलन-चक्रोंकी तुलनामें सर्वाधिक दिव्य होगा। द्रव्य तन्मात्राकी न्यूनताके कारण उस विश्वकी समग्र नभोगंगाओंके ब्रह्माण्ड-चक्र वर्तमानकी तुलनामें संख्यात्मक दृष्टिसे अल्प होते हुए भी सभ्यता और संस्कृतिकी महासंज्ञान धारासे सर्वथा सुशोभित होंगे। उन सभ्यताओंका पौरुषेयविकास भी ज्ञान-विज्ञानकी महती चेतनासे युक्त और परममुक्त होगा।

विश्वके एक सन्दोलन-चक्रमें सृष्टिका विकास तीन स्तरों पर होता है :— (१) पाञ्चभौतिक द्रव्यका सृजन और विकास, (२) ब्रह्माण्ड संस्थाका निर्माण और (३) उसपर जैवतत्त्वका विकास। प्रत्येक कल्पका कालमान अपने संरचनात्मक निर्माण और विकासकी दृष्टिसे ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है, उतना ही समय उस कल्पके प्रलयका है। प्रथम ब्राह्मकल्पका कालमान ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है, जिसमें अण्डकी संरचनासे लेकर विश्व-द्रव्यके पाञ्चभौतिक विकासके कल्पका ग्रहण है, पाद्म और वाराहकल्पका भी पृथक्-पृथक् इतना ही कालमान है। पाद्मकल्प नभोगंगाकी पद्माकृत संरचनाका काल है, वाराहकल्प उस पर होनेवाले

जैवविकासका समय। इन तीन कल्पोंके कालका योगफल १२ अरब ९६ करोड़ वर्ष होता है, इतना ही प्रलयकाल है। फलतः सृष्टि और प्रलयको मिलाकर यह काल २५ अरब ९२ करोड़ वर्ष है, जिसमें सृष्टिका एक सम्पूर्ण सन्दोलन-चक्र समाप्त हो जाता है। कल्पकी अवधिके कालछन्दका स्पन्दन ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है। इसे ही ब्राह्म दिवस वा सृष्टि काल कहते हैं, इतनी ही बड़ी उस कल्पकी रात्रि है। एक कल्पका विकास जब सम्पूर्ण हो जाता है, तब नवीन कल्पका विकास प्रारम्भ हो जाता है, इस दृष्टिसे पाद्मकल्प ब्राह्मकल्पका नवीन विकास वा परिणाम है, अतः जो ब्राह्मकल्पकी रात्रि है, वही पाद्मकल्पका दिवस। यही सृष्टिका कालछन्द है, जो कल्पके नामसे प्रसिद्ध है। पौराणिक वाङ्मयमें पूर्वकल्पोंके कुछ संकेत नामभेद और संख्याभेदके साथ प्राप्त होते हैं। नामभेदका कारण वहाँ कल्पके विशेषज्ञोंकी सिद्धान्तदृष्टिके भेदका परिचायक है। विभिन्न पुराणोंकी परम्पराके अनुसार इनकी भिन्न संख्यायें भी प्राप्त हैं। पद्मपुराणमें ३५ कल्पोंकी संख्याका उल्लेख है, वायुपुराणमें २८ कल्पोंकी संख्या नामोल्लेखके साथ प्राप्त होती है। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त, कूर्म, ब्रह्मपुराण आदिमें कल्पकी अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनायें मिलती हैं। प्रत्येक कल्पकी सृष्टि समान नहीं, वहाँ द्रव्य भेदसे स्वरूप भेद है। पुराणोंमें दिये गये नाम उन सृष्टिकल्पोंके द्रव्यभूत विकासके संकेतक हैं, पर इसका किंचित् स्पर्श भी विस्तार भयसे यहाँ सम्भव नहीं।

जड़ प्रकृतिमें समाहित अनन्त प्राणचेतनाको अपनी जड़धर्मितासे मुक्त करनेके लिए प्रकृति विश्वरूपमें बार-बार चेतनाके आश्रयसे परिणमन करती है। जड़ प्रकृतिमें विद्यमान प्राण सत्ताका नाम पुरुष है, पुर उस चेतनाका प्राकृतिक आयाम व आच्छादन है, और उस पुररूप आयाममें अधिष्ठित चेतना पुरुष। सांख्यशास्त्र प्रकृतिकी इस पुररूप अनन्त द्रव्य आयामिकताके आधार पर ही पुरुष-बहुत्वके सिद्धान्तको स्वीकार करता है। प्रकृतिके भिन्न-भिन्न पुररूप आयामोंकी प्रतिबद्धतासे एक ही पुरुषरूप महाचेतना अनन्तपुररूपा प्रकृतिकी आयामधर्मा हो गई है। समष्टिपुरुषसे जब समष्टिप्रकृतिका संयोग होता है, तब वही इन अनन्त पुरोंके आयाममें व्याप्त जैवद्रव्यकी संस्कारधाराके अनुसार व्यष्टीभूत हो जाता है। पुनः कालान्तरमें वह अक्षरपुरुषमें विलीन होनेके लिए प्रकृतिकी इस विश्वरूप सन्दोलन-क्रियाके माध्यमसे मुक्त होनेकी स्थितियों तक चला

आता है। फलत: प्रकृतिकी पुरसंक्रान्त अनन्त इकाइयाँ एकके पश्चात् एक भंग होती चली जाती हैं। पुरुष स्वत: प्रकृतिके इस पुररूप आयामके भंग हो जाने पर स्वयं मुक्त हो जाता है। पुरुष नहीं बदलता — वह कूटस्थ है, अपरिणामी है। प्रकृतिका पुररूप आयाम ही परिणाम क्रममें बदलता हुआ, अन्तमें महाशक्तिकी महाचेतनामें बदल जाता है। इस महाचेतनाका ही अपर नाम पुरुष या पुरुषोत्तम है, जिसका एक पाद ही इस महासन्दोलनात्मक प्राकृत विश्वके रूपमें निरन्तर त्रेधा विचक्रमण करता रहता है। उसका यह पाद ही विश्वरूपमें परम व्याप्रक हो उठा है। इसीलिए इस विश्वरूप परम व्याप्तिको लक्ष्यमें रखकर उसे विष्णु कहा गया है। 'विष्लृ व्याप्तौ'— धातुका अर्थ है —'व्याप्त होना', जो विश्वरूपमें व्याप्त होता है — वही विष्णु है **वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णु:**[१३१] भगवत्पाद शंकरके अनुसार विष्णुपदका यही व्याकरण सिद्ध अर्थ है। 'विश्प्रवेशने' धातुसे भी यह पद सिद्ध होता है — जो विश्वरूपसे प्रविष्ट होता है वही विष्णु है। बृहद्देवताके अनुसार —

विष्णातेर्विशतेर्वा स्याद्वेविष्टेर्व्याप्तिकर्मण:। विष्णु....[१३२]

यहाँ 'व्याप्ति' और 'प्रवेश' दोनों ही अर्थ महर्षि शौनकको मान्य हैं। विष्णुके इस त्रेधा विचक्रमणका नाम ही विश्व है —

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूळहमस्य पाँसुरे ।।[१३३]

इसके प्रथमपाद विचक्रमणसे पाञ्चभौतिक ब्रह्माण्डीय-द्रव्य द्युलोकमें व्यवस्थित होता है, दूसरे पाद निक्षेपसे यह प्रकृतिका पाञ्चभौतिक द्रव्य अन्तरिक्षमें नभोगंगाओंके ब्रह्माण्ड-चक्रोंके रूपमें फैल जाता है। तीसरा पाद निक्षेप विश्वकी जैवसत्ताको प्रकट करता हुआ उसे पोषण और संरक्षण प्रदान करता है, अन्तमें उसे जड़धर्मितासे मुक्त करते हुए अपने भीतर विलीन कर लेता है। विष्णुका यह त्रिपादनिक्षेप व विचक्रमण ही ब्राह्मसृष्टिके त्रिधाविभक्त विश्वकी तत्त्वकथा है, जिसे ऋग्वेदसे लेकर पुराणों तक सर्वत्र विज्ञानकथाओंके माध्यमसे अनेक प्रकारके अनेक विज्ञान कथारूपकोंके द्वारा स्पष्ट किया गया है। सृष्टिके विकासका यह तत्त्वदर्शन अपनी अधिब्रह्माण्डीय या पराभौतिक स्थितियोंसे

लेकर अवतारवादकी तत्त्वभूमि तक सर्वत्र अत्यन्त स्पष्ट है, जो विस्फोटके पश्चात् कालान्तरमें सृष्टिके इन तीन विकास स्तरों तक विकसित होता चला जाता है। जैवपदार्थ इसके ही द्रव्य-विस्फोटका वह चरम विकास है, जो अन्तमें इतिहासपुरुष मानवकी आनन्द यात्राके रूपमें व्यक्त हो गया है।

३. जैव द्रव्यका महासागर — नार+अयन = नारायण

शाक्तआगमका सिद्धान्त है — **ब्रह्माण्डे ये गुणा: सन्ति पिण्डमध्ये च ते स्थिता:** — अर्थात् जो गुण ब्रह्माण्डमें हैं, वे ही गुण पिण्डमें विद्यमान हैं — **यथा अण्डे तथा ब्रह्माण्डे** — जो अण्डमें है, वही ब्रह्माण्डमें भी है। आदिअण्डके 'नार' या रसद्रव्यसे इन कोटि-कोटि लक्ष ब्रह्माण्ड चक्रोंका जन्म होता है। इस महान् हिरण्यमय अण्डका विस्फोटित नार या रसतत्त्व (Plasma) ही इन अनन्त, लघु-बृहत्-महत् नाना प्रकारके हिरण्यमय-अण्डोंको जन्म देता है, जिसके फलस्वरूप इन तारकीय ब्रह्माण्डोंकी संसृष्टि होती है। परम व्योममें एक ही महद् हिरण्यगर्भसे इन कोटि-कोटि हिरण्यगर्भोंका महारास प्रारम्भ हो जाता है। आदिअण्डके वैश्वानर तैजसका जो बिन्दु महाविस्फोटके परमवेगसे गतिमान होता हुआ— महाशून्यके जिस स्थलविशेषपर निपतित होता है, कालान्तरमें वहाँ सृष्टिके तेजोमेघके (Nebula) विकासका इतिहास प्रारम्भ हो जाता है, और नवीन ब्रह्माण्डीय हिरण्यगर्भोंकी संरचना होने लगती है। एक नया सूर्य अस्तित्वमें आ जाता है, एक नया चन्द्रमा बन जाता है, नये-नये ग्रहोंका प्रसव होता है। उनकी नव निर्मित धरित्री सजने सँवरने लग जाती है। कालान्तरमें वहाँ नदी, पर्वत, समुद्र, वनस्पतियाँ, पुष्प, फल, औषधियाँ, सभ्यतायें, संस्कृतियाँ, कला, कविता, दर्शन और विज्ञानका प्रादुर्भाव होता है ; जिन ग्रहों पर अग्नितत्त्वका रुद्रांश अत्यन्त प्रबल है, वहाँ स्थितियाँ दग्धप्राय हैं, क्षार व तेजाब तक की वर्षा होने लगती है। जहाँ सोमका अंश प्रबल है, वहाँकी धरती कला, कविता और विज्ञानको जन्म देती है। यही **अग्नीषोमात्मकं जगत्** की परियोजना या ब्लू-प्रिण्टका प्रारम्भ है, यही उसके 'काल-सूत्र' का संविधान।

इस सोमगर्भा, रसघन, विज्ञानघन, आनन्दघन पृथ्वीका सम्पूर्ण विकास उस आदिअण्डकी रसघन, विज्ञानघन बूँदका ही विकास है। हमारा वामन हिरण्यगर्भ सूर्य उस आदिबिन्दुका ही एक तेजस्सिन्धु है। हमारे समुद्रोंकी, पर्वतोंकी,

फूलोंकी, कला, कविता, ज्ञान, विज्ञान और उनके इतिहासकी सम्पूर्ण संरचनात्मक परियोजनाके भूत-भौतिक रसायनकी संयोजित तिथियोंका काल-सूत्र उस तेजोमय हिरण्यगर्भके भीतर समाहित है। इस विराट् विश्वमे हमारी यह सोमगर्भा पृथ्वी अकेली नहीं, जिसे फूलोंका, पहाड़ोंका, कला-कविता और विज्ञानका महावैभव प्राप्त हुआ हो। इस ग्रहसे परे भी अन्यान्य ब्रह्माण्ड-चक्रोंपर भगवान् बुद्ध, भगवत्पाद शंकर, महाकवि कालिदास, महर्षि तुलसीदास, महान् नाटककार शेक्सपीयर, वैज्ञानिकप्रवर आइन्स्टीनकी स्वरूप उपलक्षक संज्ञान-धाराका समुन्नत अस्तित्व विद्यमान है। इस तरहका समुन्नत विकास उस पिण्डकी सोम-संस्थाके विकासधर्मी तारतम्य पर निर्भर है।

इस ग्रहकी प्रतिबद्धताके साथ सोचा जाए तो विश्व-संस्थाकी सम्पूर्ण विकास-यात्राका इतिहास दो बिन्दुओंके मध्य विभक्त है, प्रथम बिन्दु हिरण्यगर्भ है, जिससे विकास-यात्राका इतिहास प्रारम्भ होता है। इस ग्रहपर परिदृश्यमान विकास वा इतिहास-यात्राका द्वितीय बिन्दु 'नर' है। जहाँ पहुँच कर प्रकृतिकी यह विकास-यात्रा रुक जाती है, अवान्तर विकास समाप्त हो जाता है। यों कहना चाहिये यह विकास 'नर-बिन्दु' पर पहुँच कर अपनी सम्पूर्णताको प्राप्त कर लेता है। विकासके इस सर्वोच्च 'नर' स्वरूपको केन्द्रमें रखकर उस आदिअण्डके परमद्रव्यको 'नार' कहा गया है। क्योंकि हिरण्यगर्भके इस आदिम द्रव्य-रसायनकी अपने विकासक्रममें चरम परिणति 'नर' है। फलत: उस आदिरसके मण्डल व अयनका नाम भी 'नार अयन' या 'नारमण्डल' है। नार और अयन इन दोनों पदोंकी सन्धि हो जाने पर यह पद 'नारायण' हो जाता है। अत: द्रव्य-रासायनिक दृष्टिसे हिरण्यगर्भका ही दूसरा प्रसिद्ध नाम नारायण है। वैसे 'नार' पद कोशग्रन्थोंमें रस वा जलका पर्याय है। 'नर' शब्द सामान्य अर्थमें जीवपदके अर्थका पर्याय होते हुए भी अपने विशेषार्थकी दृष्टिसे वह मनुष्यके अर्थमें रूढ़ है। मनुष्य सहित अन्य सभी प्राणियोंकी सृष्टि 'नार' वा रस वा जलसे होती है – अत: वह नर है, और उसका आदिम 'रस-अयन' नारायण है, क्योंकि यह 'नार' रूप विकसित रसायन उस आदिमअण्डके रसायनका ही विकास है। इसीलिए यहाँ भी – **यथा अण्डे तथा ब्रह्माण्डे** के आधार पर 'नर' के अर्थको केन्द्रमें रखकर उस आदिम अण्डके समाश्रित द्रव्यके मण्डलका नाम भी 'नारायण' है। मनुस्मृतिने

नामकरणके इस तत्त्वसन्दर्भको निम्न प्रकारसे स्पष्ट किया है -

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ [१३४]

अर्थात् – नरसे उत्पन्न होनेके कारण जल वा रस ही नार है, वह नार ही जिसका आदि अयन हुआ, उसीका नाम नारायण है। वैसे मानवधर्मशास्त्रका यह कथन यथावत् और कहीं किंचित् शब्द परिवर्तनके साथ पौराणिक वाङ्मयमें प्रायः सर्वत्र प्राप्त होता है।

'नर-अयन वा नारायण' शब्द ही लगता है, आजके नवीन वैज्ञानिक सन्दर्भसे जुड़कर सर्वथा नये रूपमें ग्रीक भाषाके प्रकृति-प्रत्यय द्वारा – Noosphere के अर्थमें व्यवहृत हो चुका है। '**नरेष्विदं नारम् = ज्ञानम्**' के अनुसार नरमें ही ज्ञान वा प्रज्ञाका वैशिष्ट्य है। सुप्रसिद्ध फ्रेंच प्रत्नअश्मशास्त्री (Palaeontology) एवं विज्ञान जगत्के उल्लेखनीय चिन्तक द शारदां (De Chardin, Teilhard) इस नवीन चिन्तनदर्शनके आचार्य हैं। Noos पदका ग्रीक भाषामें mind, spiritual आदि अर्थ है, उसके विज्ञानका नाम Noology, जिसका विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ है – The Science of The Intellect। द शारदांके अनुसार सर्वप्रथम जैवरासायनिक पार्थिव पर्यावरणकी संरचनाके साथ ही बौद्धिक पर्यावरणके अयनकी संरचना होती है, नर कालान्तरमें इस 'नू' अयन (Noo-Sphere) का ही चरम विकसित बौद्धिक परिणाम है।[१३५] महर्षि मनुने इससे होनेवाले 'नर' रूप भावी विकासको लक्ष्यमें रखकर ही इसके मूलस्वरूपको 'नार' कहा है, उसका प्रथम अयन वा स्फीयर ही यहाँ 'नार +अयन' वा 'नारायण' है। नारायणका ही अपर नाम तत्त्वदृष्टिसे उपनिषद् श्रुतिमें 'विज्ञान' व 'प्रज्ञान' है। इसीलिए इस आधारभूता मूलसत्ताको सर्वत्र – **विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्**[१३६] **विज्ञानसारथिर्यस्तु**[१३७] **विज्ञानात्मा सह**[१३८] **विज्ञानं यज्ञं तनुते। ......विज्ञानं देवाः सर्वे। ....विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद।**[१३९] **वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः**[१४०] **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**[१४१] **विज्ञानमानन्दं ब्रह्म**[१४२] **प्रज्ञानं ब्रह्म**[१४३] **स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः**[१४४] – आदि शतशः श्रुतिवाक्य हैं, जो इस विश्वकी मूलसत्ताके अर्थका विज्ञानमयस्वरूप स्पष्ट करते हैं। मूलसत्ता विज्ञानघन है, अतः उसके

अन्य नाम — विष्णु, नारायण आदि उपपत्तिसिद्ध पर्याय हैं। विष्णुपुराणके अनुसार — यह परम विज्ञानघन वैष्णव सत्ता ही पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि भेदोंमें प्रकट होती है।[१८१] अत: शारदांकी Noology अपने The Science of The Intellect के तात्पर्य बोधके साथ अन्वित ही नहीं, उससे भी बहुत आगे बढ़कर भारतीय सन्दर्भोंमें परिभाषित हुई है — जहाँ 'ऑर्गेनिक' ही नहीं 'इनऑर्गेनिक' पदार्थोंके अर्थका भी ग्रहण हो गया है। यह संज्ञानधर्मा अभिव्यक्ति वैज्ञानिकदृष्टिसे जैव-रासायनिक सन्दर्भोंमें 'नार' व जलाश्रित है, चाहे वह उसका तरल, विरल या घन कोई भी स्वरूप क्यों न हो। इसीलिए जैव और अजैव दोनों दृष्टियोंसे ही उस मूल विज्ञानघन तत्त्वका उपपत्तिसिद्ध नाम नारायण है।

हम ऊपर लिख आए हैं — यह विश्व जैवप्राणोंसे ओत-प्रोत है, उसकी अभिव्यक्ति और विकासके लिए ही — विश्वका मनोभौतिक विकास होता है। आजका विज्ञान इस सिद्धान्तको सम्पूर्णरूपसे स्वीकार करनेकी स्थितियों तक तो नहीं पहुँच पाया, पर उसने अपना मार्ग आंशिक रूपसे निश्चित बदल दिया है, जिसे भारतीय ऋषि-चिन्तन तक पहुँचनेके महापथकी प्रथम सीढ़ी जरूर कहा जा सकता है। विज्ञान आज प्राज्ञ जैवप्राणके स्वरूपको पृथ्वीकी पार्थिव परिसीमा तक ही परिसीमित स्वीकार नहीं करता, वहाँ उसका प्रसार अन्तर्नक्षत्रीय है। टोकियो विश्वविद्यालयके आचार्य Haruhiko Noda ने विज्ञानके क्षेत्रमें आश्चर्यचकित कर देनेवाली सूचनाएँ प्राप्त की हैं। प्रोटीनके गठनमें पाई जानेवाली Amino Acids अनेक प्रकारकी हैं, जिनकी संख्या बीस है, जो जीवन संरचनाकी दृष्टिसे आधारभूत हैं। प्रोटीन अणुओंके निर्माणमें ये एसिड्स असाधारणरूपसे उत्तेजित वा संवेदनशील होती हुई — परस्पर शृंखलाबद्ध हो जाती हैं। प्रोफेसर नोडाका कथन है — प्रोटीन मॉलीक्यूलका निर्माण सौ एमिनो एसिड्सकी शृंखलाओं (Amino-Acid Chains) से होता है। इनकी गणितके अनुसार, सम्भावना यह है कि प्रोटीन मॉलीक्यूल अलभ्य संयोग द्वारा अस्तित्वमें आता है। इस जटिल संयोगका अनुपात १ की सम्भावना पर $१०^{१३०}$ की संख्या तक अनिश्चित है, अर्थात् १ की संख्या पर १३० शून्य। यदि हम इन अणुओंको उत्पन्न करना चाहें तो हमें, इच्छित एक 'अणु' की प्राप्तिके लिए कमसे कम १ पर १०० शून्य — $१०^{१००}$ बार प्रयत्न करना पड़ेगा। साथ ही हमें यह भी अनुमान

करना पड़ेगा कि यदि एक अणुको प्रयोग द्वारा प्राप्त करना हो तो $१०^{७५}$ टन, अर्थात् १ पर ७५ शून्य टन द्रव्यकी आवश्यकता होगी। पर जहाँतक आजके विज्ञान सम्पन्न मानवका ज्ञात विश्व है — उसका सम्पूर्ण द्रव्य $१०^{४९}$ टन अर्थात् १ पर ४९ शून्यसे अधिक नहीं। यदि कुछ देरके लिए कल्पना कर ली जाए कि सम्पूर्ण विश्वका निर्माण ही Amino Acids द्रव्यराशिसे हुआ है, जैसाकि कदापि नहीं, तब भी ज्ञात विश्वमें इतना द्रव्य नहीं जिसके द्वारा एक भी प्रोटीन अणुका निर्माण सम्भव कर सकें। यदि यह मान भी लिया जाए कि विश्वकी संरचना Nucleic Acids के ही प्रारम्भिक संघटकों (Primary Ingredients of Nucleic Acids) से हुई है, तथापि यह निश्चित नहीं है कि उसका सामान्यसा स्वरूप (Simplest Nucleic Form) क्या एक अरब वर्षोंकी निरन्तर क्रियाशीलताके पश्चात् भी अस्तित्वमें आ पायेगा ? सम्भावना तो मात्र सम्भावना ही होती है, ऐसी अवस्थामें हम निश्चयपूर्वक यह भी कहनेकी स्थितिमें नहीं — पृथ्वीपर जीवनका आविर्भाव अनन्तकी एक घटना नहीं, ऐसी अवस्थामें यह कहना अधिक संगत होगा कि विश्वका मूलभूत द्रव्य ही अपने आभ्यन्तर स्वरूपकी दृष्टिसे जीवन विकासके प्रति समर्पित है। यदि आलङ्कारिक भाषामें कहा जाए तो यह कथन अधिक युक्तियुक्त होगा — विश्व स्वयं एक महद्गर्भकी तरह है, जो सर्वत्र इस जीवन विकासरूप महान् आश्चर्यसे गर्भित है। इस सन्दर्भमें गीताका कथन अत्यन्त स्पष्ट है —

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥[१४५]

इस विषयमें प्रोफेसर नोडाका कथन सिद्धान्तके स्थानपर आश्चर्यके तर्कसंगत धरातलपर प्रतिष्ठित है। इनके अनुसार — क्या सर्वदाके लिए, असम्भव ही सम्भव हो गया है, बिना किसी कारणके इससे आगे तर्कके लिए कोई स्थान ही नहीं है। पर इस स्थलपर निश्चित उत्तरके अभावमें वैज्ञानिक स्वयं विकल हैं। सम्भावना यदि है कि विश्वके यावन्मात्र द्रव्यके आभ्यन्तर स्वरूपमें जीवनको सम्प्रसूत करनेकी महती आकांक्षा विद्यमान है — Should the 'impossible' have

occurred, once and for all, without any reason, there is no room for further argument. But it is uncomfortable to have no answer at all. There remains the possibility that all matter in the natural world contains an inner urge to produce life.[१४६] यदि हम प्रथमको त्यागकर यह विकल्प स्वीकार करलें तो — यह मानना होगा — प्रकृति जीवन संरचनाके लिए सर्वदा प्रस्तुत है। वहाँ जीवन निर्माणके प्रति एक अदम्य आग्रह विश्वके अन्तसमें विद्यमान है। इससे लगता है — ब्रह्माण्डआयामी जीवनके भीतर एक अनिवार्य ऊर्जाआवेग है, जिसमें जीवनके सभी स्वरूपोंके निर्माणकी उद्दाम आकांक्षा है, जिसमें सभी प्रकारके प्रजातीय विकासकी मूलधाराका उत्स विद्यमान है। प्रोफेसर नोडाका तो यहाँ तक कथन है — सभी जड़-द्रव्य (Inorganic matters) स्वयं जीवनके प्रति उन्मुख और समर्पित होते हैं। महर्षि पतञ्जलिने योगीकी व्यष्टिभूत प्रकृतिके जात्यन्तर परिणाम पर कहा है — वही सत्य समष्टि प्रकृतिके जात्यन्तर परिणामके लिए भी सत्य है। महर्षिके इस कथनमें प्रोफेसर नोडाके सिद्धान्तका अन्तर्भाव बड़ी सहजतासे हो जाता है। एक द्रव्यावस्थासे दूसरी द्रव्यावस्थामें बदल जाना ही 'जात्यन्तर-परिणाम' है। 'प्रकृत्यापूरात्' — प्रकृति उपादान कारण है, प्रकृतिका कारणसे कार्यरूप अवयवोंके आकारमें भरने या प्रवेश करनेको 'प्रकृत्यापूर' कहते हैं। प्रकृतिका 'आपूर' पूर्ण होनेसे जात्यन्तरमें अर्थात् — अन्य जातिके रूप वा आकारमें परिणाम प्रस्तुत होता है। त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें तमस् जड़द्रव्य है, सत्त्व प्राण है — रजोगुण गति-वेग। कालपुरुषमें इतिहासपुरुषका प्राणप्रद जात्यन्तर परिणाम निम्नसूत्रके सिद्धान्तानुसार होता है — **जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्।**[१४७] कालपुरुषसे इतिहासपुरुष तकका विकास और उसकी समग्र कालयात्राका इतिहास त्रिगुणात्मक प्रकृतिके काल-सूत्रमें विद्यमान है। वही आगे चलकर विश्वके परिणामात्मक विकास क्रममें पहुँचकर इतिहासके रूपमें प्रस्तुत और प्रकट होता है।

४ – जैवद्रव्यका ब्रह्माण्डीय एवं पराब्रह्माण्डीय विकास

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥....
यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, ७-४,५ ; १३-२६)

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार इस प्रकार यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी अपराप्रकृति है, और हे महाबाहो ! इससे भिन्न जीवस्वरूपा मेरी पराप्रकृतिको जानो, जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है। ....हे श्रेष्ठ भरतवंशी ! स्थावर और जङ्गम जितने भी प्राणी उत्पन्न होते हैं, उनको तुम क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे उत्पन्न हुआ समझो।

१. जैवद्रव्यका समुद्भव – सिद्धान्त और समस्या

जैवद्रव्य अधिब्रह्माण्डीय पदार्थ है, जो प्राणतत्त्वका आश्रय लेकर व्यक्त होता है। जैव-विकास पृथ्वी तक ही सीमित नहीं, न यह मात्र पार्थिवतत्त्वोंका ही विकास है। समय-समय पर गिरते हुए उल्कापिण्डोंपर जैवद्रव्यके अस्तित्वकी छाप देखी गई है। यहीं तक नहीं, आज विज्ञानद्वारा अन्य ब्रह्माण्डोंपर भी कुछ अप्रत्यक्ष साक्ष्यों द्वारा जैव-विकासकी सुनिश्चित सम्भावनाएँ स्वीकार कर ली गई हैं। कुछ विज्ञानवेत्ताओंके अनुसार अदृश्य रॉकेटोंके द्वारा जीवन एक लोकसे दूसरे लोकोंपर पहुँच रहा है। कुछकी धारणा, है प्रकाशके माध्यमसे जीव-बीज

पृथ्वी तक आ रहे हैं। इस दिशामें २०वीं सदीके प्रारम्भमें कुछ अन्वेषण कार्य स्वीडेनके विख्यात भौतिकविद् Arrhenius, G. के द्वारा आरम्भ हुआ था, उन्होंने बीजकी सर्वव्यापकता (Panspermia) के सिद्धान्तको रखा। वह डार्विनवादियोंकी प्रचण्डताका युग था, अत: इस दिशामें नवीन अन्वेषणके पूर्व ही इस सिद्धान्तकी हत्या करदी गई। पिछले कुछ वर्षों पूर्व Francis Cric की, जिन्हें १९६२ में D.N.A. के मोलिक्यूलर गठनपर नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ, क्रान्तिकारी मान्यता नये रूपमें प्रकट हुई, जिसके अनुसार ब्रह्माण्डव्यापी जैवद्रव्य अदृश्य राकेटोंकी सहायतासे पृथ्वीपर आया है।[१४८]

विज्ञान आज सर्वत्र ब्रह्माण्डीय जैवद्रव्यके विषयमें बड़ी गम्भीरताके साथ सोच रहा है। F.Hoyle and Candra Wickramansinghe के उल्लेखनीय ग्रन्थ – Evolution from Space[१४९] एवं इसके पश्चात् हाल ही में प्रकाशित F. Hoyle की तथ्यपूर्ण नवीन कृतिने[१५०] इस सत्य और तथ्यको और भी प्रबल प्रखरता प्रदान की है। अमेरिकाके Astrophysical Journal में एक लेख प्रकाशित हुआ था,[१५१] जिसमें वैज्ञानिकोंके एक दलने आश्चर्यजनक खोजका उल्लेख किया है, जिसके अनुसार सैजिटेरिअस या धनुराशिमें स्थित गैसके बादल Sagittarius Interstellar Cloud में वर्णक्रमीय रेखा Spectral Line में एथिल अल्कोहल (Ethyl Alcohol) की उपस्थितिका पता चला है। विशेषज्ञोंका अनुमान है – वहाँ इतनी अल्कोहल विद्यमान है, जिसकी सहायतासे १०[illegible] बोतल ह्विस्की तैयारकी जा सकती है। यह अन्वेषण अन्तस्तारकीय जगत्में जीवनद्रव्यकी परम व्याप्तिकी केवल सूचना ही नहीं देता – यह भी सिद्ध करता है कि यह वहाँ भी है, जिससे सूर्य जैसे तारे निर्मित होते हैं। यह गैस क्लाउड नीहारिका है, जिससे सौर ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति होती है। धनुराशि (Sagittarius) आकाशगंगाके केन्द्रके पास स्थित है, भारतीयशास्त्रोंमें इस केन्द्रको विष्णुचक्र वा विष्णुलोक कहा गया है। भारतीय मतसे भी वहाँ एल्कोहल विद्यमान है। संस्कृतमें एल्कोहलके लिये 'मधु' शब्दका प्रयोग अतिप्रसिद्ध है। इस सन्दर्भमें ऋग्वेदकी सूचना निम्न प्रकार है –

..........विष्णो: पदे परमे मध्व उंत्स:।[१५२]

अर्थात् — विष्णुके परमलोक या स्थानमें मधुका उत्स विद्यमान है। मधु वा मद्यसे सर्वप्रथम असुर-प्राणकी सृष्टि होती है। इसीलिए इस प्रथम जैवसृष्टिका नामकरण भी इस द्रव्यके आधारपर रख दिया गया है —'मधुकैटभ'। अल्कोहलसे 'असुर' प्राणसृष्टिकी विज्ञानकथा पौराणिक वाङ्मयमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। महाशक्ति असुरप्राणका हरण करनेके लिये ही मधु व मद्यका पान करती है।

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।[१५३]

१९५९ में कोरनेल विश्वविद्यालयके दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक Cocconi, Guiseppe and Morrison Philip का एक क्रान्तिकारी लेख विज्ञानकी प्रख्यात पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित हुआ,[१५४] जिसके अनुसार अरबों वर्षोंके कालक्रममें सूर्य सदृश वातावरण वाले किसी ग्रहलोकपर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, फलत: वहाँ जीवनधारा प्रवाहित हो उठती है। एतत्सदृश परिस्थितियोंमें बहुत सम्भव है, अन्य लोकोंपर भी पृथ्वीसे बहुत पूर्व वहाँ वैज्ञानिक विकास हुआ हो। सम्भावना यह भी है, वे हमसे सभ्यता, संस्कृति और विज्ञानमें अधिक समुन्नत हों। अनुमान यह भी है — वहाँके अधिवासियोंने यह जान लिया हो कि यह ग्रह जैवविकासकी दृष्टिसे पर्याप्त सक्षम है, हो सकता है बहुत पूर्व ही हमसे सम्पर्क स्थापित करनेके लिये अपने संकेत प्रसारित किये हों। इन आचार्यद्वयके अनुसार इस संकेत सूचनाको सम्पूर्ण विश्वमें पुनरावर्तक प्रायिकताके वस्तुनिष्ठ मानक (Objective Standard of Frequency) पर जाँचा जा सकता है। यह परीक्षण २१ सेन्टीमीटरके तरंगदैर्घ्यपर निष्क्रिय हाइड्रोजनसे वर्णक्रमीय प्रसारणकी उत्सर्गरेखा (The region of the hydrogen emission line in the radio spectrum at 21 cm, 1420 MHz) द्वारा सम्भव है। इस शोधपत्रमें अन्तस्तारकीय दिक् (Interstellar Space) में पाये जाने वाले अवयवात्मक अणुओं (Organic Molecules) के अस्तित्व एवं उनकी पर्याप्त उपस्थितिके भी संकेत हैं। आज अन्तस्तारकीय दिक्में अवयवात्मक अणुओंकी परमव्याप्ति विज्ञानमें सर्वत्र सिद्ध हो चुकी है। इन नवीन अन्वेषणोंके आधारपर 'प्राणमय जीवन द्रव्यके' विश्वव्यापी प्रसारके भारतीय सिद्धान्तको भलीभाँति स्वीकार किया जा सकता है। पृथ्वीपर जैव-द्रव्यके विकास और इतिहासका स्वरूप आज विज्ञानके लिए स्वयं एक बहुत बडी समस्या बन गया है। इसका प्रधान कारण है

डारविनवादकी साम्प्रतिक शिथिल होती हुई नवीन स्थिति विगत चार-पाँच दशकोंमें कुछ ऐसे विकट प्रश्न चुनौती बन कर प्रस्तुत हो चुके हैं, जिनका तालमेल और सामंजस्य अबतकके विकासवादी चिन्तन और अन्वेषणसे कहीं नहीं हो पाता। उदाहरणके लिये कुछ सम्प्रश्न और समस्यायें इस प्रकार हैं –

(१) तापतत्त्वशास्त्रका द्वितीय नियम (Second Law of Thermodynamics) – तापतत्त्वशास्त्रके द्वितीय नियमानुसार विश्व बड़ी शीघ्रतासे प्रतिक्षण क्षयिष्णुताकी दिशामें बढ़ रहा है, ऐसी अवस्थामें विकास और विकासवादके लिए कोई स्थान नहीं।

(२) सम्भावना सिद्धान्त (Probability Law) – सम्भावना सिद्धान्तमें संरचनाका अनुपात ही अत्यन्त जटिल है। इसके अनुसार यदि एक वैक्टेरियमको द्रव्य-स्थितियों द्वारा नियोजित किया जाए – तो उसके अस्तित्वमें आनेकी सम्भावना एककी संख्या पर सौ अरब शून्योंकी सीमातक संदिग्ध है। ऐसी स्थितिमें विकासवादमें न प्राकृतिक चुनावके लिये ही कोई जमीन है, न शृंखलित विकास परम्पराके लिए ही कोई स्थान।

(३) जैवाणु विज्ञान (Molecular Biology) – जैवाणु विज्ञान D.N.A. और R.N.A. की रहस्यमय स्थितियोंके कारण विकासवादका कहीं भी समर्थन नहीं कर पाता, न कोई सेतु ही इन दोनोंके मध्य स्थापित हो पाया है।

(४) भ्रूण विज्ञान (Embryology) – इस शास्त्रमें अब विकासवादके लिए कोई भी स्थान नहीं, कुछ वर्ष पूर्वतक विकासवादी भ्रूणके विकास-क्रममें जैव-विकासके इतिहासको सजाते रहे हैं। अब न तो भ्रूणकी प्रथम अवस्थामें मछली है, न उभयचर, सरीसृप, स्तनधारी आदि। भ्रूणशास्त्रके दृष्टिकोणसे आज विकासवादियोंका यह मायाजाल सम्पूर्ण रूपसे हास्यास्पद प्रमाणित हो चुका है।

(५) समसंस्थान विज्ञान (Homology) – सदृश वा समसंस्थान विज्ञानमें

भी सारी स्थितियाँ सर्वथा बदल चुकी हैं। तुलनात्मक अस्थिशास्त्र (Comparative Osteology) के उपलब्ध नवीन निष्कर्षोंने अस्थियोंके तुलनात्मक सादृश्यके स्थानपर उनकी विसदृशताको ही सिद्ध कर दिया है, फलत: सदृशताके स्थान पर वहाँ पार्थक्य स्थापित हो गया, विशेषतया osteodontokeratic सन्दर्भोंमें।

६) प्रत्नअस्थिअश्म शास्त्र (Palaeontology) — जहाँ तक फासिल्स रिकॉर्डकी स्थिति है — वह और भी विषम हो गई है, प्राग् अस्थिअश्मसे प्राप्त होनेवाले नवीन निष्कर्ष विकासवादका समर्थन करनेके स्थानपर, इन प्राचीन मृतकसंग्रहालयों (Museum) के जन्तु-अस्थि-समुदायको विपरीत दिशामें ही सजा रहे हैं।

(७) आचार्य Miller, S. द्वारा प्रस्तुत — आदिम समुद्रमें जीवनके रासायनिक संश्लेषणका सिद्धान्त, जिसके अनुसार डार्विनका विकासवाद कहीं भी स्थापित नहीं हो पाता।

(८) सहज प्राणिज-विकासके स्थानपर जटिल प्राणिज-विकासके सिद्धान्तकी स्थापना (Problem of Eukaryotes and Prokaryotes), जिसके अनुसार विकासवादका आधारभूत सिद्धान्त ही खण्डित हो जाता है।

(९) स्वतन्त्र प्राणिज-विकासका सिद्धान्त — जिसके अनुसार सरीसृप और स्तनपायी प्रजातियोंका वर्तमान विकास अपने पूर्ववर्त्ती विकाससे कहीं भी शृंखलाबद्ध नहीं, वह स्वतन्त्र है।

(१०) बीजके लोकान्तरसे आगमनद्वारा जीवनके पार्थिव विकासका सिद्धान्त — जो विकासवादकी मूलधारणाको ही बदल देता है।

(११) तीन अरब वर्ष पूर्व पृथ्वीपर जैव-द्रव्यका अस्तित्व — जिसके आधारपर डार्विन और मिलर दोनोंके सिद्धान्त अस्वीकृत हो जाते हैं।

(१२) सौरऊर्जाके बदलते हुए स्वरूपके अनुसार पृथ्वीपर होनेवाले जैवविकासका सिद्धान्त।

(१३) साढ़े चार अरब वर्षोंका भूपर्यावरणका बदलता हुआ इतिहास, जिसके अनुवर्तनके अनुसार पृथ्वीपर जैवविकासके प्रवर्तनका सिद्धान्त।

(१४) पृथ्वीकी उत्पत्तिके पश्चात् उसके बदलते हुए गुरुत्वाकर्षणके अनुसार होने वाले जैव-विकासका आधार और सिद्धान्त।

(१५) प्रोटीन-सिंथिसिसके सिद्धान्तानुसार साढ़े सात करोड़ वर्ष पूर्व मानवीय अस्तित्वकी सम्भावनाका सिद्धान्त।

इस प्रकारके कितने ही सम्प्रश्न और सिद्धान्त हैं, जिनको हमने विस्तारसे मूलग्रन्थमें प्रस्तुत कर दिया है। इन प्रश्नों और सिद्धान्तोंकी प्रबल चुनौतियोंके समक्ष डार्विन द्वारा सजाया गया जैव-विकासका इतिहास शतछिद्र हो चुका है। यह ग्रह प्रकृतिकी एक अतिविकसित प्रयोगशालाकी तरह है, जहाँ सुदूर ब्रह्माण्डीय यात्राके अनुसार घूमते हुए नये बीज पृथ्वीपर आते रहते हैं और इस प्रयोगशालाके नियन्त्रित पर्यावरणके अनुसार उनका वैज्ञानिक विकास होता रहता है।

२. जीवात्मा और विश्व

सृष्टिके प्रलयकालमें जैव-द्रव्य प्रकृतिसे बहिर्भूत होता हुआ 'चेतना' रूपसे पृथक् हो जाता है, जिसे पुरुष कहते हैं। समझनेकी दृष्टिसे इसे अनन्त चेतनाका निकाय वा अयन कहना अधिक समुचित होगा। यह प्राणमय है। प्रलयकालमें तीनों गुण समत्वको प्राप्त होते हुए, प्रकृतिको एक स्थिर-सन्तुलन तक ले आते हैं। इस सन्तुलनपर प्रकृति जैवप्राणको अपनेसे पृथक् करती हुई ही पहुँच पाती है। सृष्टिकालमें जैवप्राण उसे संक्षुब्ध करता हुआ आच्छादित कर लेता है। फलत: पुन: जैवप्राणोंके संस्कारलभ्य संश्लेषणद्वारा पूर्वसदृश सृष्टिका विकास प्रारम्भ हो जाता है। विश्वके निर्माण और संहारका प्राकृतक्रम एक स्वचालित यन्त्रकी तरह निरन्तर गतिशील रहता है। प्रकृतिका महान् सन्दोलन घड़ीके दोलकयन्त्रकी तरह सर्वदा गतिशील है। प्रत्येक सृष्टि-चक्रमें जैव-द्रव्यकी दो गतियाँ देखी जाती हैं, इनमें एक तो वह है जो संस्कारधाराके क्षय द्वारा प्रकाशपथ (शुक्ल मार्ग) का अवलम्बन करती हुई, प्राकृतसत्ताका अतिक्रमण कर परमसत्तामें सदाके लिए विलीन हो जाती है, प्रकृतिके प्राणचक्रमें इसका पुनरावर्तन नहीं

होता — **न च पुनरावर्तते**।[१५५] शेष-संस्कार संचालित जैव-पदार्थ तम:पदार्थका आश्रय लेकर कृष्णपथका अवलम्बन करता हुआ — प्राणतत्त्वके माध्यमसे पुन:पुन: उत्पन्न होता रहता है। प्रकृतिकी महती प्रयोगशालामें बार-बार एक प्राकृत देहसे अन्य प्राकृत देहमें जीवका गमनागमन होता रहता है। सृष्टिके सन्दोलन-चक्रमें जैवद्रव्य देह-मूर्तियोंको बदलता हुआ — अन्तमें पुरुषोत्तमतत्त्वमें विलीन हो जाता है, जो एक विश्वातीत परमसत्ता है। इस देहान्तरप्राप्तिके क्रममें घूमता हुआ जैव-द्रव्य अन्य जीवोंकी सन्तान परम्पराको जन्म देता है, जिसके फलस्वरूप प्रकृतिमें जैव-द्रव्य कभी समाप्त नहीं हो पाता। जड़धर्मितासे मुक्त होनेके पूर्व वह प्रकृतिमें सन्तानपरम्पराके रूपमें जिस नवीन जैव-द्रव्यका निक्षेप करता है, उस नवीन द्रव्यकी संस्कारधारा पुन: अस्तित्वमें आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप प्रकृतिका पुन: नया सन्दोलन प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार पुरुषरूप जैव-द्रव्य कभी समाप्त नहीं हो पाता — न सृष्टिके सन्दोलनचक्र ही रुक पाते हैं। गीतामें कहे गए भगवान्के इस महावाक्य — **जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्** का यही परम तात्पर्य है।

३. प्राणतत्त्वका स्वरूप और विकास

गुणक्षोभके समय प्राणस्वरूप जैवायतन प्रकृतिके साथ एकाकार होता हुआ — सर्वप्रथम महत्तत्त्वके रूपमें प्रकट होता है। महत्तत्त्वकी अभिव्यक्ति उसकी प्रयोजनवती वासनास्वरूपा महती इच्छा है, जिसमें अनन्त जीवोंकी संस्कारधर्मिता महतीचेतनाके रूपमें जागृत हो उठती है। जैवद्रव्य महत्तत्त्वमें तमोद्रव्यके साथ एकाकार है, उससे पृथक् नहीं। वासनाओंके प्रयोजनप्रत्ययकी सामूहिकता उसे अहंकार-तत्त्वमें बदल देती है। अपने इस द्वितीय परिणाममें पहुँच कर सामूहिक चेतना इतनी निबिड़ और घन हो उठती है कि वह स्वयं ही भोक्ता और भोग्य दो भागोंमें विभक्त हो जाती है, इसे यों भी कहा जा सकता है — प्राणमयतत्त्व ही दो भागोंमें विभक्त हो जाता है — **सत्त्वमात्रात्मिकां तनुम्** और **तमोमात्रात्मिकां तनुम्**। इनकी मात्रासे ही भिन्न-भिन्न प्रकारके भूतद्रव्योंकी सृष्टि होती है — **उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे**।[१५६] सत्त्वगुणसे इन्द्रिय-चैतन्य और तमस्से भूत-द्रव्यका निर्माण होता है। रजोगुणका बलमात्रक नवधा या दशधा विभक्त होकर सृष्टिके विकासको आगे बढ़ाता है। बृंहणधर्मी ब्रह्माकी यही प्राणरूपा

नौ या दस सन्तानें हैं। प्राणका ही दूसरा नाम ऋषि है, जो रजोगुणी ब्रह्माकी मानसिक वा महत्तत्त्व प्रधान सृष्टि है, यही पौराणिक परम्परामें ब्रह्माके नौ मानसिक पुत्र कहे गये हैं। विश्वकी जड़-चेतनात्मकसत्ता प्राणतत्त्वके द्वारा अस्तित्वमें आती है, इसमें जैवविकासकी दृष्टिसे मुख्य प्राणका नाम वसिष्ठ है। दशधा ऋषिप्राणका संगठित स्वरूप कश्यपप्राण वा ऋषि है; अदिति अखण्ड प्रकृतिका नाम। 'क' जल वा रस है — कश्यप सोमगर्भित प्राणतत्त्व। प्राण रस या जलका आश्रय लेकर व्यक्त होता है। प्रकृतिमें रसस्वरूप प्राणतत्त्वके योगसे जैव-विकास होता है, इसीलिये जैव-द्रव्य अदिति और कश्यपकी सन्तान परम्परा है। मुख्यप्राणकी जैव-सृष्टिके अनुसार वसिष्ठ तत्त्वदृष्टिसे मित्र और वरुणका रससमाश्रित स्वरूप है, रससमाश्रित प्राणका नाम जीव। जब इसका मिथुन उर्वशी अप्सरासे होता है — तब उस रेतस् स्खलनसे जैवसृष्टि होती है। अप्सरा का अर्थ जलमें रंहण करती हुई या जलमें प्रविष्ट सूर्यकिरण है, वहाँ इस प्रधान किरणका अभिधान उर्वशी अप्सरा है। उर्वशीपदकी निरुक्ति है — 'उरु+अश्नुते=व्याप्नोति' अर्थात् अनेक प्रकारसे व्याप्त होने वाली, इसका वैसे एक अर्थ 'दिशा' भी है। 'अप्' जलका पर्याय है — संचार या संचरणके अर्थमें आता है, यही अप्सरा शब्दका व्याकरण है। सूर्यकिरणका जलमें रंहण वा संचरण या अन्तर्मन्थन होता है — तब जैवद्रव्यकी उत्पत्ति होती है। कहनेका तात्पर्य है — प्राण, जल और सूर्यकिरण इन तीनके संयोगसे जैव-द्रव्य उत्पन्न होता है। विज्ञान आज जल और सूर्यकिरणके अर्थ तक ही परिसीमित है, पर भारतीय मतसे सूर्यकिरणमें निविष्ट प्राणतत्त्व ही इस विकासका प्रधान हेतु है। जल और अग्नि तो उसकी अभिव्यक्तिके आश्रयमात्र हैं, जिनसे जीवकी देहधातुका निर्माण होता है। इन दोनों तत्त्वोंका समाश्रय ही देह है। किरणमें प्राण अग्निरूपसे व्याप्त हैं। लोक ब्रह्माण्डमें सूर्य प्रजातीय विकासका आधारभूत केन्द्र है, जिससे प्राणतत्त्व का उदय होता है —

प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।[१५७]

सूर्य ही सृष्टिमें प्रजाओंके प्राणरूपसे उदित होता है।

सौर-विश्वमें सूर्य ही प्राणोंका अयन या आयतन है — ....**प्राणानामायतनम्**[१५८], इसलिए श्रुति पूर्वमन्त्रमें उसे 'प्राण' कह कर सम्बोधित करती है — **आदित्यो ह वै प्राणः।**[१५९] सूर्य ही समस्त प्राणों को अपनी

किरणोंमें धारण करता है – .....**तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।**[१६०] यहाँ अपने मण्डलमें स्थित वैश्वानर अग्नि, मण्डलके बाहर यही विश्व-प्राण हो जाता है – **स एष वैश्वानरो विश्वरूप: प्राणोऽग्निरुदयते।**[१६१] विज्ञान सूर्यको जलती हुई गैसका गोला कहता है – वेदमें इसके मण्डलको यजुष् कहा गया है – **अथ य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुष: सोऽग्नि:। तानि यजूंषि। स यजुषां लोक:।**[१६२] यजुष् शब्द 'यत्' और 'जू:' से बना है, जिसका अर्थ है – अग्नि और वायु, अर्थात् सूर्यमण्डलमें अग्निगर्भित वायु है, इसका ही नाम विज्ञान अनुमोदित गैस है। सूर्य लोकब्रह्माण्डका अपौरुषेय वेद है, सभी मूर्तिमान (पदार्थ) ऋग्वेद से उत्पन्न हैं, बाहरकी ओर फैले हुए व बहिर्वितत तेजोमण्डलका नाम सामवेद। इन दोनोंका मध्यवर्ती प्राण-तत्त्व यजु: है। इन तीनोंका अधिष्ठाता ब्रह्मा अथर्व है। यही भगवान् तित्तिरिका मन्त्र दर्शन है –

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहु:
सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेज: सामरूप्यं ह शश्वत्
सर्वं हि ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥[१६३]

यह चतुर्थ ब्रह्मा ही सोमरूप अथर्ववेद है।

४. जीव-बीज और गति

जीव प्रकृतिसे सर्वथा भिन्न होते हुए भी प्राणके आश्रयसे भूतद्रव्य (पञ्चमहाभूत)के आश्रित हो जाता है। अत: विज्ञान उसे प्रकृतिसे भिन्न न मानकर उससे उत्पन्न स्वीकार करता है। इस दृष्टिसे वह अभी तक आचार्य बृहस्पतिके चार्वाक दर्शन तक ही पहुँच पाया है, जिसके अनुसार जैव-द्रव्य चार भूततत्त्वोंका ही विकार है। जीव प्रकृतिका न गुण है न परिणाम, वह उससे सर्वथा भिन्न पदार्थ है। प्रकृतिमें गुणक्षोभ जैव-द्रव्यके कारण होता है, फलत: वह उससे संयुक्त होती हुई, उसे आच्छादित कर लेती है। उसके ही चैतन्यसे चेतनवती होती हुई – उसीकी अभिव्यक्तिके लिए विश्वरूपमें विकसित होती है। प्रकृति स्वयं जड़ है, चेतनके आश्रयके अभावमें वहाँ परिणाम क्रिया सम्भव नहीं। प्रजातीय

विकासके क्रममें स्थूलदृष्टिसे जीव-प्राण और भूत-द्रव्य आपाततः एक ही दिखलाई देते हैं। पर जीवकी विकासात्मक अभिव्यक्ति प्राणतत्त्वके आश्रयसे प्राणमय होकर ही होती है। इसे जीवकी बीज अवस्था भी कहा गया है। प्राणजीव दो प्रकारके हैं — इनमें एक तो वे हैं जो बीज रूप हैं, जो अभी तक योनि-प्रवर्तनके क्रम तक पहुँच ही नहीं सके, दूसरे प्रकारके बीज वे हैं जो योनि-चक्रमें घूमते हुए — पुनः पुनः नवीन देह प्राप्त करते रहते हैं। भूताश्रय दोनों प्रकारके बीजों के साथ है, पर योनिचक्रमें घूमते हुए जीव-बीजोंके साथ सूक्ष्म-भूताश्रयसे युक्त सूक्ष्मदेह है — सूक्ष्मदेहके द्वारा ही ये योनि परिवर्तन करते हैं। प्रकाशके माध्यमसे ब्रह्माण्डीय सीमाओंमें घूमने वाले बीज भूताश्रयकी दृष्टिसे — तेजस्काय या प्रकाशदेही हैं। अतः प्रकाश रश्मियोंमें उनका संवहन कभी बाधित नहीं हो पाता — उनकी स्थिति वहाँ परादृश्य वा अल्ट्रावायलेट है। वे प्रकाशके माध्यमसे बड़ी सहजताके साथ एक ब्रह्माण्डसे दूसरे ब्रह्माण्डमें पहुँच जाते हैं। जो बीज 'मुक्त' हो चुके हैं, वे प्रकाशरूप होते हुए या प्रकाशपथ (देवयान) का अवलम्बन करते हुए — प्रकृतिकी ब्रह्माण्डीय सीमाओंसे परे पहुँच जाते हैं। भूताश्रयके गुरुत्वधर्मसे युक्त बीजोंकी पहुँच अधिकसे-अधिक अपने ब्रह्माण्डके चन्द्र-मण्डल तक ही हो पाती है। उनमें गुरुत्वधर्मी कृष्णद्रव्यकी प्रधानता है, वे कृष्ण-द्रव्यके पथसे ऊपर नहीं पहुँच पाते, उनपर गुरुत्वाकर्षणका प्रभाव यथावत् विद्यमान है, जिनमें यह कृष्ण-द्रव्य या तमस् और भी प्रबल है, वहाँ गति नहीं, वे पृथ्वीके पर्यावरणसे ऊपर नहीं उठ पाते। उनका योनि परिवर्तन पृथ्वीपर ही बार-बार होता रहता है। जीवकी गतिके दो ही पथ हैं — (१) शुक्ल, और (२) कृष्ण —

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥[१६४]

जीव-बीजके आश्रय भी भिन्न-भिन्न हैं, किसीका आश्रय वायुतत्त्व प्रधान है, किसीमें तेजस्तत्त्व, किसीमें जल और पृथ्वीतत्त्वका प्राधान्य है। पृथ्वीसे वायु-मण्डल तक सभी प्रकारके जीव प्राप्त होते हैं। स्थावर जीव पृथ्वीतत्त्व प्रधान हैं, वहीं मानवादि जीवोंमें जलका प्राधान्य है। प्रेतादि वायु प्रधान जीव हैं, देवोंका दिव्य देह तेजस्तत्त्वके प्राधान्यसे युक्त है। भारतीय मतसे यह आकाशगंगा जैवप्राणसे ओत-प्रोत है, सूर्य-तारकादि आग्नेय प्राणके महागार हैं। ये आकाशगंगाके

केन्द्र वा विष्णु-चक्रकी परिक्रमा करते समय वहाँ फैले हुए जैवप्राणको इन्धनके रूपमें ग्रहण करते हैं। जैवप्राण उनके मण्डलमें पहुँच कर आग्नेयप्राणमें बदल जाता है और यह ही कालान्तरमें मरीचि प्राणके रूपमें मण्डलसे पृथक् होता हुआ भिन्न-भिन्न लोकोंमें पहुँच जाता है। मण्डलसे बहिर्भूत होनेवाली दो किरणों — 'वृषाकपि' एवं 'ऋभु' — के माध्यमसे यह कार्य सम्पन्न होता है। आकाशगंगाके केन्द्रभागका तत्त्ववाचक नाम भारतीय शास्त्रोंमें 'विष्णु-चक्र' या 'विष्णु-हृदय' है। वहाँ दो बिन्दुओंका अस्तित्व है — एकको, जिसका सम्बन्ध जैव-चैतन्यसे है, 'कौस्तुभ' कहा गया है। दूसरा सोमरूप सौम्य या भृगुप्राण है, जो पुराणोंके कथाभागमें 'श्रीवत्स' भृगुके — चरणचिह्नके रूपमें वर्णित है। आकाशगंगामें सनातनभावसे इन दोनों केन्द्रोंके द्वारा जैवप्राणरूपके संश्लेषित द्रव्यका उत्सर्जन होता रहता है, जिससे ब्रह्माण्डीय प्राणोंकी सृष्टि होती है।

५. ऋषिप्राणका आवर्तन और ब्रह्माण्डीय जीवनकी सोमधाराका विकास

सृष्टिके प्राण-यज्ञका प्रथम हवनकुण्ड सूर्य है, इसीमें ऋषि प्राणोंकी आहुति होती रहती है। ऋषि शब्दके यहाँ तीन अर्थ हैं — (१) आधिभौतिक दृष्टिसे एक अर्थ प्रकाश है, (२) आध्यात्मिक दृष्टिसे दूसरा प्राण और (३) आधि-दैविक दृष्टिसे उसका तीसरा अर्थ सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा। कुल मिलाकर कहा जाए तो वह विश्व-चैतन्यकी प्रकाशस्वरूपा महाप्राणसत्ता है। यह प्राणसत्ता ही बीजरूपसे लोक-ब्रह्माण्डोंपर प्रकट होती है, वही आगे चलकर जीव-द्रव्यके रूपमें विकसित हो जाती है। बीज शब्द ही वर्ण विपर्ययसे जीव बन गया है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें उसके आदित्यमण्डलसे पृथक् होनेवाली सात व प्रकारान्तरसे नौ या दस प्रकारकी रश्मिधाराएँ हैं, जब ये पृथ्वी आदि ग्रहोंसे संयुक्त होकर जैवद्रव्यकी सृष्टि करती हैं, तब प्राण कही जाती हैं। इनके ही विभिन्न पार्थिव संश्लेषणोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी जैव-प्रजातियोंका विकास होता है। इनमें प्रथम 'भृगु' सोम है, जिसकी निरन्तर आहुति सूर्यमें लगती रहती है, आहुतिके अनन्तर वह मण्डलमें पुलह और पुलस्त्य दो भागोंमें बँटता हुआ, मण्डलको एक यज्ञकुण्डमें बदल देता है, इसीका नाम क्रतु है, वैसे क्रतु शब्दका अर्थ है — यज्ञ। पुलहका अर्थ है, उत्तेजित अवस्था; अग्निके संयोगसे वह मण्डलमें प्रज्वलित हो उठता है — यही उसकी पुलह अवस्था है। पुलस्त्य इसकी और भी प्रचण्ड अवस्था है —

फलतः मण्डल एक परम प्रज्वलित हवनकुण्डमें बदल जाता है। यह सूर्यका यज्ञमयस्वरूप है, जो क्रतु पदसे यहाँ लक्षित है। मण्डल, दहनकी इस प्रचण्डताके बिन्दु पर, आंगिरस व अंगाररूप हो जाता है – उसके ही तैजस्‌का अर्चिरूप प्राचुर्य किरणोंके रूपमें मण्डलसे पृथक् होता हुआ – मरीचिके नामसे पहचाना जाता है। चन्द्रमण्डलपर पहुँचकर यह सम्पूर्ण रूपसे 'प्राणतत्त्व' में बदलकर पृथ्वीकी ओर उन्मुख होता है – तब उसका नाम 'दक्षप्रजापति प्राण' हो जाता है। प्रत्येक ग्रहके साथ एक या इससे अधिक चन्द्रमण्डल हैं। उन मण्डलोंसे प्रत्यावर्तित होता हुआ मरीचिरूप दक्षप्राण अपने-अपने ग्रहोंकी ओर उन्मुख होता है। यदि उस ग्रहपर अग्नि और वसिष्ठ दो तत्त्व उसे मिल जाते हैं – तो वहाँ दक्षप्राणका प्रजातीय विकास प्रारम्भ हो जाता है। कहीं वसिष्ठ प्रबल है तो अग्नि क्षीणप्राय है, कहीं यह क्रम विपरीत भी है। अतः प्राणतत्त्व वहाँ सम्यग्भावसे बीजमें बदल नहीं पाता। अग्नि जहाँ सौर-प्राण है, वहाँ वसिष्ठ जल-तत्त्व प्रधान सौम्य-प्राण है। पृथ्वीपर ये दोनों ही प्राण सन्तुलित अवस्थामें विद्यमान हैं, इसलिए दक्षप्राणकी प्रजातीय-सृष्टिका विस्तार यहाँ सम्भव हो पाता है।

इस समष्टि प्राण-संस्थाका नाम कश्यप है। कश्यप पदके दो अर्थ हैं – यहाँ प्रधान रूपसे 'क' का अर्थ जल है, जीवनका विकास जलसे होता है, इसीलिए यह सृष्टि काश्यपीय है। दूसरा अर्थ है – **कश्यपः पश्यको भवति** – विश्व-चैतन्य ही जीवरूपसे द्रष्टा व क्षेत्रज्ञ है, इस अर्थमें भी आधिदैविक दृष्टिसे यह पद यहाँ सार्थक है। तीसरा (कश्यप या कच्छप) कछुआ उभयचर प्राणी होनेके कारण इस गौणअर्थमें भी यह प्रयोग समुचित है, वैसे इस पदके अन्य भी महत्त्वपूर्ण अर्थ हैं। तत्त्वतः सृष्टिका विकास दो स्तरोंमें विभक्त है – (१) ब्राह्मीसृष्टि और (२) मानवीसृष्टि। ब्राह्मीसृष्टि प्रकृतिकी बृंहणधर्मा उपादानभूता संरचना है – जिसमें इन्द्रिय, तन्मात्रा और पञ्चभूत प्रधान हैं, साथ ही इनसे विकसित होनेवाले ब्रह्माण्ड-पिण्डोंका भी ग्रहण है। मानवीसृष्टिमें इन्द्रियजगत्‌की चैतन्यसत्ता ही मनोरूपसे प्रधान होती हुई – जिन भूतादि उपादानोंको आच्छादित करती है, उनके द्वारा जो विशेष प्रकारकी प्राणसत्ता अस्तित्वमें आती है, उसीका नाम ब्राह्मीसृष्टिसे सम्भूता प्राणतत्त्वप्रधाना मानवीसृष्टि है ; जो कालान्तरमें जैव-प्राणधाराके प्राणिज प्रजातीयविकासके रूपमें विकसित होती है।

ऋषि शब्दके यहाँ सन्दर्भभेदसे छ: अर्थ हैं — (१) गति, (२) श्रुति, (३) सत्य, (४) तपस् (५) किरण और (६) प्राण। ऋषि शब्द गति अर्थमें प्रसिद्ध है, जो प्राणतत्त्वका उपलक्षक है। जीवनका विकास प्राणतत्त्वसे होता है। एक ही प्राण-संस्था दो भागोंमें विभक्त हो जाती है — (१) अग्निप्राण और (२) सोम या सौम्यप्राण। इनके संयोगसे ही **अग्नीषोमात्मक** जैव-विकास अस्तित्वमें आता है। अग्नि-प्राण ऋषि है, सोम-प्राण दक्ष। इसीलिए अग्निप्राणके नवधा स्वरूपके साथ दक्ष या सोमप्राणके मिथुनसे सृष्टिके विकासका सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इसमें प्रथम प्राण अंगिरा है — **त्वमग्ने अङ्गिरा प्रथम ऋषि:**। अशरीरिणी वाक्का जो भाग दृश्य-अग्निमें सम्मिलित रहता है, वही अत्रिप्राण या ऋषि है। भृगु और अंगिराके संयोगसे जलतत्त्वकी उत्पत्ति होती है — **आपो भृग्वङ्गिरोरूपमापो भृग्वङ्गि-रोमयम्** (गोपथ ब्रा० पू० २३९) जलतत्त्वसे सम्बन्ध होनेके कारण ही — भृगुको वारुणि वा वरुणपुत्र कहा गया है — **भृगुर्वै वारुणि:**। अंगिराप्राण अपनी ब्रह्माण्डीय व्याप्तिमें तीन रूपोंमें व्यक्त होता है — (१) अग्नि, (२) यम और (३) आदित्य। सूर्यमण्डलमें अर्चि ही भृगु है, अंगारसे अंगिरा एवं अशरीरिणी वाक् ही अत्रि है —

अर्चिषि भृगु: सम्बभूव अङ्गारेष्वङ्गिरा:।
अत्र व तृतीयमृच्छत इत्यूचु: तस्मादत्रिर्नाम॥[१६५]

जगत्की पूर्व अवस्थामें जो ऋषि विद्यमान थे — वे ही प्राणियोंमें अध्यात्मरूपसे प्रविष्ट होते हैं। वे ही शरीरमें सात-सात भागोंमें विभक्त होकर उसका धारण पोषण करते हैं। वहाँ प्राण वसिष्ठ है, मन भरद्वाज, चक्षु ही जमदग्नि है — **प्राणो वै वसिष्ठऋषि:, मनो वै भरद्वाजऋषि:**[१६६] **चक्षुर्वै जमदग्निऋषि:**[१६७] आदि। दो प्राणोंका मिश्रण न हो वही ऋषितत्त्व है, जहाँ मिश्रण हो जाता है — उसे देवता कहते हैं। इसीलिए देवता ऋषियोंकी सन्तान हैं, चाहे विष्णु या सूर्य हों या इन्द्र। विष्णु और वायुपुराणकी परम्पराके अनुसार उनके नाम (१) भृगु, (२) पुलस्त्य, (३) पुलह, (४) क्रतु, (५) अङ्गिरा, (६) मरीचि, (७) दक्ष, (८) अत्रि और (९) वसिष्ठ हैं। भागवतके अनुसार दशम नारद हैं। ब्रह्मा और दक्ष इन दो तत्त्वोंके योगसे जगत्की संरचना होती है। ब्रह्मा क्षर पुरुष है, दक्ष त्रिगुणात्मक प्रकृतिका नाम। इसमें पुरुषप्रधान सृष्टि — ऋषि, पितृ और देवक्रमसे चलती है, प्रकृति वा दक्ष वहाँ उपादान रूप है। दक्षकी ६० कन्याएँ अर्थात्

प्रकृतिकी ६० शक्तियाँ ऋषितत्त्वसे संयुक्त होकर संरचनात्मक विकासको जन्म देती हैं। इनमें प्राधान्य सात ऋषियोंका है, शेष दोका उन्हींमें अन्तर्भाव हो जाता है। प्रकृति तत्त्वत: जड़ नहीं, चेतन है। इसीलिए उसे शक्ति कहा गया है। यह शक्ति या ऊर्जा ही अचेतन द्रव्य बन जाती है। सप्तप्राण ही यज्ञरूप होते हैं, विश्व-यज्ञ इन सप्त प्राणोंपर ही आधारित है —

सप्त प्राणा: प्रभवन्ति तस्मात्
सप्तार्चिष: समिध: सप्त होमा:।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिता: सप्त सप्त ॥[१६८]

महासत्तासे सात प्राण उत्पन्न होते हैं, अग्निकी सात शिखाएँ हैं, विषयरूप सात समिधाएँ, सात प्रकारके सृष्टि-यज्ञ, समष्टि विश्वके सात लोक, उसी प्रकार व्यष्टि विश्वके सात इन्द्रिय लोक, जिनके भीतर प्राण विचरण करते हैं। हृदयगुहामें निवास करनेवाले ये सात समुदाय उसीके द्वारा सभी प्राणियोंमें स्थापित किये गये हैं। इनके द्वारा ही यह सर्वरूप विश्व अस्तित्वमें आता है। अगले मन्त्रमें श्रुतिने नाम निर्देशके साथ इन विविधताओंको गिना दिया है। इससे ही सारे समुद्र, पर्वत उत्पन्न हुए हैं, इससे ही समस्त नदियाँ प्रवाहित होती हैं, इससे ही औषधियाँ और रस जन्म लेते हैं, इसके द्वारा ही वे अस्तित्ववान् हैं, यही सबकी अन्तरात्मा है, जो सबके हृदयमें विद्यमान है —

अत: समुद्रा गिरयश्च सर्वे-
ऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धव: सर्वरूपा:।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥[१६९]

प्रकृति विशुद्ध शक्ति है, गुण विक्षोभका अर्थ है शक्ति वा ऊर्जाका विक्षोभ, यही विश्व-प्राणका विक्षोभ है। इससे दो तत्त्व व्यक्त होते हैं — जड़ और चेतन। एक ही चेतना सात प्राणचेतनाओंमें विभक्त हो जाती है। तत्त्वत: इन्द्रियाँ सात हैं — (१) श्रोत्र, (२) नेत्र, (३) त्वक्, (४) रसना, (५) प्राण, (६) वाणी और (७) मन। शेष चार इन्द्रियाँ गौण हैं, क्योंकि प्राणरूप ऋषि सात

हैं। विश्वका मूल कारण चेतना या चेतनपदार्थ है। ब्रह्मसूत्रके अनुसार सभी उपनिषद्श्रुतियाँ समान रूपसे चेतनाको ही जगत्का कारण स्वीकार करती हैं — **गतिसामान्यात्** सूत्रका यही तात्पर्य है।[१७०] इस विषयमें वेदका भी यही अभिमत है — **श्रुतत्वाच्च**[१७१] **अत एव प्राण:**[१७२] के द्वारा आदिकारण उस चेतनाको ही बतलाया गया है। छान्दोग्यश्रुतिका स्पष्ट अभिमत है — **सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते**....... — निश्चय ही ये सब भूत प्राणमें ही विलीन होते हैं और प्राणसे ही उत्पन्न होते हैं।[१७३] यह प्राणतत्त्व प्राणवायुसे भिन्न परमसत्ताका ही एक पर्याय है। अत: प्राण ही विश्वकी आधिभौतिक सत्ताका मूल वा आदिकारण है। प्राणका प्रधान धर्म है — शरीरको धारण करना, चाहे वह विश्वरूप समष्टि देह हो या जीवरूप व्यष्टि देह — **अथ खलु प्राण एव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्योत्थापयति**।[१७४] समस्त स्थूल और सूक्ष्म जगत्के मूलमें प्राण-शक्तिका ही स्पन्दन विद्यमान है। विज्ञानने पिछले दिनों भौतिकतत्त्वोंके शक्तिस्पन्दित स्वरूपकी पहचान प्राप्तकी है। विश्व शक्तिके बहुविध स्पन्दका संघात है। सूर्य-चन्द्र-तारे-अणु-परमाणु प्राणशक्तिके स्पन्दके परिणाम हैं। वह शक्ति ही अन्तर्जगत्में विचारों, इच्छाओं और बहुविध भावोंमें व्यक्त होती है। प्राण ही जीवन है। विश्वमें जो एक ऋतस्वरूपा नियमबद्धता देखी जाती है, उसका एकमात्र कारण प्राणका लयबद्ध स्पन्दन है।

चेतना और जीवनका सहअस्तित्व है। वेदान्त दर्शनके अनुसार कुछ भी निर्जीव नहीं, परमाणुमें ऋण और धन विद्युत् अभियुक्ति उसी चेतन शक्तिका स्पन्दन है। वहाँ भी गति है, गति ही जीवनकी प्राणशक्ति है। विश्व एक सचेतन और संजीवित महाप्राण सत्ता है। विश्व-पुरुषके हृदयमें स्पन्दित होनेवाली शक्ति ही प्राण है, इससे ही अनन्त शक्तिधाराका महास्पन्द प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार एक बीजमें वृक्षरूपसे प्रस्फुटित होनेकी अपार शक्ति है, उसी प्रकार विराट्पुरुषके प्राणतत्त्वमें विश्वरूप महावृक्षके विकासकी अपरिमित शक्ति निहित है। वह उसका ही रूप है, उससे पृथक् नहीं। शक्ति और शक्तिमान् अभेद और अभिन्न हैं। विश्व उस अभिन्न पुरुषशक्तिसे ही उत्पन्न होता है, उसमें ही स्थित है, उसका निरोध भी उसीमें सम्पन्न होता है।

भगवान् व्यासका भागवतमें निष्कर्ष रूपसे यही कथन है —

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवा: ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै
प्रादेशमात्रं भवत: प्रदर्शितम् ।।[१७५]

विश्व परमपुरुषकी सचेतन महाकाल-यात्रा है। महाकाल संहितामें संविदाकार महाशक्तिका स्वरूप विश्वचेतनाके परिप्रेक्ष्यमें इस प्रकार स्पष्ट हुआ है —

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्तैकमूर्ति: ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ।।[१७६]

महाशक्ते ! तुम अचिन्त्य तथा अमित आकारवाली हो, या अचिन्त्य एवं अमित स्वरूपा ब्रह्मकी शक्ति हो, किंवा बड़े शिल्पियोंसे अचिन्त्य तथा अमिताकार विश्वकी एकमात्र शक्ति हो। तुम प्रतिव्यक्तित्व वा प्रत्येक इकाईकी अधिष्ठान सत्तात्मक एकमात्र मूर्ति हो, अथवा ब्रह्मस्वरूप अधिष्ठान सत्ताकी एक मूर्ति हो। तुम ही गुणातीत एवं अबाधित बोधमात्र हो, वा निर्गुण, निर्द्वन्द्व एवं ज्ञानगम्या हो। इस प्रकार तुम ही एकमात्र परब्रह्म रूपसे सिद्ध हो। अत: महाशक्तिकी यह विश्वरूप महाकाल-यात्रा सर्वत्र संज्ञानधर्मा है — चितिस्वरूपा है। अखिल विश्व परमबोधस्वरूपा महाशक्तिका परम सचेतन विस्तार है। इस सन्दर्भमें विज्ञान-दर्शनके अधुनातन चिन्तक Itzhak Bentov का निष्कर्ष भारतीय चिन्तन दर्शनका अनुवादमात्र है —

We described the evolution of matter in terms of evolution of consciousness. The thrust of evolution is toward more and more complex systems, implying higher and higher levels of consciousness.

Matter forms 'live' systems at a certain point along the diagram, which connects quantity to quality of

consciousness. The energy-exchange curves give us a measure of our ability to interact with our environment or reality.

The broader our frequency response, the larger the number of realities in which we can function.

An outline of different levels of consciousness or realities includes those above and below the human reality.

The heirarchy of realities is topped by the 'absolute'. The absolute is the basis of all realities. In its nonmanifest form, it is a potential, intelligent energy. When rippled or modulated, it becomes the basis of our tangible physical matter and individual objects.[१७७] वे अपनी पुस्तकके अगले अध्याय — Relative Realities के अन्तमें लिखते हैं — Thoughts or desires do not originate in the brain. They are generated by the respective bodies of fields that act on the brain to produce tiny impulses that the brain amplifies into thoughts. 'Thought' exists below the threshold of a recognizable thought.

इस महाचेतनाकी पहचान व्याकरणशास्त्र तकमें प्राप्त होती है। महाभाष्यमें एक वार्तिक आया है — **सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्।**[१७८] इसके विवरणमें कहा गया है — **सर्वं चेतनावत्**; तात्पर्य है — सभी पदार्थ चेतनावान् हैं। कुछ विद्वान् इस पदका अर्थ — 'चेतनाके समान' करते हैं। पर यह कहीं भी समीचीन नहीं, मूलमें **चेतनावत्** पाठ है, **चेतनवत्** नहीं, यहाँ **मतुप्** प्रत्यय प्राप्त है, **वति** नहीं। अत: सभी पदार्थ चेतनावाले वा सचेतन हैं, न कि चेतनाके सदृश या समान। इस विषयमें महाभाष्यके प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य कैयट और श्रीनागेश भट्टका भी यही अभिमत है। भाष्यकार महर्षि पतञ्जलिका यह सिद्धान्त श्रुतिपर आधारित है, जिसे उन्होंने — **कंसक: सर्पति** आदि उदाहरणोंको प्रस्तुत करते हुए — अन्तमें श्रुति प्रमाणके साथ कहा है — **ऋषिश्च (वेदम्) पठति - शृणोति ग्रावाण:**[१७९] अर्थात् ऋषि वेदपाठ करता है, पत्थर सुनता है। विज्ञानके क्षेत्रसे भी आज बहुत कुछ इस तरहका अनुमान लगाया जा रहा है — सम्भवत: चट्टानोंमें भी संवादात्मक सम्प्रेषणीयता विद्यमान है।[१८०]

६. भारतीय दर्शनका द्वन्द्वात्मक विज्ञानवाद — प्राण और रयि

विश्वके मूलमें एक ही द्रव्य है, जो दो भागोंमें विभक्त हो गया — (१) आत्मा और (२) सोम । आत्मा ही पुरुष, जीव, परमात्मा आदि कई नामोंसे प्रसिद्ध है। अपने स्वरूपकी दृष्टिसे आत्मा परमात्मा है, समष्टि व प्रकृतिके सम्बन्धसे पुरुष कहा जाता है, व्यष्टिके साथ स्थूल सम्बन्धकी दृष्टिसे वही जीवके नामसे प्रसिद्ध है। प्रकृति शक्ति है जो पुरुषके संयोगसे स्पन्दित हो उठती है। परिस्पन्दमाना प्रकृतिका नाम सोम है। आत्मा ही जीवमें प्राण रूपसे व्याप्त है, सोम देहस्थानीय जड़ पदार्थ — यही प्राण और रयिका मिथुन कहा गया है। ये दोनों पदार्थ सृष्टिकी पूर्व अवस्थामें एक हैं, वह एक ही अद्वितीय पदार्थ सृष्टिके संरचनाकालमें दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। शाङ्करवेदान्तकी दृष्टिमें ये दो पदार्थ नहीं, अपने मूलस्वरूपमें आत्मा है। सांख्य प्राण और रयिको पृथक् स्वीकार करता है — वहाँ यही पुरुष और प्रकृति है। यह द्वितीय पदार्थ रयि, पुरुष या आत्माके संयोगसे चेतनवती प्रतीत होती है। विश्वकी संरचना प्रकृतिमें व्याप्त प्राण-तत्त्वको मुक्त करनेके लिये होती है। वह सत् या सत्तारूप तत्त्व तापशक्तिके वर्धनसे दो तत्त्वोंमें बदल जाता है — प्राण विश्वचेतना है, रयि जड़द्रव्य।

सृष्टिका विकास कभी एक द्रव्यसे नहीं होता — इसमें मिथुन या दो की आवश्यकता होती है — एक सर्वदा एक है। द्वैत भावको प्राप्त होने पर ही अनन्त विस्तारको प्राप्त करता है। प्राण और रयिका यह द्वन्द्व ही उपनिषद् दर्शनका आध्यात्मिक द्वन्द्ववाद वा विज्ञानघन सत्ताकी दृष्टिसे वैज्ञानिक द्वन्द्ववाद है। उपनिषद् द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके स्थानपर द्वन्द्वात्मक विज्ञानवादके सिद्धान्तकी स्थापना करता है। दो-दोके भावका नाम द्वन्द्व है। प्राण और रयिके द्वन्द्व वा दो-दोके भावका मिथुनीभूत स्वरूप ही विश्वके विकासकी सोपानपंक्तियोंका निर्माण करता है, वह चाहे ब्रह्माण्डीय आयामकी पंक्तियाँ हों या जैव-विकासकी। पुरुष और स्त्री तत्त्वत: अद्वैत होते हुए भी अपनी चरम प्रसरणधर्मिताके कारण उनकी एक ही काय दो भागोंमें विभक्त हो जाती है —

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते।
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥[१८]

पर यह द्वैत तात्त्विक नहीं, जब भी वे सन्तानपरम्पराके सन्दर्भसे प्रसरण-

धर्मिताकी ओर उन्मुख होते हैं — उनका द्वैतभाव समाप्त हो जाता है, वे पृथक् दो नहीं रह पाते — वहाँ पुन: अद्वैत सिद्ध होता है।

भारतीय विकासवादकी दृष्टिसे जैवधाराका सम्पूर्ण प्रजातीय विकास एक ही बीज का विस्तार है, जो प्राण और रयिके द्वन्द्वसे विकसित होता है। वैशेषिकोंकी दृष्टिमें रयिका स्वरूप पारमाणविक है। इस दर्शनके अनुसार गुणके पृथक् परमाणु नहीं, जैसा कि फ्रान्सके Gassendi, Pierre की धारणा थी। इनके मतानुसार गर्मी, सर्दी, स्वाद और सुगन्धके भिन्न परमाणु हैं। महर्षि कणादके अनुसार इनके पृथक् परमाणु नहीं होते, ये परमाणुके गुण हैं, जो समवाय सम्बन्धसे उनमें विद्यमान हैं।

७. जैवद्रव्यका ब्रह्माण्डीय विकास — पञ्चाग्निविद्याका विज्ञान

जीवदेहका स्वरूप आणविक है, जो परमाणुसंघातसे उत्पन्न होता है। श्रुतिने जीवनद्रव्यके जैव स्वरूपमें प्रस्तुत होनेवाले परिणामको पञ्चाग्निविद्याके द्वारा स्पष्ट किया है। पञ्चाग्निविद्यापर कुछ कहनेसे पूर्व यहाँ जीवनकी अभिव्यक्तिके प्रकारगत सन्दर्भमें एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रयोगका उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। १९५३ में Miller, Stanley ने इस दिशामें प्रयोगशालामें एक वैज्ञानिक परीक्षण किया था। यह पृथ्वीके आदिम वातावरणकी सम्भावनाके आधारपर परीक्षणके रूपमें करके देखा गया। कल्पना यह की गई कि पृथ्वीके प्राथमिक वायुमण्डलमें ऑक्सीजनका प्राधान्य नहीं था। आदिम समुद्रमें कुछ खास प्रकारके तत्त्वोंकी कल्पना की गई, जिनमें CH_4, NH_3, H_2 थे। आकाशसे अनवरत वैद्युतिक वज्रपात जलपर हो रहा था। फलत: जलमें जीवनके उद्भावक तत्त्व उत्पन्न हो गये, जिनमें दो प्रकारकी Amino Acids — Glycine, Alanine अधिक उल्लेखनीय हैं, जो प्रत्येक Proteins के प्रकारमें पायी जाती हैं। इस कल्पनाके आधारपर प्रयोगशालाके प्रयोगपात्रमें जल गर्म किया गया, उसमें उपर्युक्त रासायनिकतत्त्वोंका मिश्रण विद्यमान था। उसमें विद्युत्की बौछार की गई, प्रयोग सात दिनोंतक चलता रहा, फलत: वहाँ जीवनके उद्भावक तत्त्व उत्पन्न हो गये। यहाँ इस प्रयोगपर गम्भीरतासे विचार किया जाए तो पञ्चाग्निविद्याकी द्रव्य-क्रियाका बहुत कुछ सादृश्य देखा जा सकता है। पञ्चाग्निके पाँच अवयव हैं — (१) समिधा, (२) धूम, (३) ज्वाला, (४) अंगार और (५) विस्फुलिंग। इनसें

समिधा द्रव्यस्थानीय है, धूम गैस, ज्वाला और अंगार तापमात्राके निर्देशक, विस्फुलिंग विद्युत् बौछारके स्थानपर हैं।

पञ्चाग्निविद्याके अनुसार जैव वा जीवनद्रव्यका पाकपरिणाम पाँच स्थलोंपर होता है — न्यूनाधिक रूपमें पाँच आश्रयोंपर आश्रयस्थानके अनुसार जीवनद्रव्यकी पाकक्रिया सम्पन्न होती है। यह जीवनद्रव्य इन पाँच स्थलों पर परिणत होता हुआ — जैवसंस्थाके रूपमें प्रकट होता है। प्रकृतिकी प्रयोगशालामें जीवनके विकासकी यह प्रक्रिया विभिन्न स्थलोंपर उत्तरोत्तर सम्पन्न होती है और अन्तमें जैव-बीज अस्तित्वमें आ जाता है। जैव-बीजकी विकासयात्राके ये स्थल इस प्रकार हैं। प्रथम पाक द्युलोकमें होता है, इसका द्वितीय विकास पर्जन्य या बादलोंमें, तृतीय विकास अन्नरूपसे पृथ्वी पर होता है। चौथे और पाँचवें विकासका आश्रय-स्थल स्त्री और पुरूष हैं। यहाँ पृथ्वी तककी संस्थामें होनेवाला विकास जीवका ब्रह्माण्डीय विकास है, जिसकी चर्चा यहाँ प्रयोगसे सम्बद्ध है, शेष दोका विकास व्यष्टिभूत पिण्डआयाममें है। इसे श्रुतिने यज्ञसंस्थाके रूपक द्वारा समझाया है। आकाशमें सूर्य समिधा है, धूम रश्मि, ज्वाला दिवस, अंगार चन्द्रमा, विस्फुलिंग नक्षत्रस्थानीय ब्रह्माण्डकिरण (Cosmic Ray) है। ब्रह्माण्डीयप्राणके संश्लेषणकी यही नभोजैविकी (Astrobiology) है। आकाशगंगा इस जैवप्राणसे ओतप्रोत है, उसे श्रद्धा कहा गया है। श्रद्धा यहाँ उपनिषद्‌की भाषामें प्राणशक्तिसे युक्त जलकी सूक्ष्म अवस्थाका नाम है। इसका ही अन्य नाम जलतत्त्वके प्राधान्यसे सोम है, प्राणदृष्टिसे वही भृगु है। सूर्यमें इसकी आहुति होती है, अत: वही वहाँ समिधा स्थानीय है, वहाँ उस आहुतिसे बननेवाली रश्मियाँ ही धूम हैं, जो उसे इस सोम आहुतिके पश्चात् तृतीय परिणाम प्रदान करती हैं। इसकी धधकती हुई ज्वाला ही दिवस है, उसका अंगाररूप उत्तर परिणाम ही चन्द्रमा है। नक्षत्रोंसे जो तेजस् कणिकायें प्राप्त होती हैं, वही उसका स्फुलिंग भाव है, यही जीवनका प्रथम ब्रह्माण्डीय विकास है। विज्ञानके अनुसार पृथ्वीपर व्याप्त कार्बन लाइफ (Carbon Life) का उद्भव सुपर नोवा (Super Nova) आदिके विस्फोटित द्रव्यकणोंसे होता है। किरणोंके माध्यमसे जीवन मेघमें पहुँचता है, वायु वहाँ उसकी समिधा है, अभ्र धूम, विद्युत् ज्वाला और वज्र अंगार है, गर्जन ही वहाँ स्फुलिंग है। यही जीवनका व्यष्टि ब्रह्माण्डीय विकास पृथ्वीके पर्यावरणसे संयुक्त होकर इस ग्रहपर जल-द्रव्यसे संश्लेषित होता हुआ — जीवनको जैव-विकासमें

बदल देता है। कहनेका तात्पर्य है कि जैवप्राण सूर्यसे या तारेसे पृथ्वीपर आते हैं, पार्थिव जलके साथ उनका रासायनिक संश्लेषण होता है। इस प्रकार तेज-जल और पृथ्वीके त्रिवृत्करणसे जैवदेहके स्थूलस्वरूपका निर्माण हो जाता है।

छान्दोग्य उपनिषद्में सर्वप्रथम श्रद्धाके हवनका उल्लेख है। वहाँ श्रद्धा द्वारा मनोभौतिक दृष्टिसे 'संकल्प' अर्थका ही मुख्य ग्रहण है। श्रद्धारूप संकल्पकी आहुतिसे जीवके सूक्ष्म-शरीरका निर्माण होता है। वही उसका प्रथम परिणाम सोम है, फिर यही मेघमें स्थित होता है, कालान्तरमें वही वर्षाके माध्यमसे पृथ्वीपर अन्नरूपमें प्रकट होता है, तदनन्तर वही चतुर्थ परिणाम अवस्थामें पहुँचकर वीर्यरूपमें बदल जाता है, अन्तमें बीज बनकर स्त्रीके गर्भाशयमें स्थित हो जाता है। यहाँ मुख्य कार्य प्राणका है, क्योंकि गति वहाँ प्राणके अधीन है, वह प्राण वहाँ जलमय है। अधिब्रह्माण्डीय सीमामें वह परम पुरुषका संकल्प है — ब्रह्माण्डीय सीमामें स्त्री-पुरुषका। सन्तान परम्परा की बलवती इच्छा ही संकल्परूप है — **एकोऽहं बहु स्याम्।**

८. जीव, पुरुष और देह — मन, प्राण और वाक्

औपनिषद विज्ञानदृष्टिसे जीव और अजीव जैसा कोई पृथक् भेद नहीं, यह सत्य पराविद्याका है। अपराविद्या या नीचेके जागतिक स्तरपर यह भेद स्पष्ट हो पाता है। भारतीय दर्शनमें जीवका तात्त्विकस्वरूप प्रस्थानभेदके अनुसार निम्नप्रकारसे देखा गया है ।

(१) जीव नित्य है।

(२) जीव स्वरूपत: अनेक नहीं।

(३) जीवकी अनेकताकी प्रतीतिका आधार बौद्धिक उपाधि है।

(४) जीवनकी उत्पत्ति और विनाश औपाधिक हैं, तात्त्विक नहीं।

(५) जीव अचेतन है — चैतन्य वहाँ आगन्तुक है (महर्षि कणाद)।

(६) जीव स्वत: नित्य चैतन्य है (महर्षि कपिल)।

महर्षि कणादके अनुसार जीवमें चैतन्य स्वाभाविक नहीं, वह उसका

आगन्तुक धर्म है, जो मनके संयोगसे व्यक्त होता है, जिस प्रकार अग्निके संयोगसे उष्णता प्रकट होती है। महर्षि कपिलका मत इससे भिन्न है। इस मतके अनुसार जीवन एक नित्य-चैतन्य अस्तित्व है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती — उपाधियोंके आवरणसे वह जीव हो जाता है। चैतन्य जीवका स्वरूप है, इन्द्रियाँ उसकी अभिव्यक्तिके द्वार। सुप्त मनुष्य नहीं देखता, क्योंकि सुषुप्तिमें विषयका अभाव है।

भारतीय विकासवादको सूत्ररूपसे प्रस्तुत किया जाए तो — आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, उससे क्रमश: उत्तरोत्तर अग्नि, जल, पृथ्वी, उससे पेड़-पौधे, अन्न, बीज एवं उससे पुरुष उत्पन्न होता है। पुरुष अन्नमय है, इसके भीतर प्राणमय पुरुष, उसमें पुन: मनोमय पुरुष, इसका आधार विज्ञानमय पुरुष है और अन्तमें आनन्दमय पुरुष सबसे भीतर है। प्रत्येक दूसरेके भीतर रहनेवाले कोशतुल्य पुरुषतत्त्वमें प्रत्येकके प्रसंगमें शिर, दक्षिणपक्ष, वामपक्ष, देह और पुच्छका भेद निर्धारित किया गया है। लगता है इस वर्गीकरणको प्रस्तुत करते समय पक्षीको एक आदर्श वैज्ञानिक प्रतिमानके रूपमें रखा गया है। सहज दृष्टिसे देखा जाए तो पक्षीके माध्यमसे प्राणके गतिमय स्वरूपको यहाँ रूपककी सीमामें प्रस्तुत कर दिया गया है। अन्नमय पुरुषके सम्बन्धसे ये अंग उसकी देहके अंग हैं। प्राणमयपुरुषके सन्दर्भसे तीन प्राण, आकाश (हृदय) और पृथ्वी (पुच्छ) है। मनोमयपुरुषके प्रसंगमें यही चार वेद और उपनिषद् हैं — अर्थात् उच्च ज्ञान अवस्था। विज्ञानमयपुरुषकी दृष्टिसे यही उसके पाँच अंग हैं — (१) श्रद्धा, (२) ऋत, (३) सत्य, (४) योग और (५) ऐश्वर्य। आनन्दमयपुरुषके सन्दर्भसे यह संस्था वहाँ भिन्न है — प्रेम शिर है, मोद दक्षिणपक्ष, प्रमोद उसका वामपक्ष, आनन्द उसका मध्यभाग है, ब्रह्म उसका आश्रय व आधार है। जगत्‌की मौलिक सत्ताका उत्स प्राण है। आदिकारण होनेसे वही जगत् रूपसे विस्तृत होता हुआ — ब्रह्म कहा जाता है। प्राणसे ही सब भूतसमुदाय उत्पन्न होते हैं, उसीमें वे प्रविष्ट हैं, जैसा कि छान्दोग्यश्रुतिका अभिमत है। आचार्य शंकर प्राणको यहाँ जीवनशक्तिके रूपमें नहीं स्वीकार करते, उनके अनुसार वह ब्रह्म है। जहाँ तक जीव और ब्रह्मका भेद या अभेद है, वहाँ भगवत्पाद शंकरके अनुसार जीव ब्रह्म है, पर ब्रह्म जीव नहीं, जैसे सूईके वेधमें आकाश है, वैसे हृदयमें ब्रह्म। परमसत् दिक्-काल-गुण-गति-फल और भेदसे शून्य है, इसे ही अद्वितीय ब्रह्म कहा गया है, मन्द बुद्धि इसे ही असत् समझ बैठती है।

विश्वमें प्रजातीय विकासकी अनन्त सन्तानधारायें हैं, इस भेदका कारण उस प्रजातिके अवयवभूत उपादानके विभिन्न सम्मिश्रणोंका भेद है। यह प्रारम्भमें ही लिखा जा चुका है — हिरण्यगर्भका विस्फोट आठ खण्डोंमें होता है। फलतः विश्व भी उस अष्टताके अनुसार ही संक्षेपमें वर्गीकृत हुआ है। अण्डपिण्डवादके अनुसार — जीव भी स्वयंमें एक छोटा हिरण्यगर्भ है, जिसका निर्माण महद् हिरण्यगर्भके अष्टधा विस्फोटित खण्डोंसे हुआ है। अग्नि वाक्‌रूप होकर मुखमें प्रविष्ट हुई, वायु प्राण होकर नासिका बन गई, आदित्यतत्त्व चक्षु हो गया, औषधि त्वक् और लोम हो गई, चन्द्रमा मन होकर हृदयमें प्रविष्ट हो गया, मृत्यु अपान होकर नाभिमें चली आई, जल वीर्य बनकर जननेन्द्रियमें प्रविष्ट हो गया।[१८२] इस प्रकार श्रुति रूपककी भाषामें जीवको एक लघुतम हिरण्यगर्भके रूपमें प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार उसके देह-धातुका निर्माण होता है। ये हिरण्यगर्भ प्रजातियाँ किस प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डोंपर उत्पन्न होती हैं, इसके विज्ञानको ही श्रुतिने पञ्चाग्निविद्याके माध्यमसे स्पष्ट किया है। जीवनका विकास प्रकृतिके पञ्चाग्नि यज्ञकी तरह है। Miller ने जिस प्रयोगको किया है, उसका आयाम इतना व्यापक नहीं, उसकी सीमा पार्थिवतत्त्वों तक ही सीमित है। यदि पञ्चाग्निकी कोटि तक विज्ञान पहुँच पाता तो जीवनके विकासका रहस्य वहाँ और भी स्पष्ट हो गया होता।

भारतीय विज्ञान-दर्शनमें जीवात्माको अणुपरिणामी कहा गया है। विज्ञान भी जीवकी अणु अवस्थाका अध्ययन अणुजैविकी (Molecular Biology) के द्वारा प्रस्तुत करता है। जीवात्मा अपने चैतन्य द्वारा समस्त शरीरको चेतनायुक्त कर देता है, चेतना जीवात्माका गुण है। ब्रह्मसूत्रकारकी यही मान्यता है — **गुणाद्वा लोकवत्**[१८३] इससे आगेके सूत्रमें कहा गया है, जैसे गन्ध अपने गुणाधार पुष्पसे पृथक् होकर सर्वत्र फैलती है, उसी प्रकार जीवात्माकी गुणस्थानीय चेतना अपने गुणीसे पृथक् होकर समस्त देहमें व्याप्त हो जाती है। दीपक एक देशमें स्थित होते हुए सम्पूर्ण कक्षको प्रकाशित कर देता है। जीवात्माके अणु और विभु दोनों ही परिणाम स्वीकार किये गये हैं। अणुमें व्याप्त आकाश अणुपरिणामी एवं विश्वव्यापी आकाश विभु व महत् है। आत्मा आकाशसे भी सूक्ष्म है, अतः **अणोरणीयान् महतोमहीयान्** का सिद्धान्त यहाँ भी व्यवहार्य है। भूतद्रव्य और इन्द्रियाँ दोनों ही निष्प्राण हैं, जीवरूप साध्यके साधनके लिए ही उनकी अभिव्यक्ति होती है। प्रलयमें जो जैव-बीज शेष रहते हैं — सृष्टि कालमें पुनः प्राणतत्त्वके

माध्यमसे प्रकट हो जाते हैं। जीव मूलरूपसे चार प्रकारके हैं — (१) उद्भिज्ज, (२) स्वेदज, (३) अण्डज और (४) जरायुज। महर्षि बादरायण स्वेदजके लिए 'संशोक' शब्दका प्रयोग करते हैं। अण्डज और जरायुज मिथुन व ग्राम्यधर्मसे उत्पन्न होते हैं, शेष दो स्वत: उत्पन्न हैं। छान्दोग्यश्रुति प्रथम और द्वितीयको एक मानकर तीन वर्ग ही स्वीकार करती है। क्योंकि ये दोनों ही बीज जन्य हैं, प्रथम पृथ्वीसे एवं द्वितीय जलसे उत्पन्न है। पर इनमें अचर और चरका भेद होनेके कारण इसे पृथक् विभक्त किया गया है, वैसे देह पाञ्चभौतिक होते हुए भी श्रुति अग्नि, जल और अन्न तीनको ही त्रिवृत्करणवादके अनुसार प्राधान्य प्रदान करती है। अन्न यहाँ पृथ्वीका वाचक है, जैसा कि उपनिषद्में इसी अर्थमें अन्नपदका बहुश: प्रयोग प्राप्त होता है। इसके पूर्व यह ज्ञातव्य है कि अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदिमें रक्तवर्णका प्राधान्य अग्नितत्त्वसे प्राप्त होता है, श्वेतवर्णका जलसे, कृष्णवर्णका प्राधान्य अन्न वा पृथ्वीतत्त्वसे है। इन तीनों तत्त्वोंमें किसी एक तत्त्वका प्राधान्य हो जानेपर यह भेद उस तत्त्वके प्राधान्यके साथ गृहीत होता है। इस त्रिवृत्करणवादका मुख्य उद्देश्य मानवीय देहका रासायनिक विश्लेषण है। इसके अनुसार देह-धातुमें तत्त्वोंका स्वरूप निम्न प्रकारसे है।

	स्थूल	मध्यम	सूक्ष्म
१.	अन्न — मल	मांस	मनस्
२.	जल — मूत्र	रक्त	प्राण
३.	अग्नि — अस्थि	मज्जा	वाक्

देहका निर्माण अन्न, जल और तेज इन तीन तत्त्वोंसे होता है — **मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च**[१८४] इस सूत्र का एवं इससे पूर्व सूत्रका यही तात्पर्य है। यह त्रिवृत्करण जीवकृत नहीं, इसका सम्बन्ध विश्वके मूल कारण-द्रव्यसे है। देहमें तात्त्विक दृष्टिसे जलका प्राधान्य है, उद्भिज्ज जलसिंचनसे वर्धित होते हैं, स्वेदज जीव स्वभावत: जल प्रधान हैं। मिथुनप्रधान प्राणी रजवीर्यसे उत्पन्न होते हैं, अत: उनमें भी जलतत्त्वका ही प्राधान्य है। इसीलिए देहको जल वा नारके प्राधान्यसे सर्वत्र लक्षित किया गया है। मृत्युके उपरान्त जीव एक शरीरसे अन्य शरीरमें प्राणमें स्थित होकर गमन करता है, प्राण भी आपोमय वा जलरूप कहा गया है। इसीलिए वीर्य और प्राण दोनों दृष्टियोंसे जलको ही पुरुषरूपसे समझना अधिक संगत है। शरीर तीनों तत्त्वोंका सम्मिश्रण है, जल कहनेसे सबका

ग्रहण हो जाता है। वीर्यमें सबसे अधिक जलका भाग रहता है, अत: जलपदसे उसका वर्णन किया गया है। **त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात्**[१८५] सूत्रका यही आशय है। जीव नित्य, अणुपरिणामी और बुद्धिसे भिन्न है। देहसे पृथक् हो जाने पर उसमें गति भी है, कहीं वह प्रकाशकी गतिवाला है, कहीं बहुत मन्दगति। आत्माके सम्बन्धसे वह विभु और नित्य है। उसका निवास हृदयमें है। वह देहमें मनके द्वारा इन्द्रियोंसे सम्बन्ध स्थापितकर सम्पूर्ण देहकी ऐंद्रिक संवेदनशीलताको ग्रहण करता है। जीव स्वरूपत: चैतन्य है, इसे मनका सार भाग भी कहा गया है। इसके आकारको औपचारिक दृष्टिसे केशके अग्रभागका सौवाँभाग कहते हुए भी इसे इससे भी सूक्ष्म माना गया है। बुद्धिके संयोगसे विभु जीव अणुपरिणामी हो जाता है। आचार्य शंकरके अनुसार पञ्चभूतोंका सूक्ष्मरूप ही देह-बीज है — **देहबीजानि भूतसूक्ष्माणि।** छान्दोग्यश्रुतिके अनुसार प्राण तेजमें लीन होता है — अर्थात् जैव-बीजका ब्रह्माण्डीय सीमामें गमन-आगमन प्रकाशरूप होकर ही सम्पन्न होता है।[१८६]

९. पृथ्वीपर जैव-प्राणका स्वरूप

पृथ्वीपर जैव-बीजका आगमन प्रकाशके माध्यमसे होता है। जब प्राणप्रधान सौर-ऊर्जाका स्वल्प तेज पार्थिव वैश्वानर अग्निके द्वारा गृहीत होता है, तब अर्थप्रधान 'अवचेतन' सृष्टि होती है। इस विकासमें सौरतेज और पार्थिवअग्नि दोनोंके अंश विद्यमान हैं, पर वहाँ पार्थिव भागकी प्रबलता है, सौर-तेजकी नहीं। यही नहीं, अन्तरिक्षका वायुतत्त्व भी वहाँ उसी प्रकार स्वल्प विकसित है। सूर्यका सम्बन्ध संज्ञान-चैतन्यसे है, वायु क्रियाप्रधान है। इसीलिए इस विकासमें ज्ञान और क्रिया दोनोंका ही अत्यन्त अभाव है। अत: जीवनकी विकासधारा ज्ञानशून्य और स्पन्दनविहीन है। इस वर्गमें सुवर्ण, लोह आदि धातुएँ हैं, हीरा, नीलम आदि रत्न भी सम्मिलित हैं, पारद आदि रसायन भी इसी कोटिके हैं। इस सम्पूर्ण विकासमें वैश्वानर अग्निकी प्रधानता है।

इसके पश्चात् दूसरा विकास अर्धचेतन सृष्टिका है। इसमें सूर्यका सचेतन तेज और क्रियाप्रधान वायुका अंश पूर्व विकासकी तुलनामें कुछ अधिक है। फलत: इस सृष्टिमें चेतना और क्रिया दोनोंका ही स्वल्प विकास विद्यमान है।

यह जीवनधारा शैवाल, काश, दूर्बा, तृण, वृक्षादिके रूपमें विकसित होती है। यहाँ ज्ञानके अंशका अति अल्प विकास हो पाया है, वायुतत्त्वकी प्रबलताके कारण सौरतेज यहाँ भी बहुत कुछ हत हो गया है। वायुके प्राबल्यके कारण यह सर्ग क्रियात्मक होनेके कारण बढ़ता है। यहाँ पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति भी अत्यन्त गुरुतर होनेके कारण यह विकास पृथ्वीसे पृथक् नहीं हो पाता, अपने मूलसे बँधकर ही यह अपना विकास करता है — अतः इसका ऊर्ध्वमुख विस्तार होता रहता है। इस सृष्टिमें वैश्वानर और तैजस दोनों तत्त्वोंका विकास होता है, साथ ही वायुतत्त्वके प्राधान्यसे इसमें इसकी उपलक्षक त्वक् इन्द्रियका विकास भी हो पाया है। इस दृष्टिसे यह एकेन्द्रिय विकासकी सृष्टि है।

तृतीय सचेतन सृष्टिमें कृमिसे लेकर पशु, पक्षी, मनुष्य आदि सभी प्राणी हैं, यहाँ वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ चेतनाके तीनों स्तरोंका विकास होता है, इसीलिए इस विकासमें ज्ञान, क्रिया और अर्थ तीनों ही विद्यमान हैं। सूर्यकी सचेतन ऊर्जा यहाँ प्रचुरमात्रामें प्रकट हो पाई है, अतः यहाँ प्राज्ञभागके कारण जागृतचैतन्यका विकास भली-भाँति हुआ है। इससे पूर्वके दोनों विकास मूर्छित-चैतन्य वा सुप्त-चैतन्य हैं, वहीं यह सृष्टि जागृत-चैतन्य। अचेतन विकास केवल अर्थप्रधान धातु-सृष्टि है, द्वितीय अर्धचेतन विकास क्रियाप्रधान मूल सृष्टि, तृतीय चेतनाप्रधान जीवसृष्टि है।

मूलसृष्टिमें स्वतन्त्र पाद नहीं, यह विकास स्वयं ही पादरूप होनेके कारण इसका नाम पादप है। पाद इन्द्रियके द्वारा यह पृथ्वीसे अपना पोषक आहार प्राप्त करता है। यह विकास भूपिण्डसे कभी पृथक् नहीं हो पाता, अतः यह मूल सृष्टि चलनक्रियारूप पादके अभावमें अपादसृष्टि कही जाती है। चेतन सृष्टिपर पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिका इतना प्रबल प्रभाव नहीं, वह भूतलके मूलसे हटकर विचरण करती है। इस विकासके चरण हैं, इसीलिए इसका नाम पादयुक्त वा सपादसृष्टि है। यह पादपोंकी तरह अपने मूलसे बँधी हुई नहीं, इसीलिए श्रुति इसे अमूल सृष्टि कहती है

अयं पुरुषः अमूल उभयतः परिच्छिन्नोऽन्तरिक्षमनुचरति ॥[१८७]

चेतनसृष्टिमें प्रथम कृमि सृष्टिका विकास है। सौरचेतनाका क्रमिक विकास यहींसे प्रारम्भ होता है, फलतः अन्तःसंज्ञ जीव भूमिके आकर्षणसे मुक्त होकर कृमिके रूपमें विकसित होने लगता है। आगे चलकर सौरऊर्जाका बढ़ता हुआ प्राबल्य मानवकी सीमापर पहुँचकर अपनी सोलह कलामयी सम्पूर्णताको प्राप्त कर लेता है। मानव स्वयं सूर्यका अंश है – उसकी पार्थिव अग्नि जब मस्तकके सहस्रार-चक्रमें पहुँच जाती है – वह सौरतेजसे पूर्ण हो उठता है। वहीं वह अपने सूर्यस्वरूपपर संयम करता है – सम्पूर्ण विश्व उसकी परम चेतनामें प्रकाशित हो उठता है। भगवान् पतञ्जलिके निम्न सूत्रका यही रहस्य है –

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।।[१८८]

यह विश्व अग्नीषोमात्मक है – अग्नि प्राण है, सोम रयि, इसका ही अपर नाम अंगिरा और भृगु है। प्रथम उग्र आग्नेयप्राण है, द्वितीय भृगुरूप सौम्यप्राण। जगत् अग्नीषोमात्मक प्राण और रयिका परिणाम है। मूर्छित व संकुचित सोम ही अर्थप्रधान और द्रव्यमय है। इससे ही पिण्डकी संरचना होती है। सर्वप्रथम सोमस्वरूप रयि ही जड़ व मूर्छित होता हुआ, विश्वका उपादानकारण बनता है। जैवविकासके सन्दर्भमें भृगु वा सौम्य प्राण तीन रूपोंमें उपलब्ध होता है – जल, वायु और चन्द्रमा – **आपोवायुःसोमः इत्येते भृगवः ।**[१८९] उपर्युक्त भेदके आधारपर चैतन्यप्रधान जीवन आप्य, वायव्य और सौम्य तीन प्रकारका है। आप्यमें मत्स्य आदि जलचर जीव हैं, कृमि, कीट, पशु, पक्षी, मानव आदि वायव्य हैं। चन्द्रमण्डलसे आठ प्रकारके सौम्य देवताका सम्बन्ध है। मानव मस्तिष्क सौरतेजकी प्रबल ऊर्जाके कारण ऊर्ध्वगामी व सीधा खड़ा है। अन्य प्रजातियोंमें यह वैशिष्ट्य नहीं। वानर मध्यवर्ती है, नरकी ही विकृत सृष्टि, जो नर और पशु दोनोंके धर्मोंसे युक्त है। मनुष्य श्रोणींप्रदेशकी सहायतासे बैठता है, हाथोंसे आहार ग्रहण करता है। पशु मुखसे आहार लेता है। वानरमें ये दोनों ही प्रकार उपलब्ध हैं। वह आहार ग्रहणमें मुख और हाथ दोनोंका ही यथेच्छ प्रयोग करलेता है, चारों हाथ-पैरोंसे चलता है, कहीं दो पैरोंका भी प्रयोग करता है। सबसे बड़ा पार्थक्य तो यह है कि मानवमें जन्मोपरान्त नालच्छेद होता है, वानर सृष्टिमें नहीं। नर वानरका विकास नहीं, वानर नरकी विकृत सृष्टि है – **नरो वा न वा**, अर्थात् नर है भी और नहीं भी।

१०. मानव, जीवन, प्रकृति और इतिहास

मानव स्वयं किसी पशुत्वका विकास नहीं — वह स्वयं पशु है, जहाँ तक चेतनाकी अभिव्यक्तिके आभ्यन्तर स्तरोंका प्रश्न है — वह पशुपति है। ऋग्वेद में मनुष्यके लिये अनेक स्थलोंपर पशु शब्दका प्रयोग हुआ है, यह पद 'पश्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है बन्धन। वैदिकवाङ्मयमें पशुभावसे बँधी हुई मानवीय चेतनाकी पहचान विश्वकी महती संज्ञानधारासे भिन्न नहीं की गई। अभी तकके सम्पूर्ण जैवविकासमें मनुष्यसे परे विकासका कोई स्वरूप परिलक्षित नहीं होता, मनुष्य जैवविकासका शीर्ष-बिन्दु वा चरम-स्थल है। उसके अन्तश्चैतन्यका विकास ही उसका तात्त्विक विकास है, जो क्रमशः उन्नत होता हुआ विश्व-चैतन्यके साथ अपने अभेदकी पहचान प्राप्त कर लेता, जिस सीमा तक वह अपने 'स्व' के स्वातन्त्र्य-बोधको प्राप्त करता है, वह उतना ही विकसित है। यदि कुछ विधाओंके तकनीकी ज्ञानको ही विकासका सर्वोच्च आधार मान लिया जाए तो इलेक्ट्रोनिक्सका सामान्य छात्र भी भगवान् बुद्ध और श्रीरामकृष्ण परमहंससे ज्यादा विकसित है। यहाँ प्रश्न तो 'स्व' की परमस्वतन्त्र अनुभूतिका है, जो उसे पाशमुक्त करती है। मनुष्य पशुभावका अतिक्रमण कर, अपनी चेतनाके उच्चतम शिखरपर पहुँचकर पशुपति बन जाता है। जब हम सांस्कृतिक इतिहासकी सीमाओंमें इस रूपकका प्रयोग करते हैं — 'भगवान् बुद्धका व्यक्तित्व हिमालयसे भी अधिक विशाल और व्यापक है', तब रूपककी सीमामें समाया हुआ हिमालय पाँच छः फुटके हाड़-मांस विनिर्मित बुद्धका सादृश्य नहीं खोजता। वहाँ बुद्धके भिन्न स्वरूपका तुलनामूलक सादृश्य स्पष्ट होता है, जो एशियाके सांस्कृतिक इतिहासके भूमण्डलपर हिमालयसे भी अधिक व्यापक और विशाल है, पर्वतराजके अस्तित्वसे भी अधिक भव्य और देवोपम है। भगवान् बुद्धकी सहस्रपारमिताओंकी ऊँचाइयाँ हिमालयके सहस्रशिखरोंसे भी ऊँची हैं। प्रजातीय विकासकी अनन्त धाराओंमें 'मानव' विकासके शिखरका अन्तिम बिन्दु है। विकास की यह उच्चतम भूमि अवतारवादपर पहुँच कर इतनी व्यापक हो उठती है — जहाँ वह कह देता है — मेरी समग्र चेतनाके एक अंशमें इस विश्वका उद्भवसे लेकर प्रलयपर्यन्त सम्पूर्ण विस्तार समाहित है — **एकांशेन स्थितो जगत्।**[११०] चेतनाके इस बिन्दुपर मानव और विश्वके उद्भावक हिरण्यगर्भके मध्यकी विभाजक रेखा ही समाप्त हो जाती

है, प्रमाता व्यक्तित्वके प्रमेय सुलभ प्रज्ञालोकके एक अंशमें सहस्रकोटि नभोगंगाएँ अपने रहस्य विज्ञानके साथ समाहित हैं। भगवान् श्रीकृष्णका यह कथन रूपक नहीं, परमतात्त्विक है।

दिक् और कालकी अनन्ततापर बिखरे हुए परमाणुओंका महापुंज कितनी घनताकी इकाइयोंपर अपने आकारको पिण्डीभूत करता है, यह असंख्यात है। पर हम जिस मात्रकके साथ अतीतमें लौटते चले जाते हैं, वहाँ यह विपुल विभेद क्रमश: क्षीण होता चला जाता है — अणु, परमाणु, खण्डाणु और आगे बढ़ने पर यह विभाजक रेखा भी समाप्त हो जाती है। यह एक ऐसा बिन्दु है, जहाँ ये सारे विभेद विशुद्ध शक्तितत्त्वमें बदल जाते हैं — चाहे मानवाणु हों, चाहे सौरमण्डल, चाहे इलेक्ट्रोन। भारतीय दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान दोनों ही दृष्टियोंसे विश्वका प्रारम्भिक और अन्तिम उपादान शक्ति है। विश्व शक्तितत्त्वसे ही उत्पन्न होता है, वही कालान्तरमें इन अनन्त विविधताओंका विस्तार बन जाता है, अन्तमें यह विविध पदार्थरूपता शक्तिके महामात्रकमें बदल जाती है। इसके विपरीत एक भिन्न छोर पर यह मानवीय चेतनाका ही उपलब्ध सत्य है, जिसे मानवीय सन्दर्भ एवं उसके प्रमाणभूत आधारके विनिश्चयके बिना जाना नहीं जा सकता। इस परिप्रेक्ष्यमें पृथ्वीपर मानवीय अस्तित्व और उसकी चेतनाकी प्रामाणिकता एक असाधारण घटना है। मात्र इस ग्रहके जीवन-विकासकी दृष्टिसे ही नहीं, यह असाधारणता विश्वब्रह्माण्डके प्रामाणिक स्वरूपके विनिश्चयकी दृष्टिसे भी है। मानवीय अस्तित्वके सन्दर्भमें इस सत्यका कम महत्त्व नहीं। 'मानवीय-प्रज्ञा' इस विश्वके वैज्ञानिक स्वरूपको समझनेकी दृष्टिसे भी परम प्रामाणिक है। कोटि-कोटि आकाशगंगाओंके अनन्त ब्रह्माण्डपिण्डोंपर 'मानवीय-अणु' अस्तित्वका स्पष्ट संकेत प्राप्त न होनेके कारण भी यह इस ग्रहका उत्कृष्ट वैशिष्ट्य है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है, यदि एतत् सदृश अस्तित्व हो तो भी सहस्र-सहस्र सौरमालिकाओंमें यह सौभाग्य इस ग्रहको ही सम्प्राप्त है। अभी तक पता नहीं विश्वमें बुद्ध, कालिदास, शेक्सपीयर, आइन्स्टीन जैसे व्यक्तित्व किसी आकाशगंगाके किसी भी ब्रह्माण्ड-चक्रपर हैं या नहीं, कहीं गीता, शकुन्तला, हेमलेट, फाउस्टस जैसी कृतियाँ हैं भी या नहीं। क्या कोई सहस्रों प्रकाश-वर्षोंकी दूरियोंसे हमें अपने रेडियो-संकेत भेज रहा है ? क्या हमारे इस मानवाणुका अस्तित्व एक आकस्मिक संयोगमात्र है ?

प्रकृतिकी यह सुविशाल संरचना कहीं भी संयोगजन्य नहीं, वहाँ H_2O से ही जलकी सृष्टि होती है, अन्य घटकके संश्लेषणसे नहीं। ऐसी अवस्थामें एक जटिलतम 'मानवीय-मोलिक्यूल' का अस्तित्व संयोगजन्य नहीं कहा जा सकता, न उसका महान् कृतित्व ही संयोगजन्य है — चाहे वह अजन्तागुहाके भित्ति-चित्र हों या मोनालिसाका तैलचित्र, चाहे मेघदूत हो या रामचरितमानस या सापेक्षवादका सिद्धान्त। उसकी संरचनाका आधार विश्वकी मौलिक संरचनाके आधारसे पृथक् नहीं, वह उसकी ही महान् संज्ञानधारासे सम्प्रसूत है। उसका आकार, प्रकार, रस-रसायन, संचेतना, सभी कुछ वहाँ बीजरूपसे सुरक्षित है। विश्वके सन्दर्भमें इस मानवीय-अणुके असाधारण अस्तित्वको समझे बिना हम न इस विश्वके तात्त्विक स्वरूपको समझ सकते हैं, न इस अणुकी गूढ़ अर्थवत्ताको, न काल और इतिहासकी संगतिको। यह विश्वानुभूति वैज्ञानिककी हो या कविकी, वह बुद्धिसापेक्ष है। वैज्ञानिकदृष्टिसे बुद्धिकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। विश्वके समुद्भवसे लेकर इतिहासकी संरचना तकका रहस्य मानवीय ज्ञानकी प्रामाणिकतामें निहित है। भारतीय तत्त्वदृष्टिने इस समग्र अस्तित्वको प्रकृति और पुरुषके रूपमें पहचाना है। यह विकास हिरण्यगर्भके प्रथम विस्फोटसे लेकर वैज्ञानिककी प्रयोगशाला तक सर्वत्र अनुशासित है। Einstein का कथन है — ईश्वर सृष्टिके साथ पासा नहीं खेलता — I cannot believe that God plays dice with the Cosmos. इनसे पश्चाद्-भावी वैज्ञानिक Hawking ने तो उसे कार्यकारणातीत कहते हुए और भी अनुशासित बना दिया है, उनके अनुसार — वह यह पासेका खेल ही नहीं खेलता, वह कभी-कभी ऐसे स्थानपर पासेको फेंक देता है, जहाँ वे दिखलाई भी नहीं पड़ते — God not only plays dice (with the Cosmos), but also sometimes throws them where they cannot be seen.

०

प्रकृति कार्य-कारणभावसे सृष्टिके व्यापारका सम्पादन करती है, यह भिन्न बात है, कहीं हम उसकी इस शृंखलाको देख पाते हैं, कहीं वह हमारे लिए रहस्यमय हो उठती है। नियमातीत स्वातन्त्र्य परमविज्ञानघन चैतन्यसत्ताका महा-विषय है, वह इन जड़ प्राकृत-पासोंको कहाँ, कैसे और क्यों फेंकता है? मनुष्यसे लेकर नीहारिकाओं तक ब्रह्माण्डमालिकाओंका यह संरचना-संस्थान कहीं

भी विशृंखलित और अप्रामाणिक नहीं। लीला वा पासेका खेल महासत्ताके सन्दर्भ तक ही सीमित है। अत: मानवकी इतिहास-चेतना उसके विकासकी ही एक कड़ी है। इतिहास मानवीयचेतनाका कालके सन्दर्भमें एक विशिष्ट बिम्ब-बोध है, सुदूर अतीतकी अपने वर्तमानके तलपर एक स्मृति वा पहचान है। अर्जुनको गीता कहते समय श्रीकृष्णकी स्मृति असाधारण रूपसे कालकी सीमाओंको तोड़ती हुई, अपने चिदाकाशमें तड़िद्वेगसे व्यक्त हो उठी – "मैंने यह सत्य विवस्वान्से कहा था – विवस्वान्ने मनुको.....तुम स्वयंको भूल चुके हो अर्जुन......मेरी स्मृतिमें यह सम्पूर्ण काल-प्रवाह सुरक्षित है, अनन्त तक कभी ऐसा नहीं था जब तुम्हारा और मेरा अस्तित्व न रहा हो"। यही परमपावन स्मृति दिशा-काल और कारणताके सारे बन्धनोंको तोड़ कर भारतीय संस्कृतिके महान् महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन बादरायण वेदव्यासके चिदाकाशमें साकार हो गई, फलत: उनका अतुलनीय स्वरूप ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-काव्य और इतिहास, सर्वत्र अद्वितीय हो गया – वे स्वयं परमज्ञानके महासागर बन गए – जिनकी वाग्विभूतिका विस्तार ही इसकी उत्तालतरङ्ग है, परमतत्त्वका यथावत् अवबोध ही उसका तटप्रान्त, तर्क प्रस्थानके प्रभेद ही हैं इसके अनन्त रत्न – वह परमज्ञानका व्यास महासागर सबको पावन करे। यही है निम्न श्लोकका गम्भीर आशय –

वाग्विस्तरा यस्य बृहत्तरङ्गा
वेलातटं वस्तुनि तत्त्वबोध:।
रत्नानि तर्कप्रसरप्रकारा:
पुनात्वसौ व्यासपयोनिधिर्न:॥[१११]

प्राचीनताकी यही महती स्मृति अपने युगसन्दर्भके साथ महर्षि तुलसीदासके मनोलोकमें सुरक्षित हो गई – उन्होंने रामचरितमानस जैसी काल-जयी कृति प्रकट कर दी।

५ – परमविश्वका पुरुषविध सिद्धान्त

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(ऋग्वेद, १०-९०-१)

वह पुरुष सहस्र (अनन्त) मस्तक, अनन्त नेत्र, अनन्त चरणोंसे युक्त है, विश्वको चारों ओरसे घेर कर दश अङ्गुल (अनन्त) ऊपर स्थित है।

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद्, ३-३-९)

जिससे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं, जिससे अधिक परम सूक्ष्म और महान् कोई भी नहीं। वह एक ही वृक्षकी तरह प्रकाशमान आकाशमें निश्चल भावसे स्थित है, उस परमपुरुषसे ही यह सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण है।

त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः॥

(ऋग्वेद, ९-८६-२९)

अखिल विश्वके ज्ञाता हे कवे ! तुम समुद्र, ये पाँच विरोधी तत्त्व — तुम्हारे काव्य नियम हैं, धरा गगनके पार — यह पवमान, ज्योतियाँ, सूर्य तुम्हारी ही विभूति हैं।

१. परमपुरुषका विश्वरूप – कालपुरुष और इतिहासपुरुष

विश्वकी सम्पूर्ण रचना पुरुषविध है, वही विश्वपुरुष है, वही विराट्पुरुष,

जैवपुरुष उसका ही अंश या प्रतिबिम्ब। प्रबन्धके प्रतिपाद्यको केन्द्रमें रखकर पूर्णपुरुष या परमपुरुषसे लेकर मानवीय विकास तकका यह तत्त्वसन्दर्भ यहाँ मुख्यत: चार भागोंमें विभक्त है, जैसाकि प्रारम्भमें कहा गया है — (१) परमपुरुष, (२) विराट्पुरुष, (३) कालपुरुष और (४) इतिहासपुरुष। परमपुरुष प्रज्ञानघन या विज्ञानघन है — विश्व उसकी ही संकल्परूपा महाशक्तिका विकास है, जो विराट्पुरुष वा महद् ब्रह्माण्डचक्रोंके रूपमें अपने समग्र जैवचैतन्यके साथ प्रकट होता है। वेदमें यही 'सहस्रशीर्षा' पुरुषके नामसे प्रसिद्ध है, जिसका एक अश विश्व है, शेष विश्वातीत परमसत्ता उसकी ही सनातन त्रिपादविभूति है। विराट्पुरुष जगत्की चित्-अचित् महासत्ताका नाम है, कालपुरुष अनन्त आकाशका नक्षत्र खचित विस्तार है। इतिहास-पुरुष इसका द्रष्टा वा प्रमाता है। विज्ञान आज इसी प्रमाता पुरुषके सिद्धान्त-पर आरूढ़ हो कर पुरुषविध विश्वके सिद्धान्त (Anthropic Cosmological Principle) की परिकल्पना कर रहा है। सृष्टिके पुरुषविध सिद्धान्तके मूलमें देखा जाए तो प्रवृत्तिनिमित्तकताका अर्थ ही प्रधान एवं सर्वव्यापक है।

सम्पूर्ण विश्व पुरुषविध अर्थात् पुरुषार्थके अर्थका अवबोधक है। पुरुषार्थ पदका अर्थ है — पुरुषका अर्थ — Meaning of a Man — अर्थात् पुरुषके द्वारा किए गए 'प्रमाण-प्रमेयात्मक' अर्थ विनिश्चयकी विश्वके सन्दर्भमें प्रामाणिकता। आज विज्ञान स्वयं विश्वकी इस पुरुषविधताके सन्निकट बड़ी शीघ्रतासे पहुँच रहा है। विगत कुछ वर्षोंमें वहाँ इस दिशामें उल्लेखनीय प्रयास हुए हैं। Stephen Hawking जैसे ब्रह्माण्डशास्त्री भी अब अप्रत्यक्ष भावसे इस सिद्धान्तका समर्थन कर रहे हैं, उनके गम्भीर मन्तव्यको John Boslough ने अपने ग्रन्थमें इस प्रकार प्रस्तुत किया है — 'वस्तु जगत् जैसा है वैसा ही है — क्योंकि हम हैं' — Hawking thinks that the only way to explain our universe is by our presence in it. This principle can be paraphrased as 'things are as they are because We are.' यह कथन पुरुषार्थ पदके अर्थ पर केन्द्रित है — पुरुषके अर्थमें या पुरुषके लिए। वे आगे लिखते हैं — 'विश्व ऐसा क्यों है जैसा हम देखते हैं'? इसका केवल एक ही उत्तर होगा — यदि यह अन्य प्रकारका होता, तब यह प्रश्न पूछनेवाला कोई भी न होता। 'Why is the universe as we observe it?' The only answer will be that, if it were otherwise, there would be nobody to

ask the question.[१९२] इसे यदि हम सांख्यदर्शनकी भाषामें कहें तो प्रमेयरूप विश्वपदार्थकी सिद्धि या प्रामाणिकता प्रमाणके अधीन है —**प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि**[१९३]। श्रीईश्वरकृष्णके इस कारिकांशकी व्याख्या करते हुए श्रीमिश्रपादने कहा है — चित्तवृत्तिका फलरूप जो 'पुरुषवर्तीबोध' है, उसे मुख्य 'प्रमा' कहते हैं। उस चित्तवृत्तिके साधन पदार्थके साथ सम्बद्ध चक्षु आदि इन्द्रियाँ हैं, उसी प्रकार उस पौरुषेय बोधका साधन —'चित्तवृत्ति'— ये दोनों प्रमाण कहे जाते हैं — **प्रमीयतेऽनेनेति निर्वचनात् प्रमां प्रति करणत्वमवगम्यते। तच्चासन्दिग्धा-विपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः। बोधश्च पौरुषेयः फलम् प्रमा, तत्साधनम् प्रमाणमिति**[१९४] सांख्यसूत्रका भी यही अभिमत है — चित्तवृत्ति और पुरुषवर्तीबोध दोनोंका ग्रहण मुख्य प्रमामें किया गया है — **द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थ-परिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत्तत् त्रिविधं प्रमाणम्।**[१९५]

अतः बुद्धिवृत्ति और पौरुषेयबोध दोनों 'प्रमा'— यथार्थ ज्ञान कहे गए हैं। बुद्धिवृत्ति प्रधान इस पौरुषेय बोधका सन्दर्भ आज विज्ञानकी सीमामें परम व्यापक हो उठा है। सांख्यशास्त्र 'महत्तत्त्व' अर्थात् बुद्धितत्त्वको विश्वद्रव्यके प्रथम कारण-तत्त्वके रूपमें स्वीकार करता है। विज्ञान भी आज सांख्यदर्शनकी पद पद्धतिपर बहुत कुछ आगे बढ़ आया है। विज्ञानके इस व्यापक सन्दर्भमें कनाडा स्थित वाटरलू विश्वविद्यालयके उल्लेखनीय वैज्ञानिक B. Collin एवं कैम्ब्रिजके ऊपर उल्लिखित आचार्य Hawking का यह कथन विचारणीय है —

......In a non-flat (curved), nonisotropic (chaotic) universe galaxies wouldn't form and consequently life wouldn't arise. Therefore we couldn't observe our universe to be otherwise.[१९६]

यहाँ विश्वदर्शनके अनुकूल द्रष्टाके स्वरूपकी उद्भावना की गई है। अतः वेदान्त दृष्टिसे कहा जा सकता है — यदि द्रष्टा वैज्ञानिक है तो विश्व विज्ञानघन है। पुरुषविध सिद्धान्तके प्रमुख प्रतिपादक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयके भूतपूर्व आचार्य एवं पेरिस वेधशालाके निदेशक — Carter, Brandon और टेक्सास विश्वविद्यालयके इमेरिटस प्रोफेसर John A. Wheeler हैं। १९८६ में इस विषयपर ससेक्स विश्वविद्यालयके विज्ञानाचार्य John Barrow एवं तूलानके Frank Tippler

का बृहत्काय ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जो पुरुषविध सिद्धान्तकी नवीन शोधदृष्टिसे द्रष्टव्य है।[१९७] इसमें इस नवीन सिद्धान्तकी मीमांसा दर्शन एवं विज्ञानके माध्यमसे अनेक नवीन स्थापनाओंके साथ भली भाँति प्रस्तुत हुई है।

पुरुषविध विश्वके स्वरूपका दिग्दर्शन सर्वप्रथम हमें ऋग्वेदमें प्राप्त होता है — 'पुरुषसूक्त' सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मयका हृदय है। किंचित् पदान्तरके साथ यह महान् सूक्त यजुर्वेदमें भी द्रष्टव्य है। वेदका यह मन्त्रदर्शन इस प्रकार है —

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ँ्विश्वतो स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥[१९८]

यहाँ सहस्र पद अनन्तका वाचक है, अक्षरब्रह्मके सन्दर्भसे विश्व परिधिसे उसके दशगुणित विस्तारका एवं त्रिपाद सत्ताके अर्थमें पूर्ण या अनन्तका बोधक है, दसकी संख्या गणितशास्त्रमें पूर्णार्थक है। अति संक्षेपमें मन्त्रार्थ — पुरुषके अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र, अनन्त चरण हैं — वह भूमि सहित सम्पूर्ण विश्वके दिक्-चक्रवालको सब ओर से व्याप्तकर दशअङ्गुल ऊपर स्थित है, अर्थात् उसकी परमसत्ता विश्वपरिधिसे दशगुणित अधिक या पर है। यदि विश्वका क्षितिजबिन्दु हमसे १५,००,००,००,००० प्रकाशवर्षकी दूरीपर है, तो दशाङ्गुल गणितके अनुसार अक्षरपुरुषकी व्याप्ति डेढ़ खरब प्रकाशवर्ष है।

परपुरुष या परमपुरुष अक्षरपुरुषसे भी परे है — **अक्षरात् परतः।**[१९९] विश्व अक्षरपुरुषसे उत्पन्न होता है, उसके ही एक अंशमें स्थित है, उसमें ही उसका विलय — **तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।**[२००] वेदान्तदर्शनके अनुसार — **रूपोपन्यासाच्च**[२०१] — सहस्रशीर्षा विश्वरूपपुरुष — अक्षरपुरुषका ही रूपोपन्यास है। परमपुरुषकी अक्षरस्वरूपा महासत्ता बिम्ब है — विश्वपुरुष उसका प्रतिबिम्ब। स्थूलविश्व चार आयामोंसे युक्त है, इसकी आयामबहुलता और भी अधिक है, विज्ञानमें गणितके प्रसंख्यानके द्वारा कहीं दस, कहीं तेईस, कहीं और भी अधिक कही जा रही है। अक्षरपुरुष अद्वितीय — एक और आयाममुक्त है। अक्षरपुरुषकी महाविभूति परमपुरुषमें दशगुणित होकर व्याप्त होनेके फलस्वरूप उसीके प्रतिबिम्बरूप विराट्पुरुष अर्थात् विश्वमें वह आयामबहुलताके साथ व्यक्त होती है। शाक्त सम्प्रदायका 'श्रीयन्त्र' इसी आयामबहुलताका मानचित्र वा

प्रतिमान है, इसमें संरचनात्मक सृष्टि-शक्तिके सन्दर्भमें परमपुरुष-अक्षरपुरुष एवं विराट्पुरुषका समन्वित वा संयन्त्रित स्वरूप है। विज्ञान विगत कुछ वर्षोंसे बहुआयामरूप जगत्के सूक्ष्म स्वरूपको Superstring theory के अन्तर्गत समझनेका प्रयास कर रहा है। वैसे विराट्पुरुष (विश्व) के अनेक आयाम हैं, पर विज्ञान Einstein Albert के चार आयामोंको लाँघकर अब आयामबहुलताके सिद्धान्त पर आरूढ़ हो गया है।

भारतीयदर्शनका आधारभूत सांख्यदर्शन पुरुषविध विश्वके सिद्धान्तका व्याख्याता है। सांख्यके अनुसार दो ही तत्त्व हैं — पुरुष और प्रकृति। पुरुष मात्र द्रष्टा है, प्रकृति सूक्ष्म धागों या गुणत्रय (सत्त्व, रज, तम) से बना हुआ विश्वका विस्तार। सांख्यशास्त्रमें गुण शब्द धागे या सूत या सूत्र अर्थका वाचक है। महाप्रलयमें जैवद्रव्य प्रकृतिके भीतर ही समाहित होता हुआ विलीन हो जाता है। जैवद्रव्य चेतन है, प्रकृति जड़। अत: महाप्रलयके द्वारा ग्रस्त पूर्व सन्दोलनात्मक विश्वके विजातीय जैवद्रव्यको स्वयंसे पृथक् करनेके लिए ही प्रकृति नवीन सृष्टि संरचनाके लिए परिणामधर्मिणी होती है। सांख्यदर्शनने प्रकृतिकी विश्वरूप महद्लीला-संरचनाको बड़ी सहज सम्प्रेषणीयताके साथ कविताकी आलंकारिक भाषामें कहा है — जैसे नर्तकी रंगमञ्चपर रंगस्थित दर्शकोंके समक्ष अपने नृत्यका प्रदर्शन कर स्वयं निवृत्त या अलग हो जाती है, वैसे ही प्रकृति पुरुषके लिए अपने लीलानृत्यका प्रदर्शन कर — सदाके लिए निवृत्त हो जाती है, अर्थात् पुरुष या जैवद्रव्य उसके बन्धन से मुक्त होकर स्वतन्त्र हो जाता है —

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृति: ॥[२०२]

२. महाविश्वका अधिसूत्र सिद्धान्त

गुण वा सूत्र सिद्धान्त (String Theory) का प्रारम्भ आधुनिक विज्ञानमें १९६८ से होता है। एक प्रकारसे देखा जाए तो विज्ञान जगत्में यह सिद्धान्त उन समस्याओंके साथ उत्पन्न होता है, जो Principles of Relativity एवं Quantum Mechanics के मध्य, वहाँ अन्तर्द्वन्द्वके रूपमें उभर चुका था — इसके लिए विज्ञान Simple Formula या सहज निदानके समीकरणकी खोजमें

था। अन्तत: CERN के युवा वैज्ञानिक Gabriele Veneziano ने गणितके एक समीकरणको खोज निकाला, जो इस जटिल समस्याके समाधानके लिए अनुकूल था। फलत: इनके समीकरणने विज्ञानजगत्‌का ध्यान अपनी ओर भलीभाँति आकर्षित कर लिया, इसके पूर्व तक किसीके पास quantum theory of gravitation के व्यावहारिक सन्दर्भमें कोई क्रियात्मक अवधारणा नहीं थी (Any idea of any possible application to a quantum theory of gravitation)। इस अवधारणाका प्रमुख उद्देश्य था Strong nuclear forces,— यथार्थमें Strong forces की सैद्धान्तिक अवधारणा — Quantum Field Theory, जो Chromo-dynamics के नामसे जानी जाती है, उस समय विज्ञानके भविष्यमें बहुत दूर थी। Veneziano की स्थापनाका सैद्धान्तिक आधार वहाँ एक नये तथ्यके रूपमें उभर कर सामने आया, जिसकी पहचान Relativistic Quantum Mechanical String के रूपमें की गई। साधारण धागों (ordinary strings) का गठन वा बनावट — Protons, Neutrons एवं Electrons से होता है, पर ये नवीन आविष्कृत धागे या सूत्र उनसे सर्वथा भिन्न एवं विचित्र हैं। ये अधिसूत्रात्मक द्रव्य (Strings) वे पदार्थ हैं — जिनसे सम्भवत: Protons एवं Neutrons का गठन हुआ है। Strings की सैद्धान्तिक अवधारणा मुक्त आकाशमें एक आयामवाली चीरों वा दरारोंके रूपमें की गई (Tiny one-dimensional rips in the smooth fabric of space), इन धागोंके दोनों ओरके मुक्त छोरोंका खुलना या बन्द होना भी होता रहता है — एक रबड़के फीतेकी तरह, ज्यों ही ये आकाशमें उड़ने लगती हैं — कम्पमान (Vibrate) होने लगती है। Violin के String की तरह कम्पायमान होते हुए भी इनके प्रकम्पका यह स्वरूप सम्पूर्ण रूपसे भिन्न है। Violin की String प्रकम्पनके पश्चात् शान्त हो जाती है — पर इनका प्रकम्पन अनवरत है। Violin-String के शान्त होनेका कारण है, उनका पारमाणविक गठन, पर ये Strings परमाणु निर्मित नहीं, अत: सर्वदा कम्पायमान हैं। इनके प्रकम्पनकी शक्तिको अन्यत्र जानेका मार्ग भी नहीं है। यह स्ट्रिंग सिद्धान्त, देखा जाए तो, प्रकृतिकी सर्वोत्कृष्ट बुद्धिवादी व्याख्याका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है। पर अभी तक इस सिद्धान्तका कोई सुनिश्चित स्वरूप (Specific String Theory) स्थापित नहीं हो पाया है — जिसके आधार पर दिक्-कालका नया स्वरूप,

पदार्थकी आभ्यन्तर प्रतिसाम्य स्थिति (Internal Symmetrics) एवं Quark और Leptons का उपलब्ध मीनू (Menu) जो प्रकृतिमें पाया जाता है, जिस पर कुछ भी नये ढंगसे कहा जा सके, ऐसा कुछ भी नहीं है। हमें अभी तक यह भी पता नहीं कि इस सूत्र सिद्धान्त (String Theory) का सम्भावित मूल्यांकन किस आधार पर करें या इसके वैशिष्ट्यको किस प्रकार रेखांकित किया जाय। इन उलझनोंको दूर करने के लिए – अभी तककी कार्यपद्धतिसे हमें हटना पड़ेगा और इसके स्थान पर सर्वथा नये मार्गका अन्वेषण करना पड़ेगा, उदाहरणके लिए Quantum electrodynamics में आकलनके लिए Perturbation theory का आश्रय ग्रहण किया जाता है। यहाँ हम सीमित संख्यामें परमाणुवर्ती Electrons के साथ Photons के बदलावकी संख्या प्राप्त कर लेते हैं, पर स्ट्रिंग सिद्धान्तमें संख्यातीत स्ट्रिंग्सके विनिमयके आकलनका प्रश्न उपस्थित होने पर, इसका निदान Perturbation सिद्धान्तसे सम्भव नहीं है। स्थिति तो वहाँ और भी जटिल है – हमें अभी यह भी पता नहीं कि गणितकी सहायतासे वहाँ किस प्रकार प्रवेश किया जाय ? यदि हम Strings की पहचान प्राप्त कर भी लें तो भी – हमारे पास अभी तक वह मानदण्ड ही नहीं है, जिसके द्वारा हम जान सकें कि यह सिद्धान्त यथार्थ जगत्में किस प्रकार घटित हो रहा है। फिजिक्सका यह कार्य नहीं है कि वह हमारे सामने विश्वकी व्याख्या प्रस्तुत कर दे – उसका कार्य यह बतलाना है कि विश्व जैसा है वैसा क्यों है। इसी खोजमें लगा हुआ मानव – पुरुषविध सिद्धान्त (Anthropic Principle) तक चाहे-अनचाहे सहज रूपसे पहुँच जाता है, इसका अर्थ है – प्रकृति बौद्धिक व्यक्तियोंको वह विशेष स्थान प्रदान करती है, जो उसके नियमके विषयमें जान और पूछ सके।

इसी भावभूमिसे Anthropic सिद्धान्तका विषय प्रवर्तन होता है – जहाँ प्रकृतिकी कार्यपद्धतिमें उस बौद्धिक आयामके प्रति विशेष अनुकूलता सुरक्षित की जाती है। इसके उदाहरणके रूपमें जो कुछ सोचा जा रहा है, वह है मूलतत्त्वोंका परस्पर समन्वय। विज्ञानके नवीन चिन्तन के अनुसार समन्वयका यह कार्य उस समय प्रारम्भ हुआ – जब विश्वकी आयु मात्र ३ मिनटकी ही थी, इसके पूर्व वहाँ तापशक्ति अति प्रबल थी – परमाणुके परिकेन्द्रकगण (Atomic

Nuclei) Proton और Neutron एकबद्ध नहीं हो पाते, यही स्थिति तारोंके भीतर भी विद्यमान है। Edwin Salpeter को १९५२ में इस समस्याका समाधान प्राप्त हुआ — हीलियमके दो परिकेन्द्रकगण (Two Helium Nuclei) तारोंके भीतर एक साथ चले आते हैं, जिनका उद्देश्य है —'Unstable nucleus of the Isotope Berryllium — 8' फलत: १९५४ में Fred Hoyle ने कार्बन (Carbon) की प्रभूत ब्रह्माण्डीय उपस्थितिका पता लगा लिया था। तारोंमें कार्बनके सृजनकी प्रक्रिया जब प्रारम्भ हो जाती है — तब सभी प्रकारके Heavier elements के निर्माणमें आनेवाली रुकावटें स्वत: हट जाती हैं, इनमें Oxygen एवं Nitrogen भी सम्मिलित हैं। ये ही मुख्यरूपसे ज्ञात जीवनके विविध रूपोंके निर्माणमें प्रधान सहायक होते हैं। कार्बनकी संरचनाके मार्गमें अनेक जटिल बाधाएँ हैं, फिर भी प्रकृतिकी संरचनात्मक कार्यशैलीमें ये स्वत: दूर हो जाती हैं, मात्र Nitrogen और Helium से जीवनका आविर्भाव सम्भव नहीं। जीवनकी अभिव्यक्तिके लिए कार्बनका आश्रयण विज्ञानमें अन्यतम है। The Super String Theory आज विज्ञानमें —'The Theory of Everything' के नामसे प्रसिद्ध है, इसका जन्म सन् १९८४ में हुआ, जिसके अनुसार मूलद्रव्य बिन्दु या कणिकाएँ नहीं, अपितु सूत्रगुच्छ थे। (Elementary particles were not points, but incredibly tiny vibrating loops of 'String'). प्रकम्पमान सूत्रके गुच्छक विज्ञानमें Quarks की अवधारणाके साथ नये रूपमें सामने आए — वहाँ प्रश्न उत्पन्न हो गया — प्रकृतिमें Quark का स्वरूप एवं अस्तित्व केवलमात्र या एक नहीं है — वह कहीं भी अकेला नहीं — They were bound on the ends of strings.[२०३] यदि एक String को काट दिया जाय तो वहाँ दो नवीन छोर प्राप्त होते हैं, ये New Quarks हैं। सांख्यके अधिसूत्र सिद्धान्तकी तरह विज्ञानके इस अधुनातन महासूत्र सिद्धान्त (Superstring Theory) का पर्यवसान पुरुषविध सिद्धान्त (Anthropic Principle) में ही घटित हो रहा है। सांख्यदर्शन प्रधान श्वेताश्वतर उपनिषद् अपने अधिसूत्र सिद्धान्तको और भी आगे तक सोचते हुए — सम्पूर्ण आकाशकी परिकल्पना एक विशालतम चमड़ेके टुकड़ेके रूपमें कर रहा है, उसका वचन है — जब मानव चमड़ेकी भाँति आकाशको लपेट सकेंगे — तब उस परमसत्ताको जाने बिना वे दु:खमुक्त हो सकेंगे। तात्पर्य है जब आकाशका बिम्बभाव इतनी स्थूलतामें परिलक्षित हो जाएगा तब परमसत्ताका स्वरूप भी उससे अलक्षित और पृथक् नहीं रह सकेगा। लगता है विश्वकी परमसूक्ष्म अधिसूत्रात्मक महासत्ता भी यहाँ

चमड़ेके टुकड़ेकी स्थूलतामें बदल गई है, परमका यह बिम्बबोध कितना आश्चर्यजनक है —

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥[२०४]

इस उपनिषद्-श्रुतिके महानायक परमशिवके स्वरूपभूत परिधानको लक्ष्यमें रखकर ही यहाँ इस मन्त्रका तत्त्वसन्दर्भ प्रस्तुत हुआ है — जो लक्षणभूत होकर एकमात्र भगवान् शिवमें ही लक्षणावृत्तिसे घटित होता है, वही दिगम्बरके नाम गौरवसे प्रसिद्ध हैं — गजचर्मको धारण कर रखा है, अतः यहाँ मन्त्रमें 'चर्म' पदका प्रयोग हुआ है। आचार्यप्रवर महाकवि जगद्धर भट्टने अपनी शैव आराधनाकी प्रणतिको इन पदोंमें प्रस्तुत किया है — आकाशरूपी वस्त्रसे आवेष्टित अर्थात् — 'दिगम्बर', मस्तकपर पिपासुओंको परम तृप्ति प्रदान करनेवाले मन्दाकिनीके जलसे सुशोभित एवं भुजाओंमें लिपटे हुए सर्पोंसे विभूषित कल्याणकारी शङ्करका हम भजन करते हैं —

अम्बरेण गगनेन संवृतं
जीवनैः शिरसि वारिभिः श्रितम्।
भोगिभिश्च भुजगैर्विभूषितं
शङ्करं शुभकरं भजामहे॥[२०५]

पुरुषविध विश्वका सिद्धान्त (Anthropic Principle) ऋग्वेदसे लेकर आगम-पुराण-दर्शनतन्त्र आदिकी विशाल परम्परामें सर्वत्र प्राप्त होता है। यह 'पुरुष' वह 'विश्व' है — जो तप, कर्म, अमृत और ब्रह्मरूप है —

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।[२०६]

यहाँ 'विश्वपुरुष' और 'जीवचैतन्य' में प्रतिष्ठित अन्तःपुरुषकी एकताको श्रुति स्पष्ट करती है — तप-कर्म-ब्रह्म-परअमृत स्वरूप विश्वपुरुष है, जो इसे हृदय गुहामें स्थित देखता है, जानता है, वह अज्ञानके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस मन्त्रकी आगेकी पंक्ति इस प्रकार है —

एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य॥

इसीलिए कहा गया है — तुम एक ही अनेकमें अनुप्रविष्ट हो —

त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः ।[२०७]

श्रुतिने पौरुषेयबोधके आधारपर विराट्पुरुषके विश्वस्वरूपको इस प्रकार बताया है —

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥[२०८]

'अग्नि' द्युलोक जिसका मस्तक है, 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' नेत्र हैं, 'दिशायें' श्रोत्र, प्रसिद्ध 'वेद' वाणी है, 'वायु' प्राण है, एवं 'विश्व' हृदय, इसके चरणोंसे पृथ्वी प्रकट हुई है, अर्थात् 'पद' ही पृथ्वी है, वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है। मन्त्रके अनुसार अन्तरात्मा और विश्वात्मा दोनों एक हैं, इसे आकाशके उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है — चाहे घटाकाश हो या महाकाश दोनों एक हैं। एक ही पुरुष विश्व रूपसे अनेक रूप हो गया है — **रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव**[२०९] इस अक्षरपुरुषसे प्राण-मन-सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल एवं सबको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है — अर्थात् वही सर्वरूप होकर विश्वरूपसे प्रकट होता है —

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥[२१०]

यह सभी कुछ पुरुषविध या पुरुषरूप है — **पुरुष एवेदं सर्वम् ।**[२११] पुरुषसे परे कुछ भी नहीं — **पुरुषान्न परं किञ्चित् ।**[२१२] इस 'पुरुषविध' महासत्ताका स्वरूप वेदसे लेकर महाभारत, भागवत तक यथाविधि सुनाई देता है। महाभारतमें श्रुतिके कथनको ही दोहराया गया है —'द्यौः' उसका मस्तक है, 'आकाश' नाभि, 'सूर्य' और 'चन्द्रमा' नेत्र, 'दिशायें' श्रोत्र, 'पृथ्वी' चरण — वह अचिन्त्य आत्मा ही सम्पूर्ण भूत समुदायका प्रणेता है। पुरुषविध सिद्धान्तका स्वरूप वेदसे लेकर सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मयमें प्रतिष्ठित है। महाभारतमें श्रीकृष्णने श्रुतिके कथनको ही दोहराया है — 'मैं क्षरसे अतीत और अक्षरसे उत्तम हूँ, अतः लोक

और वेदमें पुरुषोत्तमके नामसे प्रसिद्ध हूँ ' — **प्रथितः पुरुषोत्तमः** । यही पुरुषविध सिद्धान्तका सर्वोत्तम-पुरुषोत्तम स्वरूप है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही महाभारतमें सृष्टिके संचालक 'यज्ञपुरुषके' रूपमें संस्तुत और प्रतिष्ठित हैं।

तमध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरे सामगाश्च स्तुवन्ति।
तं ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैः स्तुवन्ति तस्मै हविरध्वर्यवः कल्पयन्ति ।।[२१३]

यही विश्वपुरुष और इतिहासपुरुषके पौरुषेयबोधका रूपोपन्यास है, जूडो-क्रिश्चियन दृष्टिके पास महासत्ताकी ऐसी किसी अवधारणाका लेशमात्र भी नहीं। आधुनिक विज्ञानका पुरुषविध सिद्धान्त (Anthropic Principle) विश्वकी महासत्तासे बहुत दूर — 'दृक्-दृश्य-विवेक' के किञ्चित् अन्तःसम्बन्धोंकी सामान्यसी अवधारणा या पहचान तक ही परिसीमित है। वेदान्त और सांख्यदर्शनके अनुसार इस ज्ञानका आधार सृष्टिके मूलस्वरूपसे भिन्न नहीं, परमसत्ताकी प्रज्ञानघनता ही उसका उपादान कारण है। वेदान्तक अनुसार जगत्की मूलसत्ता विज्ञानघन है, सांख्यके अनुसार वह महत्तत्त्व है — एक प्रकारका विश्व आयामी बुद्धिचैतन्य, पर जड़। वेदान्त मतके अनुसार इतिहासपुरुष मानव — परमसत्ताके बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावकी परम्परा है। विश्वरूप चतुर्थपादसत्ता त्रिपादसत्ताकी प्रतिनिधि है। स्पष्टताकी दृष्टिसे कहा जाए — परमपुरुषका उपलक्षक विराट्पुरुष है — विराट्पुरुषका कालपुरुष एवं उसका प्रतिबिम्ब इतिहासपुरुष मानव। अद्वैतवेदान्तके अनुसार मानवके भीतर विश्वकी सत्ता प्रतिबिम्ब मात्र है — दर्पणमें परिदृश्यमान नगरकी तरह —

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम् ।[२१४]

विज्ञानमें भी आज विश्व मॉडल दर्पणमें स्थित प्रतिबिम्ब — Looking-glass Universe की तरह देखा और कहा जा रहा है।[२१५] वह चाहे महान् वैज्ञानिक Albert Einstein का प्रतिपाद्य हो, चाहे Niels Bohr का चाहे Werner Heisenberg का या Erwin Schrodinger का हो। इनके 'विश्व मॉडल्स' का अन्तिम स्वरूप — Looking-glass Universe से अधिक नहीं। नव्य विज्ञान दर्शनके उल्लेखनीय आचार्य Bohm, D की भी यही मान्यता है। भौतिक विज्ञानके प्रसिद्ध आचार्य एवं व्याख्याता Thomas Kuhn ने विज्ञानके ऐतिहासिक विश्लेषणको कुछ दशक पूर्व प्रस्तुत किया है, उनका भी इस सन्दर्भमें यही

उल्लेखनीय मन्तव्य है। विज्ञान आज विश्वकी परिदृश्यमान महासत्ताको मायिक प्रतिबिम्बकी सत्तासे अधिक स्वीकार नहीं करता है, अद्वैत सिद्धान्तके अनुसार — दृक्-दृश्य-विवेक द्वारा जब बिम्ब-प्रतिबिम्बभावका आवरण भङ्ग हो जाता है, इतिहासपुरुष मानव परमपुरुष बन जाता है, तत्त्वत: वह वही है। उसका आभ्यन्तर स्वरूप जहाँ परम है — वहीं व्यक्त चैतन्य विराट्। मानव विराट्की एक आदर्श प्रतिमूर्ति (Paradigm) है — जैसा वह, वैसा ही विराट्-पुरुष। अणु-परमाणु-जीवाणु-सूर्य-तारे-मानव सब एक ही मूल पदार्थके विविध स्वरूप हैं।

इतिहासपुरुष मानव सम्पूर्ण विश्वके प्रमाण-प्रमेयात्मक स्वरूपका महान् प्रमाता है, क्योंकि सम्पूर्ण विश्वकी संरचना पुरुषविध एवं उसके प्रमाता स्वरूपकी पहचानके लिए ही है। वैदिक दर्शनकी इस परम मान्यताको विज्ञानके प्रसिद्ध आचार्य John A. Wheeler के इस अभिमतसे जोड़ कर देखा और समझा जा सकता है —'No phenomenon is a phenomenon until it is an observed phenomenon' कोई भी घटना तब तक घटना नहीं जब तक वह 'दृक्-दृश्य' की सीमामें नहीं आ जाती। इस सिद्धान्तको वे 'क्वान्टम जगत्' पर परिलक्षित करते हुए लिखते हैं —'A (Quantum) phenomenon is not yet a phenomenon until it has been brought to a close by an irreversible act of amplification.[२१६] एक (क्वान्टम) घटना तब तक घटना नहीं जब तक कि उसे अनिवर्त्य विस्तारके सन्निकट न ले आया जाए।

पुरुषविध विश्व Anthropic Universe का यह समग्र विकास विज्ञानघन, आनन्दघन और सौन्दर्यघन है। इस महाचेतनका परम विस्फोट अंशांशिभावसे सर्वत्र व्याप्त है। चींटी भी सुराका निर्माण करती है, उसे ग्रहण कर उन्मत्त हो जाती है। मधुमक्षिका मधुसंचय करनेके लिए परमविकसित गणितगत कौशलका उपयोग करती है, पक्षी स्वयं ज्योतिषशास्त्रके ज्ञाता हैं, उनका दीर्घ नभोमार्ग तारोंसे अपने गन्तव्यका निर्धारण करता है। डॉल्फिनकी प्रज्ञा प्रजातीय विकासके इतिहासमें अतुलनीय है — यदि उसके पास हाथ होते एवं आवास जलके स्थान पर पृथ्वी होता तो इस ग्रह पर मानवकी जगह उसीका आधिपत्य होता। इसी प्रकार दीमककी भवन-निर्माण क्षमता मानवकी

तुलनामें अधिक समुन्नत और समृद्ध है, वे दिनमें तीन बार अपने आवासके वातानुकूलित स्वरूपको बदलती हैं। वे धरतीके भूचुम्बकीय स्वरूपसे भलीभाँति सुपरिचित हैं, उनके गृहोंकी योजना उसीके अनुसार उत्तर-दक्षिण निर्धारित है। यहीं तक नहीं, सम्पूर्ण प्रजातीय चेतनाके विकासमें आनन्द और सौन्दर्यकी विज्ञानधाराका प्रवाह अनवरत है, क्योंकि मूलसत्ताका स्वरूप विज्ञानघन — आनन्दघन है — अनन्त सौन्दर्यका परम सौन्दर्यघन अधिष्ठान है वह ; जिस प्रकार दीपसे दीपान्तर दीपशिखाका प्रसार होता है — यह अनन्त विश्व उसी प्रकार विज्ञानघन — आनन्दघनका विकास, विस्तार और प्रसार है। विश्व परमकी पावक लीलाकी तरह है — जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निसे उसके समान रूपवाले सहस्र-सहस्र स्फुलिंग अनेक प्रकारसे प्रकट होते हैं, उसी प्रकार सनातनसत्तासे विविध प्रकारके भावस्वरूप उत्पन्न होते रहते हैं — और अन्तमें उसीमें उनका विलय हो जाता है — वह यही सत्य है —

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद् विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ।
तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ।।[२१७]

'वह सत्य यही है' इसे ही श्रुति 'साम' कहती है — जो सभी कार्यावस्थाओंमे समान रूपसे व्याप्त है, वही सृष्टिका 'साम' है —

यच्च सर्वस्मिन् कार्ये समरूपेण तिष्ठति तत्सामेत्युच्यते ।[२१८]

यह 'साम' ही अक्षरपुरुषसे प्राणरूपमें बहिर्भूत होता हुआ जगत्की विविध भावमूर्तियोंमें प्रकट हो जाता है। विश्वकी समग्र प्रतिष्ठा समज्यामिति (Symmetry) या सामतत्त्वपर प्रतिष्ठित है — सृष्टिका सम्पूर्ण विकास प्रतिसाम्य सन्तुलन (Symmetrical Order) का क्रमविन्यास है। महाकालके 'ब्लू-प्रिण्ट' की यही संरचना है — आकाशगंगाकी सर्पिल भुजाओं (Spiral Symmetry of a Galaxy) से लेकर जीवाणु (Gene) के सर्पिल द्विभुज परिमण्डल (Double Helix System) तक।

विश्व-संस्थाके द्रव्यवाची स्वरूपका परिमाणगत आकार-प्रकार भी प्रतिसाम्यविधिके विधानको ही स्पष्ट करता है। Superstring के सामानुपातिक 'साम' — या प्रतिसाम्यकी यह स्थिति भी बड़ी आश्चर्यजनक है, जैसाकि Freeman Dyson ने लिखा है। इनका कथन है, यदि चार तथ्योंके प्रतिसाम्यपर विचार किया जाए तो Superstring के स्वरूप-सन्दर्भमें यह आश्चर्यजनक स्थिति भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है, यथा — (१) सम्पूर्ण उपलब्ध दृश्यमय विश्व, (२) हमारी पृथ्वी, (३) परमाणुका परिकेन्द्रण वा Nucleus, (४) चतुर्थ अधिसूत्रात्मकता वा Superstring है। हमारी पृथ्वी परिदृश्यमान विश्वके सन्दर्भमें आकारगत (Size) दृष्टिसे $१०^{२०}$ गुनी लघु या छोटी है, इसी क्रममें परमाणुके परिकेन्द्रणका आकार पृथ्वीकी तुलनामें $१०^{२०}$ गुना अल्प है, इसी प्रकार Superstring का स्वरूप Nucleus के अनुपातसे $१०^{२०}$ गुना अल्पतम है। पदार्थके अवधारणात्मक जगत्में String सर्वाधिक सूक्ष्म द्रव्य है — पदार्थ विज्ञान (Physics) की सैद्धान्तिक भूमिपर यह मात्र गणितज्ञकी अवधारणाका विवेच्य विषय है, जहाँ विज्ञानकी स्वयंकी गति कहीं भी कार्योन्मुख नहीं हो पाती।[२१९] कुछ पंक्तियोंके पश्चात् Dyson निष्कर्षरूपसे अपने समयके प्रख्यात ज्योतिर्विद् Sir James Jeans के कथनका स्मरण करते हुए String के यथार्थपर लिखते हैं — What philosophical conclusions should we draw from the abstract style of the superstring theory ? We might conclude, as Sir James Jeans concluded long ago, that the Great Architect of the Universe now begins to appear as a Pure Mathematician, and that if we work hard enough at mathematics we shall be able to read His mind. Or we might conclude that our pursuit of abstractions is leading us far away from those parts of the creation which are most interesting from a human point of view. देखा जाय तो Super String की तरह ही Cosmic Strings का विश्व भी महान् रहस्यमय है — इसमें string का Mass व द्रव्यमान प्रति एक इंच $१०^{१६}$ टन है।[२२०] Cosmic Strings के स्वरूपको स्पष्ट करते हुए — Dennis Overbye ने लिखा है — Cosmic strings were another idea that came to the forefront of fashion. As pointed out previously, strings were one of the possible

kinds of scars that could be left in space-time from the primordial agony of symmetry breaking of forces and the freezing of the Higgs field along with monopoles and domain walls. They were really thin tubes of false vacuum, with masses 10^{16} tons per inch. Born infinitely long, they would fly through space twinging like rubber bands, cutting each other and forming loops that would eventually shrink and decay by gravitational radiation.[२२१] इसे ब्रह्माण्ड रज्जु कहना अधिक संगत होगा, ये नभोगंगाको अपने वलयमें जकड़ती हुई, उसके महापिण्डोंको छिटकनेसे रोक देती हैं। Super String हो या Cosmic String – अपने विपुल आयाममें कितनी ही सूक्ष्म वा बलशाली हो – पर मानवीय व्यक्तित्वकी महती ऊँचाइयोंसे अलक्षित नहीं – वे उसके परम ज्ञानघन स्वरूपमें समाहित हैं, साथ ही उसे उजागर भी करती हैं। परमसत्ता प्रतापघन है, उसी प्रकार मानवीय व्यक्तिकी ऊँचाइयाँ प्रतापघन हैं – चाहे याज्ञवल्क्य हों या बुद्ध, कालिदास और तुलसीदास हों या दाँते, शेक्सपीयर, चाहे आइन्स्टीन हों या हॉकिंग। ज्ञानकी महासत्ता सर्वत्र प्रामाणिक है – अतः ज्ञान सृष्टिके सम्पूर्ण विकासक्रममें प्रामाणिक है – नभोगंगाकी सर्पिल संरचनासे लेकर 'जीन' के द्विभुज सर्पिल गठन एवं मनुष्यकी वैज्ञानिक प्रयोगशाला और दीमककी गृह निर्माण क्षमता तक। हृदय-पिण्डके रहस्योंको जाननेवाला वैज्ञानिक प्रज्ञानघन है, उसी प्रकार उस पिंडका निर्माण करनेवाली – 'जीन' में अन्तर्निविष्ट या अन्तर्भूत शक्ति भी प्रज्ञानघन है। यहाँ तक कि यह ज्ञानघनता रक्तकणिकाओं (Blood-cells) के भीतर भी विद्यमान है, रक्तरसायनशास्त्र (Haematology and Oncology) के अनुसार कुछ कणिकाएँ टैंककी तरह प्रहार करती हैं, कुछ बमवर्षक विमानकी तरह हैं, कुछका आचरण रुग्णकणिकाओंके लिए ऐम्बुलेन्सकी तरह होता है। आकाशगंगाकी संरचना और निर्मातृशक्ति जिस तरह प्रज्ञानघन है – स्काइ-लैब (Sky-lab) का स्रष्टा भी प्रज्ञानघन और प्रतापघन है। सृष्टिकी यह संरचनात्मक प्रज्ञानधारा – Quark – से लेकर सूर्य और मानव तक सर्वव्यापक है। क्वाण्टम-जगत् (Quantum World) की सम्पूर्ण हलचलको आजका विज्ञान बौद्धिक कह कर स्वीकार करता है। उषाका सौन्दर्यस्रष्टा सूर्य जितना आनन्दघन और प्रतापघन है – उसका परमद्रष्टा ऋषि उससे कम नहीं – इसीलिए वह कहता है – जो सूर्य है – वह मैं हूँ –

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजा-
पत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुष: सोऽहमस्मि ।।[२२२]

'हे पूषन् — महान् ज्ञानी — नियन्ता, हे प्रजापति सूर्य — अपनी परम कल्याणमय रश्मियोंसे युक्त तेज:स्वरूपको एकत्र करें, मैं आपके दिव्य स्वरूपको देख रहा हूँ — जो वह है (सूर्य स्वरूप) वह पुरुष — मैं भी वही हूँ'। यही है विश्वका परम ज्ञानघन अद्वैतदर्शन जहाँ परमपूर्ण और मानवके मध्यका द्वैत समाप्त हो जाता है। परमकी समग्रताको परमअर्थमें ग्रहण करते हुए ही श्रीगौड़पादने कहा —

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थत: ।[२२३]

अद्वैत वेदान्तने विश्वकी परिदृश्यमान सत्ताको माया कहा है। भागवतका स्पष्ट कथन है — जो अर्थ (वस्तु) न होने पर भी प्रतीत होता है, जो मूल वा आत्मसत्तामें प्रतीत नहीं होता, वही आत्मा वा सनातन मूलपदार्थकी माया है। अर्थात् — जैसा मूलपदार्थ है, उसकी उससे भिन्न अर्थरूप प्रतीति माया है —

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तम: ।।[२२४]

प्रश्नोन्मुख कथन द्वारा आचार्य अमलानन्दने ब्रह्मसूत्रके प्रसिद्ध भाष्य 'दर्पण' में इसी सिद्धान्तकी व्याख्या की है — एक कालावच्छिन्न अनेकाकारता परमसत्ताकी मायासबलताके बिना कैसे सिद्ध हो सकती है ?—

एकस्यानेकमूर्त्तित्वं युगपत् परमात्मन: ।
सच्चिदानन्दरूपस्य सिद्ध्येन्मायामृते कथम् ।।[२२५]

बिम्बकी सत्तासे पृथक् प्रतिबिम्बकी सत्ता नहीं होती, अत: परम आत्माका प्रतिबिम्ब होनेके कारण जीवकी पृथक् सत्ता नहीं — वह स्वयं ब्रह्म है —

बिम्बसत्तां वर्जयित्वा प्रतिबिम्बो न विद्यते।
ब्रह्मण: प्रतिबिम्बत्वाज्जीवो ब्रह्मैव नापर: ।।[२२६]

आचार्य गौड़पादकी दृष्टिमें इस प्रतिबिम्बभूत विश्वकी प्रातिभासिक सत्ता अपने सम्पूर्ण मिथ्यात्वके कारण कोई महत्त्व नहीं रखती, इसीलिए वे अजातवादके समर्थक हैं, उनके सिद्धान्तानुसार विश्व उत्पन्न ही नहीं हुआ। इस विषयमें इनका स्पष्ट कथन है — द्वैतमात्र मनका दृश्य है, परमार्थतः तो अद्वैत ही है, क्योंकि मनके मनन शून्य हो जानेपर द्वैतकी उपलब्धि नहीं होती —

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम्।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते॥[२२७]

प्राकृत विश्वकी समग्र विविधताएँ मात्र बुद्धि सापेक्ष हैं। दादागुरु आचार्य गौड़पादने आगे चलकर अपनी कारिकाओंमें अनेक प्रकारकी युक्तियों एवं तर्कोंसे यह प्रमाणित किया है कि सत्, असत् या सदसत् किसी प्रकारसे भी विश्वप्रपञ्चकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती, अतः परमअर्थमें न उत्पत्ति है, न प्रलय, न बद्ध है, न साधक, न मुमुक्षु है और न मुक्त ही है —

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥[२२८]

भगवत्पाद श्रीगौड़पादाचार्यका यह परमसत्य परमअर्थमें ही है, विश्वकी व्यावहारिक सीमामें नहीं। व्यावहारिक धरातल पर यह जगत् परमसत्ताका ही प्रथम अवतरण है, अतः वह उससे भिन्न नहीं, वह भी वही है। परमसत्ताका प्रथम अवतार विश्वरूप विराट्-पुरुष है, काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पञ्चमहाभूत, अहङ्कार, सत्त्व आदि गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गमजीव — यह इदम् और अहम् रूपसे वाच्य 'सर्वम्' उस अनन्त सत्ताके ही विविध स्वरूप हैं। भागवतके निम्न श्लोकका यही आशय है —

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य
कालः स्वभावः सदसन्मनश्च।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः॥[२२९]

भारतवर्षकी महर्षिप्रज्ञाने विश्वकी विज्ञानघनसत्ताके स्वरूपको भलीभाँति स्पष्ट किया है — चाहे वह ब्रह्माण्डीय सीमाओंमें उपबृंहित हो, या अधिब्रह्माण्डीय सन्दर्भोंमें अनन्त। उदाहरणके लिए प्रबन्धकी उपसंहारात्मक दृष्टिसे यहाँ कतिपय तथ्य निम्न प्रकारसे प्रस्तुत हैं, जो विश्वकी भौतिक एवं पराभौतिक सत्ताके अर्थको उजागर करते हैं।

(१) विज्ञानघन परमसत्ता ही स्वयं बृंहणधर्मिणी या विस्तारधर्मिणी होती हुई— विराट् विश्वके ब्रह्माण्डीय आयाममें प्रस्तुत होती है — अत: विज्ञान ही ब्रह्म है, यह सम्पूर्ण विश्व विज्ञानसे ही उत्पन्न होता है, उससे ही इसका सत्तात्मक स्वरूप विद्यमान है, अन्तमें उसमें ही यह विलीन हो जाता है, इसलिए विज्ञान ही ब्रह्म एवं बृंहणधर्मी पदार्थ है —

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।।[२३०]

(२) विश्वका मूलपदार्थ एक और अद्वितीय है — जिससे इस अनन्त विविधतायुक्त विश्वकी संरचना होती है। आजका विज्ञान विश्वके एक ही मौलिक पदार्थकी अवधारणा तक बड़ी शीघ्रतासे पहुँचता जा रहा है —

एकमेवाद्वितीयम्।[२३१]

(३) एक ही महाशक्तिके द्वारा सम्पूर्ण विश्वका निर्माण, विकास और विस्तार होता है। यह कहना न होगा कि बीसवीं शतीका विज्ञान-चिन्तन इस महावाक्यके अर्थका ही विस्तार व भाष्य है —

एकैव सा महाशक्ति: तया सर्वमिदं ततम्।[२३२]
(नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्)

(४) एक ही दिव्य पदार्थ वा प्रकाश-द्रव्य (देवम्) से पृथ्वी और आकाश उत्पन्न हुए हैं। विज्ञानके अनुसार यह अखिल विश्व प्रकाश-शक्तिका विमर्श है, यह उसीसे उत्पन्न होता है, उसीमें प्रकाशस्वरूप होकर विलीन। नभोमन्दाकिनियाँ प्रकाशके वेगसे धावित होती हुई अन्तमें स्वयं प्रकाश-स्वरूप होकर उसीमें विलीन हो जाती हैं। कार्य जब सम्पूर्ण होता है, वह अपने कारण पदार्थमें विलीन हो जाता है —

द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ।[२३३]

(५) दिक्‌की वक्रताका सिद्धान्त, जिसके अनुसार वह अखण्डमण्डलाकार स्वरूपसे सर्वत्र व्यापक है —

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।[२३४]

इस सत्यकी सर्वप्रथम जानकारी महान् वैज्ञानिक Einstein ने बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें प्राप्त की है।

भागवत दर्शनके अनुसार विश्वद्रव्यकी वैष्णवधारा जो स्वयंमें अद्वितीय, सर्वव्यापक, व्यपनशील है — वह सृष्टि संरचनाके निमित्त प्रवाहित हो उठती है। इस सनातन धाराके बुद्-बुद ही कालान्तरमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड चक्रोंके रूपमें प्रकट होते हैं। विज्ञानने आदिमद्रव्यकी तुलना साबुनके बुलबुलोंसे की है — Soap Bubble Theory — परमपुरुष महाविष्णुके अनन्त लोमविवरमें अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणुवत् समाहित हैं — **ब्रह्माण्डाः परमाणवः ।**[२३५] ब्रह्मवैवर्तपुराणने इस रहस्यको विज्ञान-रूपकके माध्यमसे प्रस्तुत किया है — महाविष्णुके लोमकूपसे निकलनेवाले सुनिर्मल जलमें ब्रह्माण्ड उसी प्रकार स्थित है — जैसे नदीमें कृत्रिम नौका —

महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले ।
ब्रह्माण्डोऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा ।।[२३६]

महर्षि तुलसीदासजीने मानसमें परम-पुरुषके रोम रोममें कोटि कोटि ब्रह्माण्डोंके स्वरूपको देखा है —

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ।[२३७]

यही विराट् विश्वके काल-पुरुषका स्वरूप है, जिसके भीतर परमपुरुष-इतिहास-पुरुष बनकर अवतरित हुआ है। कालपुरुष विज्ञानघन परमपुरुषकी अंशांश-कलाका विस्तार मात्र है। विज्ञानघन अव्यय-पुरुष ही स्वयं कालपुरुष और इतिहास-पुरुषके रूपमें प्रकट हुआ है, वह परिच्छिन्न पदार्थाकार नहीं, सर्वमय है। अतः ये पर्वत, समुद्र और पृथ्वी आदि भेद उस परमविज्ञानसे भिन्न नहीं, उसीके लीलाविलास हैं —

ज्ञानस्वरूपो भगवान्यतोऽसा-
वशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभूतः ।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदा-
ञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि ।।[२३८]

विश्वका समग्र उपादान बीजरूपमें अपनी कारण परम्पराके मूलमें विद्यमान है। सनातन महासत्ता ही उसका मूल कारण है। विश्वका मूलाधार होते हुए भी स्वयं निर्मूल और निराधार है — **मूले मूलाभावात् अमूलं मूलम् ।**[२३९] उस मूलाधारके विज्ञानमय स्वरूपको जाननेके लिए ही वैदिकदर्शनके महान् प्रस्थानका प्रवर्तन होता है — विश्वके समस्त प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके आश्रयसे जीवित रहते हैं, अन्तमें प्रयाण करते हुए उसमें ही प्रविष्ट या विलीन हो जाते हैं, उसे तत्त्वतः जाननेकी इच्छा करो, वही ब्रह्म है — **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ।**[२४०] वेदान्तदर्शनमें समग्र सत्ता पाँच भागोंमें वर्गीकृत हुई है — (१) अस्ति, (२) भाति, (३) प्रिय, (४) रूप और (५) नाम। इनमें प्रथम तीन नित्य और चेतन हैं, शेष दो अनित्य, जड़ और जगत् रूप —

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।।[२४१]

वैज्ञानिक शिरोमणि सुप्रसिद्ध गणितशास्त्री श्रीभास्कराचार्यने परमसत्ताके उपादानभूत ब्रह्माण्डीय द्रव्यस्वरूपको उसकी समग्रतामें इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भे-
ऽहंकारोऽभूत्खवशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च ।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरिञ्चे-
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत् तत्त्वमाद्यम् ।।[२४२]

इसका संक्षेपमें तात्पर्य है कि आद्यतत्त्व परमब्रह्म है, जिससे सभी उपादानभूत तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, यही विश्वका मूलकारण स्वरूप वासुदेवतत्त्व है। जब उसमें संकल्प होता है, तब संकर्षण नामक अंश उत्पन्न होता है, इससे ही प्रकृति और पुरुषमें क्षोभ, यह क्षोभ ही कालान्तरमें महत्तत्त्वके रूपमें परिणत हो जाता

है, यहीं सृष्टिका प्रद्युम्न तत्त्व है। यह तत्त्व ही आगे चलकर अहंकारको उत्पन्न करता है, जो अनिरुद्धके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ यह सृष्टिविज्ञान आचार्यने सांख्यशास्त्रके आधारपर स्पष्ट किया है। आचार्य भास्करने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तमें वैष्णवआगमोंके अनुसार अपना कथ्य प्रस्तुत किया है, अत: यहाँ तदर्थका भी अन्वय ग्राह्य है — वह परमब्रह्म वासुदेवस्वरूप प्रधानपुरुष अव्यक्त, निर्गुण, शान्त तथा पच्चीस तत्त्वोंसे परे है —

वासुदेव: परं ब्रह्म तन्मूर्ति: पुरुष: पर:।
अव्यक्तो निर्गुण: शान्त: पञ्चविंशात् परोऽव्यय: ॥[२४३]

आजका भौतिक विज्ञान स्थूलसे हटता हुआ —'परम' की ओर बढ़ता चला जा रहा है, जो अव्यक्त, अव्यय, निर्गुण, शान्त और मूलतत्त्वोंकी संख्या एवं कार्यकारणकी सीमासे सर्वथा परे है। देश, काल और कारणतासे आबद्ध जगत् मात्र इन्द्रिय प्रत्यक्षकी सीमाका सीमित विश्व है — वह परम अस्तित्व (Absolute existence) नहीं, वह माया स्वयं एक सापेक्षता (Relative existence) है। विज्ञान केवल द्वितीय सत्ताकी बात करता है, प्रथमकी उसके पास कोई अवधारणा नहीं। इन्द्रियोंका ग्राह्य विषय वह चाहे परम बौद्धिक ही क्यों न हो — एक निश्चित प्रायिकता (Frequency) के मध्य बहुत सीमित है, और वहीं तक उसकी प्रामाणिकता है, अत: परमअर्थमें अद्वैत ही सिद्ध है। वह केवल एक है — **केवलाद्वैत** — इसके पश्चात्का द्वैत — त्रैतादि अनन्त विस्तार माया है, परम अर्थमें नहीं। इसी आधार पर श्रीगौड़पादाचार्यने 'अजातवाद' के दर्शनको देखा —'वह जैसा है-वैसा ही है'—'कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ'— कुछ भी परिणाम क्रममें नहीं आया। आचार्यपादकी इस सिद्धान्त दृष्टिको 'परमशून्य' के तत्त्वसन्दर्भमें समझने एवं ग्रहण करनेके कारण भारतीय दर्शनके नवीन इतिहास-कारोंको उनके बौद्ध होनेका महाभ्रम उत्पन्न हो गया, पर बौद्धोंका यह 'परमशून्य' तत्त्व उपनिषदोंके अविकृत 'ब्रह्मवाद' पर आधारित है। इस दर्शनका मुख्य आधार ये महावाक्य हैं — **नेति नेति**[२४४] **नेह नानास्ति किञ्चन**[२४५] **सर्वं खल्विदं ब्रह्म**[२४६] **इद ९ सर्वं यदयमात्मा**[२४७] आदि। ब्रह्म या मूलसत्ता परिणाममुक्त, आकाशकी तरह परम व्यापक दिक्-काल-संख्या आदिके विभागसे रहित और चिन्मय एवं विज्ञानरूप है। महाविश्वका सम्पूर्ण विस्तार और वैविध्य

अक्षरब्रह्मकी परमसत्तासे पृथक् कुछ भी नहीं, इन्द्रियग्राह्य जगत् अत्यन्त सीमित है — परम नहीं; परमकी प्रतिबद्धतासे वह यथार्थ ज्ञानका विपर्यय है। अत: अपने परमगुरु भगवान् गौड़पादके सिद्धान्तको केन्द्रमें रखकर आचार्य शंकरने सत्ताके स्वरूपको ही तीन भागोंमें विभक्त कर दिया — (१) परमसत्ताका सनातन स्वरूप जो परिणाम मुक्त, अविभक्त और एक है; (२) जगत्की व्यावहारिक सत्ता जो देश, काल और कारणतासे परिच्छिन्न इन्द्रियग्राह्य है — जो परमअर्थमें एक होते हुए भी विभक्त एवं विभिन्न प्रतीत होती है — **अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।**[२४८] (३) प्रातिभासिक सत्ता जो सर्वथा भ्रमरूप है — यथा रज्जुमें सर्प या सीपीमें रजत।

३. परमसत्ता और अखिल विश्वकी महासत्ता

परमसत्ता और व्यवहारसत्ताका विभेद वैज्ञानिक है, विज्ञान अपनी नवीन क्षमताओंके साथ व्यावहारिक सत्ताको प्रातिभासिकमें बदल कर आचार्य शंकरके बहुत निकट चला आया। विज्ञानके अनुसार व्यावहारिक जगत् यथार्थसे बहुत दूर है — वहाँ विगत कुछ वर्षोंमें स्थूल और सूक्ष्मके विभेदोंके आधारपर अनेक प्रकारकी सत्ताएँ स्वीकार कर ली गईं। एक तो वह स्थूल सत्ता जिसमें वह जी रहा है — जहाँ उसकी प्रयोगशाला और प्रयोग विद्यमान हैं। इससे सूक्ष्म प्रयोगद्वारा उपलब्ध पारमाणविक सत्ताका क्रियाशील जगत्, इससे परे सूक्ष्मकणोंके महानृत्यका विश्व, इससे भी परे सूक्ष्मातिसूक्ष्म इन परमकणों (Particles) की विधायिका महासत्ता (Quark-Universe), जिसकी तीन इकाइयाँ मिलकर एक कण (Proton) की रचना करती हैं। इससे भी परे गणितकी जटिलतम गहराइयोंके गहनतम रहस्यमें समाहित सुपरस्ट्रिंग्स् सिद्धान्त (Superstrings universe theory) की महासत्ता, जिसमें प्रोटोन (Proton) के अर्बुदांश (Billionth) की सूचना विद्यमान है, 'Proton' से एक अरबगुना अधिक सूक्ष्म, अर्थात् एक सेंटीमीटरका $१०^{-३३}$ वाँ अंश — एककी संख्या पर -३३ शून्य। समझनेकी दृष्टिसे सत्ताको छ: भागोंमें बाँटा जा सकता है — पर प्रत्येक सत्ताकी प्रतिबद्धतासे अन्य सत्ताका स्वरूप प्रातिभासिक है, अत: इन सभी सत्ताओंका स्वरूप मायिक है — परम (Absolute) नहीं। सत्ताका यह विज्ञानलब्ध विभाजन इस प्रकार है — (१) स्थूल व्यावहारिक जगत् जिसमें प्रजातीय चेतनाका वैज्ञानिक विकास होता है,

(२) आणविक विश्व (Molecular - Universe), (३) पारमाणविक सृष्टि (Atomic - World), (४) काणभौतिक विश्व (Particle Universe or Universe of High Energy Physics), (५) कण-प्रखण्ड विश्व (Universe of Quarks), (६) अधिसूत्रात्मक जगत् (Super Strings Universe)। सिद्धान्तदृष्टिसे उत्तरोत्तर सत्ताकी प्रतिबद्धतासे पूर्व पूर्व विश्वसत्ता प्रातिभासिक है। छठीं अधिसूत्रदृष्टिसे हमारी प्रयोगसिद्ध वैज्ञानिकसत्ता सहित सभी सत्ताएँ प्रातिभासिक हैं, पर यथार्थमें ऐसा नहीं — हम अधिसूत्रसत्ता (Super Strings) सहित सभी सत्ताओंके प्रमाता हैं — अत: परमअर्थमें यह सभी सत्ताविभेद अद्वैत है — बहुत्व दृष्टिसे ही यह विभाजन है, मायिक या प्रातिभासिक। भगवत्पाद श्रीगौड़पादका कथन सर्वथा सत्य है — 'यह सभी माया है — परमअर्थमें अद्वैत'।

यह उपर्युक्त वर्गीकरण स्व-स्व सिद्धान्तोंकी प्रतिबद्धताके अनुसार है। इस विभाजनको और भी संक्षिप्त करके देखा जाए तो स्थूल व्यावहारिक जगत्, क्वाण्टम विश्व एवं सुपरस्ट्रिंग सिद्धान्त और वेदान्तके त्रिविध सत्ता सिद्धान्तोंमें तात्त्विक विभेद स्वल्प है, विभेद है वह परमकी मान्यताको लेकर है, जिसमें न किसी प्रकारका विभाजन है, न उससे अधिक कोई सूक्ष्म व अखण्ड और एक है। स्थूल और सूक्ष्म दो भिन्न स्थितियाँ हैं। परमअर्थमें महासत्ता इनमें व्याप्त होते हुए भी व्याप्य-व्यापक सम्बन्धसे परमव्यापक, सनातन और अव्याकृत है। आचार्य गौड़पादका 'परम' इसी अर्थमें है — जहाँ परिणमन नहीं, सभी कुछ आत्मा है। उदाहरणके लिए पदार्थविज्ञानका आचार्य प्रयोग-प्रधान (Experimental) विश्वको उसके प्रति अनेकताके साथ देखता है — जैसाकि भारतीय दर्शनमें अनेकान्तवादके जैन आचार्योंने देखा है। परमकण भौतिकी (Particle-physics) के आचार्यकी दृष्टिमें यह जगत् कहीं कणरूप है, कहीं तरंगरूप (Wave and Particle Theory), इसी प्रकार इसकी खण्ड-खण्ड पुद्गल धर्मिता पर सोचते हुए स्याद्वादकी भाषामें नित्य और अनित्य रूपसे — 'जैसा है — वैसा ही' कहा है। वेदान्त दर्शनके अनुसार विश्व ज्ञातृत्व-विशिष्ट चैतन्यका ज्ञेयत्व-विशिष्ट स्वरूप है। जैन दर्शन इसकी अनन्त पुद्गलधर्मिताकी अनन्तताके साथ इसे अस्तित्वकाय व अस्तिकाय कहता है। वेद जिस तत्त्वका 'पूर्ण' शब्दसे निर्देश करता है, अपोहवादी बौद्ध दर्शनने उसे 'शून्य' पदसे कहा है। अपोहवादका

मूल आधार — **नेति-नेति**[२४९] की ही तत्त्वभूमि है। प्रथममें विधिमुखसे परमसत्ताका ग्रहण है, द्वितीयमें निषेधमुखसे। प्रथम अन्वयमुखेन, द्वितीय व्यतिरेकमुखेन — **यत्सत्त्वे यत्सत्त्वम् — यदभावे यद्भाव:** वैदिक ऋषियोंने दिक्, काल और कारणताका अतिक्रमण करते हुए 'पूर्ण' को जाना था, 'परम' को प्राप्त कर लिया था —'वह परम न सत् है, न असत्', वह इन दोनोंसे परे और दोनोंसे विलक्षण है, न वहाँ व्योम है, न वायु — वह इनसे परे है —

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।[२५०]

नासदीयसूक्तमें समग्र भारतीय दर्शनके सिद्धान्त बीज रूपसे निहित हैं। वेदविद्यावाचस्पति महामहोपाध्याय पं० श्रीमधुसूदन ओझाने इसी सूक्तके भाष्य स्वरूप दश ग्रन्थ — (१) सदसद्वाद, (२) रजोवाद, (३) व्योमवाद आदि लिखे हैं, जिनमें बीजरूपसे सूक्तको केन्द्रमें रखकर समग्र भारतीय दर्शनका उपबृंहण हुआ है।[२५१] भारतीय दर्शनका प्रतिपाद्य **पूर्णमद:** है — कहीं 'आत्मरूप' से, कहीं 'सद्रूप' से कहीं 'असत्' या 'शून्यरूप' से, कहीं इससे भिन्न और विलक्षण, कहीं वह 'अस्तित्व' पदवाच्य है, कहीं 'नास्ति' और 'नेति' पदके द्वारा स्पष्ट किया गया है।

सम्पूर्ण अस्तित्व दो भागोंमें विभक्त है —'पर' और 'अपर'। प्रथम **पूर्णमद:** है द्वितीय **पूर्णमिदम्**। 'पर' अज्ञेय या Noumenon है —'अपर' ज्ञेय या Phenomenon. 'पर' को पद और पदार्थका विषय बनाकर नहीं कहा जा सकता — विवेचनकी सीमामें **पूर्णमिदम्** ही है। समाधिके द्वारा विश्वके भयावह अधोगामी स्रोतोंसे ऊपर उठकर महर्षियोंने 'पर' को जाना है, 'अपर' की इयत्ताका पता लगाया है — अनन्तके अनेक गूढ़ रहस्य और संकेतक वहाँ भली-भाँति उद्घाटित हुए हैं, जिन्हें आजके विज्ञानकी तुलनात्मक सीमाओंके भीतर बड़ी स्पष्टताके साथ समझाया जा सकता है। विश्वका विकास कहीं भी आकस्मिक और उद्देश्यहीन नहीं, वह जीवन और इतिहासतत्त्वकी दृष्टिसे परमचेतनाका आंशिक स्वरूपान्तर या अंशावतार है —

पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।[२५२]

परम चेतना ही इस समग्र विस्तारकी जनक और नियति है — मानव उसका अतुलनीय उदाहरण। मानवका समुद्भव कहीं भी आकस्मिक नहीं, न वह किसी वानर या तत्सदृश किसी प्रजातीय विकासका परिणाम है। चेतना स्वयं अपनी अभिव्यक्तिके आधारका चुनाव करती हुई स्वयं ही आधेयरूप हो जाती है, जिस बिन्दुपर हम समुचित रूपसे देख पाते हैं, वहीं वह नेत्रगोलकके आकारमें सुव्यक्त होती है। परमचेतना किसी भौतिक उपादानका प्रतिबिम्ब नहीं — वह बिम्ब है — इन्द्रियगोलक उसकी उपयोगिताके संसाधक यन्त्र। १९४८ में जब कैलिफोर्नियामें प्रसिद्ध Hele Telescope का उद्घाटन समारोह हुआ, उस समय वैज्ञानिक अभिभाषणके माध्यमसे बौद्धिकज्ञानकी महत्ता इन शब्दोंमें स्पष्ट की गई —'वह बुद्धि जो अपनी परिसीमामें विश्वको घेर लेती है, वह उस विश्वसे अधिक विलक्षण, उत्कृष्ट या अद्भुत है, जो उसे घेरता है'—

....the mind which encompasses the Universe is more marvelous than the Universe which encompasses mind.[२५३] चेतनाकी अभिव्यक्तिके अनुसार ही ऐन्द्रिक आयामके उपादानका आकार और प्रकार सुगठित होता है। हमारी संचेतनाके अनुसार और अनुकूल हमारी भौतिक संरचनाका विधान है। तत्त्वदृष्टिसे कहा जाए तो अन्ततोगत्वा परमसत्ताका स्वरूप विश्वचेतनाका महद् आयाम बन जाता है।

शरीरकी संरचनात्मक धातुमत्तासे अधिक महत्त्वपूर्ण हमारी संचेतना है, जो सम्पूर्ण विश्वकी नियति और विस्तारको प्रमाण और प्रमेयकी सीमामें रखकर उसे अपनी प्रमा (यथार्थ ज्ञान) का विषय बना लेती है। विश्वकी महाती संरचनाके मूलमें चेतनाकी महत् संज्ञानधारा सर्वत्र विद्यमान है। प्रतिक्षण होनेवाला यह उद्देश्यमूलक परिणमन ही सृष्टिका विकास है। अवयवात्मक विकासके मध्य जात्यन्तर परिणामकी यह कारण परम्परा प्रकृतिके गुणात्मक घटकोंकी पूर्णताके सापेक्ष है —

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥[२५४]

सृष्टिका यह अनादि कालप्रवाह — जहाँ ब्रह्माण्डोंकी नियतिका आधारदण्ड है; वहीं वह मानवीय चेतनाका परमविधायक है। जीवनके संरचनात्मक विकासकी

'ब्लू-प्रिण्ट' सृष्टिके पूर्व जैवद्रव्यकी संस्कारधाराके अनुसार कालावच्छिन्न होती है, लोक ब्रह्माण्डों की उपादानधर्मिताके अनुसार वहाँ वैसी ही जैवसंस्थाका विकास हो जाता है। इस ग्रहकी जीवनधाराके अन्नमय और विज्ञानमय कोशका विकास यहाँके पर्यावरणके अनुसार सम्पन्न हुआ है। प्राचीन भारतीय दर्शनमें यह 'प्राण' और 'रयि' का संश्लेषित स्वरूप है।

रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।[२५५]

जेज़विट दार्शनिक एवं सुप्रसिद्ध प्रत्नअश्मशास्त्री (Paleontologist) Teilhard de Chardin ने पार्थिव पर्यावरणके भीतर जैवचेतनाके विस्फोटकी कल्पना 'Omega - Point' के रूपमें की है, [२५६] जिसके अनुसार जैवविकास अपने अन्तिम बिन्दुपर पहुँचकर प्रज्ञानघन चेतनामें बदल जाता है। सत्य तो यह है कि चेतना स्वयं प्रकृतिके आधार-चक्रका उत्क्रमण करती है। भारतीय तत्त्वशास्त्र कहीं भी भूत-भौतिक सत्ताका निषेध करते हुए किसी कपोलकल्पित सत्ताको स्थापित नहीं करता। वह भौतिक विज्ञानकी चरमसीमाओंसे बहुत आगे बढ़कर उन्हें स्वीकार करता है। यहाँ तक कि भारतीय दर्शन अभाव या प्रतिभावको पदार्थ मानता है, आकाशको द्रव्य। विज्ञान आज अभाव पदार्थकी किञ्चित् पहचान Anti matter एवं आकाशद्रव्यकी Absolute - Vacuum के रूपमें कर रहा है। वह अब मात्र शून्य नहीं, जैसा कि कुछ दशकों पूर्व तक समझा जाता रहा, वह विश्वका परम उद्‌भावक द्रव्य है, विश्व उसीकी द्रव्यधर्मितासे उत्पन्न हुआ है —'The history of the Metagalaxy is in fact the history of the Vacuum.' 'नभोगंगाका पूर्वभावी इतिहास नभोरिक्तताका इतिहास है'[२५७] कुछ वैज्ञानिकोंका अनुमान है आकाश परमसूक्ष्म फेनसे निर्मित है। भारतीय मतसे वहाँ स्पर्शतन्मात्रा विद्यमान है — जो वायु या गैसके रूपमें कालान्तरमें प्रकट होती है। सृष्टिके मूलकण (Elementary Particles) इस Vacuum से ही उत्पन्न होते हैं, उसमें ही इनका विलय हो जाता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है आकाशके सूक्ष्मतम फेनिल स्वरूपसे ही विश्वद्रव्यकी उत्पत्ति हुई है। Absolute Vacuum आज भौतिक विज्ञानमें मात्र शून्य नहीं, उसके अध्ययन एवं अन्वेषणके लिए वहाँ स्वतन्त्र विभाग स्थापित हो गया है, क्योंकि

क्वान्टम (Quantum) जगत्की सम्पूर्ण गतिविधिमें वह मुख्यरूपसे हेतु है। इस विषयमें John A. Wheeler का कथन है 'No point is more central than this, that empty space is not empty. It is the seat of the most violent physics.[२५८]

वर्तमान नवीन विज्ञानका सारा परिदृश्य सम्पूर्ण रूपसे बदला हुआ है। परमाणु विज्ञानके सुप्रसिद्ध वेत्ता Bohr.Niels H.D. के अनुसार इलेक्ट्रोन (Electron) का वैद्युतिक आचरण Negative Charge बौद्धिक है। इन्होंने विज्ञानकी सम्पूर्ण वस्तुनिष्ठता (Objectivity) को ही हमारी बुद्धिनिष्ठ प्रामाणिकताको समर्पित कर दिया है —'It is wrong to think that the task of physics is to find out how nature is. Physics concerns what we can say about nature.'[२५९] क्वाण्टमशास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् David Bohm का तो यहाँ तक दृढ़ विचार है कि विज्ञानकी इस शाखाका नामकरण ही गलत कर दिया गया है; उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पाठ्य पुस्तकमें लिखा है —'Quantum Processes' के स्थान पर नाम होना चाहिए 'Thought Processes' क्योंकि पदार्थका संरचनात्मक स्वरूप कहीं भी यान्त्रिक (Mechanical) नहीं।[२६०] वेदान्त दर्शन विश्वको ही ब्रह्मका बृहद् संकल्प कहता है। खगोल शास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् Sir James Jeans का निम्न वक्तव्य इस सन्दर्भमें गहन विचारणीय है —'Today there is a wide measure of agreement ....that the stream of knowledge is heading towards a non-mechanical reality; the universe begins to look more like a great thought than like a great machine'.[२६१]

महान् दार्शनिक अरविन्दके कथनानुसार विश्वकी नियतिका स्थापत्यकार ईश्वर कहीं भी अन्ध नहीं, उसने अपनी संरचनात्मक विज्ञानचेतनासे जीवनकी योजनाकी जिस गाणितिक वक्रता और रेखाका विन्यास किया है, वह सर्वत्र अर्थयुक्त है —

> 'A blind God is not destiny's architect;
> A conscious power has drawn the plan of life.
> There is meaning in each curve and line'.[२६२]

क्वान्टमजगत्के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक Paul Dirac की भी यही मान्यता है – ईश्वरने सृष्टिकी संरचनामें बहुत ही सुन्दर गणितका उपयोग किया है –'God used beautiful mathematics in creating this world'[२६३] क्वाण्टम विश्वका सम्पूर्ण सूक्ष्म आचरण ही परम बौद्धिक है; वहाँ भी व्यक्ति और समाज जैसी संरचना विद्यमान है – Fermion व्यक्तिवादी है, Boson समूहवादी – '...Electrons, Protons, Neutrons, Neutrinos are Fermions, while Photons and Mesons are Bosons वे आगे लिखते हैं – 'Fermions are , so to speak, individualists, and Bosons are collectivists.'[२६४]

क्वान्टम भौतिकीके प्राय: सभी उल्लेखनीय आचार्योंने पारमाणविक विश्वके अन्तरालमें महत् संज्ञानधाराके प्रभावी हस्तक्षेपको स्वीकार किया है। इनमें John Wheeler सहभागी विश्वसिद्धान्त (Participatory Universe Theory) के समर्थक हैं। इनके अनुसार जगत् 'स्वत: संक्षुब्ध या ऊर्जित मंडल' (Self-excited Circuit) की तरह है – बिगबैंगसे लेकर अपने सभी विकसित सोपानों तक। इससे भी आगे इनकी मान्यता है – हम कल्पना कर सकते हैं, विश्वके समग्र इलेक्ट्रोन्स दिक्-कालके मध्य अपने जटिलतम पथका निर्माण करनेके लिये परस्पर अन्योन्य-क्रियामें सहभागी होते हैं – कभी अग्रगमन, कभी पश्चगमन –'We could imagine all of the electrons in the universe being connected by interactions to form a highly complex zig-zag path through space-time, forward and backward'. वे नैयायिकोंकी तरह पट-तन्तु समवायी – असमवायी कारण पद्धतिका प्रयोग ही अपने मन्तव्यको स्पष्ट करनेके लिए करते हैं। उन्होंने कालके करघेपर बुने हुए सूक्ष्म कणात्मक चित्रपटको इस प्रकार प्रस्तुत किया है – '....A single electron shuttling back and forth, back and forth on the loom of time to weave a rich tapestry containing perhaps all the electrons and positrons in the world'[२६५] यह विश्व महत्चेतनाकी विज्ञानघन अभिव्यक्ति है, विज्ञान आज इस सिद्धान्त पर अधिकसे अधिक दृढ़ होता जा रहा है।

इस सत्यको मध्ययुगके महान् रहस्यवादी Jacob Böhme ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ De Signatura Rerum के प्रथम अध्यायमें भलीभाँति उजागर किया है, क्वाण्टम भौतिकीके गहन अन्तरालमें इस कथनको यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा — प्रकृतिमें कहीं कुछ ऐसा नहीं जो अपने आभ्यन्तर स्वरूपको बाहर न प्रकट करता हो ... यह बाह्य अभिव्यक्तिका कार्य वहाँ सतत विद्यमान है ... प्रत्येक वस्तुके पास अभिव्यक्तिके लिए अपना मुख है, और यही प्रकृतिकी भाषा है, जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने गुणधर्मोंको स्वत: बोलती है, सर्वदा स्वयंको प्रकट और अभिव्यक्त करती है ... प्रत्येक इकाई अपनी जननीका ज्ञान इसीलिए करवाती है, कि कालान्तरमें वह उसके संज्ञानतत्त्व और उसकी इच्छाशक्तिके स्वरूपको प्रकट कर सके — And there is nothing in nature that does not reveal its inner form outwardly as well, for the internal continually works towards revelation.....Each thing has its mouth for revelation. And this is the language of nature in which each thing speaks out of its own property, and always reveals and manifests itself.... for each thing reveals its mother, who therefore, gives the essence and the will to the form.[२६६]

Jacob Böhme के उपर्युक्त कथनका भाष्य करते हुए महान् दार्शनिक शॉपेनहॉवर (A.Schopenhauer) ने कहा — जिसका संक्षिप्त आशय इस प्रकार है — अभिव्यक्तिके सभी प्रकारोंके मूलमें 'इच्छा' ही सर्वत्र कार्यरत है। वह एक है, सभीके भीतर उस एक (इच्छा) की ही अभिव्यक्ति है। यह स्वयं ही जीवन और अस्तित्वके रूपमें प्रकट होती है — अन्तहीन उत्तरोत्तर स्थितिमें, अनेकविध स्वरूपोंमें, आकृतियोंमें। ये सभी स्थितियाँ बाह्य परिस्थितियोंके अनुसार विभिन्न प्रकारका समायोजन या समझौता हैं, इसी क्रममें उन अनेक विभिन्नताओंकी परस्पर तुलना की जा सकती है। वे आगे कहते हैं — यदि हम द्रष्टासे कहें कि वह हमें इन विविधताओंके आभ्यन्तर स्वरूपकी सूचना और विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करे — तो उत्तरमें हिन्दुओंके पवित्र संस्कृतसूत्रको उपस्थित किया जा सकता है, जो महान् शब्द या महावाक्यके नामसे प्रसिद्ध है — **तत्त्वमसि**।

शॉपेनहॉवरके मूल कथनका आंग्ल अनुवाद इस प्रकार है, जिसे आजके क्वान्टम सिद्धान्तकी मान्यताओंसे भी जोड़कर देखा जा सकता है — We see in it the manifold grades and modes of manifestation of the will that is one and the same in all beings and everywhere wills the same thing.This will objectifies itself as life, as existence, in such endless succession and variety in such different forms, all of which are accomodations to the various external and can be compared to many variations on the same theme. But if we had to convey to the beholder, for reflection and in a word, the explanation and information about their inner nature, it would be best for us to use the Sanskrit formula which occurs so often in the sacred books of the Hindus, and is called Mahāvākya, i.e. the great word : 'Tat tvam asi' which means 'This living thing art thou.'[२६७]

वेदान्त दर्शनके अनुसार ब्रह्मका इच्छात्मक संकल्प ही सृष्टिका मूलकारण है — **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति....**[२६८] उस सत्‌ने ईक्षण — संकल्प किया कि मैं बहुत हो जाऊँ, अनेक प्रकारसे उत्पन्न होऊँ। इस छान्दोग्यश्रुतिकी तरह ऐतरेयश्रुति भी ईक्षणके अर्थको ही प्रस्तुत करती है

स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमाँल्लोकानसृजत्।[२६९] उसने विचार किया मैं निश्चय ही लोकोंकी रचना करूँ, उसने लोकोंकी रचना की। प्रश्नोपनिषद्‌का भी विश्व और जीवन दोनोंके सम्बन्धमें यही अभिमत है — **स ईक्षां चक्रे।......स प्राणमसृजत्....**[२७०] उसने इच्छा की, उसने प्राणोंकी सृष्टि कर दी। इस सन्दर्भमें वेदान्त दर्शनका प्रसिद्ध सूत्र है — **ईक्षतेर्नाशब्दम्**[२७१] — वेदमें 'ईक्ष' धातुका प्रयोग होनेके कारण शब्द प्रधान जड़ प्रकृति जगत्‌का कारण नहीं है। सृष्टिके मूलतत्त्वके भीतर निहित इच्छाशक्ति विश्वरूपमें बृंहित या विस्तृत होती चली जाती है, फलत: जड़ कही जानेवाली प्रकृति भी इस आदि ईक्षणका ही परिणाम है, अत: वह तात्त्विक अर्थमें कहीं भी जड़ नहीं, वह अपने सभी अनन्त स्वरूपोंमें चैतन्यघन या प्रज्ञानघन है। प्रसिद्ध भौतिकविद् वैज्ञानिक Sir Arthur Eddington

का कथन है — विश्वका सारभूत उपादान बौद्धिक है — 'The stuff of the Universe is mindstuff.'[२७२] इसकी ही प्रतिध्वनि प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता Sir James Jeans ने इन शब्दोंमें प्रकट की है — 'The Universe looks less and less like a great machine and more and more like a great thought.'[२७३] अर्थात् यह विश्व अधिकसे अधिक एक महान् विचारकी तरह दिखाई देता है, कमसे कम एक यन्त्रके रूपमें। क्वान्टम भौतिकीके उल्लेखनीय आचार्य David Bohm विश्वकी सूक्ष्मताके मूलमें पूणता और आभ्यन्तर अनुशासन (Wholeness and the implicate order) के पक्षधर सिद्धान्तवादी हैं, उनके ग्रन्थका भी यही नाम है, जो कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था।[२७४] सम्पूर्ण ग्रन्थ देखा जाए तो **पूर्णमदः पूर्णमिदं....** मन्त्रका ही भाष्य है — क्वान्टम भौतिकीके नवीन सन्दर्भोंसे युक्त।

वर्तमान भौतिक विज्ञानके स्वरूप, प्रतिपाद्य एवं भविष्यको केन्द्रमें रखते हुए टेक्सास विश्वविद्यालयके Particle Theory यूनिटके अध्यक्ष प्रोफेसर George Sudarshan ने भौतिक विज्ञानको एक धार्मिक अनुशासन ही कहा है — Physics is a spiritual discipline.[२७५] महान् सौन्दर्यस्रष्टा कलाकार एवं वैज्ञानिक Leonardo da Vinci ने इस सत्यको नवीन भंगिमाके साथ प्रस्तुत किया — '....Learning of the laws of nature, we magnify the inventor, the designer of the World; And we learn to love him, for the great love of God results from great knowledge. Who knows little, loves little.[२७६] प्रकृतिके नियमोंको जानकर हम आदि स्रष्टाके स्वरूपको ही महिमान्वित बनाते हैं, और इस प्रकार हम उससे प्रेम करना सीखते हैं, महद्ज्ञानके द्वारा ही यह प्रेम भगवान्‌के प्रति प्रकट होता है जो कम जानता है, वही उसको कम प्यार करता है। विंचीका कलादर्शन — विज्ञानदर्शन और धर्मदर्शन पूर्ण था, इसीलिए वे इतना महान् सत्य प्रस्तुत कर सके। लियोनार्दोके इस सत्यको Albert Einstein के विज्ञान चिन्तनसे जोड़कर देखा जाए तो इस कथनकी गम्भीरता एवं आइन्स्टीनके मनोप्रज्ञात्मक जगत्‌की गहनताका सहज अनुमान लगाया जा सकता है — वैज्ञानिक अन्वेषणकी दृष्टिसे विश्वरूपा धार्मिक अनुभूति उत्कृष्ट एवं परमप्रेरणादायक है, प्रकृतिके नियमकी स्वर समरसताके

समय वैज्ञानिककी धार्मिक अनुभूति विस्मयजनक भावसमाधिका स्वरूप धारण कर लेती है, वह इस प्रकार ऐसे उच्चतम प्राज्ञस्वरूप की अभिव्यक्ति करती है, जिसके साथ तुलना करने पर मानव जातिकी समग्र व्यवस्थित चिन्तन पद्धति और अभिक्रिया सम्पूर्ण रूपसे अर्थहीन हो जाती है —'Cosmic religious feeling is the strongest and noblest incitement to Scientific research' also 'The religious feeling of the scientist takes the form of a rapturous amazement at the harmony of natural which reveals an intelligence of such superiority that, compared with it, all the systematic thinking and acting of human beings is an utterly insignificant reflection.'[२७७]

सांख्य दर्शनके अनुसार प्रकृतिका प्रथम धर्मपरिणाम महत्तत्त्व या बौद्धिक संचेतना (Mindstuff) है, इससे ही कालान्तरमें द्रष्टा (इन्द्रिय) और दृश्यरूप पाञ्चभौतिक जगत्का समग्र विकास होता है —

प्रकृतेर्महान् ततोऽहङ्कारः तस्मात् गणश्च षोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥[२७८]

प्रकृतिसे आदिम चैतन्य या महत्तत्त्व, उससे अहंकार, इससे मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध — इन सोलह तत्त्वोंका समुदाय विकसित होता है। इन सोलह पदार्थोंके अन्तर्गत शब्द, स्पर्श आदि पाँच तन्मात्राओंके द्वारा पञ्चभूत — आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी अस्तित्वमें आते हैं। इन सभी जागतिक पदार्थोंका मूलतत्त्व महत्तत्त्व है, जिसका अर्थ है आदिम विश्व-चैतन्य। यही कालान्तरमें शक्ति और भूत-भौतिक द्रव्य — (Physical), जैव (Biological), मनोभौतिक (Psychological) आदि रूपोंमें व्यक्त होता हुआ — अन्तमें प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त होकर परमचैतन्यके साथ तद्रूप हो जाता है। परमचैतन्य दिक्काला-तीत — अनादि — अनन्त — सर्वव्यापक परमसत्ता है। प्रतिचैतन्यकी अपनी स्वरूपभूता प्रकृतिके अनुसार ही वह परमचैतन्य वहाँ प्रतिभासित होता है। उसकी प्रतिबद्धताको लक्ष्यमें रखकर ही उसे परमविधिका विधान कहा गया

है। यही विज्ञानके क्वान्टम जगत्में समारोपित विधान या Implicate Order के नामसे प्रसिद्ध है, जिसकी सूक्ष्म गणितको आचार्य David Bohm ने प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भमें प्रसिद्ध वैज्ञानिक Sarfatti J का स्पष्ट कथन है — मेरे विचारसे क्वान्टम सिद्धान्त आवश्यक रूपसे बुद्धितत्त्व द्वारा अवच्छिन्न है .... यह बौद्धिक चैतन्य ही है, जो द्रव्यका निर्माण करता है —'In my opinion the quantum principle involves mind in an essential way .... mind creates matter.[२७९] **पदार्थविज्ञानके आचार्य** Walker के अनुसार वहाँ प्रस्तुत होनेवाली अप्रत्यक्ष अस्थिरता (Hidden variable) मनश्चेतनाके साथ विद्यमान है — '... The hidden variables assuming they are there, with conciousness.' Muses C. A. ने चेतनाको क्वान्टमके शून्य अन्तरालमें सक्रिय रूपसे समाहित देखा है —'Muses plugs conciousness into the quantum vacuum potential.' Beynam L ने तो यहाँ तक कह दिया है — यह चेतना ही है जो वहाँ विद्यमान भेक्टर अवस्थाको भंग करती है —'It is consciousness itself that collapses the state of vector.'

भारतीय दर्शनकी दृष्टिसे यह कहना अधिक समुचित होगा — बुद्धि या चेतनासे प्राणतत्त्व प्रकट होता है, और प्राणसे द्रव्यतत्त्व। Von Weizsacker C. F. आदि कुछ आचार्य स्पष्टत: इस सन्दर्भमें प्राण शब्दका प्रयोग करते हैं। इन पदार्थवादियोंके लिए आज Mind शब्दका प्रयोग कोई समस्या नहीं रह गया है — वे 'Wave Packet Collapse' में 'माइन्ड' को ही हेतु मानते हैं — यथार्थमें यह 'माइन्ड' न होकर 'प्राणतत्त्व' है। यह ठीक है — Mind के द्वारा Vector Collapse करता है, पर प्राणतत्त्वसे युक्त होकर।

विश्व आत्मचेतनाका विज्ञानघन विकास है, जो सृष्टिके बृहत्सामर्में बदलता हुआ, मानवीय अस्तित्वमें —'मन - प्राण और वाक्' रूपसे प्रकट होता है। बृहत्सामका मूलस्वरूप —'ज्ञान, क्रिया और अर्थ है', इनके ही कारणरूप मूलतत्त्व भी तीन ही हैं —'मन-प्राण-वाक्'। इनसे निर्मित होनेवाला कार्यजगत् सर्वदा परिवर्तनशील व गतिमान है, अत: वह असत् कहा गया है। ये तीनों पदार्थ इनकी सापेक्षतासे कारणरूपसे सदा विद्यमान रहनेके फलस्वरूप सत्य हैं। ये तीनों मिलकर एक ऐसे स्वरूपकी संरचना करते हैं, जो व्यावहारिक विश्वकी

सत्ताका आधारभूत नियामक तत्त्व है। मन (Mind) को कहीं-कहीं शास्त्रोंमें आपेक्षिक दृष्टिसे सत्यका भी सत्य कहा गया है। मनकी सत्ता ज्ञानप्रधान है, हमारे जीवनमें इसका महत्त्व सर्वोपरि है, वहीं प्राणक्रिया तत्त्वप्रधान है, पर व्यावहारिक विश्वमें वह मनस्तत्त्वसे ही क्रियाशील होता है। ये तीनों ही 'सत्' स्वरूप होते हुए भी वहाँ मनकी सत्ता अपरिहार्य है, वस्तुजगत्में 'प्राण' के सत्य होने पर भी उसका आधार मन ही है। अन्य सिद्धान्त वा मतान्तरसे वाक् 'सत्' है, प्राण — 'असत्' और मनको 'सत्' और 'असत्' अर्थात् 'सदसत्' कहा गया है। आपेक्षिक दृष्टिसे 'सत्' वही पदार्थ है — दिक्कालमें जिसका परिच्छेद हो सके। मानवीय सन्दर्भमें 'वाक्' तत्त्वका स्थान वा सत्ता असाधारण है — सारे पदार्थवाची — द्रव्यवाची अर्थ उसीसे निर्मित होते हैं एवं उसीमें निहित हैं, अत: 'वाक्' को सम्पूर्ण भुवनकी प्रतिष्ठा कहा गया है — विश्वके वाचिक व्यवहारकी मूलसत्ता वाक्-तत्त्व पर ही आधारित है, श्रुतिका वचन है — अखिल भुवनोंका विस्तार वाक्-तत्त्वमें ही प्रतिष्ठित है —

.....वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता...[२८०]

अलंकारशास्त्रकी महान् विभूति आचार्यप्रवर दण्डीका कथन है — सम्पूर्ण विश्व अन्धकारसे भर जाता, यदि यह शब्दस्वरूपा ज्योति सर्वत्र संसारमें देदीप्यमान न होती —

इदमन्धतम: कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।।[२८१]

भारतवर्षकी आत्मा शब्द-ज्योतिकी महासंस्कृति है — जिसकी आलोकधारामें न ज्ञान अलक्षित है, न विज्ञान और न इतिहासका तत्त्वदर्शन। महर्षिप्रज्ञाने विज्ञान और इतिहास दोनोंके तत्त्वशास्त्र को भली-भाँति उजागर किया है। अलंकारशास्त्रके महान् आचार्य दण्डीका यह कथन अनुपद सर्वथा सत्य है।

६ – इतिहासका तत्त्वशास्त्र – पूर्व एवं पश्चिम – कालपुरुष और इतिहासपुरुष

इतिहासः कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं बिभ्रत्पङ्कजाभरणान्वितः॥

(श्रीतत्त्वनिधि - नृसिंहप्रसादवचनानि)

सृष्टिसंवत्‌का प्रारम्भ श्वेतवाराह कल्पसे होता है, अत: इतिहासपुरुष वराहमुख है, कालका विपुल स्वरूप उदरमें समाहित है इसलिए वह महोदर, पृथ्वीका रंग-रूप उसकी वर्णछटा है – अत: कुशाभास है। उसके एक हाथमें अक्षसूत्र है – कालका संख्यात्मक निर्देश जो वहाँ स्फटिककी तरह स्वच्छ यथार्थ गणनाके साथ प्रस्तुत है। ज्ञानामृतका दान उसका पावन उद्देश्य है, इसलिए उसके द्वितीय करमें सुधाघट विद्यमान है। इतिहास पुरुषका यह अनुपम विग्रह कमलके आभूषणोंसे विभूषित है – कमल स्वयं सौन्दर्य, विकास और आनन्दका प्रतिमान है।

१. पूर्व और पश्चिमकी इतिहास परम्परा एवं आधुनिक इतिहासकी सिद्धान्त दृष्टि

भारतीय परम्पराने विश्वके ऐतिहासिक अतीतकी पहचान अनेक प्रकारसे प्राप्तकी है। उसके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनेक मनोवैज्ञानिक प्रकार हैं, उसके भौतिक और आध्यात्मिक अनेक आधार हैं, जो धर्म, दर्शन और विज्ञानके तत्त्वचिन्तनपर प्रतिष्ठित हैं। ईजिप्टने अतीतकी स्मृति प्राप्तकी, पश्चिमकी परम्पराका अतीत-चिन्तन वा इतिहास-चिन्तन कब्रोंसे जुड़ा है। ममी, पिरामिड, स्टैच्यू, म्यूजियम इसी मृतक-प्रतीकवादके परिपोषक हैं। मृतकोंके प्रतीकवादके पास भविष्य-दर्शनकी कोई विधा वा रूपरेखा नहीं, जहाँ तक कब्रोंका अस्तित्व प्राप्त

होता है — वहीं तक उनके मानवीय इतिहासका अस्तित्व है, वहीं तक है उनके ऐतिहासिक कालकी परिसीमा। यही कारण है कि जहाँ तक मानवीय हड्डियोंके टुकड़े प्राप्त होते हैं, वहीं उनके वैज्ञानिक चिन्तनकी सीमा स्थिर हो जाती है, पुनः नये टुकड़ेके प्राप्त हो जाने पर वह फिर बदल जाती है। भौतिक नृतत्त्वशास्त्र (Physical Anthropology) का अभी तक यही इतिहास रहा है। अतीतका वर्तमानसे क्या सम्बन्ध है — इस दृष्टिका समुचित सूत्रपात यूरोपमें १८वीं शतीमें वहाँके विद्यापीठोंमें भारतीय विद्याओंके प्रवेश एवं उनके तुलनात्मक अध्ययनके पश्चात् प्रारम्भ हुआ था। भारतीय संस्कृतिमें इतिहासके तत्त्व-चिन्तनकी सीमा अपने वर्तमानके लिए — अतीत की स्मृतिके रूपमें रही है। वैदिक युगसे ही इतिहास याज्ञिक कर्मकाण्डके साथ अङ्गाङ्गिभावसे समन्वित रहा है, अश्वमेधयज्ञके प्रकरणमें इसका ग्रहण आवश्यक अंगके रूपमें किया गया। इतिहासकी दृष्टिसे **पारिप्लवाख्यान** का महत्त्व पुराणपाठके सन्दर्भमें असाधारण है,[२८२] महर्षि कात्यायन कृत श्रौतसूत्रमें इस अनुष्ठानका सम्पूर्ण प्रयोग भलीभाँति समझाया गया।[२८३] धार्मिक दृष्टिसे इतिहासका ग्रहण याज्ञिक कर्मकाण्डकी सीमामें एक आवश्यक विधिके रूपमें घोषित हुआ, अतः यह प्रशिक्षणका एक प्रधान विषय भी रहा है। सम्पूर्ण भागवतको सुनानेके पश्चात् भगवत्पाद श्रीशुक परीक्षितको स्वायम्भुव मन्वन्तरसे लेकर तबतकका १ अरब ९५ करोड़ वर्षोंका इतिहास वर्णित करनेका उद्देश्य स्पष्ट करते हैं — जो भारतीय संस्कृतिमें इतिहासके लक्षणभूत उद्देश्य और उसकी परम उपयोगिताके तात्त्विक-सन्दर्भको उजागर करता है — "परीक्षित ! इस लोकमें अनेक महान् पुरुष हो चुके हैं, जो इस पृथ्वीपर अपने तेज और यशका विस्तार करके चले गये। उनकी ये इतिहास-कथाएँ तुम्हें विज्ञान और वैराग्यकी प्राप्तिके लिए कही गई हैं। इन्हें तुम वाणीका वैभव और विलास मात्र न समझो, इनमें जीवनका परमअर्थ व तत्त्व समाहित है —"

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्॥[२८४]

भगवत्पाद शुकके कथनसे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतमें इतिहासका अध्ययन

विज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान और वैराग्य की प्राप्तिके लिए किया जाता था। इसीलिए पौराणिक इतिहासमें विज्ञान-चिन्तनके प्रभूत सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वहाँ विशेषतया सृष्टि और प्रलयके स्वरूप पर सर्वत्र विचार किया गया है। पौराणिक इतिहासके पाँच लक्षणोंमें दो लक्षण – सर्ग और प्रतिसर्ग का सीधा सम्बन्ध विज्ञानसे है, मन्वन्तरका सम्बन्ध आंशिक रूपमें विज्ञानके साथ है, शेष लक्षण मानव इतिहास प्रधान हैं। आध्यात्मिक ज्ञानकी दृष्टिसे शेष लक्षणोंकी उद्धृति वहाँ चरित्र कोशके रूपमें की गई, प्राचीनताके सूचनात्मक ज्ञानका संकलन ही पुराण शब्दके द्वारा किया गया है।

सृष्टिकी संरचना और विकासका इतिहास तो बहुत दूर, पश्चिमकी संस्कृति इतिहासके सन्दर्भमें कभी भी कब्रकी सीमाओंसे बाहर न निकल सकी – चाहे वह ईसाइयतसे आक्रान्त मध्ययुग हो, चाहे वर्तमान। १९वीं शतीमें हड्डियोंकी खोजका कार्य विधिवत् प्रारम्भ हुआ – Palaeontology की आधारशिला रखी गई। फलतः पुरानी हड्डियोंके 'सैम्पलसर्वे' के माध्यमसे पृथ्वीके पुराने इतिहासको खोजनेका असफल और भूल भरा कार्य प्रारम्भ हुआ, जैसे-जैसे हड्डियाँ प्राप्त होती गईं – इतिहासका अनुमान भी चलता रहा, यह प्रमाण विनिश्चयनकी तर्क और विज्ञानसंगत पद्धति नहीं है। मनुष्य १ करोड़ या १० करोड़ वर्ष पहले नहीं था – यह धारणा प्रधानतया इसी बातपर आधारित है कि इतनी पुरानी हड्डियाँ प्राप्त नहीं होतीं, ऐसी सम्भावनाएँ कभी भी प्रमाण-कोटिमें नहीं रखी जा सकतीं। यह पद्धति इतनी अपूर्ण है कि छोटा-सा दाँतका टुकड़ा कहीं मिल जाए तो पूर्वस्थापित मूल सिद्धान्त तक सम्पूर्ण रूपसे अप्रमाणित हो जाता है, जैसा कि समय-समय पर होता रहा है। अस्थियोंके सैम्पलसर्वेपर आधारित इतिहास प्रामाणिक नहीं हो सकता, जिस प्रकार पृथ्वीकी जीवन-धाराके इतिहासको पश्चिममें हड्डियोंके सैम्पलसर्वेके द्वारा अनेक रूपोंमें सजाया गया है, उसी प्रकार इतिहासकारोंके द्वारा वहाँका इतिहास भी रूपक अलङ्कारोंसे सजाया गया है – 'स्वर्णयुग' 'ताम्रयुग' नामोंकी अर्थवत्ता रूपककी सीमा तक है, तात्त्विक नहीं। ऐसी ही अवस्था एन्सिएन्ट, मेडिईवॅल और मॉडर्न जैसे शाब्दिक विभाजनकी है। कालका प्रत्येक खण्ड अपने ऐतिहासिक क्रममें एन्सिएन्ट, मेडिईवॅल और मॉडर्न होता है।

पश्चिमके पास कालकी अवधारणा स्पष्ट नहीं, न वहाँ अनन्तकी सिद्धान्त

दृष्टि ही रही है। यूनानके विज्ञानवेत्ता Aristarchus स्वयं Copernicus के 'हेलियोसेंट्रिक' विश्वमें दो हजार वर्ष पूर्व पहुँच चुके थे, पर वहाँकी विज्ञान-घातिनी संस्कृतिने उसे वहीं दफना दिया ; अन्यथा पश्चिमकी दीर्घ विज्ञानयात्रा कॉपरनिकससे डेढ़ हजार वर्ष पूर्व सम्पन्न हो गई होती। यूनानकी सांस्कृतिक चेतना विज्ञान विरोधी ही नहीं अपितु इतिहास विरोधी भी रही है। प्रसिद्ध इतिहास तत्त्ववेत्ता R.G.Collingwood ने The Idea of History में स्पष्ट लिखा है — To the Greek historians, therefore, there could never be any such thing as a history of Greece.[२८५]

पश्चिमकी इतिहास दृष्टि बाइबिलके धार्मिक विश्वाससे आक्रान्त और संस्कारित है — वहाँ न कालकी अवधारणा है, न इतिहासकी दीर्घदृष्टि। वहाँ इतिहास और मानवीय समुद्भवके सुदूर अतीतकी खोज विराट् शून्यमें महानगरकी खोज जैसा ही कार्य है। Jaspers, Karl ने इतिहासके सन्दर्भमें St. Augustine से Hegel तकके ईसाई धर्मके प्रभावको इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है —

In the Western World the philosophy of history was founded in the Christian faith. In a grandiose sequence of works ranging from St. Augustine to Hegel, this faith visualised the movement of God through history. God's acts of revelation represent the decisive dividing lines. This Hegel could still say : All history goes toward and comes from Christ. The appearance of the Son of God is the axis of World history. Our chronology bears daily witness to this Christian structure World of history.[२८६]

उपर्युक्त पंक्तियोंमें लेखकने पश्चिमकी इतिहास-दृष्टिको प्रस्तुत किया है, यह ईसाइयोंका अपना धार्मिक विश्वास हो सकता है, इतिहास या उसका तत्त्व-दर्शन नहीं। लेखकने स्वयं अगली पंक्तियोंमें इस इतिहास-बोधका प्रबल खण्डन किया है —

But the Christian faith is only one faith, not the faith of

mankind. This view of universal history therefore suffers from the defect that it can only be valid for believing Christians. But even in the West, Christians have not tied their empirical conceptions of history to their faith. An article of faith is not an article of empirical insight into the real course of history, as being different in its meaning. Even the believing Christian was able to examine the Christian tradition itself in the same way as other empirical objects of research.[२८७]

पश्चिमकी इस प्रकारकी चिन्तन परम्पराका ही परिणाम था कि Ranke जैसे इतिहासके महापण्डित पश्चिमके इतिहासको ही विश्वका इतिहास समझ बैठे —'World history was the history of West' — यहाँ तक कि १८वीं-१९वीं शतीके विख्यात इतिहासज्ञोंकी मान्यता थी, यह पृथ्वी छ: सात हजार वर्ष पूर्व बनी है। उदाहरणके लिए Karl Marx के गुरु एवं इतिहास-दर्शनके प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता Schelling का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि विश्व छ: हजार वर्ष पूर्व बना है। इस अन्धविश्वास पर तीव्रप्रहार करते हुए Jaspers लिखते हैं —

..........of every construction of a total conception we say today : it must be empirically proven. We reject conceptions of events and conditions which are only conjectural. We search hungrily in all directions for the reality of tradition. That which is unreal can no longer survive. What this means can be seen from the extreme example that Schelling still clung with complete conviction to the theory that the creation of the world took place six thousand years ago. Whereas today no one doubts the bone finds which prove man's life on earth to have gone on for more than a hundred thousand years.[२८८]

प्रश्न पुन: प्रस्तुत होता है — एक लाख वर्षसे अधिक ही क्यों ? जो भूल Schelling जैसे विद्वान् दुहरा रहे हैं, वही समस्या छ: हजार वर्षोंको भूलकर अब लाखसे कुछ अधिक वर्षोंपर अटक गई है। अस्थिखण्डके मिलने या न

मिलनेसे मानवीय अस्तित्वके कालखण्डको निर्धारित नहीं किया जा सकता। Asimov की निम्न सूचनाके समक्ष Jaspers की भी Schelling जैसी दयनीय एवं हास्यास्पद स्थिति हो जाती है। Protein Synthesis पर आधारित निष्कर्षोंने हड्डियोंके सैम्पलसर्वेको बहुत पीछे छोड़ दिया है, और मानवीय अस्तित्वका काल ७ करोड़ ५० लाख वर्षोंसे भी पीछे चला गया है। भारतीय मतसे देखें तो यह वैवस्वत मन्वन्तरका प्रारम्भिक काल है। पुराणोंके अनुसार चाक्षुष मन्वन्तरकी १७ लाख २८ हजार वर्षोंके दीर्घ प्रलयमें पृथ्वीका जैवविकास बहुत कुछ समाप्तप्राय हो चुका था। तदुपरान्त इस ग्रहपर मानव सहित नवीन जैवविकास पुन: वैवस्वत मन्वन्तरसे प्रारम्भ होता है। फलत: विज्ञान अपनी नवीन खोजके द्वारा मानवीय समुद्भवको खोजता हुआ वैवस्वत मन्वन्तरके प्रारम्भिक कालके बहुत पास तक चला आया है, जहाँ इस युगके नवीन मानवका विकास प्रारम्भ होता है, सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक Asimov ने इस महत्त्वपूर्ण तत्त्वके विषयमें लिखा है —

When biochemists developed techniques for determining the precise amino-acid structure of proteins, in the 1950's, this method of arranging species according to protein structure was vastly sharpened.अपने अगले अनुच्छेदमें एसिमोवने इस महत्त्वपूर्ण तथ्यके बारेमें लिखा है - In 1965, even more detailed studies were reported on the haemoglobin molecules of various types of primates, including man. Of the two kinds of peptide chains in haemoglobin, one, the 'alpha chain', varied little from primate to primate. The other, the 'beta chain', varied considerably. Between a particular primate and man there were only six differences in the amino acids and the alpha chain, but twenty-three in those of the beta chains. Judging by differences in the haemoglobin molecules, it is believed man diverged from the other apes about 75 million years ago, or just about the time the ancestral horses and donkeys diverged.[२८९]

प्रोटीन सिन्थिसिस (Protein Synthesis) के आधारपर किया गया प्रजातीय कालनिर्धारण वैज्ञानिक दृष्टिसे उल्लेखनीय महत्त्व रखता है, क्योंकि हड्डियोंके सैम्पलसर्वेके आधारपर प्राप्त साक्ष्य अभी ४० लाख वर्षोंसे अधिक

आगे नहीं बढ़ पाये हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टिसे सोचा जाए तो Amino-acid Structure of Proteins द्वारा निर्धारित काल अधिक प्रभावशाली है।

काल और इतिहासके सन्दर्भमें जैसी हास्यास्पद स्थिति पश्चिमके इतिहासकारोंकी रही है, उससे कम वैज्ञानिकोंकी नहीं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक Kepler की सुनिश्चित मान्यता थी कि पृथ्वी ६,००० वर्ष पूर्व निर्मित हुई है ....I am writing the book — to be read either now or by posterity, it matters not. It can wait a century for a reader, as God Himself has waited 6,000 years for a witness.[२१०] इस सन्दर्भमें विज्ञानके महान् आचार्य Newton क्रान्तिकारी और प्राज्ञ थे। इनके अनुसार विश्वका निर्माण ५० हजार से १ लाख वर्षोंके मध्य हुआ था। वैज्ञानिककी तुलनामें इतिहासज्ञ अधिक परम्परा परायण होता है। १९वीं शतीके अधिकांश इतिहासवेत्ता प्रत्यक्ष और परोक्ष भावसे विश्वको ६,००० वर्ष पुराना स्वीकार करते थे, वैज्ञानिकोंकी अवस्था थोड़ी भिन्न थी। कुछ वैज्ञानिक तो Newton के समर्थक थे, पर Darwin जैसे प्रगतिशील वैज्ञानिक पृथ्वीको १०-१२ लाख वर्ष अधिक पुराना ही स्वीकार करते थे। पृथ्वीके उद्भवके सन्दर्भमें ६,००० वर्ष और १० लाख वर्षकी संख्या दोनों स्थलोंपर ही समानरूपसे महत्त्वहीन है। बेचारे इतिहासज्ञको दोष देना निरर्थक है, जो स्वभावसे ही परम्परावादी होता है। यथार्थ तो यह था कि १९वीं शतीके प्रारम्भ तक अधिकांश वैज्ञानिक पृथ्वीको छः सात हजार वर्ष पुराना स्वीकार करते थे। इस सन्दर्भमें Asimov की निम्न सूचना प्रामाणिक है — Indeed, as the nineteenth century opened, most European scientists were still under the spell of the literal language of the Bible and assumed that the Earth had existed for only 6,000 years or so. Eighteen million years would have seemed a blasphemously large figure to most of them.[२११]

यह स्थिति १९वीं शतीके प्रारम्भसे अन्ततक विद्यमान थी। पृथ्वीके लिए वैज्ञानिक Helmholtz, H.V. द्वारा निर्धारित १ करोड़ ८० लाख वर्षका कालमान तत्कालीन विज्ञानको सह्य न था, उसकी भर्त्सना विज्ञानके क्षेत्रमें बार-बार होती रही। ऐसी स्थितिमें भारतीयविज्ञान और इतिहास द्वारा सुनिश्चित विश्वके समुद्भवका १० अरब ६१ करोड़ वर्षसे भी अधिक समय एवं पृथ्वीके कल्पारम्भका

१ अरब ९७ करोड़ वर्षोंका काल — कल्प, मन्वन्तर और महायुगकी कालगणनाका सिद्धान्त सर्वतोभावेन मिथक और कपोल-कल्पना मान लिया गया एवं तत्सम्बद्ध भारतीय वाङ्मयका विज्ञान, दर्शन वा चिन्तन एक आधारहीन बुद्धि विलास समझा गया था। जब Kepler, Newton और Darwin सहित अधिकांश वैज्ञानिक एवं पश्चिमके प्रमुख इतिहासज्ञ निराधार, गतसार और अवैज्ञानिक मान्यताओंके साथ चिपके हुए थे, तब हमारे पराधीन देशके प्राचीन विज्ञान-चिन्तनकी तो दुर्गति होनी ही थी। उस समय न तो विज्ञानमें 'बिग-बैंग' के १० अरब वर्षोंके कालमानका कहीं अता-पता था, न युरेनियम-डेटिंग द्वारा निश्चित पृथ्वीकी ४ अरब ५० करोड़ वर्षोंकी आयुका अनुमान था, न प्रोटीन-स्ट्रक्चरसे प्राप्त मानवीय उद्भवके सन्दर्भमें ८ करोड़ वर्षोंके कालकी अवधारणा थी। तत्कालीन योरोपमें Helmholtz के बाल सर्वत्र नोचे जा रहे थे, क्योंकि उनके मुखसे १ करोड़ ८० लाख वर्षोंकी संख्या निकल चुकी थी। डार्विनका आदमी भी उस समय लाख-पचास हजार वर्ष पूर्व वानरकी औलादके रूपमें उत्पन्न हुआ था।

योरोपके विद्यापीठोंमें भारतके काल-चिन्तन और इतिहास-दर्शनका मखौल Max Müller जैसे विद्वान् उड़ा रहे थे। गौरांग शासकोंके विज्ञान और इतिहास चिन्तनसे इस पराधीन देशके पण्डित और इतिहासज्ञ भी आक्रान्त थे, क्योंकि उनका रोब और प्रभाव भी सामान्य न था। भारतीय विद्वान् समझते थे कि कल्प, मन्वन्तर और महायुगकी काल-गणनाके उच्चारण मात्रसे ही उन्हें दकियानूस और पोंगा-पण्डितका खिताब मिल जाएगा, अत: भारतीय सृष्टि तत्त्वकी प्रमाणमीमांसाको कालगणनाकी उपपत्तियोंके साथ प्रस्तुत करनेका साहस यहाँके इतिहासज्ञोंमें नहीं था। वे भी सुरमें सुर मिलाकर पश्चिमके इतिहास चिन्तकोंकी हाँमें हाँ मिला रहे थे। जब सृष्टि छ: हजार वर्ष पूर्व बनी है, तब वेद पुराणोंकी प्राचीनताका प्रश्न ही निराधार है। ४००४ बी.सी. में पृथ्वीकी उत्पत्ति स्वीकार कर ली गई, उसी प्रकार ईसासे १०००-५०० वर्ष आगे पीछे भारतीय वाङ्मयका काल निर्धारित कर दिया गया। वेद इससे हजार-पन्द्रह सौ वर्ष पीछे चले गये, रामायण—महाभारतको दो-पाँच सौ वर्ष पूर्व रखा गया, पुराणोंका समय ईसाके

बहुत पश्चात् स्वीकार कर लिया गया। फलत: भारतवर्षका समग्र प्राचीन इतिहास, महाराजा ध्रुवसे लेकर पृथु-बलि-राम-कृष्ण तक, मिथककी भ्रान्तिमें कहीं खो गया। यहाँ तक कि तीन-चार कृष्णोंकी कल्पना कर ली गई। पाँच हजार वर्ष पुराने वेदव्यासके नामपर एक श्लोक भी 'एलॉट' नहीं हुआ, क्योंकि महाभारतकी रचना प्रक्रिया ईसासे ५०० वर्ष पूर्वसे लेकर २१० वर्ष पश्चात् तक स्वीकार की गई। इसी प्रकार रामायणका रचना काल २०० बी.सी. से २०० ए.डी. तक मान लेनेके कारण वेदव्यासकी तरह आदिकविका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही अप्रामाणिक और लेजन्ड्री बन गया। फलत: भारतीय वाङ्मयके मूल्यांकनमें तीन प्रश्न ही इतिहासकी मीमांसाके मुख्यविषय बन कर रह गए, जो अद्यावधि यथावत् विद्यमान हैं — (१) ईसाके उत्तर और पूर्व हजार दो हजार वर्षोंके मध्य सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मयका काल निर्धारण, (२) सर्वत्र 'प्रक्षेपक' की मीमांसा और स्थापना, (३) वाङ्मयके सम्पूर्ण प्रतिपाद्यमें इतिहासके स्थानपर मिथकका अस्तित्व और उसका प्रतिपादन। पश्चिमकी इसी परम्पराके प्रभावान्तर्गत भारतीय वाङ्मयके वैज्ञानिक और ऐतिहासिक प्रतिपाद्यका मूल्यांकन उपर्युक्त तीन प्रश्नों के सन्दर्भमें अबतक हो रहा है। आजका प्रगतिशील विज्ञान २०वीं शतीके उत्तरार्धमें बड़ी प्रखरतासे अपनी १७वीं १८वीं और १९वीं शतीकी भ्रान्त-धारणाओंका परिमार्जन करते-करते भारतीय इतिहासकी विज्ञान-दृष्टिके बहुत निकट चला आया है, पर इतिहासज्ञको उसका पूर्वाग्रह और हठधर्मिता आगे बढ़नेसे रोक देती है। वह लकीरका फकीर बनकर, वहीं १८वीं-१९वीं शतीकी सड़ी-गली मानसिकतामें खोया हुआ है, पर योगिराज अरविन्दका यह वचन उनके विषादको कम करनेमें सम्भवत: सहायक होगा — इतिहासमें चार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई हैं — ट्रॉय नगरका घेरा, ईसाका जन्म और उनका सूली पर चढ़ना, वृन्दावनसे कृष्णका चले जाना और कुरुक्षेत्रकी रणभूमि पर अर्जुनके साथ उनका संवाद। ट्रॉयके घेरेने हेलासको उत्पन्न किया, वृन्दावनसे कृष्णके जाने पर भक्तिमार्गका उदय हुआ। ईसाने अपने फाँसीके तख्ते पर से योरोपको मानवोचित गुण प्रदान किये, कुरुक्षेत्रका वार्तालाप अब भी मनुष्यको मुक्ति प्रदान करेगा। फिर भी यह कहा जाता है कि इन चारोंमें से कोई भी घटना घटित नहीं हुई। इतिहासकारोंका विसंवाद कुछ भी बोलता रहे, सत्य यह है — 'कानू बिना गान नेइ', वटपत्रशायीके बिना विश्व संस्कृति नहीं।

इतिहासके तत्त्व-दर्शनका एक सत्य है कि मनुष्य सहसा संस्कारमुक्त नहीं हो पाता, नवीन चिन्तन-दृष्टि सौ-पचास वर्षोंके वैज्ञानिक चिन्तनसे शुद्ध और संस्कारित हो जाए, यह सहज सम्भव नहीं। पश्चिमकी इतिहासदृष्टि के द्वारा छः हजार वर्षोंकी सृष्टिका सिद्धान्त वैज्ञानिकचिन्तनके पश्चात् भी क्या वहाँ परिष्कृत और संशोधित हो पाया है ? यह सन्देहास्पद है। स्वयं आचार्य Jaspers तक इस सन्देहकी सीमासे परे नहीं, वे अपने ग्रन्थकी भूमिकामें लिखते हैं – All men are related in Adam, originate from the hand of God and are created after his image.[१९२]। पूर्वकी पंक्ति इस प्रकार प्रारम्भ होती है – My outline is based on article of faith. Jaspers जहाँ दर्शनके महान् आचार्य हैं – वहीं वे इतिहासके तत्त्वद्रष्टाके रूपमें भी उतने ही प्रसिद्ध हैं।

Neanderthal मानवके मृतक-कर्मकाण्डका इतिहास अब तक बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका है। इसका अस्तित्व ४० हजार वर्षसे १ लाख वर्ष पूर्व तक विद्यमान था, इसे मानव स्वीकार करते हुए भी Homosapiens से पृथक् श्रेणीमें रखा गया है। मानवकी दो जातियाँ मान ली गई, तीसरी जाति Peking Man है, जो पाँच लाख वर्ष पूर्व विद्यमान थी, जिसे अग्निके उपयोगसे लेकर सामाजिक व्यवहार तककी जानकारियाँ थीं। चौथी जाति Australopithecus है, जिसका अस्तित्व २० से ३० लाख वर्ष पूर्वतक माना गया है। वैसे इसे 'Homo' न कहकर 'Hominid' श्रेणीमें रखा जाता है। एक ज्वालामुखीकी राखके ढेरसे १९७२ में एक नरमुण्ड निकाला गया, जो Homosapiens से बिलकुल मिलता-जुलता है, विशेषज्ञोंके अनुसार यह मुण्ड २६ लाख वर्ष पूर्वका अनुमानित हुआ है। फलतः पूर्व पाषाणकाल भी पत्थरके आयुधोंके सन्दर्भमें इतने ही लाख वर्ष पीछे चला आया, इसे साक्ष्यगत दौर्बल्यके आधारपर अस्पष्टताओं के कारण 'Unintentional Record' की संज्ञा प्रदानकी गई ; स्पष्ट रूपमें पाये जानेवाले आयुध २० हजारसे ३० हजार वर्षोंके मध्यके हैं। फ्रांस और स्पेनकी गुफाओंमें प्राप्त भित्तिचित्र अति प्राचीन हैं, जिनका समय एक लाख वर्ष अनुमानित हुआ है। लिपि सुमेर सभ्यताकी प्राचीनतम स्वीकारकी गई है, जिसका काल निर्धारण पाँचसे सात हजार वर्षोंके मध्य किया गया। बाह्य साक्ष्योंके आधारपर इसे 'Prehistory' की संज्ञा दी गई। संक्षेपमें

पश्चिमकी परम्परा पृथ्वीके साढ़े चार अरब वर्षोंके सुदीर्घ इतिहासमें मानवके प्राचीन इतिहासकी यही रूपरेखा प्रस्तुत करती है।

उसमें भी इतिहासके नामपर इन मान्यताओंके अनुसार पाँच-सात हजार वर्षोंका इतिहास ही समुपलब्ध है। इस युगमें पृथ्वीके एक विशेष भागपर सभ्यताका विकास वायुमण्डलकी तरह व्यापक है। इसमें भारत, मिस्र, सुमेरिया, चीन, यूनान, मेसोपोटामिया, अमेरिकाकी पेरू, एन्डीज आदि संस्कृतियाँ विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे भारत, मिस्र एवं सुमेरियाका सांस्कृतिक इतिहास अधिक महत्त्वपूर्ण है। वैसे लेम्यूरिया, एटलांटिस जैसी प्राचीन संस्कृतियाँ उस युगतक महासमुद्रके उदरमें समाहित हो चुकी थीं। उस समय नव्य हिमयुगका प्रभाव प्रारम्भ हो गया था। हिमनदोंके भूगर्भशास्त्रीय स्वरूप (Outline of Glacial Geology) के अनुसार 'महाहिमयुग' (The Great Ice Age) वहाँ Pleistocene Age के नामसे प्रसिद्ध है, इसके अन्तर्गत 'महाहिमयुग' एवं 'अन्त:हिमयुग' दोनोंका ही उल्लेख होता है। इस कालखण्डमें हिमनदोंका सम्प्रसरण एवं उनका अपसरण दोनों ही सम्मिलित हैं। इसका प्रधान विवेच्य विषय पुरातन हिमनदोंका विलोप एवं नव हिमनदोंका उदय वा आगमन है। हमारा वर्तमान हिमयुग इसके अन्तर्गत वा मध्यवर्ती है। हिमनदोंका आगमन और विलोप वहाँ क्यों घटित होता है — यह विज्ञानमें आज भी जटिल विवादका सन्दिग्ध विषय है। वहाँ इसका सूत्र वा फॉर्मूला यही है — The present is the key of past. हमारी पृथ्वीका दश प्रतिशत भाग अभी भी हिमाच्छादित है। भूगर्भशास्त्रमें हमारे वर्तमान हिमयुगका नाम — Pleistocene Epoch रखा गया है। पृथ्वीपर नवीन हिमयुगका प्रारम्भ पन्द्रहसे सत्रह हजार वर्ष पूर्व हुआ था, जिसका व्यापक प्रभाव भू-पटलपर हमारे वर्तमान कालसे छ:-सात सहस्र वर्ष पूर्व तक विद्यमान था। भारतीय मतके अनुसार यह द्वापरयुगका हिमप्रलयसे ग्रस्त सन्धिकाल था। अत: उस कालमें पश्चिमोत्तर यूरेशियाके भू-खण्डोंसे जनसंख्याके दबावके फलस्वरूप आर्यों के आगमनका प्रश्न ही नहीं उठता। सात से दस हजार वर्ष पूर्व वहाँ हिमयुगका प्रबल प्रभाव विद्यमान था, ऐसी अवस्थामें जनसंख्याके दबावका प्रश्न ही नहीं। ठीक इसके विपरीत, जिस अनुपातमें हिमका प्रभाव मन्द होने लगा, लोग उत्तर-पश्चिमकी ओर बढ़ते चले गए। इसी क्रममें भारतीय मूलके लोग यूरेशियाकी ओर अपनी भाषा और संस्कृति के साथ पहुँचे,

जिसका विपुल प्रभाव पश्चिमकी भाषा और संस्कृति पर आज भी विद्यमान है। इतने महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य (Geological Evidence) के उद्घाटनके पश्चात् भी इतिहासकार अपनी १९वीं शतीकी सड़ी-गली मानसिकतामें सोया हुआ है, उसका कथन है — छः सात हजार वर्ष पूर्व आर्य बाहरसे आए।

इसी प्रकार इतिहास और नृतत्त्वशास्त्रकी पाठ्यपुस्तकोंमें मानवीय समुद्भवका काल डेढ़ लाख वर्षके आस-पास चर्चित है, कहीं छत्तीस लाख वर्ष — लूसीके कंकालके आधारपर। पर मूर्धन्य इतिहासवेत्ताओंकी यह मान्यता अब नहीं रही, Toynbee,A.J. जैसे विश्वविश्रुत इतिहासज्ञ मानवीय अस्तित्वको दो से ढाई करोड़ वर्षोंके मध्य स्वीकार करते हैं। उनका स्पष्ट अभिमत है — Man would have been in existence for about twenty million to twenty-five million years by now.[२१३] इससे पूर्व के कालमानपर Toynbee मौन हैं। इन दो से ढाई करोड़ वर्षोंके इतिहासकी कोई सूचना पश्चिमके इतिहासचिन्तनके पास नहीं है। मानवको पेड़से नीचे उतरकर गुहानिवास तक पहुँचनेमें कितना समय लगा ? सामाजिक इकाईका निर्माणकाल आदि स्थितियाँ खोखले और काल्पनिक अनुमानों पर आधारित हैं। भाषाका उद्भव तो बहुत ही परवर्त्ती माना गया है, वहाँ पाँच लाख वर्षोंका न्यूनतम काल भी स्वीकृत नहीं। इधरके दस सहस्र वर्षोंको यदि पृथक् कर दें तो २ करोड़ ५० लाख वर्षोंके दीर्घकालमें क्या मनुष्यका विकास अग्नि, सामान्यसा आवास, साधारण पत्थरके औजार, चक्के और कृषि तक ही सीमित रहा ? तब तो विगत दो सौ वर्षोंकी वैज्ञानिक उपलिब्धयोंका त्वरित-विकास पृथ्वीके अरबों वर्षोंके क्रमिक विकास शृंखलाकी एक कड़ी नहीं, बल्कि अतिप्राकृत और अधिप्राकृत हस्तक्षेपका असम्भावित परिणाम और प्रभाव है। पृथ्वीके साढ़े चार अरब वर्षोंके कालमानकी तुलनामें विगत दो सौ वर्षोंका कालखण्ड एक क्षणसे भी अल्प है। लगता है लोकोमोटिव, रॉकेट, स्काइशटल्स, आकाशगंगासे लेकर परमाणु तकका अतुलनीय वैज्ञानिक अनुसन्धान और प्रगति पृथ्वीके इतिहासमें एक आकस्मिक बौद्धिक-विस्फोट है, जो इस पर्यावरणमें विश्वकी अपार्थिव सत्ताके हस्तक्षेपके बिना कदापि सम्भव नहीं।

विश्वतोमुख कालकी अवधारणा — सूर्य-संकेन्द्रित विश्वका स्वरूप,

इतिहासका कालसंक्रान्त विभाजन, एवं विश्व-मानवकी सैद्धान्तिक भूमि हमें स्पष्टरूपसे ऋग्वेदमें प्राप्त होती है। 'पुरुषसूक्त' और 'अस्यवामस्य सूक्त' इसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं। पश्चिममें सूर्यसंकेन्द्रित-विश्वकी नई खोज Copernicus ने १६वीं शतीमें की, काल-संक्रान्त युगकी अवधारणा १८वीं शतीसे अभी तक विकासोन्मुख है — जो इतिहाससे लेकर विश्वके संरचनात्मक सन्दर्भ तक १० अरब वर्षसे लेकर २० अरब वर्ष तक चली गई है। पश्चिममें 'विश्वमानव' या Universal Man शब्दके प्रथम यशस्वी निर्माता Jacob Burckhardt हैं, जिन्होंने १९वीं शतीमें सर्वप्रथम इस शब्दका प्रयोग किया था। ऋग्वेदमें 'विश्व-चर्षणी' शब्द अनेक बार आया है, जिसका अर्थ है — 'विश्व-मानव'। ऋग्वेदका सम्पूर्ण विश्व सूर्यसंकेन्द्रित है — **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।**[२१४] इतिहास और विकासके भारतीय सिद्धान्त-पक्षपर आनेके पूर्व यह समुचित होगा कि पश्चिमकी युगदृष्टि और इतिहासकी नियामक आधारदृष्टिपर एक अतिसंक्षिप्त दृष्टिपात कर लिया जाय।

पश्चिमकी परम्पराके पास इतिहासकी अवधारणा कभी भी स्पष्ट नहीं रही, आज भी नहीं है। यूनान, रोमनयुग और मध्ययुगका तो प्रश्न ही नहीं — योरोपमें इस दृष्टिका किंचित् उन्मेष हमें १८वीं-१९वीं शतीमें दिखलाई देता है। इतिहासतत्त्वकी शास्त्रीयदृष्टिसे ऊहापोहका क्रम सर्वप्रथम Vico, G., (1725) एवं Herder (1774) से प्रारम्भ होता है। इतिहासकी तत्त्वदृष्टिका आश्रय है — कालका तत्त्व-दर्शन, जिसकी अवधारणाके बिना हम इतिहासको कहीं नहीं समझ सकते। योरोपकी सभ्यताके पास इसका अभाव प्रारम्भसे ही रहा है। यही कारण था कि यूनानके इतिहास चिन्तक अपने सम्पूर्ण इतिहासको सर्वदा कुछ सौ वर्षका ही समझते रहे। हाँ, ईसाई धर्मकी तत्त्वदृष्टिसे इतना तो मानना ही पड़ेगा — वहाँकी परम्पराको ठोस ६००० वर्षोंका कालमान विरासतके रूपमें प्राप्त हुआ — पृथ्वीकी उत्पत्ति इस युगमानके अनुसार छः हजार वर्ष पूर्व है। किसी भी संस्कृतिमें उसकी धर्मदृष्टि ही उस संस्कृतिकी इतिहास-दृष्टि बनती है, और वही आगे चलकर दर्शन और चिन्तनके रूपमें प्रशस्त होती है। यही सत्य योरोपके इतिहास और इतिहासकारोंके साथ भी है। इतिहास-तत्त्वको स्थिर करने और उसकी परम्पराके प्रामाणिक स्वरूपके विनिश्चयकी दृष्टिसे सौ दो सौ

वर्षोंकी एकेडेमिक परम्परा कोई उल्लेखनीय अर्थ इस सन्दर्भमें नहीं रखती। फलत: पश्चिमकी चिन्तन पद्धतिमें आज तक इतिहासतत्त्वके प्रतिमान निश्चित नहीं हो पाये। प्रत्येक चिन्तक अन्तमें इसे वैयक्तिक मनोवधारणाका विषय बना देता है। इतिहासके तत्त्वदर्शनकी विश्लेषणात्मक पद्धतिके आचार्य R.G.Collingwood का कथन है – All history is the history of thought.[२९५]

योरोपकी परम्परा यूनानसे प्रारम्भ होती है – यह संस्कृति सम्पूर्ण रूपसे इतिहास विरोधी ही रही है – क्योंकि यहाँके दर्शनमें इतिहासके लिए कोई चिन्तन नहीं था। इन्होंने यहूदियोंकी तरह कभी यह नहीं सोचा था कि यह सृष्टि किसी उल्लेखनीय अन्त या उद्देश्यको सम्मुख रखकर प्रवर्तित हुई है, न आधुनिकोंकी तरह इनके पास कालकी ही कोई सर्जनात्मक अवधारणा थी। इतिहासशास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् Herbert Butterfield ने इस सत्यको बड़ी स्पष्टताके साथ अपने महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध Historiography में उजागर किया है।[२९६]

आज यह सुनिश्चित-सा हो गया है – होमरके पूर्व एक बहुत बड़ी संस्कृति यूनानमें थी – जो Mycenaean संस्कृतिके नामसे प्रसिद्ध है, पर होमरके माध्यमसे हम उसका संकेत मात्र ही प्राप्त करते हैं। योरोपके इतिहास पण्डितोंकी दृष्टिमें होमरके भीतर जनश्रुति और कल्पनाका इतना अधिक अंश है कि स्लीमानसे पूर्व १९वीं शती तकके सम्पूर्ण इतिहासकार इस सुविशाल सांस्कृतिक परम्पराको मिथक ही मानते रहे हैं। निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि वहाँ इतिहासतत्त्वका इतना बड़ा अभाव था, फलत: इतने दीर्घ इतिहासके अस्तित्वको ही अस्वीकार कर दिया गया। इतिहास-तत्त्वका यह अभावजनित प्रभाव इतना प्रबल है कि आज भी निश्चयके साथ यह कहना कठिन है कि Homer के पूर्व यूनानकी भाषा ग्रीक ही थी। यहाँ तक कि यूनानके इतिहासका दीर्घ युग बीतनेपर भी वहाँके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें यह दीर्घकाल, मात्र कुछ सौ वर्षोंका ही था। कुछ Legal Treatises ऐसी मिली हैं – जिनपर सौ वर्ष लिखे हुए हैं – पर तिथि आदिका कोई संकेत वहाँ न होनेके कारण पाँच – दश वर्षमें कहीं भी यह सौ की संख्या समाप्त हो जाती है। यही कारण है यूनानका ट्रोजन-युगसे लेकर अब तकका सम्पूर्ण इतिहास ही अन्धकारमय है। होमरका समय ९ बी.सी. अनुमानित है। इस कालान्तरालके

मध्य इतिहासके नामपर कुछ पुरोहितों और अफसरोंके नामोंकी सूची ही प्राप्त होती है, राजवंशोंका तो वहाँ कुछ पता भी नहीं। लगता है, इस दिशामें वहाँ न किसी सम्राट्का ही ध्यान गया, न किसी इतिहास चिन्तकका ही। Herodotus (४८०-४३) और Thucydides (४ बी.सी.) ने भी यूनानका इतिहास प्रस्तुत नहीं किया, इनके इतिहासका सम्बन्ध अपने वर्तमान समयके पड़ोसी-राज्यों से है। Herodotus ने अपने समयकी Greco-Persian War पर लिखा है, Thucydides के इतिहासकी विषयवस्तु Peloponnesian War है। ये दोनों इतिहासकार यूनानके अतीतको किंचित् भी उजागर न कर सके। इनके पश्चात् इतिहासकी परम्परामें Polybius का उल्लेखनीय नाम प्राप्त होता है — इनका समय १९८ बी.सी. के आसपास है। अपने पूर्ववर्त्तियोंकी तुलनामें अपेक्षाकृत Polybius का इतिहास चिन्तन कालगत आयामकी दृष्टिसे अधिक व्यापक है, ये अपने लेखनमें १५० वर्ष पूर्व तक चले जाते हैं। इस प्रकार वे अपनी वर्तमान पीढ़ीसे पाँच पीढ़ी पूर्व तकके घटनाक्रमको अपने इतिहासका विवेच्य विषय बना लेते हैं। इनसे किंचित् पूर्व Peloponnesian War के घटनाक्रमपर इनका कथन है — 'उसे निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता।'

जहाँतक तथ्योंका प्रश्न है — Herodotus ने Evidence शब्दकी कहीं कोई चर्चा नहीं की, इसका प्रयोग सर्वप्रथम Thucydides ने किया है — When I consider in the light of the evidence; इतिहासको कविताके माध्यमसे प्रस्तुत करनेकी प्रक्रियाको यूनानकी संस्कृतिने पहचाना था, यूनानी कलाविद् थे। अरस्तूका कथन है — 'कविता इतिहाससे अधिक वैज्ञानिक और प्रामाणिक है', अरस्तूके इस कथनमें सत्यका बहुत बड़ा अंश विद्यमान है। यदि योरोपके इतिहासकार अरस्तूके इस कथनकी सच्चाईको समझ पाते तो यूनानके इतिहासकी सत्यताको समझनेके लिए इन्हें १९वीं शती तक प्रख्यात पुरातत्त्वविद् Schliemann, H. की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। Schliemann की दृष्टिमें होमरका काव्य काल्पनिक कथा (Fiction) नहीं, इतिहासका परम सत्य था। यूनानके इतिहास लेखकोंके लिए, वहाँका इतिहास अतीतका घटना-प्रवाह या स्मृति-चित्र कभी भी नहीं रहा, वह अधिकसे-अधिक जीवन चरित्रकी लघु आयामिकताके भीतर समसामयिकताके घटनाचक्र तक ही स्थित और सीमित

था। इतिहासकी सम्पूर्ण सीमा और समझ Eye Witness तक ही सीमित थी। शब्दप्रमाण और आप्तवाक्यके स्मृति-सन्दोह तक वे परम्पराके अभावमें पहुँच ही नहीं पाये, नेत्रगत साक्ष्य तो तात्कालिक होता है — उसमें न देशगत व्यापकता है, न कालगत विनिश्चय। उसका अतीतके घटनाप्रवाह पर न कोई अधिकार है, न उससे सम्बन्ध। Freud ने यूनानी संस्कृतिकी बड़ी-बड़ी 'कॉम्प्लेक्सिटीज़' का उद्घाटन किया है — इनमें Oedipus Complex आदि बहुचर्चित हैं। यह यूनानकी २०वीं शतीके मनोविज्ञानको बहुत बड़ी देन है। उसी प्रकार यह Eye Witness कॉम्प्लेक्स यूनानकी ऐतिहासिक परम्परासे सम्प्राप्त होनेवाली एक महाकॉम्प्लेक्स है — जिसने योरोपके इतिहास-चिन्तन और इतिहासकारोंको जकड़कर रख दिया। 'पुरातत्त्व शास्त्र' और 'अस्थिअश्म शास्त्र' यद्यपि इस कॉम्प्लेक्सके विकसित मन:परिणाम हैं, तथापि यथार्थके मार्गमें प्रस्तुत होनेवाले भ्रमको दूर करनेमें सहायक भी हैं। सिद्धान्त है — मकड़ी अपने ही बनाये हुए जालमें फँसती है — यूनानका सारा इतिहास इसी — Eye Witness की कॉम्प्लेक्स परम्पराके कारण सर्वत्र असिद्ध होता रहा — कहीं भी स्थापित न हो पाया — न Herodotus के द्वारा, न Polybius के द्वारा, न मध्ययुगके द्वारा और १८ वीं १९ वीं शतीका सुविशाल चिन्तन भी इसे सिद्ध और स्थापित न कर सका। इस ग्रन्थिका विमोचन तो स्लीमानके तीक्ष्ण कालजयी फावड़ेसे ही हुआ है।

प्राचीन इतिहासके सन्दर्भमें पुरातत्त्वशास्त्रकी कुछ अपनी भी मान्यताएँ रही हैं। १९ वीं शतीमें प्राचीनताके सन्दर्भमें उभरते हुए संवाद-विसंवादके मूलमें प्रत्नपुरातत्त्वशास्त्र, आधिभौतिक नृतत्त्वशास्त्र (Physical Anthropology), प्रत्नभाषातत्त्वशास्त्रकी नवीन मान्यताओंने विक्टोरियन युगके उस संघर्षको बहुत पीछे ढकेल दिया, जो ४००४ बी.सी. में सृष्टिसंरचनाके सिद्धान्तको स्थापित करनेके लिए संघर्षरत था। मूल समस्याका प्रारम्भ यहींसे होता है — मानव कितना प्राचीन है, विश्वकी नवीन 'होरोस्कोप' में उसके समुद्भवकी तिथि कहाँ है ? Morlot ने जिनेवाके पार्श्ववर्ती Deposits की घनताका आकलन करते हुए पाषाण युगके प्रारम्भका अनुमान ७ हजार वर्ष निश्चित कर दिया, Grillieron एवं Morlot दोनोंका ही अनुमान था — नव्यपाषाणकालके उदयका काल भी यही है — ६ हजारसे ७ हजार ईसा पूर्वके मध्य। Horner

द्वारा मिस्रमें किये गए अनुसन्धानके अनुसार नव्यपाषाणकाल Neolithic Age १३ सहस्र वर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है, फलत: पूर्वपाषाणकाल (Palaeolithic Age) और पीछे चला गया — मानवका प्रारम्भिक काल भी तदनुसार और भी पीछे चला जाता है। Sir Charles Lyell के अनुसार उस युगकी प्राप्त पाषाणनिर्मित वस्तुओंके आधारपर यह काल एक लाख वर्ष पूर्व सुनिश्चित है। Quaternary Ice Age — नामक हिमयुगका काल २ लाख २० हजार वर्ष माना गया है। इस आधार पर Gabriel De Mortillet ने प्रत्नपाषाण कालका समय २ लाख ३० हजारसे २ लाख ४० हजार वर्षोंके मध्य स्वीकार किया है। जहाँतक भूगर्भशास्त्रीय कालक्रमागतता (Geochronology) का प्रश्न है — यह २० वीं शतीके पुरातत्त्वशास्त्र एवं कार्बन—१४ (Carbon-14) की देन है, जिसका यथार्थ विश्लेषणात्मक स्वरूप १९४५ से प्रारम्भ होता है, इसके प्रथम आविष्कारक शिकागोके वैज्ञानिक Libby हैं। कार्बन-१४ के उपरान्त कुछ अन्य टेकनीक्स भी विकसित हुईं — यथा, Fluorine Analysis, पाषाणकी — Petrological Analysis, धातुओंका विश्लेषण — Metallurgical Analysis of Metals आदि। कुल मिलाकर कहा जाए तो विक्टोरियन युगका अन्त होते होते यह सिद्ध हो गया कि मानव ४००४ ईसवी पूर्व वाली बाइबिलकी मान्यता एवं नूह प्रलय — Noachian Deluge के भी बहुत पूर्व विद्यमान था। Lubbock के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ — Prehistoric Time के प्रकाशित होनेके तीन वर्ष पश्चात् — १८६८ में हेनरिख़ स्लीमानने Ithaca एवं Hissarlik में उत्खनन कार्यके पश्चात् १८७१ में Troy का पता लगाया — फलत: महाकवि होमर पुरातात्त्विक साक्ष्योंके साथ ट्रॉयसे एकाकार हो गए। मानवके अतीत पर स्लीमानने इतिहासका एक नया अध्याय लिख दिया — कविताके सन्दर्भमें कथित महापण्डित अरस्तूका उपर्युक्त कथन इतिहासके सन्दर्भमें सत्य सिद्ध हो गया। पुरातन अपने मौनको तोड़कर सदाके लिए बोलने लगा, इस नई खोजने इतिहासमें एक नया प्रश्न खड़ा कर दिया — Mycenaean कौन थे? — कुछ इतिहासकारोंका अनुमान है, वे आर्य थे।

प्राचीनताके सन्दर्भमें ऐतिहासिक दृष्टिसे देखा जाय तो यूनानमें इतिहास-तत्त्वकी व्याख्या Hesiod और Theognis में दिखलाई देती है, तत्पश्चात्

Plato, Aristotle, Thucydides और Polybius ने यह कार्य किया। रोमन युग तक आते-आते इस परम्पराको Lucretius, Cicero, Varro, Philo, Apollonius, Plutarchos, Apuleius ने आगे बढ़ाया, कालान्तरमें Censorinus जैसे अलङ्कारवादियों ने, St. Augustine ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ City of God में एवं Orosius ने Seven Books of History में इतिहासतत्त्वकी चर्चाएँ कीं। सांस्कृतिक सन्दर्भमें देखा जाय तो यह काल-खण्ड मूल्योंकी दृष्टिसे बहुत ही अस्थिर था। Sorokin, P.A. जैसे समाजशास्त्रियोंकी मान्यता है — जब सभ्यता और संस्कृतिमें मूल्य विच्युतिकी स्थिति अत्यधिक बढ़ जाती है — तब उस युगकी चेतना इतिहासके प्रति अधिक-से-अधिक उत्कण्ठित हो उठती है। इनकी दृष्टिमें ९० प्रतिशत इतिहास चिन्तन मूल्य-विच्युतिके ऐसे ही क्षणोंमें हुआ है।

मध्ययुगमें इतिहासतत्त्वकी उल्लेखनीय व्याख्या Joachim of Floris के Eternal Gospel के माध्यमसे हुई — यह १२ वीं शतीका काल था। मध्ययुगके म्रियमाण मूल्य नई जमीनकी तलाशमें भटक रहे थे — जिन्हें आगे जाकर १३ वीं १४ वीं शतीके नये परिवेशमें आश्रय प्राप्त हुआ। १४ वीं शतीकी सर्वोत्कृष्ट इतिहास दर्शनकी पुस्तक Ibn-Khaldun की Historical Prolegomena है। यह भी उसी मूल्य-विच्युतिका युग था — जिसके भीतरसे अरबकी संस्कृति अपनी अन्तिम साँस ले रही थी, जिसका विवरण स्वयं इब्नखल्दूनने — History of Berberes, Autobiography और Prolegomena में दिया है।

इतिहासके चिन्तनपर किया गया यह विपुल संख्याविस्तार सामान्य नहीं है — इनमेंसे कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं — Machiavelli का Prince Discourses, History of Florence ; Vico का New Science, Hobbes का Leviathan, Locke का Socio-Philosophical Treatises .इसके अनन्तर Voltaire, Rousseau, De Maistre, De Bonald, M. आदि पचासों नाम ऐसे हैं, जिनकी सूची यहाँ विस्तार भयसे सम्भव नहीं, यह सम्पूर्ण चिन्तन Crisis का चिन्तन है। इन शताधिक चिन्तकोंमें ७० से ८० प्रतिशत तो वे चिन्तक हैं — जिन्हें अपने युगकी Crisis के कारण अनेक संकट, नाना प्रकारकी यातनाएँ, कैद और निर्वासनका दण्ड तक झेलना

पड़ा था। २० वीं शतीके महान् इतिहासवेत्ताओंमें दो नाम कदापि नहीं भुलाये जा सकते — O.Spengler, A.J.Toynbee, इनमें प्रथम इतिहासके तत्त्ववेत्ता हैं, द्वितीय तत्त्ववेत्ता इतिहासकार, वैसे यह सूची बहुत लम्बी है। Hans Georg Gadamer ने Nietzsche F., Marx K., Heidegger. Martin, Merleau-Ponty, Maurice,. Derrida. Jacques,. Habermas Jürgen,. Adorno Theodor; — आदि अनेक विद्वानोंके अन्तर्विरोधोंको ध्यानमें रखते हुए, इतिहासकी Hermeneutical दृष्टिसे व्याख्या करते हुए लिखा — In fact history does not belong to us ; we belong to it. Long before we understand ourselves through the process of self-examination, we understand ourselves in a self-evident way in the family, society and state, in which we live....That is why the prejudices of the individual, far more than his judgements, constitute the historical reality of his being.[२१७] ये अन्यत्र अपनी Hermeneutical दृष्टिको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं — Every experience is a confrontation. Because every experience sets something new against something old and in every case it remains open in principle whether the new will prevail....or whether the old, accustomed, predictable will be confirmed in the end.[२१८]

कालके अखण्ड प्रवाहमें मानवीय अस्तित्वका गतिमय स्वरूप इतिहास है, मानवीय प्रज्ञा द्वारा किया गया इस गतिका विभाजन युग। प्रज्ञा कालके अखण्ड स्वरूपको विभाजनके माध्यमसे ही ग्रहण करती है। भाषा इसे भूत, भविष्य और वर्तमानके निर्देश द्वारा व्यक्त करती है। ऐसी अवस्थामें इस प्रवाहके स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिए संख्यात्मक संकेत आवश्यक हो जाता है। मात्र भूत और वर्तमान शब्दका व्यवहार संख्यात्मक निर्देशके बिना पर्याप्त नहीं — जो भविष्य और वर्तमान है, वही कालान्तरमें अतीत हो जाता है, ऐसी अवस्थामें अनादि-अनन्त कालप्रवाहमें किसी भी घटनाको पुन: कालके सन्दर्भमें संकेतित करना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता है। शताब्दी और सहस्राब्दी तो बहुत दूर, यदि कालगत संकेतका मात्रक सुनिश्चित न हो तो हम किसी भी काल-बिन्दुकी पहचान वर्षके लघुतम मानमें भी नहीं कर पाते, ऐसी अवस्थामें इतिहासकी वही अवस्था होती है, जो यूनानके इतिहासकी हुई है।

इतिहासमें प्राय: पाँच प्रकारका युग-विभाजन रेखांकित किया गया है — (१) एक वह युग-विभाजन जो सृष्टिके तिथिक्रम पर आधारित है, इसका व्यवहार भारतवर्षमें प्राचीन इतिहासकी परम्पराको रेखांकित करनेकी दृष्टिसे हुआ, यथा — कल्प, मन्वन्तर, महायुग, युग ; (२) यह परम्परा संवत् प्रधान संवत्सरके गणनाक्रमपर आधारित है — यथा युधिष्ठिर संवत्, विक्रम संवत्, शक सवत्, शालिवाहन संवत्, ईसाई संवत् आदि-आदि ; (३) यह प्रकार न्यूनाधिक रूपकात्मक है, इसका सम्बन्ध जहाँ इतिहाससे है वहीं विकासवादसे भी है, यथा, पाषाणयुग, ताम्रयुग, लौहयुग आदि ; (४) इस विभाजनका आधार सांस्कृतिक इतिहासकी युग प्रधान काल्पनिक भावना है — स्वर्णयुग, रजतयुग, रेनेसां, वरोक, इन्लाइटेन्मेन्ट, एज ऑफ रीजन आदि ; (५) यह विभाजन कालके रूपकात्मक परिवेशकी प्रतिबद्धताके आधार पर किया गया है — आदिमयुग, प्राचीनयुग, मध्ययुग आदि-आदि।

पश्चिममें यह विभाजन era शब्दके द्वारा प्राप्त होता है। रोमन राज्यकालके प्रसिद्ध इतिहासकार Livy ने २ बी.सी. में इसका प्रथम बार उपयोग किया, जिसका आधार रोमकी स्थापनासे सम्बन्धित दन्तकथाएँ (७५३ बी.सी.) थीं। Old Testament की सृष्टि-कथाके आधारपर ईसाई धर्मावलम्बियोंने एक नये संवत्की सृष्टिकी, यह सृष्टि ६ दिनमें बनी, प्रत्येक दिनका मानवीय मान ५०० वर्ष है। अत: इस दृष्टिसे सृष्टिको बने ईसा तक ३००० वर्ष व्यतीत हो चुके थे, १७ वीं १८ वीं शती तक तो यह व्यवहार ईसाई मतकी दृष्टिसे ही होता रहा, पर कालान्तरमें यह धर्मसे हट कर सामान्य कालमानके रूपमें स्वीकृत हुआ, फलत: बी.सी.(B.C.) के माध्यमसे सुदूर अतीतका भी अनुमान ग्रहण कर लिया गया, ए.डी. (A.D.) का व्यवहार मध्ययुगसे ही प्रचलित होना प्रारम्भ हो गया, ईसाके अवतरणकी घटनाको यहाँ केन्द्रमें रख दिया गया। Centuria या शती शब्दका व्यवहार भी अति नवीन है — इसका सर्वप्रथम प्रयोग १७ वीं १८ वीं शतीके मानवतावादियोंने किया, प्राचीन एवं मध्ययुगीन लेटिनमें इसका व्यवहार कहीं नहीं देखा जाता। पूर्वमें प्राचीनताकी दृष्टिसे देखा जाय तो इसका प्रथम व्यवहार ऋग्वेदमें प्राप्त होता है — **जीवेम शरद: शतम्**, पश्चिमकी

परम्परामें इतिहासका शती या 'सेंचुरी' के रूपमें विभाजन अपेक्षाकृत नूतन या Modern है।

यह Modern या Modernus शब्दका प्रयोग Antiuque या Antiquus के विरुद्ध अर्थमें मध्ययुगमें प्रचलित हो चुका था। इस शब्दसंकेत द्वारा कालका स्पष्ट विभाजन तो नहीं होता, पर प्राचीन सन्दर्भमें नूतनकी अवधारणा भर होती है। पूर्वकी संस्कृतिमें प्रत्न, पुराण, पुरा, पूर्व शब्दके बहुश: प्रयोग ऋग्वेदमें प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि 'पूर्व' और'नूतन' दोनों शब्दोंका एक साथ प्रयोग विश्वकी प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेदमें ठीक प्रारम्भके प्रथम मन्त्रको छोड़कर दूसरेमें ही हुआ है — **अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।**[२११]

ईश्वरके द्वारा इतिहासके नियन्त्रणके सिद्धान्तको प्रथम बार चुनौती 'रेनेंसा' युगके माध्यमसे ही दी गई, उस युगके मानवतावादी दृष्टिकोणके आचार्योंने कला और ज्ञानके नव-जन्म या पुनर्जन्मकी घोषणा Rinascita या Renaissance शब्दसे की, इस नवोदयमें मध्यवर्त्ती कालखण्डको Dark Age, Medieval Age, अन्ध-युगकी संज्ञा प्रदान की गई, चाहे कारण कुछ भी रहा हो, यह प्रथम वज्रपात सोलहवीं शतीके मध्यके प्रोटेस्टेण्टों द्वारा ही हुआ था। अन्ततः मध्ययुगकी ईसाई संस्कृतिको अन्धकार-युगकी संज्ञा दे दी गई, फलतः ईसाईधर्मसे निःस्यूत सरल-रेखामें गमनवाला इतिहास-दर्शन पुनः चक्राकार गतिक्रममें सोचा जाने लगा, जिसे कभी यूनानने भारतीय प्रभावोंके कारण सोचा था। सत्रहवीं शतीके मध्यमें Hornius (१६६६) ने प्राचीन और नवीनके मध्य एक नया युग विभाजन उत्तरप्राचीन युगके नामसे व्यवहृत किया, जिसकी चर्चा कभी Petrarch ने की थी। प्राचीनता और नवीनताके मध्य Voltaire के द्वारा १८ वीं शतीके मध्यमें स्पष्ट रेखा खींची गई — रोमन राज्यके अधःपतनके पश्चात् नवीन युगका प्रारम्भ स्वीकार किया गया। इस नवीन युगका नामकरण Enlightenment शब्दके द्वारा हुआ। १९ वीं शतीमें योरोपके विश्वविद्यालयोंमें Modern History के पीठ स्थापित होने लगे, कालान्तरमें Modern शब्द अपने अर्थ विस्तारकी प्रक्रियामें संकुचित होते-होते Recent और Contemporary के अर्थमें व्यवहृत हुआ; फ्रांसके इतिहासपण्डितोंने इसका व्यवहार वहाँकी प्रसिद्ध

क्रांतिसे जोड़कर किया, पश्चिमकी परम्परामें इतिहास और युग दोनोंका स्वरूप अत्यन्त अस्पष्ट है। वहाँ इनका महत्त्व एक 'मनोविचार' से अधिक कभी नहीं रहा, उसी प्रकार कालकी सैद्धान्तिक अवधारणा एक सरल-रेखाकी तरह रही है — जो दो पाँच सहस्र वर्ष पश्चात् कहीं भी दिखाई नहीं देती।

२. कालपुरुष और इतिहासपुरुष — स्वरूप एवं सिद्धान्त

भारतीय इतिहास चिन्तनके अनुसार पृथ्वीपर विश्व-प्रज्ञाका यह बौद्धिक विस्फोट प्रथम नहीं, इसके पूर्व यह अनेक बार हुआ है। पृथ्वीपर ही नहीं, भारतीय और वैज्ञानिक मान्यताके अनुसार संज्ञान-धाराकी महाचेतनाका पर्यावरण अन्य ब्रह्माण्डोंपर भी विद्यमान है। वहाँ भी ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न परम समुन्नत संस्कृतियाँ हैं, ऐसी अवस्थामें बौद्धिक प्रगतिके इतिहासको विगत पाँच-सात हजार वर्षोंके अल्पतम कालखण्डमें सीमित कर देना भयंकर भूल और भ्रान्ति होगी। विश्व स्वयं एक परमप्राज्ञ संरचना है — जो अपने संरचनात्मक स्वरूपके प्रत्येक स्तरपर उद्देश्यमूलक प्रज्ञानघनताके साथ अभिव्यक्त होती है, चाहे वह ब्रह्माण्डीय आयामका विराट् कालपुरुष हो, चाहे मानवीय सीमामें इतिहासपुरुष। विश्व-चेतनाके महाविस्फोटका मूल स्वरूप मयूराण्डरस न्यायकी तरह हिरण्यगर्भके परम विस्फोटमें समाहित है। यह एक ही अद्वितीय प्रज्ञानघन महासत्ताका प्रज्ञानघन विकास है — जो द्रष्टा और दृश्य दो रूपोंमें प्रतिभासित होता है। कालपुरुष और इतिहासपुरुषके आत्मचैतन्यकी अभिव्यक्तिका स्वरूप, प्रकार और आयाम भिन्न-भिन्न हैं। इस पार्थक्यको निम्नतालिकामें इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है — जो परस्परकी सापेक्षतासे उपलब्ध है, तत्त्वत: दोनों एक आत्मा है — **'एतदात्म्यमिदं सर्वम्' 'नेह नानास्ति किंचन'** आदि श्रुतिवाक्य इस अभेदके ही प्रतिपादक हैं — यह भेद-सापेक्ष अभेद है।

हिरण्यगर्भ

कालपुरुष	**इतिहासपुरुष**
१. उपलब्ध सत्य।	१. सम्भावित परिवर्तनशील तथ्य।
२. जड़स्वरूप चैतन्यसत्ता।	२. चेतन आत्मसत्ता।
३. स्थिरस्वरूपा संरचना।	३. स्वरूप स्थिरताके लिए प्रयत्नशील सम्भावना।

४. जड़ गति।	४. चेतन गति।
५. दिक्‌के अचल एवं विनिश्चित सम्बन्धोंमें उपस्थित — गतिशील सत्तात्मक विस्तार।	५. घटनात्मक, विशिष्ट जीवनवृत्तकी तरह नियतिसापेक्ष विस्तार।
६. वह सत्ता जो जड़तत्त्वोंकी आयामिकतामें एक स्थायित्व प्राप्त कर चुकी है।	६. कालक्रममें भूतसे वर्तमानमें परिवर्तनशील — भविष्यकी ओर गमन करती हुई सत्तात्मक सम्भावना।
७. अनिवार्य सम्बन्धोंकी जड़वस्तुओंके माध्यमसे पुनरावृत्ति।	७. नियति-सापेक्ष सम्भावनाओंका पुनरावर्तन।
८. विश्वचैतन्य — द्रव्यमय विश्वकी सत्ताका अधिष्ठाता और नियामक।	८. विश्वचैतन्य — इच्छाशक्तिस्वरूप होकर कार्यशील।
९. इस सत्ताका क्रियात्मक स्वरूप दिगाश्रय प्रधान है।	९. इस सत्ताका क्रियात्मक स्वरूप कालाश्रय प्रधान है।
१०. दिक्‌प्रधान अस्तित्व।	१०. कालप्रधान अस्तित्व।
११. परिणामात्मक सत्ता।	११. कालात्मक सत्ता।
१२. गुणात्मक परिवर्तन प्रधान अस्तित्व।	१२. भावात्मक परिवर्तन प्रधान अस्तित्व।
१३. यन्त्रस्वरूप अस्तित्व।	१३. व्यक्तित्वप्रधान मनोनुकूल स्वतन्त्रता।
१४. कार्य और कारणकी दो मूल अवस्थाएँ जो अन्योन्याश्रित होकर क्रियाशील होती हैं।	१४. कार्य और कारणकी दो मूल अवस्थाएँ, जो दो भिन्न चैतन्योंमें अभिव्यक्त होती हुई अन्योन्याश्रित होती हैं।
१५. आकर्षणशक्तिप्रधान अस्तित्व।	१५. इच्छाशक्तिप्रधान अस्तित्व।
१६. सुप्त-चैतन्य सत्ता।	१६. जागृत-चैतन्य सत्ता।
१७. परिणामात्मक सत्ता।	१७. काम-तत्त्व प्रधान सत्ता।
१८. ऋतधर्मा प्रकृति।	१८. ऋतुधर्मी विकास।
१९. दिक्-काल सापेक्ष अस्तित्व।	१९. दिक्-काल निरपेक्ष अस्तित्व।

२०. कार्य-कारण प्रधान अस्तित्व।	२०. नियतिप्रधान अस्तित्व।
२१. प्रयोजन निरपेक्ष सत्ता।	२१. प्रयोजन-सापेक्ष सत्ता।
२२. द्रव्यस्वरूप अस्तित्व।	२२. बोधस्वरूप अस्तित्व।
२३. तत्त्वबोधक परिणामावस्था।	२३. प्रतीक-अवबोधक सादृश्य।
२४. द्रव्यविज्ञानात्मक सत्ता।	२४. रूपकाश्रित सत्ता।
२५. अधिभूतात्मक अस्तित्व।	२५. आध्यात्मिक अस्तित्व।
२६. द्रव्यस्वरूपा गुणात्मक सत्ता।	२६. विज्ञानरूप गणितात्मक सत्ता।
२७. आकृतिमूलक साकार अभिव्यक्ति।	२७. मनऐन्द्रिक बोध।
२८. जड़प्रधान अस्तित्व।	२८. आत्मचैतन्यप्रधान अस्तित्व।
२९. नादतत्त्वात्मक अस्तित्व।	२९. वाक्तत्त्व प्रधान अस्तित्व।
३०. जड़गतिप्रधान अस्तित्व।	३०. मनोगतिप्रधान अस्तित्व।
३१. आकर्षणशक्तिप्रधान गुरुत्वधर्मा सत्ता।	३१. आनन्दतत्त्वप्रधान सत्ता।
३२. अणु-परमाणु प्रधान विश्व।	३२. अवयवात्मक विश्व।
३३. द्रव्यपरिच्छिन्न परिमित गति।	३३. नियतिसापेक्ष स्वतन्त्र गति।
३४. वस्तुप्रधान सत्ता।	३४. व्यक्तिप्रधान सत्ता।
३५. तमःप्रधान चैतन्यसत्ता।	३५. कल्पनाप्रधान अस्तित्व।
३६. ब्रह्माण्डरूप चैतन्य।	३६. पिण्डरूप चैतन्य।
३७. स्वद्रव्य — आश्रित ऊर्जित विश्व।	३७. प्रकृति और इतिहास — उभयाश्रित ऊर्जित विश्व।
३८. 'इदम्' अर्थरूप विश्व।	३८. 'अहम्' —'इदम्' अर्थरूप विश्व।
३९. 'इति', प्रधान अस्तित्व।	३९. 'नेति-नेति' प्रधान अस्तित्व।
४०. सम्भावित उद्देश्यमूलकता - इतिहास- पुरुषकी सृष्टि।	४०. निश्चित उद्देश्यमूलकता — मानवीय चैतन्यका परम विस्तार।
४१. प्रकृतिसत्तात्मक — 'बिम्ब' स्वरूप विश्व।	४१. इतिहास सत्तात्मक —प्रतिबिम्ब विश्व।
४२. उभयास्तित्वका जन्य-जनक भाव सम्बन्ध-जनक।	४२. उभयसत्ताका जन्य-जनकभाव सम्बन्ध-जन्य।
४३. जीवन एक प्रवाह नित्य घटना।	४३. जीवन एक विवेचनात्मक पद्धति।

४४. जड़धर्मा यान्त्रिकताका चक्रकी तरह बोध-शून्य आवर्तन।	४४. प्रकृतिकी विज्ञानस्वरूपा चेतना एवं इतिहास चेतनाका स्पष्टबोध।
४५. कारण और गति।	४५. नियति और लय।
४६. संयोग और समवाय सम्बन्ध प्रधान अभिव्यक्ति।	४६. तादात्म्य बोधस्वरूपा अभिव्यक्ति।
४७. वर्तना लक्षणरूप अस्तित्व।	४७. इतिहासात्मक स्मृति-चित्ररूप अस्तित्व।
४८. गुणोंका गुणोंमें अनुवर्तन।	४८. गुणोंका गुणोंमें उद्देश्यमूलक अनुवर्तन।
४९. कारणरूप अस्तित्व।	४९. भवनशील नियतिरूप अस्तित्व।
५०. कालपुरुष — एक द्रव्यमय योजना।	५०. कालपुरुष एक बौद्धिक सापेक्षता — एक मानसिक प्रतिबिम्ब।
५१. इतिहासपुरुष —एक प्राकृतिक योजना।	५१. इतिहासपुरुष — कालपुरुषका सचेतन विकास।
५२. अस्तित्व — योजना व विनियोजन।	५२. अस्तित्व — संरचना।
५३. प्रकृति इतिहासपरक नहीं।	५३. इतिहास एक अधिप्राकृत घटना।
५४. आत्मतत्त्वकी अचिद् अभिव्यक्ति।	५४. आत्मतत्त्वकी चित्तस्वरूप अभिव्यक्ति।

हिरण्यगर्भके विस्फोटित द्रव्यसे कालपुरुषकी संरचना होती है, उसके आत्मचैतन्यका विकास इतिहासपुरुष मानव है। अत: विश्वमें हमारी दोहरी सदस्यता है। हमारी देहसंरचना द्रव्यभौतिक कालपुरुषकी देन है, इतिहासपुरुष विश्वातीत प्रज्ञानघनसत्ताका आत्मचैतन्यप्रधान स्वरूपांश। हम यहाँ ऐसे यात्री हैं, जो लोक-लोकान्तरकी महायात्रापर निकले हैं। हमारा यहाँ कुछ भी नहीं है, न स्थायी आवास, न परिधान, न यह देहावरण। हम इस अनन्तके महायात्री हैं, और हमारे समक्ष फैला हुआ है — कोटि-कोटि अरब भुवन-मण्डलोंका महाविस्तार, कहीं भी हम अधिक समय नहीं रुक पाते, क्योंकि कहीं हमारा स्थायी आवास नहीं। इस समय हम इस पृथ्वी ग्रहपर हैं, कभी कहीं अन्यत्र। नोबेल पुरस्कार विजेता जीवशास्त्री F.Crick ने हाल ही में प्रमाणित किया है कि इस ग्रहपर

अदृश्य रॉकेटोंकी सहायतासे हम (जीव-बीज) आये हैं।[300] भारतीय जन्मान्तर विज्ञानके अनुसार 'अदृश्य-रॉकेट' जीवका आतिवाहिक देह है — जिसकी सहायता व माध्यमसे 'जीव' लोक-लोकान्तरोंकी महायात्रा सम्पन्न करता है। हमारा वर्तमान आवास कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। विराट् अनन्तमें इस ग्रहका कितना ही लघुतम अस्तित्व क्यों न हो, अपने अन्य पारिवारिक ग्रहोंकी तुलनामें यह बहुत असाधारण है। अभी तकके ज्ञात विश्वमें यही एक ऐसा ग्रह है, जहाँका तापमान रस वा जलतत्त्वको हिम, तरल, विरल तीनों अवस्थाओंमें वर्तमान रखता है, और जिसके पास अपना विशाल महासागर है। इस ग्रहके अधिवासियोंने प्रयोगशालामें उन जटिलतम अणुओंका निर्माण कर लिया है, जिनमें जीवन-द्रव्यके सभी गुण-धर्म और भाव निहित हैं। द्वीपविश्वोंके अनन्त विस्तारमें इस लोकके अधिवासी अपने ही जैसे विकासकी खोजमें आज परमव्योमकी दिशाओंमें तेजीसे आगे बढ़ रहे हैं, ऐसा लगता है कि विश्वकी परम विज्ञानघनसत्ता अपनी चरम अभिव्यक्तिके क्रममें पहुँचकर मानवीय अणुके रूपमें आकार ग्रहण करती जा रही है। कालपुरुष उस विराट्पुरुषका अचिद् देह है, इतिहासपुरुष उसकी आत्मा।

३. इतिहासका तत्त्वदर्शन और मन्वन्तर विज्ञान

मानवीय चेतनाका इतिहास युगचक्रका अनुवर्तक है, जिस प्रकार कालचक्र घूमता है, चेतनामें नये क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहते हैं। कलियुगके प्रथम चरणके समाप्त होते-होते इस ग्रहपर नवीन चेतनाका पुनः विस्फोट होता है। फलतः दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य यहाँ तक कि मानवीय चिन्तनके सभी क्षेत्र अपने असीमित विषय विस्तार, विपुल विषय विभाग, एवं अपरिमित शाखा विस्तारके साथ बृहत्तम होते जा रहे हैं। ज्ञानका यह महान् ऊर्जा-विस्फोट सामान्य नहीं, विगत २०० वर्षोंके इतिहासमें मनुष्यने असीमित सफलताएँ प्राप्त की हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है, विश्वके अनन्त ज्ञानका महाकोश पृथ्वी पर मानवीय माध्यमका आश्रय लेकर प्रकट हो गया, जिसने आज अपनी नवीन चेतनाके नवीन-विस्फोटके द्वारा पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षेत्रफलको नवीन बना दिया। मानव अपनी भुजाओंसे अनन्तका स्पर्श करनेके लिए आकुल है, चन्द्रमापर उसने अपने चरण रख दिये हैं, अब वह नभोगंगाके परमव्योमपर अपने चरण रखने जा रहा है।

आज मानवके पास कोटि-कोटि सहस्र नभोमन्दाकिनियोंके उद्भव और विलयके तात्त्विक इतिहासकी अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ विद्यमान हैं। उसने विश्वकी संरचनाके प्रथम अंकुरोद्भवपर वैज्ञानिक ढंगसे सोचा है। प्रथम क्षणके परात्पर विभागमें क्या कुछ घटित हुआ था, वह आज उससे अलक्षित नहीं। उसने आदिअण्डके तापमानकी जानकारियाँ संख्यात्मक निर्देशके साथ प्रस्तुत की हैं। इस प्रचण्ड तापमानसे ही अण्डका विस्फोट होता है। यह विस्फोटित द्रव्य-राशि ही तारिकाओंके रूपमें समूहित होती हुई, नभोमन्दाकिनियोंका निर्माण करती है। अन्तमें अपने विकास-क्रममें परिणामधर्मा होती हुई ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयके रूपमें विभक्त हो जाती है। यही अपने विकासके चरम बिन्दुपर पहुँच कर प्रमाण-प्रमेय और प्रमाताके स्वरूपको स्थिर करती हुई मानवीय अणुके रूपमें प्रकट होती है। विराट् विश्व प्रज्ञानघन सत्ताकी वह छन्दोमयी तरङ्ग है, जो प्रत्येक सृष्टिकल्पमें काल-चक्रके प्रतिघातके अनुसार विश्वरूपमें प्रतिबिम्बित होती है, वैसा ही स्वरसंगीत उत्पन्न होता है, वैसे ही स्वरसंगीतसे इस ग्रहकी युगचेतना मुखरित हो उठती है। पृथ्वीकी अपनी नृत्यगतिमें फिर वही संगीत गूँजता है, वही स्वर बजता है। भारतीय सृष्टि-तत्त्वशास्त्रके अनुसार पृथ्वीका इतिहास सूर्यके भीतर गूँजते हुए स्वर-संगीतका परिणाम है, जैसे ही सूर्यके भीतरका स्वर-संगीत बदलता है — वैसे ही पृथ्वीकी जैव-चेतनाके इतिहासका प्रवर्तन होता है। यही मन्वन्तर प्रवर्तनका विज्ञान है। इस ग्रहका समग्र जैव और अजैव परिवर्तन सूर्यके स्वर संगीतसे संचालित और नियन्त्रित होता है। हमारा गायत्रीछन्द इस स्वरसंगीतके अनुशासनके ही महास्पन्दका छन्दोमय प्रकम्प है।

विज्ञानके अनुसार पृथ्वीकी सुविशाल वेगवती परिक्रमाके फलस्वरूप कभी वीणा और कभी वंशीका स्वर निरन्तर गूँजता रहता है। भारतीय परम्परामें देवर्षि नारदकी वीणा और भगवान् श्रीकृष्णकी वंशी इसी विज्ञानके प्रतीकभूत निदान हैं। पृथ्वीके इस संगीतको हम आज इलेक्ट्रोनिक यंत्रोंकी सहायता से सुन सकते हैं। यह संगीत जिस युगमें जिस स्वरसे संयुक्त होता है — जिस अन्तराको धारण करता है, विकासकी संरचनात्मक संज्ञानधारा उसी अन्तराकी तरंग-गति को प्राप्त होती है। यही मन्वतरके ७१ महायुगोंके कालचक्रका अवबोधक स्वरूप है। स्वायंभुव मन्वन्तरका सूर्यसम्भूत संगीत 'अ' स्वर प्रधान था — पृथ्वीके वंशीनादमें यही स्वर निपीड़ित हो उठा, उसकी महती वीणा पर

यही स्वर झंकृत हो रहा था। सूर्यका वर्तमान स्वर —'ऋ' है, जो विगत १२ करोड़ वर्षोंसे निरन्तर सूर्यमण्डलसे उत्थित हो रहा है, पृथ्वी भी इसी स्वरका मुरलीवादन कर रही है। सूर्यका यह संगीत पृथ्वी तक सीधा नहीं पहुँचता, चन्द्रमण्डलसे प्रतिघातित होकर हम तक आता है। फलत: पृथ्वीकी मुरलीके प्राणमय छिद्रोंमें नई अन्तरा उत्पन्न हो जाती है। पृथ्वीके पार्थिव इतिहासका प्रवर्तन और परिवर्तन इस संगीतकी लयके अनुसार होता है — वैसा ही प्राणोंका स्पन्दन, वैसा ही युगबोध, वैसा ही मन्वन्तरकी चेतनाका विकास। विज्ञानने इस सूक्ष्म संगीतकी भाषाको पढ़नेका कुछ स्वल्प प्रयास किया है। इसके अनुसार चन्द्रमाके मण्डलसे उठता हुआ संगीत गूँजती हुई घण्टाध्वनिकी तरह है, पृथ्वीका स्वर मुरलीवादन और वीणाकी झंकारकी तरह।[३०१]

सूर्य स्वयं संगीत मुखर है, उसके मण्डलमें अंगिरा और भृगु अग्निका विस्फोट होता रहता है। भारतीय तत्त्ववेत्ताओंके अनुसार १ अरब, ९७ करोड़ वर्षोंके इस सुदीर्घकालमें सूर्यरूप विश्व-वेणुका यह सातवाँ स्वर परिवर्तन है। पृथ्वीके जैव इतिहासके परिवर्तनको सूर्य-संचालित स्वरोंके अनुसार ही मन्वन्तरोंके कालचक्रमें बाँटा गया है, एक कालचक्रका आवर्तन ३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्षोंमें होता है, इस दीर्घ कालखण्डमें एक ही स्वर सूर्यमें निरन्तर चलता रहता है। कालके इस दीर्घ प्रवाहमें इस स्वर विशेषकी ७१ अन्तराएँ ४ : ३ : २ : १ के प्रकम्प पर बदलती हैं, यही इसके ७१ महायुगात्मक कालचक्रोंका स्वरूप है। ४ : ३ : २ : १ की अन्तराका प्रकम्प ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगका कालमात्रक है। गणनाकी इकाई एकसे प्रारम्भ होती है, 'कल' धातु कलन वा गणनाके अर्थमें प्रसिद्ध है, इस इकाईसे ही यहाँ कालकी कलना वा गणनाका प्रारम्भ होता है, इसीलिए युगका व्युत्पत्तिपरक नाम कलि-काल वा कलियुग है। लेटिन भाषामें कैलकुलेशन, कैलकुलेटर आदि शब्द इस 'कल' धातुसे ही निष्पन्न होते हैं। कलिका कालमान ४,३२,००० वर्ष है। इससे दुगुना द्वापर, त्रिगुणित त्रेता एवं चतुर्गुणित काल कृतयुग है। संस्कृत भाषामें 'कृत' शब्दका अर्थ 'चार' प्रसिद्ध है। सूर्य आकाशगंगाके केन्द्रकी परिक्रमा ३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्षोंमें पूरी करता है। परिक्रमाका पथ सीधा नहीं — वहाँ मण्डलाकार वक्रता है — अत: सूर्यकी परिक्रमा सीधी नहीं — वह लुढ़कता हुआ अपनी

परिक्रमा सम्पन्न करता है, इस लुढ़कनका कालपथ ४ : ३ : २ : १ के काल-सूत्रके छन्दपर बँधा है, यही चार युगोंका योग महायुग है — ४३ लाख, २० हजार वर्ष। सूर्यका सम्पूर्ण परिक्रमापथ अपनी मण्डलाकारपरिधिपर ७१ घुमावों पर विभक्त है, यही एक मन्वन्तरके ७१ महायुग हैं। विज्ञानके अनुसार सूर्य आकाशगंगाके केन्द्रकी परिक्रमा जितने वर्षोंमें पूरी करता है, वहाँ तीन-चार प्रकारकी वर्ष संख्यायें पाठ्यग्रन्थोंमें प्राप्त होती हैं — २० करोड़ वर्ष, २२ करोड़ वर्ष एवं कहीं-कहीं २५ करोड़ वर्षोंका उल्लेख है, इस भेदका कारण है सम्भवत: दृश्य गणित। सूर्यकी परिक्रमा-गति सर्वदा एक जैसी नहीं — वह परमव्योमके इस अतिदीर्घपथपर कई बार मन्द और तीव्र होती रहती है। भारतीय तत्त्वशास्त्रमें दिया गया ३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्षोंका मन्वन्तरीय काल सूर्यकी औसतगतिपर आधारित है, न कि दृश्यगति पर, क्योंकि दृश्यगति सर्वदा बदलती रही है।

सूर्यमें इस स्वरभेदका कारण, उसके आयतनके सिकुड़नेसे होनेवाले द्रव्यभेदका विभिन्न दबाव है। संकोचके निरन्तर बढ़नेके क्रममें वैवस्वत मन्वन्तर तक पहुँचते-पहुँचते सूर्यकी तापमान जन्य कृष्णता पहलेकी तुलनामें और भी बढ़ जाती है, उससे 'ऋ' स्वर बहिर्भूत होता है। तन्त्रमें 'ऋ' अग्निका स्वर स्वीकार किया गया है। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सन्दर्भमें 'ऋ' स्वरकी सूचना इस प्रकार है —

सप्तमात्तु मुखात्तस्य ततो (सूतो) वैवस्वतो मनुः।
ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णत: कृष्ण उच्यते ।।[302]

पृथ्वीके समग्र इतिहासकी कुंजी मन्वन्तर विज्ञानमें विद्यमान है। इसकी सहायतासे अतीत ही नहीं पृथ्वीका वर्तमान और भविष्य भलीभाँति समझा जा सकता है। इस ग्रहके समग्र इतिहासकी कुंजी इन छ: भागोंमें विभक्त है — (१) मनु, (२) सप्तर्षि, (३) देव, (४) इन्द्र, (५) मनुपुत्र और (६) अवतार —

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ।।[303]

ये छ: तत्त्व पृथ्वीके कालचक्रकी गतिके समग्र इतिहासको उजागर कर देते हैं।

पृथ्वीका ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंका जैव इतिहास १४ मन्वन्तरोंमें विभक्त है। सूर्य इतने वर्षोंमें आकाशगंगाके केन्द्रकी १४ परिक्रमा सम्पन्न करता है, प्रत्येक परिक्रमाका काल ३० करोड़ वर्षोंसे अधिक है, इस दीर्घ कालयात्राके फलस्वरूप उसके मण्डलका सम्पूर्ण ईंधन बदल जाता है, उसका सम्पूर्ण रूपसे नवीकरण होता है, यही उसका इन्द्रपरिवर्तन है। भीतरके ईंधनके बदलनेसे उसकी सातों किरणें बदल जाती हैं, किरणका प्रसिद्ध नामपर्याय पद ऋषि है, यही सप्तऋषि परिवर्तन है। ऋषि वा किरणोंके सम्मिश्रणसे जो नवीन तत्त्व उत्पन्न होता है — वह प्राण रूप देवसंस्था है, उसका भी नवीकरण हो जाता है। देव संस्थाका प्रमुख प्रतिनिधि तत्त्व यहाँ इन्द्र पदसे वाच्य है, वह भी बदल जाता है। 'मनु' का अर्थ है — नये विकासमें प्रकट या व्यक्त होनेवाली मनकी नवीन चैतन्यसत्ता, जिसके अनुसार नयाविकास रूपग्रहण करता है। मनुपुत्र यहाँ बीज हैं, जिनसे भावी सृष्टिका विकास होता है, वे भी मनुके बदलनेसे बदल जाते हैं — नवीन बीजोंकी सृष्टि होती है। यही मनुपुत्रोंके बदलनेका अर्थ है — पुराने बीजके स्थानपर नये बीजका आगमन। सूर्यका ही एक पर्याय विष्णु वा हरि है, सतत वर्धमान विकासमें जब अवरोध उत्पन्न होता है, तब उस अवरोधकी समाप्ति भी सूर्यके तेजोवतरणसे होती है, यही यहाँ अवतारका तात्पर्य है। अवरोध जिस प्रकारका होता है, शक्तिका अवतरण भी तदनुरूप और तदनुसार होता है। महाविष्णु सत्ताका पृथ्वीपर तेजोवतरण सूर्यको माध्यम स्वीकार करके होता है, अत: वह भी विष्णुस्थानीय होनेके फलस्वरूप विष्णु कहा गया है। पुराणोंमें प्रतिमन्वन्तर इन छ: तत्त्वोंके पृथक्-पृथक् नाम दिये गये हैं, यदि उन नामोंके अर्थ पर विचार किया जाए तो हम मन्वन्तरोंके काल-विज्ञानकी भाषा पढ़नेमें बहुत कुछ समर्थ हो सकते हैं। 'सुरेश्वर' पदके स्थानपर अनेक स्थलोंपर 'इन्द्र' पदका प्रयोग है। इस **इन्धे भूतानीति वा। 'तद्यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमि' — ति विज्ञायते।।**[304] **ञिइन्धी दीप्तौ (रु० आ०) ...दीपयति (द्युतिमन्ति करोति) सोऽयमिन्धः सन्निन्द्र इत्युच्यते।**[305] निरुक्त लभ्य अर्थके अनुसार इन्धपद — 'ज्वलन' के अर्थका वाचक है — इसीसे इन्धन पदकी निरुक्ति 'ज्वलन' के अर्थमें होती है। ३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्षोंकी दीर्घयात्रा द्वारा सूर्यके भीतरका इन्धन तत्त्व ही बदल जाता है — यही इन्द्रका बदलना है। वहाँ पुन: नया 'इन्धन' या 'इन्द्र' उपस्थित होता है। फलत: किरण या ऋषितत्त्व भी

बदल जाता है। मण्डलके 'इन्द्र' या इन्धनके बदलनेसे सूर्यकी छहों आभ्यन्तर-संस्थाओं का नवीकरण नये मन्वन्तरके सन्दर्भमें होता है। यहाँ विस्तार भयसे उसका स्पर्शमात्र भी सम्भव नहीं, सम्पूर्ण विषय इस लघु प्रबन्धके मूल ग्रन्थका विषय है, जिसे हमने वहाँ भलीभाँति विवृत और स्पष्ट किया है।

सृष्टि संकल्पात्मिका है। संकल्प चित्तके स्पन्दका नाम है। अधिब्रह्माण्डीय चित्त जब स्थिर वा निश्चल हो जाता है — तब उसके संकल्पात्मक स्वरूपकी अभिव्यक्ति नहीं होती। स्पन्दनकी इस क्रियाको हम दोलक-यन्त्रकी सहायतासे समझ सकते हैं। दोलन-क्रियामें एक बार पश्चात् गमन होता है, तो दूसरी बार उसका सम्मुख आगमन। एक बार उसका बहिर्मुख गमन है, तो दूसरी बार अन्तर्मुख आगमन। उसमें एक बार विकर्षणका निर्देशन है, तो द्वितीय बार आकर्षण है। इसमें एक ओर केन्द्र अपसारिणी शक्तिका कार्य है, तो दूसरी बार केन्द्राभिमुखी शक्तिका स्वरूप व्यक्त होता है। सृष्टिकी अभिव्यक्तिका भी यही स्वरूप है। एक बार वह अव्यक्तसे व्यक्तमें आगमन करती है, द्वितीय बार व्यक्तसे अव्यक्तकी ओर गमन करती है। एक बार विश्वरूप पटका प्रसारण होता है, तत्पश्चात् पुनः उसका संकोच। यहाँ हम इस विश्वके आविर्भाव और तिरोभावको दोलकके दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे। यदि एक केन्द्रस्थ दृढ़ कीलपर सूतके द्वारा बाँध कर किसी दोलकको लटका दिया जाए तो दोलक-यन्त्रका स्वरूप प्रस्तुत हो जाता है। जब वह अपने केन्द्रस्थ कीलके नीचे लम्बायमान अवस्थामें लटका हुआ है, उस समय गति नहीं, वह स्थिर है। इसे प्रलय समझा जा सकता है। यदि उसे झुला दिया जाए — वह दक्षिण और वाम झूलने लगता है, कुछ कालके पश्चात् स्थिर हो जाता है। इस स्थिरताके तीन कारण हैं — (१) पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति, (२) वायुके घर्षणसे जनित प्रतिरोधशक्ति और (३) सूतके सम्प्रसारणसे जनित तनाव — (प्रतिरोध) शक्ति (टेंशन)। इन तीन शक्तियोंके समुदायसे उत्पन्न प्रतिबन्धक न हो तो वह दोलक स्थिर हो जानेके स्थानपर अनन्तकाल तक दोलायमान ही रहेगा।

विश्वरूप संकल्पात्मक दोलकके समक्ष इस प्रकारका कोई भी प्रतिबन्धक नहीं। अतः उसकी क्रमाभिव्यक्ति, क्रमपरिणति एवं अन्तमें लय पूर्वापरभावसे प्रवाहरूपमें गतिशील रहती है। इस सृष्टि-दोलकमें कहीं कोई विराम नहीं,

अ
१
१४
व
क
ड
२
१३
ख
ठ
३
१२
ग
ट
४
११
घ
ञ
५
१०
ङ
झ
६
९
च
ज
व
७
८
छ
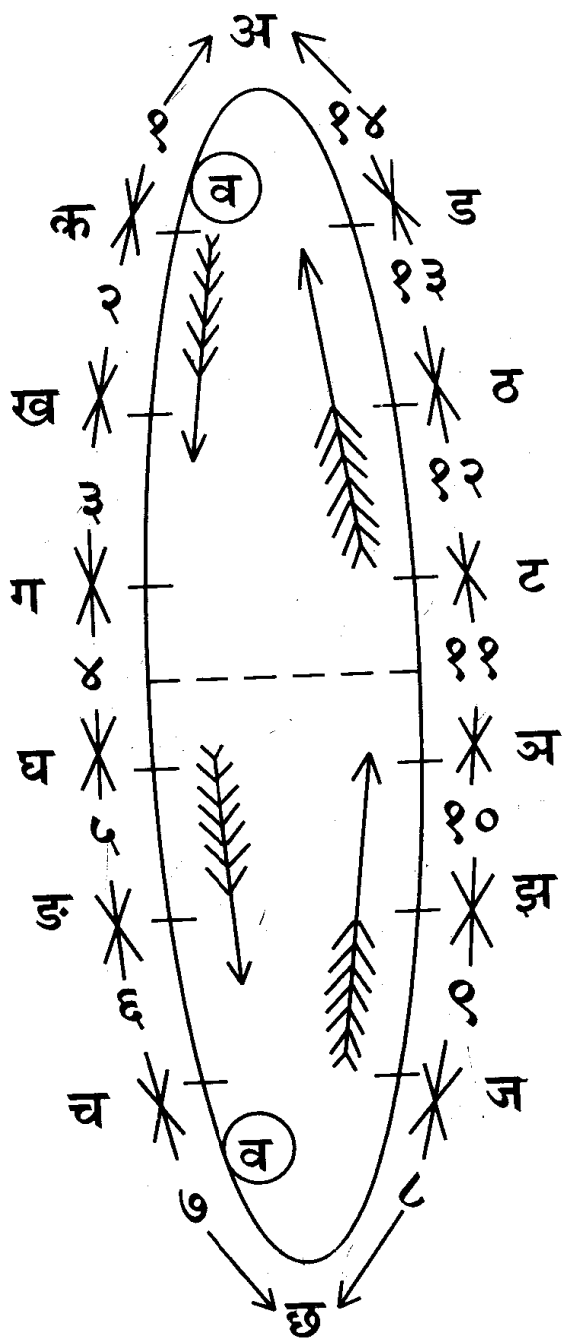
विच्छेद नहीं, विश्रान्ति नहीं, यह दोलक अनादि कालसे दोलित हो रहा है। भारतीय विज्ञान दर्शनके अनुसार यह सृष्टि अनादि है। शक्तिमान् जिस शक्तिके आश्रयसे सृष्टिरचना करता है '— यही उसका संकल्प है, इसीका नाम माया है। ऊपर लिखा जा चुका है कि विकर्षणी वा केन्द्रापसारिणी-शक्ति एवं केन्द्राभिमुखी-शक्तिके पूर्वापर भावसे कार्यशील होने पर ही सृष्टिकी क्रमाभिव्यक्ति वा क्रम परिणति होती है। सृष्टिके मन्वन्तर विज्ञानको समझनेकी दृष्टिसे यहाँ यह रेखाचित्र प्रस्तुत है। दोलकके गतिपथको सृष्टिकी क्रमपरिणतिके परिप्रेक्ष्यमें यहाँ इसे दिखाया गया है।

इस चित्रमें 'अ' बिन्दु प्रलयावस्था है, जो शून्य वा पूर्णात्मक ब्रह्मका कल्पित अवस्थान है। प्रलयमें विश्व, बीजरूपसे भावात्मक शून्यताके रूपमें तादात्म्यभावके साथ ब्रह्ममें लीन है। यह अव्यक्त अवस्थासे सृष्टिकी अभिमुखताकी ओर उसके गमनका ध्रुव बिन्दु, अर्थात् — गतिके आरम्भका आदिस्थान है। सृष्टिचंक्रकी गतिका आरम्भ उक्त बिन्दुसे होता हुआ — क-ख-ग — छ-ज-झ — ट-ठ-ड के बिन्दुपथका अतिक्रमण कर पुनः 'अ' बिन्दु पर प्रत्यावर्तित होता है, यहाँ पहुँच कर सामयिक विश्रान्ति प्राप्त करता है। पुनः विकर्षणी शक्तिके प्रभावसे उक्त पथपर पुनः गमन और प्रत्यावर्तन करता है, इस प्रकार यह चक्र कालक्रमसे निरन्तर घूमता रहता है। यहाँ 'शर' चिह्नित उक्त रेखा द्वारा गतिपथको स्पष्ट किया गया है। चित्रमें गतिपथका अंकन वृत्ताभास पूर्वक है। प्रतिअक्षर अतिक्रमणमें जो कालनिक्षेप होता है — वह एक मन्वन्तर है, इसी प्रकार ब्राह्मदिवसमें १४ मन्वन्तर हैं, यह एक कल्प है, इसे ही ब्राह्मदिवस कहते हैं। दैव परिमाणसे यह १,००० चतुर्युग है, मानव परिमाणसे ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष। इस चक्रके उक्त आवर्तनके १४ प्रविभाग हैं। प्रत्येक्र प्रविभागका नाम मन्वन्तर है। एक-एक प्रविभाग एक-एक मनुका अधिकार क्षेत्र है। अ से क तक एक मन्वन्तर, क से ख तक द्वितीय, इस प्रकार चित्र में १, २, ३, ४ आदि संख्याओंके द्वारा मन्वन्तरोंका ही निर्देश किया गया है। सूर्य जब विष्णुचक्र वा आकाशगंगाके केन्द्रकी एक परिक्रमा ३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्षोंमें पूरी कर लेता है, तब एक मन्वन्तरका काल समाप्त हो जाता है। एक कल्पमें १४ मन्वन्तर होते हैं,

अर्थात् उभयाश्रित — सूर्य चौदह परिक्रमायें सम्पन्न करता है। भागवतके अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं - (१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४)तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८)सावर्णि, (९) दक्षसावर्णि, (१०) ब्रह्म-सावर्णि, (११) धर्म-सावर्णि, (१२) रुद्र-सावर्णि, (१३) देव-सावर्णि और (१४) इन्द्र-सावर्णि। प्रथम सात नामों तक कोई मत पार्थक्य नहीं। विष्णुपुराणकी परम्पराके अनुसार १ से १२ नामों तक तो साम्य है, अन्तिम दोनोंका नाम रुचि और भौम है, मार्कण्डेयपुराणके अनुसार ये नाम रौच्य और भौत्य हैं।

चित्रमें 'व' चिह्नित क्षुद्र-वृत्तका ग्रहण सृष्टिचक्रके प्रतीक रूपमें है। उक्त वृत्त चक्रकी तरह अपने अक्षपर चतुर्दिक् घूमता हुआ गन्तव्य पथकी ओर अग्रसर होता है। 'अ' बिन्दुसे सृष्टिचक्रकी गति प्रारम्भ होकर, भिन्न-भिन्न मन्वन्तरों वा पर्वोंका अतिक्रमण करती हुई, पुनः 'अ' बिन्दुपर प्रत्यावर्तित होकर विश्रान्त हो जाती है, यह हम पूर्वमें कह आये हैं। सृष्टिचक्रके पथनिर्देशक वृत्ताभासके मध्यस्थलपर खींची गई रेखाके ऊपरकी दिशामें 'अ' बिन्दुकी ओरका विभाग चैतन्य प्रधान है, एवं इसके नीचेकी ओर 'छ' बिन्दुकी ओरका विभाग जड़ प्रधान है। यह ध्यानमें रखनेकी वस्तु है कि चित्रके ऊपर और नीचेके विभाग मात्र समझनेकी दृष्टिसे काल्पनिक हैं।'अ' बिन्दुसे क्रमशः बहिर्गमन करता हुआ — सृष्टिचक्र ज्यों ज्यों 'छ' बिन्दुकी ओर अग्रसर होता है, उसी क्रममें इसके चैतन्यका अंश भी जड़के साथ घन-घनतर और घनतम होता चला जाता है। 'छ' बिन्दुपर जड़ अंश प्रबलतम है। पुनः 'छ' बिन्दुसे अन्तर्मुखीन गमनके क्रममें चक्र ज्यों ज्यों क्रमशः 'अ' बिन्दुकी ओर अग्रसर होता है — जड़का अप्राधान्य एवं चैतन्यका प्राधान्य भी उसी क्रमसे स्फुटसे स्फुटतर और स्फुटतम होता चला जाता है। फलतः सृष्टिका जड़ अंश क्रमशः सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होता हुआ —'अ' बिन्दु तक पहुँचते-पहुँचते अत्यन्त सूक्ष्मतम बीज अवस्थामें पहुँच जाता है। चित्रमें 'अ' से 'क' पर्यन्त अंश में स्थित सृष्टिमें जड़ और चैतन्यका जैसा प्राधान्य और अप्राधान्य है, वैसा ही जड़ और चैतन्यका प्राधान्य और अप्राधान्य 'ड' से 'अ' पर्यन्त स्थित जगत्में भी है। दोनोंके मध्य प्रभेद और पार्थक्य यही है कि प्रथम बहिर्मुख गमनके पथ पर अवस्थित 'अ क' अंशमें चैतन्यका प्राधान्य होते हुए भी, वहाँ चैतन्यमें भी आत्म-संवेदनका

उतना प्राबल्य नहीं, इसके विपरीत अन्तर्मुख पथपर अवस्थित 'ड अ' अंशमें चैतन्यका प्राधान्य समभाव होते हुए भी वहाँ आत्म-संवेदनका अतिशय प्रसार है। 'अ' से 'छ' की ओर सृष्टिके क्रमिक अग्रगमनमें उसकी क्रमाभिव्यक्ति अधिक-से अधिक स्फुटतर होती जाती है। वहाँ जड़ और चेतनका आदान-प्रदान भी स्फुटतर हो जाता है, उस सृष्टिकी बनावट और बुनावट भी भिन्न प्रकारकी है, अर्थात् विशेष प्रकारके इन्द्रिय चैतन्यका उद्भेद और अभिव्यक्ति होती है, इनकी शक्तियोंका विकास भी आत्मकेन्द्रित हो जाता है। इनके द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध प्रभृतिका उपयोग भी प्रबलतम हो उठता है। इनसे उत्पन्न होनेवाले प्रपंच-जगत्‌की जानकारियाँ भी बढ़ जाती हैं, साथ ही व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति भी स्फुटतम हो उठती है। विश्वके पदार्थजगत्‌की उपलब्धियाँ भी गम्भीर रूपसे बढ़ जाती हैं, इनका स्वरूप निबिड़से निबिड़तम हो उठता है। 'छ' बिन्दुपर पदार्थजगत्‌की उपलब्धियाँ सीमातीत हो उठती हैं। जड़ और चेतनकी घनिष्ठताके समावेशका यह चरम-बिन्दु है। इसी बिन्दुपर पहुँचकर चैतन्यको जड़ पदार्थोंके उपभोगकी सम्पूर्णताका लाभ प्राप्त होता है। इसके पश्चात् चैतन्य जड़के आश्रयको क्रमशः छोड़ता हुआ — अपने अन्तर्मुखीन क्रममें — छ, ज, झ, ट, ठ, ड, अ के पथकी ओर चैतन्यके प्राधान्य एवं जड़के अप्राधान्यके साथ अग्रसर होता है। जड़के साथ चैतन्यका विच्छेद प्रारम्भ हो जाता है। चैतन्यका स्वरूप आत्म-संवेदनकी प्रक्रियामें क्रमशः बढ़ता चला जाता है। इन्द्रियाँ अपने बहिर्मुख प्रवाहसे निकल कर शब्द, स्पर्श,रूप, रस, और गन्धको अन्तर्मुखीन बनानेके क्रममें अग्रसर हो उठती हैं।

सृष्टिचक्रके क्रम-विवर्तनके आसंगमें हमारा वर्तमान कालक्रम वैवस्वत मन्वन्तरका २८ वाँ महायुग है। हम 'छ' बिन्दुके बहुत पास पहुँचते चले जा रहे हैं, चित्रमें 'व' बिन्दुकी स्थितिको वर्तमान सृष्टिचक्रकी अवस्थितिके सन्दर्भमें ही दिखलाया गया है। पृथ्वीकी वर्तमान जैव-चेतना प्रकृतिके जड़ अंशकी घोरतम सीमाओंमें क्रमशः प्रवेश करती जा रही है। हम भौतिक जगत्‌के जड़ पदार्थोंकी दिशामें बड़ी शीघ्रताके साथ सफलता प्राप्त कर रहे हैं। हमारी आत्मचेतना उनके प्रभावी हस्तक्षेप द्वारा मुह्यमान होती चली जा रही है। मन्वन्तरविज्ञान भारतीय ऋषि-चिन्तनकी महती मनीषाका एक ऐसा अपूर्व विज्ञान

है, जिसकी सहायतासे हम ४ अरब ३२ करोड़ वर्षके इस ग्रहके भूत, भविष्य और वर्तमानका ऐतिहासिक काल-प्रवाह बड़ी सहजतासे जान सकते हैं। किसी भी मन्वन्तरके किसी भी महायुगके किसी भी कालबिन्दुपर पृथ्वीके इतिहासकी क्या गति, यति और नियति है — वह इस विज्ञानकी सीमामें अलक्षित नहीं। पृथ्वीके भावी दो अरबसे भी अधिक अवशिष्ट कालमें जीवनका प्रवाह और जैव-विकासका स्वरूप किन-किन घुमावों और परिस्थितियोंसे होता हुआ गतिशील होगा, उसका आकलन मन्वन्तर विज्ञानके अध्ययन द्वारा जाना जा सकता है।

४. श्वेतवाराह कल्प — इतिहास और विज्ञान

पृथ्वीके व्यवस्थित जैवपर्यावरणका प्रारम्भ १ अरब ९७ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था, जो भारतीय पौराणिक इतिहासमें श्वेतवाराह-कल्पके नामसे प्रसिद्ध है। इसके व्यापक विज्ञानको वाराह अवतारकी कथाके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। इस कथामें वर्तमान जैव-विकासके अनुकूल बनने वाले वायुमण्डलका वैज्ञानिक इतिहास है, जिसका समुचित निर्माण — १,९७,२९,४९,०९९ से १,९५,५८,८५,०९९ वर्षोंके मध्य हुआ, पुराणोंकी प्राचीनतम ऐतिहासिक परम्परामें — इतिहासका प्रारम्भ यहींसे होता है, जो श्वेतवाराह कल्पके नामसे प्रसिद्ध है, जिसका आधार है — ग्रह नक्षत्रोंकी स्थिति एवं गति। वराह शब्दका अर्थ है — वायु। श्रुति का कथन है — **प्रजापतिर्वायुर्भूत्वा व्यचरत्।**[३०६] वायु के दो कार्य हैं — वस्तुको चारों ओरसे घेरकर उसे संघात रूपसे प्राप्त करना, इसे लक्ष्यमें रखकर ब्राह्मणग्रन्थोंमें वराह शब्दकी व्युत्पत्तिकी गई है — **वृणोति च अह्नोति च वराहः।**[३०७] दूसराअर्थ है प्राण। प्राणका प्रधान कार्य है जलको शुद्ध करते हुए उसमें जीवन-शक्तिका संचार करना। इस कल्पके प्रारम्भके पूर्व पृथ्वीपर विकृत वा असुर-प्राणका ही एक मात्र साम्राज्य था। वायु नामक वराहने उस कीट-मेदको सुखा कर, जलको शुद्ध करते हुए पृथ्वीका कल्प-प्रवर्तन ही कर दिया। इसीलिए शुद्ध प्राणके द्वारा प्रवर्तित होनेवाले कल्पका नाम श्वेत है, जो यहाँ शुद्धताका पर्यायवाची है। सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे तप्त होती हुई वायुने पृथ्वीपर फैले हुए जलको बहुत कुछ सुखाकर शुद्ध बना दिया, जलके सूख जानेके फलस्वरूप पृथ्वीका बहुत बड़ा भाग जलसे बाहर निकल आया। सूर्यके प्रचण्ड तापसे वायु उत्तप्त हो गई, फलतः सूर्यका भी एक नाम वराह है। इस

शुद्धीकरण और प्राणोंकी प्रतिष्ठाका कार्य व्यवस्थित रूपसे संचालित होता है, इसीलिये प्रकृतिके इस कल्प-प्रवर्तक घटना-चक्रको एक यज्ञसंस्थाके अति व्यवस्थित क्रमके रूपमें देखा समझा गया। अतः यज्ञरूपकके माध्यमसे उसकी व्याख्या की गई , इसीलिए उसका एक सर्वप्रसिद्ध नाम यज्ञवराह है।

महावायु सम्पूर्ण विश्वका एक विराट् ब्रह्माण्डीय तत्त्व है। वह कई स्तरोंपर कई प्रकारसे इसके स्वरूपका निर्माण और संचालन करता है। इसे केन्द्रमें रखकर उसके कार्यभेदके अनुसार अनेक नाम हैं, यथा — (१) विश्वको ब्रह्माण्डीय स्तर तक ले आनेके कारण वह आदिवराह है, (२) उन ब्रह्माण्डोंके अन्तः स्वरूपको संगठित करता है, इसीलिए उसे यज्ञवराह कहते हैं, (३) सूर्यमण्डल द्वारा संरचनात्मक स्वरूपकी दृष्टिसे उसका तृतीय नाम श्वेतवराह है, (४) प्राणोंकी सत्ताका पार्थिवप्रवर्तन चन्द्रमासे सम्बद्ध है, इस प्रतिबद्धतासे उसका अन्य नाम ब्रह्मवराह या ब्रह्मा है, (५) पृथ्वीका कल्प-प्रवर्तन इस वायुमण्डलके द्वारा होता है, अतः इस दृष्टिसे वह एमूषवराहके नामसे भी प्रसिद्ध है। श्वेतवाराह कल्पका प्रवर्तन सूर्यके कारण होता है, इसीलिए वर्तमान कल्पका नाम श्वेतवाराहकल्प है। प्रति मन्वन्तरके अन्तमें प्रलय होता है, तदुपरान्त पुनः नये प्राणोंका संचार, इसका विशेष सम्बन्ध एमूषवराहसे है। विश्व स्वयं एक यज्ञ-चक्र है, इसीलिए इसके महान् प्रवर्तक वायुरूप महाविष्णुको ही यज्ञवराह कहा जाता है। दशावतारमें परिगणित वराह — आदिवराह नहीं, वह एमूष है। एमूषवराहका अर्थ है, पृथ्वीपिण्डको चारों ओरसे दबानेवाला वायु। प्रलयके समय प्रचण्ड सूर्यतापसे वायुमण्डलका दबाव कम हो जाता है, मन्वन्तरीय प्रलयके पश्चात् वह ताप-शक्तिकी शिथिलतासे पुनः बढ़ जाता है — यही दबाव प्रधान वायुमण्डल एमूषवराह है। इसका पद विभाग है — आ+इम+उष। इन्द्रके अर्थको लक्ष्यमें रखकर इसे निरुक्तमें — **वराहमिन्द्र एमुषम्**[३०८] कहा गया है, ब्रह्मणस्पति भी वराह हैं — **ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः**[३०९] अन्तरिक्ष स्थानीय देवता भी वराह हैं अतः वायु एवं रुद्र भी वराह हैं। बादलको भी निरुक्तमें वराह कहा गया है — अतः **वराहो मेघो भवति वराहारः**।[३१०] वैदिक संस्कृतिका वराहतत्त्व परम व्यापक है।

५. इतिहासका गतिशास्त्र — परम्परा और सिद्धान्त

भारतीय इतिहासका विषय-प्रवर्तन दो पाँच सहस्र वर्षोंके काल प्रवाहसे

नहीं, वह 'हिरण्यगर्भ' — आदिअण्डकी संरचनाके काल-बिन्दुसे होता है। ऋषि-मनीषाने इतिहास और विज्ञान दोनोंको समान धरातलपर देखा और समझा है, वहाँ इन दोनोंका प्रवर्तक बिन्दु एक है। अत: इतिहास वहाँ स्वयं एक विज्ञान है। इसीलिए भारतीय परम्परामें उसकी विषयवस्तु कुछ सहस्र वर्षोंका घटना प्रवाह मात्र नहीं, उसके कालचक्रका प्रवर्तन सृष्टिके प्रारम्भसे होता है। भारतीय प्रज्ञाने वर्तमान विज्ञानसे बहुत आगे बढ़कर विश्वके काल-चक्रका स्पर्श किया है और उसके पुनरावर्तक-तत्त्वके स्वरूपको भलीभाँति पहचाना है। कहा जा चुका है कि भारतीय चिन्तनदर्शनमें काल और इतिहास दो नहीं, इनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, काल बिम्ब है — इतिहास उसका प्रतिबिम्ब। वहाँ जो काल है वही इतिहास है, जो इतिहास है वही काल। इतिहासके प्रामाण्यशास्त्रका आधार उपपत्ति और परम्परा दोनों हैं। उपपत्तिके द्वारा हम उसके तथ्यात्मक स्वरूपकी वैज्ञानिकता तक पहुँचते हैं। परम्परा उसके बाह्य एवं आभ्यन्तर आधारोंका अन्वेषण करती हुई, स्वयं इतिहासके रूपमें प्रस्तुत होती है। फलत: भारतीय इतिहासकी तत्त्वदृष्टि और परम्परा दोनोंका ही विषय प्रवर्तन विश्वकी संरचनाके मूल आधारसे होता है, जहाँ यह सम्पूर्ण विश्व परिणमनकी एक विस्तारधर्मा गतिशील इकाई है।

इतिहास पद अंग्रेजीके 'History' शब्दका अनुवाद नहीं, न इनका अर्थबोधकी सीमाओंमें परस्पर सम्बन्ध ही स्थापित हो पाता है। दोनोंकी अर्थतत्त्वमूलक आधारभूमि Semantics भिन्न है। 'History' शब्दका अर्थ है Inquiry वहाँ सम्भावनामूलक अर्थकी प्रधानता है। अत: हिस्ट्री सर्वत्र अपने अर्थबोधकी सीमामें एक सम्भावनामूलक इन्कायरी मात्र है। विज्ञानसे न जुड़ पानेके कारण उसका अर्थविस्तार सम्भावनाकी सीमाओंमें ही संकुचित होकर रह गया है, सिद्धान्तकी सीमाओं तक नहीं पहुँच पाया। इसके विपरीत इतिहास पदका अर्थ विनिश्चयार्थक है। इस पदमें तीन पदोंके शक्तिग्रह उसके अर्थको स्पष्ट करते हैं —'इति-ह-आस'। इति पदका अर्थ है — ऐसा वा इस प्रकार, ह — निश्चित, आस — था, अत: सम्पूर्ण पदका अर्थ —'ऐसा निश्चित था' या 'ऐसा निश्चित हुआ था'। 'इति' पद यहाँ अतीतमें वर्तमान घटनाके प्रकार अर्थमें है, जो उसकी कालगत सम्पूर्णताका सूचक है, 'ह' पद का प्रयोग —

विनिश्चयके अर्थमें है, 'आस' — क्रिया भूतकालमें घटनाके समापनके अर्थको स्पष्ट करती है। अत: इतिहास पदको 'हिस्ट्री' शब्दका अनुवाद स्वीकार करना समुचित नहीं, इसे यहाँ समानार्थमें प्रयुक्त करना भारतीय इतिहासदृष्टिके साथ न्याय न होगा — भारतीय इतिहास दर्शन अतिवैज्ञानिक है। सर्वप्रथम इस ग्रहके विगत दो अरब वर्षोंके इतिहासको वहाँ युग विभाजनके साथ प्रस्तुत किया गया है। पश्चिमकी परम्पराके द्वारा इस दिशामें किये गये अब तकके सारे प्रयास क्या अपूर्ण नहीं ? यहाँ तक कि वैज्ञानिक उपलब्धियोंपर आधारित विगत १०० वर्षोंका अन्वेषण अपूर्ण ही नहीं वरन् अनेक मतभेद एवं विसंगतियोंसे ग्रस्त है। जहाँतक मानवीय संस्कृतिके इतिहासका प्रश्न है, वर्तमान हिस्ट्रीकी दृष्टि पाँच छ: हजार वर्षकी कालअवधि तक ही पहुँच पाती है । ईसासे पूर्ववर्ती कालखण्डमें पहुँचकर यह और भी धुंधली और अस्पष्ट हो जाती है, ऐसी अवस्थामें पृथ्वीके दो अरब वर्षोंकी इतिहास रचनाकी प्रक्रियाका महत्त्व ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियोंसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं। विश्वकी प्राचीनतम संस्कृतियोंमें इस तरहका पुरुषार्थ कहीं भी विद्यमान नहीं है। पश्चिमकी हिस्टोरिकल कही जानेवाली सभ्यताके पास १९ वीं शतीके अन्त तक इस तरहकी कोई कल्पना भी नहीं थी। वहाँ पृथ्वीके जन्मसे अभी तकका सम्पूर्ण इतिहास छ: हजार वर्षोंसे अधिक पुराना नहीं है। भारतकी ऐतिहासिक संस्कृतिमें ईसासे पूर्व विश्वकी सृजन तिथि १० अरब ६१ करोड़ वर्ष से भी बहुत अधिक पूर्व सुनिश्चित है।

बहुत सम्भव है कि दो अरब वर्षोंके इतिहासमें, जो श्वेतवाराह कल्पसे आरम्भ होता है, बहुतसी घटनाएँ छूट गई हैं, अनेक शृंखलाएँ लुप्त हो गई हैं, कितनी ही परम्पराएँ विस्मृत हो चुकी हैं, बहुत सारे तथ्य कालके अतल-तलमें समाहित हो गये हैं। पुराणोंने जिस इतिहासको प्रस्तुत किया है, उसके अनेक सांकेतिक अर्थ और प्रतीक आज अस्पष्ट हैं । वहाँ अनेक तथ्य प्रतीक, रूपक, संकेतक, बिम्ब एवं विज्ञान कथाओंके माध्यमसे प्रस्तुत किये गये हैं, जिनका मूल आज कालधर्मसे ग्रस्त होकर अस्पष्टार्थ और लुप्तार्थकी सीमाओंमें प्रविष्ट हो चुका है। एतद् अतिरिक्त तथ्यों और प्रतीकोंके अर्थ और सन्दर्भ, उनकी अभिव्यक्तिके प्रकार कालके विपुल प्रवाहमें कितनी बार बदले होंगे, इसका अनुमान लगाना भी सहज नहीं है । उदाहरणत: 'श्वेतवाराह कल्प' शब्द ही

रहस्यमय हो उठा है। आकाशगंगाके तत्कालीन अपसर्पणसे प्राप्त पृथ्वीकी आदिम अवस्थाके अनेक अर्थोंको जहाँ यह शब्द स्पष्ट करता है, वहीं दूसरा अर्थ – 'यज्ञ-वराह' की दार्शनिक अवधारणाको रूपककी सीमामें ले आता है, तीसरा अर्थ भगवान् वराहके सहज कथा प्रवाहकी वैज्ञानिकताके साथ जुड़ा हुआ है।

दो अरब वर्षोंके सुदीर्घ कालप्रवाहको पौराणिक परम्पराके माध्यमसे प्रस्तुत करते समय बदलती हुई युग-परम्पराओंके सन्दर्भमें ,तथ्यका अंश कितना और कैसे बदला होगा – यह भी विचारणीय है। फिर भी इस सुदीर्घ कालप्रवाहमें कुछ सत्य और संकेत ऐसे हैं, जो इस सुविशाल ऐतिहासिक संस्कृतिको 'Myth ' के मिथ्या गर्तमें गिरनेसे रोक देते हैं। भारतीय परम्परामें मिथककी संरचना कभी नहीं हुई, यह संस्कृति मिथक-प्रधान नहीं, विज्ञान-प्रधान है। मिथक और रूपकमें पर्याप्त अन्तर है। भारतीय वाङ्मयमें संकेतार्थको विपुल गाम्भीर्य और अर्थविस्तार प्रदान करनेकी दृष्टिसे 'रूपक' और 'प्रतीक' का आश्रय लिया गया, उन्हें विविध विज्ञानकथाओंके माध्यमसे स्पष्ट किया गया, पर मिथकका तो वहाँ स्पर्श मात्र भी नहीं है। जब रूपक और प्रतीक अपने शक्तिग्रहसे भटक कर तत्त्ववाची संकेतार्थके सन्दर्भमें अस्पष्ट और अनेक सन्देहार्थोंसे घिर जाते हैं, तब मिथककी संसृष्टि होती है। फलत: वह पूरी सभ्यता ही वैज्ञानिक चिन्तनसे विच्युत और भ्रष्ट होती हुई मिथकके मायालोकमें खो जाती है, उदाहरणके लिए ईसाई संस्कृतिने दो अति उल्लेखनीय वैज्ञानिक-तथ्य भारतीय सभ्यतासे प्राप्त किये थे – (१) प्रकृतिके सप्त आवरणके अनन्तर विज्ञानघन सत्ताका अस्तित्व, (२) इस ग्रहकी सृष्टि छ: मन्वन्तरीय दिनकी संरचना है और सातवाँ दिन अभी चल रहा है। फलत: ईश्वर वहाँ सातवें आसमान पर पहुँच गया, छ: दिनका अर्थ तीन हजार वर्ष कर लिया गया है। दुष्परिणाम यह हुआ कि ईसाईधर्म विज्ञान विरोधी हो गया। यूनानकी सभ्यताने कभी शक्तिशाली मिथकोंका निर्माण किया था, क्योंकि कालकी संख्यात्मक अवधारणा एवं ऐतिहासिक दृष्टिके अत्यन्ताभावके कारण यह अपने पराम्परागत स्वरूप और उसके संकेतार्थोंको ग्रहण करनेमें नितान्त असमर्थ थी। अत: तथ्यात्मक इतिहास और विज्ञानके स्थान पर मिथकोंकी सृष्टि वहाँ धारावाहिक रूपमें होती रही। इसका ही दुष्परिणाम हुआ कि होमर द्वारा प्रस्तुत ट्रॉयकी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना

मिथक मान ली गई, ऐतिहासिक होते हुए भी इसे पिछले दिनों तक अनैतिहासिक ही समझा गया। यहाँ तक कि किसी यूनानी गणितज्ञको एक अरबकी संख्या लिखने के लिए कहा जाए तो वह कितने ही दिनमें उसे लिख पाएगा, वहीं एक भारतीय कुछ क्षणोंमें, इसके उपरान्त भी यूनानी संख्याकी सत्यता अन्त तक संदिग्ध ही रहेगी। मिस्रकी संस्कृति प्रतीकप्रधान थी, जिससे इस संस्कृतिने यूनानकी तुलनामें अधिक जीवन पाया। यूनानका इतिहास ईसासे दो सहस्र वर्ष पुराना है, पर यूनानी इतिहासकारोंकी दृष्टिमें वह पूर्व सर्वदा कुछ सौ वर्षों का ही था। कैलेन्डरकी जानकारीके अभावमें कोई भी सौ वर्षका सन्धिपत्र(Treaty) वहाँ पाँच दस वर्षमें समाप्त हो जाता है। वहाँके सौ पचास वर्षोंके प्रतिज्ञा-पत्रों पर कहीं कोई तारीख तक नहीं। जो संस्कृति जितनी अधिक मिथकाश्रित होगी, वह उतनी ही अल्पस्थायी होगी। कालकी अवधारणाका अभाव ही मिथकको जन्म देता है। यूनानके पास कालकी धारणाका नितान्त अभाव था, इसीलिये मूर्तिकला इतनी विकसित होकर भी वहाँ मूर्तियाँ (Statue) अन्धी बनाई गई हैं। कालकी चेतना अनन्तकी चेतना है, पर वहाँ कोई मूर्ति भी ऊर्ध्वमुखी नहीं। अनन्तका रंग नीला ही कल्पित है, वहाँकी कला इस रंगके स्पर्शसे भी शून्य है।

भारतवर्षमें मिथकके स्थानपर सत्-कथाएँ लिखी गई हैं, आचार्य भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रमें लिखा है — नाटकका विषय प्रख्यात एवं ऐतिहासिक होना चाहिये, यथा राजर्षिवंशका चरित्र, उदात्त नायक आदि —

प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकञ्चैव।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥[३११]

भारतकी पौराणिक परम्परा विज्ञान सम्बन्धी विषयोंके गम्भीरार्थको स्पष्ट करते समय प्रतीक और रूपकका आश्रय लेती है। परम्पराके सुदीर्घ कालप्रवाहमें कुछ सत्य और संकेत अब भी स्पष्टार्थके बहुत निकट हैं, जिनके आधार पर सृष्टिके विकासका वैज्ञानिक इतिहास बड़ी प्रामाणिकताके साथ लिखा जा सकता है। पश्चिमकी परम्पराके इतिहासकार जहाँ इन सत्योंको मिथक कहते हैं, वहीं वे तथ्य और सत्य आज आधुनिक विज्ञानसे हाथ मिलानेके लिये प्रस्तुत हैं। यही नहीं वे भारतीय संस्कृतिकी इतिहासदृष्टिके वैज्ञानिक स्वरूपको

सर्वतोभावेन भलीभाँति उजागर करते हैं। यहाँ इन तथ्योंकी संक्षिप्त तालिकाको क्रमबद्ध प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा, जो हमारी इतिहासचेतना और कालदृष्टिकी प्रखरता और प्रामाणिकताका निगूढ़ संकेतक है। इसके मूलमें एक विशिष्टार्थकी सत्ता है —'इति ह आस'— ऐसा ही हुआ था। यह इतिहासदृष्टि राजवंशावलीके विरुदगान वा तिथिक्रम तक ही सीमित नहीं, इसका महाविषय कालपुरुषकी क्षर-क्रियाका कार्य-कारणरूप घटना प्रवाह है —

(१) विश्वके प्रथम सन्दोलनात्मक विश्वचक्रका प्रारम्भ — १५ नील, ५५ खरब, २१ अरब, १७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(२) विश्वका वर्तमान सन्दोलनचक्र — ६००१।

(३) आदिअण्डकी संरचनासे विस्फोट तक सम्पूर्ण आयु — ३ लाख, ६० हजार वर्ष।

(४) वर्तमान सन्दोलनात्मक विश्वके आदिअण्डका संरचना काल — १० अरब, ६१ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(५) आदिअण्ड हिरण्यगर्भका महास्वन विस्फोट — १० अरब, ६१ करोड़, २५ लाख, ८९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(६) आकाशगंगामें तारोंका प्रथम संरचनाकाल — ८ अरब, ४५ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(७) सूर्यका संरचनाकाल — ६ अरब, २९ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(८) पृथ्वीकी उत्पत्ति व संरचनाका काल — ४ अरब, १३ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(९) जैव विकासका प्रथम काल — मधुकैटभ युग — ४ अरब, ११ करोड़, ५८ लाख, ८५ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१०) पृथ्वीके प्रथम व्यवस्थित पर्यावरणका युग — श्वेतवाराह कल्प — १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(११) पृथ्वीपर प्रथम व्यवस्थित जैव विकास का युग — स्वायम्भुव मन्वन्तर — १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख, ८५ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१२) द्वितीय जैवयुग — स्वारोचिष मन्वन्तर — १ अरब, ६६ करोड़, २७ लाख, ७३ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१३) तृतीय जैवयुग — उत्तम मन्वन्तर — १अरब, ३५ करोड़, ४३ लाख, २५ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१४) चतुर्थ जैवयुग — तामस मन्वन्तर — १ अरब, ४ करोड़, ५८ लाख, ७७ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१५) पंचम जैवयुग — रैवत मन्वन्तर — ७३ करोड़, ७४ लाख, २९ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१६) षष्ठ जैवयुग — चाक्षुष मन्वन्तर — ४२ करोड़, ८६ लाख, ८१ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१७) वर्तमान सप्तम जैवयुग — वैवस्वत मन्वन्तर — १२ करोड़, ५ लाख, ३३ हजार, ९९ वर्ष पूर्व।

(१८) पृथ्वी की संरचनाके संदर्भमें — महाद्वीपोंके सम्प्रसरणका सिद्धान्त — प्रथम विकासमें एकद्वीपा पृथ्वी — १ अरब, ९७ करोड़ वर्ष पूर्व, द्वितीय विकासमें चतुर्महाद्वीपा पृथ्वी १ अरब, २५ करोड़ वर्ष पूर्व, तृतीय विकासमें सप्त महाद्वीपा पृथ्वी ७३ करोड़, ७४ लाख वर्ष पूर्व।

(१९) पृथ्वीपर जैव विकासके काल विभाजनका आधार और स्वरूप — कल्प मन्वन्तर और महायुगका सिद्धान्त।

(२०) पृथ्वीपर प्रथम मानवीय अस्तित्वका सूचना सन्दर्भ — १ अरब, ९५ करोड़ वर्ष पूर्व।

(२१) पृथ्वीपर वर्तमान नवीन मानवके प्रथम अस्तित्वकी सूचना — १२ करोड़ वर्ष पूर्व।

(२२) वरुण प्रजातीय प्राणियों (जलचर) के विशेष युगकी सूचना।

(२३) सरीसृप-प्रजातीय प्राणियोंके विशेष युगकी सूचना।

(२४) खेचर प्राणियोंके विशेष युगकी सूचना।

(२५) स्तनपायी प्राणियोंके विशेष युगकी सूचना।

(२६) दानवासुर वा डायनासोर युगकी महत्त्वपूर्ण सूचना।

(२७) वानर संस्कृतिके विकासकी महत्त्वपूर्ण सूचना।

(२८) इतिहासके पुनरावर्तक सर्पिल-काल प्रवर्तनका सिद्धान्त।

(२९) पृथ्वीपर जैव विकास का सम्पूर्ण काल — ४ अरब, ३२ करोड़ वर्ष।

(३०) १ अरब, ९७ करोड़, १२ लाख वर्षोंके इतिहासमें ६ दीर्घ मन्वन्तर-प्रलय, ४४७ महायुगका खण्ड-प्रलय, एवं १३४१ लघु युग-प्रलय।

(३१) पृथ्वीका वर्तमान हिम-प्रलय — द्वापरयुगके सन्धिकालसे प्रारम्भ १३ हजार, ६०० वर्ष पूर्व।

(३२) इतिहासके कालचक्रका भविष्य दर्शन — पृथ्वीका शेष जैव-काल — २ अरब, ३६ करोड़, ४१ लाख, १४ हजार, ९ सौ, ०१ वर्ष।

(३३) पृथ्वीकी शेष आयु — ४ अरब, ५० करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ९ सौ, ०१ वर्ष।

(३४) सूर्यकी शेष आयु — ६ अरब, ६६ करोड़, ७० लाख, ५० हजार, ९ सौ ०१ वर्ष।

भारतीय परम्परामें कल्पका कालमान निश्चित है, वेद ही इसका मूल है। अथर्वणका वचन है —

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।[३१२]

अर्थात् — सौ अयुत वर्षोंके पूर्व २,३,४ की संख्या लिखनेसे कल्पका कालमान प्राप्त हो जाता है। अयुत दश हजारकी संख्या है, अतः सौ अयुतका मान — १०,००,०००•दश लाख वर्ष होता है। इस संख्यामें सात शून्य हैं, इसके पूर्व क्रमशः २,३,४ का अङ्क लिख देनेपर कल्पकी संख्या — ४,३२,००,००,००० वर्ष अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष प्राप्त होती है। इसी प्रकार यजुर्वेदमें चारों युगोंके नाम भी वहाँ कहे गए हैं —

............कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्क सभास्थाणुम् ....[३१३]

शुभकार्यमें किये जानेवाले संकल्पमें हम बोलते हैं —

ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे...[३१४]

यथार्थ यह है कि भारतीय धर्मशास्त्रोंमें कल्प-युगादिकी कालगणना नक्षत्रगतिके आधार पर की गई है। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार कृतयुगके अन्तमें पादमन्दोच्चको छोड़कर सभी ग्रहोंका मध्यस्थान मेषमें था —

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पादमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यता मिताः॥[३१५]

कल्पाब्दके पश्चात् १,७०,६४,००० वर्षका कालमान पृथ्वीके पटल पर पर्वतादिके निर्माणका काल है। कल्पाब्दके प्रारम्भकाल – १,९७,२९,४९,०९९ वर्षके कालमें से प्राकृत संरचनाकाल – १,७०,६४,००० को घटा देने पर – सृष्टि कालका प्रारम्भ – १,९५,५८,८५,०९९ वर्ष पूर्व है। दिन कालगत स्पष्टताकी दृष्टिसे – चैत्र शुक्ला प्रतिपदा रविवार प्रातःकाल सूर्योदयके समय अश्विनी नक्षत्र मेषराशिके आदिमें सब ग्रह थे। सृष्टिरचनाके साथ कालगणनाका प्रारम्भ हुआ। 'पञ्चसिद्धान्त' के अनुसार यह स्थिति इस प्रकार है –

अधिमासकोनरात्रग्रहदिनतिथिदिवसमेषचन्द्रार्कः।
अयनत्वार्क्षगतिनिशाः समं प्रवृत्ता युगस्यादौ ।।[३१६]

यहाँ शास्त्रका आशय है – कल्प, मन्वन्तर, युगके आदिमें अधिमास, क्षयतिथि, ग्रह, सावनदिन, तिथि मेषराशि पर सूर्य, अयन, ऋतु, नक्षत्र, गति, निशा सब एक साथ सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकट हुए अर्थात् कालगणनाका प्रारम्भ हुआ।

इसी कालगणनाके कालक्रममें नक्षत्रगतिके आधार पर कलियुगके प्रारम्भका समय निश्चित हुआ है। भागवतके अनुसार – जिस समय सप्तर्षि मघानक्षत्र पर विचरण कर रहे थे, उसी समय १२०० वर्ष (दिव्यवर्ष) युगमानवाले कलियुगका प्रारम्भ हुआ –

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ।।[३१७]

इस विषयमें गर्ग संहिताका भी यही अभिमत है – द्वापर और कलियुगके सन्धिकालमें सप्तर्षि मघानक्षत्र पर थे –

कलिद्वापरसंधौ तु स्थितास्ते (सप्तर्षयः) पितृदैवतम् (मघा)[३१८]

कलियुगके प्रारम्भमें मघानक्षत्र पर सप्तर्षियोंकी स्थितिका उल्लेख पौराणिक वाङ्मयमें अनेक स्थलों पर होता है। यहाँ भागवतका उद्धरण इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण है, कि इसकी संरचनाका काल महाभारत एवं अन्य पुराणोंके पश्चात् होनेके कारण यह मत पूर्ववर्ती सन्दर्भोंके साथ अन्वित है।

योरोपके सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद –Bailly ने गणित द्वारा जाननेका प्रयत्न किया कि किस समय सातों ग्रह एक युति पर आए थे। उनके निष्कर्षका उल्लेख Count Bjornstjerna के ग्रन्थ Theogony of Hindus में इस प्रकार उल्लिखित है –

According to the astronomical calculation of the Hindus, the present period of the world, Kaliyuga, commenced 3,102 years before the birth of Christ on the 20th February at 2 hours, 27 minutes and 30 seconds, the time being thus calculated to minutes and seconds. They say that a conjunction of planets then took place, and their tables show this conjunction. It was natural to say that a conjunction of the planets then took place. The calculation of the Brahmins is so exactly confirmed by our own astronomical tables that nothing but actual observation could have given so correspondent a result.[३१९]

इस कथनका संक्षिप्त आशय है – हिन्दू ज्योतिषशास्त्रके अनुसार कलियुगका प्रारम्भ ईसाके जन्मसे ३१०२ वर्ष पूर्व २० फरवरीकी रात्रिमें २ बजकर २७ मिनट और ३० सेकेण्ड पर हुआ था। इस समय नक्षत्रोंका एक स्थानपर एकत्रीकरण हो जाता है। ब्राह्मणोंकी यह गणित हमारी गणनाके अनुसार भी यथार्थ है। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार कलियुगका प्रारम्भ – १७ फरवरी ३१०२ ईसापूर्व अर्धरात्रिके समय होता है। आर्यभट्टके मतानुसार – प्रात: १८ फरवरी ३१०२ ईसा पूर्व है। भारतीय पञ्चाङ्ग परम्परामें सर्वमान्य मत ३१०२ वर्ष ईसा पूर्व है। विक्रम संवत् २०५६ चैत्रशुक्ल प्रतिपदा बृहस्पतिवार दिनांक १८ मार्च १९९९ ईस्वीके दिन कलियुग अपने ५१०० वर्ष पूर्णकर ५२ वीं सदीमें प्रवेश करता है।

भारतीय तत्त्वदृष्टिसे यह सम्पूर्ण विकास एक सुनिश्चित चक्राकार परिवर्तनकी उत्तरोत्तर सर्पिल गतिपर आश्रित है। कालके एक निश्चित बिन्दुपर यदि विशिष्ट प्रतीक संकेतित होता है, तो उसका अर्थविकास आनेवाले कालखण्डमें देखा जा सकता है। विज्ञानका यह विकास आकस्मिक नहीं है, इसके प्रतीकार्थका पूर्व संकेत अतीतके कालप्रवाहमें परिलक्षित है। यहाँ हम उसका संकेत मात्र ही प्रसंगत: दे रहे हैं, विशेष निर्वचन अप्रकाशित मूलग्रन्थमें

यथास्थान हुआ है। भारतीय दृष्टिसे देखा जाए तो हमारा वर्तमान इतिहास कलियुगके प्रथम चरणके निक्षेपसे होकर गुजर रहा है — विकास और ह्रासके बिन्दुओंका वृत्ताकार पथ कालकी गतिपर इतिहासको प्रतिपद नियन्त्रित और अनुशासित करता हुआ अपने वृत्तचक्रपर घूमता है। इसकी प्रामाणिक जाँचके लिए विगत हजार पन्द्रह सौ वर्षोंके पृथ्वीके इतिहासको वर्तमान इतिहास और विकासकी गतिके साथ तुलनात्मक दृष्टिसे समझ लेना आवश्यक है — इस विगत कालखण्डकी तुलनामूलक व्याप्तिके परिलक्षणके आधारपर हम भारतीय इतिहासके चक्राकार सिद्धान्तका परीक्षण करते हुए — ऐतिहासिक अतीतकी स्मृति तक एक सुनिश्चित प्रमाण पद्धतिके साथ पहुँच सकते हैं। १८ मार्च १९९९ तकका वर्तमान ऐतिहासिक विकास भारतीय कालमानकी दृष्टिसे वैवस्वत मन्वन्तरके २८ वें कलियुगके ५१०० वर्षों तकका विकास है। भारतीय कालतत्त्वकी दृष्टिसे युगके सन्दर्भमें कालकी लघुतम इकाई ४३२ वर्ष है — इसका उत्तरोत्तर वर्धमान काल ही सृष्टिका समग्र कालमान है, जो ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है। उदाहरणके लिए देखा जाए तो लक्षण और लक्ष्यकी दृष्टिसे कलियुगका प्रथम दृष्टि-निक्षेप दश गुणित संख्याके अनुसार ४३२० वर्ष उपरान्त होता है — ईसवी सम्वत्‌की दृष्टिसे यह काल १२१९ A.D. अर्थात् १३ वीं शती है। यहाँ हम संकेत रूपसे भौतिक विकासके उदाहरणोंको ही ले रहे हैं, आध्यात्मिक विकासका उल्लेख मूल ग्रन्थमें हुआ है। देखना यह है कि १३ वीं शतीसे २० वीं शती तकके ८०० वर्षोंके इतिहासमें विकासका क्या कोई आधारभूत लक्षण अपने भावी भौतिक विकासकी दृष्टिसे प्रतीकार्थकी सीमामें १३ वीं शतीमें प्रकट होता है — जिसके आधार पर हम २० वीं शती तकके विकासके लक्ष्यरूप लक्षणको प्राप्त कर सकें या जान सकें ? लक्षण तबतक सम्पूर्ण नहीं होता, जबतक वह लक्ष्यकी सम्पूर्ण परिधिमें व्याप्त न हो। मानवीय ज्ञानकी सम्पूर्ण प्रामाणिकता इसी व्याप्तिज्ञानपर आश्रित है, चाहे वह विज्ञान हो या दर्शन। आठ सौ वर्षोंके इस समग्र विकासको हम २० वीं शती तककी समग्र भौतिक उपलब्धियोंके सन्दर्भमें रखकर लक्ष्य और लक्षणकी दृष्टिसे देखें, तो हम प्रतीकार्थके अर्थ विस्तारकी सीमामें उसे देख सकते हैं — जो कलियुगके प्रथम निक्षेप — ४३२० वर्ष यानी १३ वीं शतीमें प्रतीकके रूपमें जन्म ग्रहण करता है और इससे आगेका विकास इसका ही अर्थ विस्तार है। इसे निम्न प्रकारसे भलीभाँति समझा जा सकता है।

१. विकासके लक्ष्य-लक्षण प्रतीक :—

लक्ष्य-लक्षण	लक्षण-प्रतीक	लक्ष्य-प्रतीक
१. एटम, हाइड्रोजन आदि महान् विध्वंसक अस्त्रोंका निर्माण, एवं युद्धका उत्तरोत्तर विस्तार — प्रथम महायुद्ध, द्वितीय महायुद्ध.... भविष्यमें सम्भावित तृतीय महायुद्ध।	बारूदका आविष्कार	युद्ध
२. पदार्थ विज्ञानका 'प्रकाश-शक्ति' पर अधिकसे अधिक संकेन्द्रित होते हुए, ऊर्जा सिद्धान्तसे लेकर जीवनकी उद्भव प्रक्रिया तक प्रकाश तत्त्वका ग्रहण और स्थापना। प्रकाश शक्तिकी ज्ञान शक्तिके रूपमें भावी सम्भावना।	प्रकाश शक्ति	प्रकाश
३. हड्डियोंके आधारपर विकासवादका स्वरूप एवं वानरीय विकासपर नर की स्थापना। चेतनाके आधारपर विकासकी सम्भावित स्थापना।	अस्थि	विकास
४. भूगोलसे खगोल तक यात्राका अन्तहीन अनन्तपथ — नक्षत्र पथपर बढ़ जानेकी असीम आकांक्षा।	दिशानिर्देशक (कम्पास)	अनन्तका मार्ग

१. **युद्ध** — बीसवीं शतीका उद्घाटन प्रथम महायुद्धके साथ हुआ है, शतीके मध्यमें पहुँचनेके पूर्व ही द्वितीय महायुद्ध भी समाप्त हो गया। युद्धके उपकरणोंका उत्तरोत्तर विस्तार एटम, हाइड्रोजन आदि विध्वंसक अस्त्रोंके माध्यमसे होता जा रहा है। देखा जाए तो यह १३ वीं शतीके बारूदके आविष्कारके प्रतीकार्थका ही 'युद्ध' के रूपमें अर्थ विस्तार है। Roger Bacon ने

प्रथम बार १२४७ ए० डी० में अपने पत्र द्वारा इसकी सूचना दी थी। योरोपमें यही इसके प्रथम जन्मदाता माने जाते हैं, इसके पूर्व योरोपमें इसकी कोई सूचना नहीं थी। अधिकांश पंडितोंका अनुमान है, चीन वाला आविष्कार इस सन्दर्भमें क्रियाशील नहीं है।

२. **प्रकाश-शक्ति** — आजका पदार्थ विज्ञान १९ वीं शतीके अन्त एवं २० वीं शतीके प्रारम्भसे ही 'प्रकाश-शक्ति' के ऊपर अधिकसे अधिक संकेन्द्रित होता जा रहा है। सौर मण्डलकी ऊर्जा शक्तिके विकीर्णनसे लेकर परमाणु जगत्, यहाँ तककि जीवनके समुद्भव तक प्रकाश-शक्तिका महत्त्व असाधारण-रूपमें स्थापित होता जा रहा है। १३ वीं शतीमें Grosseteste, R. (११७५-१२५३) ने 'प्रकाश-शक्ति' की स्थापना विश्वके आधारतत्त्वके रूपमें पदार्थ विज्ञानके क्षेत्रमें की थी। आजका टेलिस्कोप इनके द्वारा Optics पर किए गए प्रयोगका ही विकास है।

३. **विकासवाद** — १९ वीं शतीका विकासवाद 'नर' के वानरीय विकासको केन्द्रमें रखकर तुलनात्मक अस्थिशास्त्रके आधारपर प्रवृत्त होता है। १३ वीं शतीके इतिहासमें प्रतीककी सीमामें इसका पूर्वाभास स्पष्ट देखा जा सकता है। इस शतीमें इस दिशामें दो महत्त्वपूर्ण नाम सामने आते हैं — Mondino De Luzzi (१२७५-१३२६), ये रेनेंसांयुगके तुलनात्मक अस्थिशास्त्रके प्रथम सबसे बड़े ज्ञाता थे। दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम Albertus Magnus (११९३-१२८०) का है, इनका कार्यक्षेत्र रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र एवं शरीरशास्त्र रहा है। वैसे ये ऊँचे धार्मिक व्यक्तित्वके उस युगके बिशप थे। इन्होंने Aristotle के विकासवादकी तात्त्विक चर्चा अपने युगमें सर्वप्रथम की है। इसके भीतर वानर शब्द तो कहीं नहीं था, पर इनके विरोधियोंने इनपर मिथ्या छींटाकसी करते हुए — इनके सन्दर्भमें ही वानर शब्दका प्रयोग किया है, इन्हें विरोधियों द्वारा — Ape of Aristotle कहकर पुकारा गया। योरोपके इतिहासमें प्रथम बार १३ वीं शतीमें मानवीय सन्दर्भमें वानर शब्दका प्रयोग मिथ्या अर्थमें निन्दाके भावके साथ हुआ। आज यह मिथ्या निन्दाजनक प्रयोग मानवके सन्दर्भमें होनेके पश्चात्, अब विज्ञान जगत्में क्रमशः समाप्त होता जा रहा है।

४. **अनन्तका मार्ग** – जहाँ महायुद्धसे इस शतीका उद्‌घाटन होता है, वहीं असीमित नक्षत्र लोकमें प्रवेश करनेकी महती आकांक्षाके साथ अब इस शतीका अन्त होने जा रहा है। मानव सौर-मण्डलको पार करनेकी दिशामें बहुत दूर तक आगे बढ़ आया है। भूगोलसे खगोल तक यात्राका अन्तहीन पथ आज प्रशस्त हो चुका है। प्रतीक रूपमें भूगोलका सबसे बड़ा यात्री Marco Polo (१२५७- १३२४) १३ वीं शतीमें ही उभरकर सामने आता है। वैसे विश्व-यात्राके सन्दर्भमें देखा जाए तो वैज्ञानिक दृष्टिसे दिङ्‌निर्देशक यन्त्र (Compass) का आविष्कार है। इसके प्रथम उपयोगका उल्लेख ११८० ईसवी में Neckam (११५७-१२१७) द्वारा लिखित पुस्तकमें प्राप्त होता है। Peregrinus ने १२४० ईसवीमें समुद्री यात्राके उपयोगी चुम्बकीय कम्पासका निर्माण किया था। Gyroscopic Compass का निर्माण कालान्तरमें वैज्ञानिक Sperry Elmer Ambrose के द्वारा १८९६-१९१० के मध्य होता है।

देखा जाए तो भौतिक विज्ञानके इन विगत ७००-८०० वर्षोंके इतिहासके ये चार परम उल्लेखनीय प्रतीक ४३२० वें वर्षमें कलियुगके इस कालबिन्दु '१३ वीं शती' पर सहसा प्रकट होते हैं – बीसवीं शती तकका समग्रविकास इन चार मूलभूत प्रतीकोंका ही अर्थ विस्तार है। किसी भी वस्तुका किसी भी काल-खण्डमें समुद्भव, संयोग मात्र नहीं – वह तो एक आविष्करण है, आविष्कार कालके द्वारा किया गया, विकासके भीतर एक ऊर्जा विस्फोट है। हमारे पूर्व और उत्तर की शतियों, सहस्राब्दियों और लक्षाब्दियोंका विकास, ह्रास इसी ऊर्जा विस्फोटका गुणात्मक परिणाम है। यही प्राचीन भारतके सूर्य-संकेन्द्रित विश्वकी आत्माका गुह्यतम रहस्य है – जो कालके माध्यमसे विकास, ह्रास और इतिहासके रूपमें प्रकट होता है। विज्ञानमें Big Bang से पूर्व कालकी कोई अवधारणा नहीं – वहाँ प्रश्न सहज रूपसे प्राप्त है – आदिअण्डकी संरचनासे विस्फोट तक – अण्डकी आयुका क्या कालमान है ? विज्ञान यह कह कर पलायन कर जाता है – Big Bang के पूर्व काल नहीं था। अत: विश्वके पूर्व सन्दोलनचक्रोंके कालमानका वहाँ प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो पाता। यदि अण्ड है – तो उसकी संरचना भी है – संरचना है तो काल भी विद्यमान है,

यही सत्य सन्दोलनात्मक विश्वके कालमानके साथ भी है, पर विज्ञानके पास इसका कोई उत्तर नहीं।

भारतीय चिन्तन-दर्शनकी परम्परामें इतिहास कला नहीं, वह विज्ञान और शास्त्र है। इसीलिए भारतीय इतिहासदृष्टिका विषयप्रवर्तन हिरण्यगर्भकी संरचनासे होता है, इस इतिहासशास्त्रकी सामग्री अत्यन्त प्राचीन है, अत: इसका सर्व प्रसिद्ध नाम पुराण है — **यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम्**[३२०] अर्थात् — प्राचीनकालमें ऐसा हुआ था, इस अर्थमें पुराण है। पुराण वा प्राचीन इतिहासके पाँच लक्षण स्थिर किये हैं — अर्थात् सम्पूर्ण विवेच्य सामग्रीको पाँच भागोंमें विभक्त कर दिया गया — (१) सर्ग, (२) प्रतिसर्ग, (३) मन्वन्तर, (४) वंश और (५) वंशानुचरित —

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[३२१]

यह श्लोक प्राय: सभी पुराणोंमें किंचित् परिवर्तन से और कहीं यथावत् प्राप्त होता है। इनमें प्रथम तीनका सम्बन्ध तो सीधे विज्ञानसे है, अन्तिम दो प्रचलित अर्थमें इतिहास प्रधान हैं। 'सर्ग' का सम्बन्ध सृष्टिके क्रमिक संरचनात्मक विकास और इतिहाससे है, वहीं 'प्रतिसर्ग' का सम्बन्ध विश्वके प्रलयके क्रमसे है। सृष्टि और प्रलयके संरचनात्मक और ध्वंसात्मक स्वरूपको समझे बिना विश्वके विकास और इतिहासके गतिशास्त्रको समझना असम्भव है, क्योंकि संरचनात्मक विकासके प्रत्येक बिन्दुपर सृष्टि और विनाशका चक्रक्रम धारावाहिकरूपसे गतिशील है। यदि किसी संस्कृतिमें विज्ञान अति समुन्नत दशामें हो तो उसका इतिहास कहीं भी विज्ञानसे पृथक् नहीं रह पाता, वह विज्ञानरूप होकर ही सृष्टिके काल-चक्रको उसके प्रथम प्रारम्भसे ही अपना विवेच्य विषय बना लेता है। यही सत्य सर्वत्र भारतवर्षके पौराणिक इतिहास चिन्तनके साथ रहा है। जहाँ तक मत पार्थक्यका प्रश्न है, वह तो विशेषज्ञता की सीमामें प्राप्त होनेवाला सिद्धान्त चिन्तन है, जो अपनी प्रशस्तता और विपुलताके साथ सर्वत्र ग्राह्य है।

पौराणिक इतिहासका तीसरा लक्षणभूत विषय मन्वन्तर है — जिसका

सीधा सम्बन्ध पृथ्वीके ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंके युगात्मक इतिहाससे है। इस ग्रहके सम्पूर्ण इतिहासको वहाँ १४ भागोंमें बाँटकर कुछ वैज्ञानिक संकेतोंके साथ समझा समझाया गया है, इसमें पृथ्वीके भावी इतिहासका भविष्य दर्शन भी समाहित है, जिसकी काल-अवधि अभी दो अरब वर्षोंसे भी बहुत अधिक शेष है। चौथे लक्षण 'वंश' का सम्बन्ध मन्वन्तरमें होनेवाले विकासके बीजसे है। इस बीजकी विकास यात्राका स्वरूप और इतिहास क्या है ? यह बीज किस प्रकार कालके दीर्घप्रवाहमें संक्रान्त होता हुआ जैव विकासके क्रममें आगे चलकर फलता फूलता और विकसित होता है — यही वंशतत्त्वका प्रधान विवेच्य विषय है। पाँचवाँ लक्षण वंशानुचरित — इस बीजके कालक्रमानुगत वंशरूप विस्तारका इतिहास है। इस लक्षणमें प्रधान रूपसे यही विचार किया गया है कि किस मन्वन्तरके किस महायुगमें मानवीय विकास प्रधानरूपसे किस प्रकार हुआ था, यही वंशानुचरितका इतिहासप्रधान विषय है। कालके दीर्घप्रवाहमें जैव विकासका स्वरूप अनेक बार बदलता है, अनेक बार अवरुद्ध हो जाता है। पुनः उसका नया प्रारम्भ और विकास कालक्रमसे होता रहता है। इतिहासतत्त्वका दिग्दर्शन वंश और वंशानुचरितका महाविषय है। अतः ये दोनों विषय शुद्धरूपमें विज्ञान न होते हुए भी उससे अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं, विज्ञान-चिन्तनके अभावमें दो अरब वर्षोंके इतिहासमें वंश और वंशानुचरितका अन्वेषण ही सम्भव नहीं।

६. इतिहास, विकास, काल और भाषाशास्त्र

भारतीय विज्ञान-दर्शन जहाँ परमार्थवादी है, वहीं वह परमभौतिक भी है। न्याय वैशेषिकदर्शनके अनुसार 'अभाव' पदार्थ है, तथा आकाश, दिक्, काल, मन, आत्मा — द्रव्य। आकाशको द्रव्य एवं अभावको पदार्थके रूपमें स्वीकार करना यह दर्शनकी भौतिक दृष्टिका सबसे बड़ा प्रमाण है। इस सन्दर्भमें भाषापरिच्छेदकारका कथन है

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम्।
समवायस्तथाऽभावः पदार्थाः सप्त कीर्त्तिताः॥
क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमकालदिग्देहिनौ मनः।[३२२]

यह विज्ञान चिन्तन सामान्य नहीं, इसे कालविज्ञानका चिन्तन कहना अधिक उपयुक्त होगा। यहाँ कालके विज्ञानकी खोजमें ऋषिप्रज्ञा अनन्त तक पहुँच जाती है। आज विज्ञान कालके सूक्ष्मतम मात्रकका निर्धारण परमाणुकी अवधारणासे करता है, इसके लिए उसने परमाणु-घटिका (Atomic-Watch) तकका निर्माण कर लिया। भारतीय विज्ञानचिन्तनमें भी कालकी सूक्ष्मतम इकाईका ग्रहण पारमाणविक सन्दर्भमें है —

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान्॥[३२३]

भागवतके उपर्युक्त कथनके अनुसार जो काल परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्थामें विद्यमान रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है, जो सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर समस्त अवस्थाओंका भोग करता है, वह काल परम महान् है। इसी अध्यायमें आगे चलकर कहा गया है — ग्रह, नक्षत्र और समस्त तारामण्डलोंके अधिष्ठाता कालरूप सूर्य, परमाणुसे लेकर संवत्सर पर्यन्त कालमें द्वादश राशिपूर्ण सम्पूर्ण भुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं —

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत्
संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः॥[३२४]

आचार्य श्रीधरने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है — सूर्यको परमाणुका अतिक्रमण करनेमें जितना समय लगता है — वह कालका सूक्ष्मतम मान है। प्रकाशकी गति एक सेकेण्डमें २.९९७३ x $१०^{१०}$ CM / Sec है। हाइड्रोजन-परमाणुका व्यास Diameter १.०५८३२ x $१०^{-८}$ है। इस गणितके अनुसार सम्पूर्ण परमाणुके व्यासको पार करनेमें प्रकाशको एक सेकेण्डकी इकाई पर १८ शून्यवें भाग और फिर इसका भी एक तिहाई भाग लगेगा। यह एक सेकेण्डके महाशंखवें भागका भी तीसरा भाग है। आचार्य श्रीधरने परमाणुगत कालविज्ञानका संकेत स्पष्टतः इन शब्दोंमें किया है - ....**तत्र सूर्यो यावता परमाणुदेशमतिक्रामति तावान् कालः परमाणुः**।[३२५] आचार्य कुन्दकुन्दके पञ्चास्तिकायकी २५ वीं गाथाकी टीकामें श्रीअमृतचन्द्राचार्यने कालके सूक्ष्मतम स्वरूपका ग्रहण भागवतकारकी

तरह ही परमाणुसे किया है — **परमाणुप्रचलनायत्तः समयः।**[३२६] भागवतके अनुसार काल-तत्त्व परमसत्ताकी ही शक्ति है। जैसे काष्ठमें अग्नि अपनी दाहात्मक शक्तिको छिपाकर स्वयंमें ही उसे व्याप्त कर लेता है, उसी प्रकार परमसत्ता अपने भीतर प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरको लीनकर आधारभूत जलतत्त्वमें विद्यमान है, अर्थात् जलतत्त्वाश्रित है, सृष्टिकालमें पुनः प्राणशक्तिको जागृत करनेके लिए सर्वप्रथम कालशक्ति उसके द्वारा प्रेरित होती है —

सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः
कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः।
उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे
यथानलो दारुणि रुद्धवीर्यः॥[३२७]

यह कालशक्तिका ही प्रभाव है कि पृथ्वी परिक्रमा करती है, उषा परिक्रमा करती है, सूर्य परिक्रमा करता है और यह सारा विश्व परिक्रमा कर रहा है। यहाँ यजुर्वेद स्पष्टरूपसे इस मन्त्रमें सूचना देता है कि पृथ्वी स्थिर नहीं, वह निरन्तर परिक्रमा करती रहती है —

समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः
समु विश्वमिदं जगत्।[३२८]

कालतत्त्वका सम्बन्ध दर्शनकी तरह ही व्याकरणशास्त्रसे भी बहुत निकटका है। महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलिने कालका वैज्ञानिक लक्षण प्रस्तुत किया है। उनका कथन है — मूर्त्तिमात्रमें जो क्षय और अभिवृद्धि देखी जाती है, वह कालतत्त्व कृत है — **येन मूर्त्तीनामुपचयाश्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते तं कालमाहुः।**[३२९] महाभाष्यके प्रसिद्ध व्याख्याकार आचार्य कैयटने प्रदीपमें और भी इसे स्पष्ट करते हुए कहा — **येन मूर्त्तीनामिति। तरुतृणलताप्रभृतीनां कदाचित् उपचयोऽन्यदात्वपचयः स प्रत्ययान्तराविशेषेऽपि यत्कृतः सः काल इत्यर्थः।**[३३०] वैयाकरण कालके एकत्व को ही स्वीकार करते हैं, यहाँ आचार्य पतञ्जलिने **येनेति** पदमें एक वचनका ही प्रयोग किया है। कालके अनेकत्वमें सूर्यकी क्रियाके सम्बन्धसे ही दिन, रात्रि, मास, संवत्सर आदि व्यवहारको महाभाष्यकार

स्वीकार करते हैं।[३३१] वाक्यपदीयकार भर्तृहरिने सर्वव्यापी कालको स्फोट शब्दसे अभिहित किया है, यह स्फोट शब्द-ब्रह्मकी स्वतन्त्र शक्ति है। विश्वकी संरचनामें प्रवृत्त ब्रह्मकी 'कला' शब्दसे कही गई शक्ति कालशक्तिके अन्तर्गत है –

अव्याहताः कला यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड् भावभेदस्य योनयः ॥[३३२]

इस कारिकापर आचार्य पुण्यराजने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है – **कालाख्येन स्वातन्त्र्येण सर्वाः परतन्त्रा जन्मादिमय्यः शक्तयः तत्समाविष्टाः कालशक्ति-वृत्तिमनुपतन्ति।**[३३३] सहकारी कारणके रूपमें काल विश्वका नियामक तत्त्व होनेके कारण यह निमित्तकारण है –'कला' स्वयं सृष्टिका उपादान कारण। कालकी स्वतन्त्र शक्तिके द्वारा ही ब्रह्म जगत्कर्तृत्वकी उपाधिसे विभूषित होता है। इस परम स्वातन्त्र्यके कारण ही व्याकरणशास्त्रमें कर्त्तव्य-प्रयोजकत्वकी सिद्धि होती है – भगवान् पाणिनिका निर्घोष है – **स्वतन्त्रः कर्त्ताः।**[३३४] यहाँ कालतत्त्वकी स्थिति विश्वके सन्दर्भमें जलयन्त्रके चक्राकार भ्रमण सदृश है –

जलयन्त्रभ्रमावेशसदृशीभिः प्रवृत्तिभिः।
स कलाः कालयन् सर्वाः कालाख्यां लभते विभुः ॥[३३५]

काल अक्षर-तत्त्वकी क्षर-क्रिया है, इतिहास इसका क्षर-कर्म। कालतत्त्वके इस क्षरकर्मको खोजते हुए भारतीय दर्शन और विज्ञानके आचार्य कालके उस मान और मेय तक पहुँच चुके थे – जहाँ नीहारिकाएँ महापिण्डोंके रूपमें परिणत होती हैं। यह सम्पूर्ण भूत-भवत्-भविष्यत्के रूपमें उपस्थित **ॐ कार** स्वरूप अक्षर-तत्त्वका ही उप-व्याख्यान है – **ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।**[३३६] इस अनन्त विश्वकी संरचना, इसके भुवनकोशोंका संख्यातीत विस्तार, आकाशगंगाका सीमातीत उपबृंहण, अनन्त ब्रह्माण्डपिण्डोंका समुद्भव, मानव सहित इनका विपुल प्रजातीय विस्तार, इतिहास और विकास, सभी कुछ इस काल-द्रव्यमें समाहित है। विश्वका मूलतत्त्व सनातन है, इसका धर्म सनातन है, धर्मरूप परिणाम सनातन है। सनातनधर्मका मूल भी सनातन ही होता है – **सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्।**[३३७] विश्व परम-सनातन-सत्ताकी सनातन कालयात्रा है, कालके

महाछन्द पर पुनः पुनः विश्वरूप महासत्ताका पुनरावर्तन होता रहता है, और इससे ही इतिहासकी चक्राकार-सर्पिल गतिका प्रवर्तन। सामश्रुतिका यही सनातन अर्थ है — वह परम पुरातन नूतन बननेकी कामना करता है, उसके लिए सभी मार्गोंका प्रवर्तन होता है, तत्त्वतः वह एक है —

स पूर्व्यो नूतनं आजिगीषन्।
तं वर्तनीर् अनु वावृत एक इत्॥[३३८]

उपर्युक्त बहुशः तथ्य स्वयंमें प्रमाण हैं कि भारतीय वाङ्मयने मिथककी सृष्टि नहीं की, यह विज्ञानदृष्टि — कालचिन्तन — इतिहासबोध, यथार्थपर आधारित है। भारतवर्षके महर्षियोंने इतिहासपुरुषके महान् विग्रहकी पूजा सर्वदा महाकालके मन्दिरमें की है। उसके स्वरूपकी उद्‌भावना सृष्टि-संवत् अर्थात् श्वेतवाराहकल्पसे होती है, इसीलिए इतिहासपुरुष वराहमुख है। सम्पूर्ण विश्वका काल-प्रवाह उसका विवेच्य विषय है, अतः वह महोदर है, पृथ्वीका रंगरूप ही उसकी वर्ण छटा है, इसीलिए उसे कुशाभास कहा गया है। उसके एक हाथमें अक्ष-सूत्र है, क्योंकि कालका संख्यात्मक निर्देश वहाँ यथार्थ गणनाके साथ प्रस्तुत है। ज्ञानामृतका दान ही इतिहासका पावन उद्देश्य है, इसीलिए उसके द्वितीय करमें सुधाघट विद्यमान है। इतिहासपुरुषका यह अनुपम विग्रह कमलके आभूषणोंसे विभूषित है — यहाँ कमल विकासका प्रतीक है। भारतीय शिल्पशास्त्रमें इतिहासपुरुषका यही महान् लाक्षणिक विग्रह है, जो मिथक नहीं, एक प्रतीकात्मक यथार्थ है।

इतिहासः कुशाभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं बिभ्रत्पंकजाभरणान्वितः॥

७—सृष्टिका बृहत्साम — महासत्ताका स्वरूप, आधार और सिद्धान्त

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च।
अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम्॥
ऋजुवक्रादिकाभासमलातस्पन्दितं यथा।
ग्रहणग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितं तथा॥
अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा।
अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा॥

(माण्डूक्योपनिषद् — कारिका — अलातशान्ति — ४५,४७,४८)

उत्पत्तिधर्मा द्रव्यजातिके समान प्रतीयमान, गतिशील-सा वस्तुरूप-जैसा जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है, वह उत्पत्ति रहित, अचल, अवस्तुरूप, शान्त एवं अद्वितीय विज्ञान ही है। जिस तरह अलात या उल्काका भ्रमण सरल और वक्र आदि रूपोंमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार विज्ञानका स्फुरण ही ग्रहण और ग्राहक आदि रूपोंमें प्रतीत होता है। जिस प्रकार स्पन्दनरहित उल्का आभास या प्रतीतिशून्य और अजन्मा है, उसी प्रकार स्पन्दनरहित विज्ञान भी आभासशून्य या प्रतीतिरहित एवं अज है।

परमसत्ता अपने परमअर्थ (Absolute Sense) में अविचल है एवं वह प्रतीतिका विषय नहीं, अद्वितीय होनेके कारण वहाँ द्रष्टा और दृश्य जैसा भेद भी नहीं। प्रतीयमान सत्ताका स्वरूप द्रष्टा और दृश्यके द्वैतसे उत्पन्न होता है। दृश्यके अभावमें द्रष्टा ही नहीं है, अत: दृश्य भी वहाँ एक अर्थशून्य पद है। उत्पत्तिके अभावमें यह द्रव्यगत विभाग प्रस्तुत करनेवाली पंक्ति या कक्षा भी नहीं, जिसे जाति कहा जाता है। जब एक परम ही परमरूपमें सर्वत्र व्याप्त है, तब गतिका प्रश्न भी नहीं उठता। परममें द्वितीय पदार्थकी सत्ताके अभावमें क्षोभ भी नहीं — इसलिए वह गुण क्षोभसे भी रहित है। वह परम अविचल और शान्त है, किसी वस्तुके अभावको समाप्त करने या आपूरित करनेके लिए उत्पत्तिके क्रमका

विवर्तन होता है। परम सर्वदा एकरूप और पूर्ण है, अत: वस्तुसे वस्तुरूप परिणमनके लिए भी वहाँ कोई अवकाश नहीं। सर्वरूप होनेके कारण परिमाण भी नहीं, परिमाणकी कल्पना अन्यान्य द्रव्यस्थितियोंके विभेदमें महत्-दीर्घ-ह्रस्व-लघु आदि स्वरूपको देखकर होती है, जहाँ आकाशकी तरह तत्त्व एक ही है, वहाँ परिमाण लभ्य आपेक्षिक महत्-लघु आदि तारतम्यका प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। महागुरुत्वाकर्षण-गुरुत्वाकर्षण, मध्याकर्षण जैसा गुण भी नहीं — एक ही परममें गुण-गुणी भाव भी उत्पन्न नहीं होता, प्रातीतिक दृष्टिसे वही गुणी है, वही गुण। परममें न ज्ञाता है, न ज्ञेय — अत: ज्ञान भी नहीं। इसीलिए वेदान्तदर्शनमें उसे विज्ञान कहा गया है। विज्ञानरूप या विज्ञानघन परम ही अनादि-अनन्त और सनातन है, यही उसका सर्वशक्तिमान् स्वरूप। सर्वशक्तिमान्में परम शक्तिका परम लघुतम स्पन्द ही विस्तार या बृंहणधर्मी विश्व है, इस बृंहणधर्मिताके विज्ञानार्थको लक्ष्यमें रखते हुए उस परमका ही एक पर्याय ब्रह्म है। अत: परम दृष्टिसे ब्रह्मतत्त्व उससे भेद-भिन्न नहीं — वह परम ही है। उदाहरणके लिए घूमती हुई प्रज्वलित शलाका (अलात) अपने भ्रमणक्रममें ऋजु, वक्र, तिर्यक्, ऊर्ध्व गमन करती हुई — अनेक नाम रूपोंमें प्रतिभासित होती है — उसी प्रकार विज्ञानघन परमसत्ताका परमस्फुरण या स्पन्द विषय और वस्तु, ग्रहण तथा ग्राहक, ज्ञाता एवं ज्ञेय आदि अनेक रूपोंमें प्रतिभासित होता रहता है। परममें महाशक्तिका लघुतम स्पन्द भी परम है, इसलिए तत्त्वदृष्टिसे यह परमरूप विश्व भी परम है। अत: परम अर्थमें न वस्तु रूप कोई द्रव्य भेद है न गति। आभास या प्रतिबिम्ब यथार्थ नहीं होता — प्रतिबिम्बकी सत्ता कहीं भी बिम्बसे पृथक् नहीं होती।

विश्वरूप अलात या उल्का जब स्पन्दशून्य हो जाती है, ऐसी स्थितिमें उसके ऋजु, वक्र आदि भावभेद भी अनाभास हो जाते हैं, यही उत्पत्तिहीन परमअवस्था — 'अज' है। अज्ञान या अविद्यासे स्पन्दमान विज्ञान भी अविद्याके निवृत्त हो जानेपर द्रव्य आदि जाति एवं गतिसे रहित होकर तत्त्व अर्थात् अचल और अज हो जाता है, तत्त्वत: वह ऐसा ही है। अलातके स्पन्दित होने पर भी वे आभास किसी अन्य कारणसे नहीं होते एवं उसके स्पन्दरहित होने पर भी कहीं अन्यत्र अवस्थित नहीं होते और न अलातमें उनका प्रवेश ही होता है। तत्त्वत: वे विज्ञानमें ही प्रविष्ट हैं। परमतत्त्वमें द्रव्यत्वका अभाव होनेके फलस्वरूप वे विज्ञानसे भी उत्पन्न नहीं होते — अत: वहाँ कार्य-कारणका अभाव हो जानेसे वे सर्वदा अचिन्त्य

हैं। क्योंकि द्रव्यका कारण द्रव्य ही हो सकता है, एवं अन्य द्रव्यका अन्य ही कारण होना चाहिए — परममें न द्रव्यत्व है न अन्यत्व, वे दोनों ही वहाँ इस सम्भावना से सर्वथा शून्य हैं। सम्पूर्ण व्यावहारिक जगत्की सत्ता तात्त्विक नहीं, अत: वे व्यवहार दृष्टिसे मात्र उत्पन्न कहे जाते हैं, इसलिए वे नित्य भी नहीं। परन्तु अज हैं — उत्पत्ति, धर्म से सर्वदा विमुक्त, किसी भी विनाश से सर्वदा परे ; जो धर्म (जैव द्रव्य) उत्पन्न होते कहे जाते हैं, वे यथार्थ या परमअर्थमें उत्पन्न ही नहीं होते, उनकी उत्पत्ति मायाके सदृश है और परमअर्थमें उस मायाका अस्तित्व ही नहीं है — इसलिए वह आभास है, असत् है। परमसत्ता या परमपदार्थका सिद्धान्त वेदान्तदर्शनमें अजातवादके नामसे प्रसिद्ध है। भगवत्पाद गौड़पादका यह दर्शन ऋग्वेदके नासदीय सूक्तकी परम व्याख्या है। बौद्ध दर्शन का मूल स्वरूप भी इसी सूक्तसे विकसित हुआ है, अत: कुछ आधुनिकोंको आचार्य प्रवर गौड़पादके बौद्ध होनेका महाभ्रम हो गया — यथार्थमें बौद्ध और आचार्यपादमें प्रस्थानभेद या मार्गभेदका बहुत बड़ा अन्तराल है, जिसकी दिशाएँ मूलत: एक दूसरेके विपरीत हैं।

विज्ञान अपने तात्त्विक विश्लेषणके क्रममें पहुँचता हुआ आचार्य गौड़पादके बहुत कुछ सन्निकट चला आया है — कभी-कभी लगता है केवल शब्दत: इस परम सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना ही शेष है। भागवत का भी निष्कर्षरूपसे यही अभिमत है —

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥[३३९]

आजके विज्ञानने एकके पश्चात् एक सत्ताके विभिन्न सिद्धान्त क्रम पर भलीभाँति विचार किया है। इसमें Superstring सत्ता सूक्ष्मतम है। अत: उसके बीजकी परमसत्ता परम अचिन्त्य है।

विज्ञानने अणु-परमाणुसे लेकर महत् तक अनेक स्तरों पर अस्तित्वकी स्वरूपभूत मीमांसा प्रस्तुत की है — तात्त्विक दृष्टिसे इन्हें छ: स्तरोंमें विभक्त करते हुए हम भलीभाँति समझ सकते हैं — (१) व्यावहारिक जगत् जहाँ साधारण मनुष्यसे लेकर एक महान् वैज्ञानिक तकका संसार स्थित है, (२) आणविक जगत् (Molecular Existence), (३) पारमाणविक अस्तित्व (Atomic Existence), (४) परमकणात्मक विश्व (Quantum या Particles

Universe), (५) प्रतिपरमकणात्मक जगत् (Quarks Composed Universe) (६) अधिसूत्रात्मक विश्व (Superstring Universe) — विज्ञानके जगत्में ये छहों अस्तित्व भलीभाँति विवेचित हैं। व्यावहारिक जगत्में वैज्ञानिकका सारा कार्यकलाप सम्पन्न होता है — जीवन यापनसे लेकर प्रयोगशाला तक — वहाँ न काल असत्य है न दिक्। उसका घर और उसकी प्रयोगशाला दोनों ही दिगाश्रित हैं — उसके सारे प्रयोग कालधर्मी हैं, विज्ञानके अनुसार लौह धातुकी अर्द्ध-आयु (Half Life)$१०^{५००}$ वर्ष है, Nanosecond का काल एक सेकेण्डका दसलाखवाँ भाग है, उसी प्रकार Proton कणिकाकी अर्द्धआयु $१०^{३२}$ वर्ष है, कालकी सूक्ष्मतम अवधारणा Chronons है, यह एक सेकेण्डका $१०^{-२४}$ विभाग है जिसमें Big Bang घटित हुआ था। काल ही नहीं — वह महाकाल है जिसमें महाविश्वकी नभोगंगाका परम विस्तार परिव्याप्त है — जो वर्तमानमें १५ अरब प्रकाशवर्ष है। (१) इञ्जीनियरके वैज्ञानिक लोकमें व्यावहारिक जगत्का सत्य यथार्थ है। (२) आणविक दृष्टिसे (From Viewpoint of Molecular Existence) व्यावहारिक जगत् यथार्थ नहीं, वह आभास मात्र है — विश्वका गठन तो अणुओं पर आधारित है — आज चिकित्साशास्त्रका सम्पूर्ण विज्ञान Molecular Physiology पर अवलम्बित है — चाहे एक साधारण व्यक्तिकी चिकित्सा हो या एक वैज्ञानिककी चिकित्सा। Quantum Physics ने भी वहाँ अपनी ताकझाँक प्रारम्भ कर दी है। कुछ ग्रन्थ भी Quantum Physiology की दृष्टिसे लिखे गए हैं जिनमें — The Body Quantum आदि उल्लेखनीय हैं।[३४०] आणविक विज्ञानके सिद्धान्तानुसार व्यावहारिक जगत्की सत्ता आभास मात्र है। (३) उसी प्रकार पारमाणविक विश्व इन दो विश्व प्रतिरूपोंसे सर्वथा भिन्न है, वहाँ द्रव्यमात्रका गठन परमाणुओंसे संयोजित है। इस जगत्में परमाणुकी सत्ता ही मौलिक है, अणुकी नहीं। अतः इससे पूर्वकी दोनों अवस्थाएँ आभाससे अधिक और कुछ भी नहीं। (४) यह चतुर्थ सत्तात्मक जगत् और भी गहन एवं रहस्यमय है — जहाँ परमाणु मूल पदार्थ नहीं, अपितु इसका गठन Electron, Proton आदिसे होता है। इसQuantum विश्वमें इससे पूर्वकी तीनों सत्ताएँ आभास मात्र ही सिद्ध हुई हैं। परन्तु इस सत्ताका स्वरूप भी परम नहीं, वह द्वैतसत्तात्मक प्रतीतिसे ग्रस्त है। सत्ता यहाँ कभी तरंगरूप (Wave-like) कभी कणरूप (Particles-like) प्रतीत होती है। सैद्धान्तिक दृष्टिसे मीमांसित होनेवाला विश्व यहाँ शक्ति-तरंगरूप (Energy-wave-like) है। इस दृष्टिसे

Particle Physics का नया नामान्तर High Energy Physics भी है। इस सिद्धान्तानुसार विश्व एक शक्तितरंग है, इससे पृथक् रूपसे प्रतीत होनेवाली सत्ता आभास है। अत: पूर्ववर्ती चारों सत्ताएँ यथार्थमें भ्रम हैं। (५) Quarks का महालोक परमकणोंकी सत्ताको भी मौलिक स्वीकार नहीं करता, अत: Quantum Fields भी मूलभूत नहीं — एक परमकण या Particle का गठन तीन Quarks से होता है। (६) इस सत्ताका महालोक परमसूक्ष्म है — जिससे सम्पूर्ण द्रव्यवाची जगत्का निर्माण होता है, एक String का सूक्ष्मतम स्वरूप Proton कणिकाका एक अर्बुदांश है, अर्थात् एक अरबगुना लघुतम है। यह परमकण ही सृष्टिका मूल पदार्थ है — यही विश्वकी मौलिक इष्टिका या ईंट है। इस सत्तासिद्धान्तके अनुसार व्यावहारिक जगत्से लेकर Quarks तकका महालोक आभास या सर्वतोभावेन अमौलिक है। यदि हम Anthropic Principle (विश्वके पुरुषविध सिद्धान्त) को अस्वीकार करें तो वैज्ञानिक सहित उसका सम्पूर्ण चिन्तन आभास मात्र है। विश्वमें 'है' रूपसे स्थिर कुछ भी नहीं — इलेक्ट्रोनका परमकण, अणु, परमाणु, इससे गठित विभिन्न लोक, विश्व, सूर्य, तारे सभी गतिशील हैं। नभोगंगाएँ अनेक प्रकारकी गतिधर्मिताओंसे युक्त हैं — कुछ दशक पूर्व विज्ञानको Rotation of Galaxies की अवधारणा प्राप्त हुई। यह सारा विश्व सम्पूर्ण रूपसे अनेक प्रकारकी गतिधर्मिताओंके साथ गतिशील है, कहीं भी क्षण भरके लिए भी स्थायी नहीं। Bohr, Niels Theory के अनुसार Hydrogen परमाणुका Electron एक Second में अपने परिकेन्द्र (Nucleus) के डेढ़ लाख परिक्रमण करता है। इसे हम शांकरअद्वैतकी भाषामें कहें तो — ये सारी सत्ताएँ एक दूसरेकी अपेक्षासे 'सोपान-क्रमात्मक-विवर्तवाद' के सिद्धान्तकी स्थापना करती हैं। अत: Organic एवं Inorganic का अर्थ भी अद्वैतमें ही पर्यवसित है। यहाँ विज्ञानके साम्प्रतिक स्वरूपकी अति संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी।

सृष्टिके अनन्त रहस्योंको जाननेके लिए विज्ञान आज अनेक दिशाओंसे, अनेक प्रयोगों और प्रकारों द्वारा प्रयत्नशील हो गया है। सत्य तक पहुँचते-पहुँचते वह सिद्धान्तोंके एक ऐसे निगड़ जालमें उलझ चुका है, लगता है सारी प्रक्रिया एक अदृष्ट 'ब्लैक-होल़' में समा गई है — जहाँसे निकलकर उससे परे झाँक लेना असम्भव-सा हो गया है। पर विज्ञानने कहीं भी हार स्वीकार नहीं की — वह अपने अथक परिश्रमसे इस —'ब्लैक-होल' की दुर्धर्ष काराको तोड़नेके लिए

कृत-संकल्प है। आज माना जा रहा है – ब्रह्माण्डोंके समुद्भव, जीवन और विस्तारकी रहस्यमय कुञ्जी परमसूक्ष्मकणों (Particles) में निहित है, फलतः उनके अन्वेषणके क्षेत्रमें अब इन रहस्य-कणोंकी एक रिमझिम सहसा प्रारम्भ हो गई है। वे Neutrinos की तरह ही हैं। अन्य 'परमकणों' (Particles) की, जिनका सम्बन्ध Supersymmetry Particles से है, संरचना Big-Bang में हुई। Neutrino ब्रह्माण्डीय परमकणिका है, जो अपनी अबाध गति द्वारा उन्हें भेदती हुई – उनके पार उसी समय निकल जाती है। इसी प्रकारके गुणधर्मसे युक्त हैं आदिम Photinos, Gluons आदि परमकण, जो हमें भेदते हुए – एक अधिब्रह्माण्डीय यात्रीकी तरह निरन्तर चलते रहते हैं। इनमें कुछ परमकण Neutrinos के गुणधर्मोंसे भिन्न ऐसे भी Supersymmetry Particles हैं – जिनमें भारमान वा Mass है। इनमें वे परमकणिकाएँ भी विद्यमान हैं, जिनका Mass वा भारमात्रक Electron या Proton से भी अधिक है। हाँ, सिद्धान्त रूपसे Particles के भारमात्रक वा Mass को पृथक् भावसे वर्गीकृत नहीं किया गया है, क्योंकि इनमें निहित शक्तिका परममात्रक वर्तमानमें उपलब्ध Particle-accelerators की ग्रहण-क्षमतासे परे है। उल्लेखनीय वैज्ञानिक Peebles, Philip James, Edward "Jim" का अनुमान है कि ये भारमात्रकसे युक्त परमकण, यदि Dark-Matter की श्रेणीमें हों तो नभोमन्दाकिनियोंकी संरचनामें परम सहायक हो सकते हैं, पर Neutrinos अपने भारमात्रक वा Mass की परम लघुताके कारण इस क्षेत्रसे बाहर हैं। वहीं इसके विपरीत Supersymmetric Particles – 'Photinos' इनकी तुलनामें सहस्रसे दशलक्ष गुणित विपुल भारमात्रक वा Mass से युक्त हैं – ये बड़ी मन्दगतिसे गमन करते हुए Big-Bang से बहिर्भूत होते हैं। अनुमानित है, ये परमकण शीतल एवं हिमवत् पिण्डीभूत होनेकी क्षमताओंसे युक्त हैं। इन परमकणों (Particles) के संरचनात्मक प्रभावी हस्तक्षेपसे विश्व अनेक प्रकारकी गुणधर्मिताओंसे संयुक्त हो जाता है, यथा – गर्तधर्मिता - वर्णधर्मिता – पिण्डीभाव प्रवणता आदि – 'Dimpled-Dappled-Dumpled' – ऐसे गुणधर्मसे युक्त परमकणिकाओंके विश्वमें ही अनन्त ब्रह्माण्ड मालिकाओंसे युक्त नभोगंगाओं (Galaxies) की संरचना सहज सम्भव है।

Peebles ने १९८२ में आयोजित Workshop में इस Cold Dark Matter के सन्दर्भमें अनेक ज्ञातव्य तथ्योंका उद्घाटन अपनी आलेखवार्ता में

किया। इसके अतिरिक्त Stanford Linear Accelerator in California (SLAC) संस्थानके तीन प्रख्यात पदार्थविज्ञानविद् – Joel Primack, Heinz Pagels एवं George Blumenthal ने एक ऐसे विषय पर अपना अनुसन्धान प्रस्तुत किया, जिसका सम्बन्ध एक अनुमानित परम कणिकासे है – यह Gravitino है, जिसका भारमात्रक कुछ कम या अधिक 1000 Electron Volts है। Neutrinos की तुलनामें अधिक भारमात्रकसे युक्त होनेके फलस्वरूप इनकी गति भी अपेक्षाकृत मन्द है। वहीं इनकी तापशक्ति भी उग्र नहीं और ये बड़ी सहजतासे पिण्डीभावकी क्षमताओंसे युक्त हैं। Gravitino की अनुमानित अवधारणाओंसे प्रभावित होकर अनेक भिन्नता वाले भारमात्रकसे युक्त परमकणों पर – Turner, Szalay तथा Dick Bond ने अपने-अपने शोध आलेख लिखे हैं। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्य कनाडाके युवा वैज्ञानिक Dick Bond का है, जिसमें सभी श्रेणीके Particles पर उनके गुणधर्मोंके साथ तुलनात्मक विचार किया गया है – यथा उनके पिण्डीभावकी क्षमतासे लेकर उनकी लघुता एवं गुरुता, कृष्णद्रव्य (Dark Matter) गत उत्तप्त अवस्थाके साथ तारतम्य लभ्य उष्णता एवं शीतलता आदि गुणधर्म सम्मिलित हैं। इन परमकणोंके द्वारा ब्रह्माण्डोंकी संरचनाको लक्ष्यमें रखते हुए वैज्ञानिक Peebles ने इस कार्यको और भी बहुत दूर तक आगे बढ़ाया – आगे चलकर विज्ञानके क्षेत्रमें इस महत्त्वपूर्ण शोधकार्यने अपनी अलग पहचान स्थापित की, जो Gauge Theory Particle Physics के नामसे प्रसिद्ध है। इससे पूर्व सृष्टिके संरचनात्मक सन्दर्भमें १९७६ में Rees और White S ने जो अन्वेषण इस क्षेत्रमें किया है – उससे यह नया अन्वेषण कार्य बहुत भिन्न भी नहीं है। इस आधारभूत रहस्यमय कृष्णद्रव्यDark Matter की पहचान प्राप्त करनेके लिए विज्ञानने इसके अनेक नामकरण तक कर दिए हैं, यथा – Darkons, Darkinos, Cold Dark Matter, The Missing Mass, Cosminos आदि, इसी सन्दर्भमें वैज्ञानिक प्रवर Turner ने इसका नया नाम Wimps रखा है। ऋग्वेदमें इस कृष्णद्रव्यकी प्रभूत सूचनाएँ विद्यमान हैं, जिनका उल्लेख हमने ग्रन्थके द्वितीय अध्यायमें किया है। १९८४ और ८५ से ही विज्ञान Wimps की अवधारणाको बहुत पीछे ढकेलते हुए – W- एवं Z - Bosons के आश्चर्यमय विश्वमें पहुँच गया, इसका प्रमुख श्रेय इटलीकी पदार्थविज्ञानविद् – Rubbia को है। इन्हें इसके लिए हाल ही में नोबेल पुरस्कारसे सम्मानित किया

गया है। एक वर्ष बीतते-बीतते सत्य पुन: अपनी पूर्ववर्तिताकी ओर घूम गया — विज्ञानमें नवीन शीघ्र ही पुरातन हो जाता है, हम जिसे सत्य मानकर स्वीकार कर लेते हैं, वह अन्तमें महत्त्वहीन और मिथ्या सिद्ध हो जाता है। विज्ञानमें Photino के प्रामुख्यको पुन: स्वीकार करनेकी नई प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई, बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंने पूरे आत्मविश्वासके साथ इसके महत्त्वकी घोषणा कर दी ; आचार्य प्रवर Silk का कथन था — If we have discovered the photino, we will have discovered the secret of the Universe. वहाँ W - एवं Z - Bosons की आभा १९८५ के समाप्त होते-होते मन्द हो गई, विज्ञानके राजसिंहासन पर अब Photino स्थापित हो गया, विश्वके अनन्त रहस्योंकी कुञ्जी Photino के पास चली आई। १९८४ में कृष्णद्रव्य (Dark Matter) के प्रति सजग एवं परम उत्सुक वैज्ञानिकोंके द्वारा एक महत्त्वपूर्ण Workshop का आयोजन Santa Barbara में किया गया, इसमें सम्मिलित होनेवाले अनेक श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में Davis, White, Bond, Szalay, Turner, Peebles आदि थे। इस नव समायोजनका विषय था — 'इन नवीन परमकणोंसे ब्रह्माण्डोंकी संरचना'। इस वर्कशॉपके निष्कर्ष पर जो शोधपत्र प्रकाशित हुआ, उसका नाम Rees ने — The cold dark matter manifesto रखा था। इसकी स्थापनाके निष्कर्षोंका अनुमोदन चार वैज्ञानिकोंने किया है। इनमेंसे दो थे — पदार्थविज्ञानके आचार्य — Primack और Blumenthal, जिनमें एकका सम्बन्ध था California विश्वविद्यालयसे, दूसरेका Santa Cruz विश्व-विद्यालयसे, इस मैनिफेस्टोके अन्य लेखक — Sandra Faber थे। इस घोषणापत्रमें बताया गया — साधारण नभोगंगाका Mass — Solar Mass की तुलनामें $१०^{१०}$ से $१०^{१२}$ के मध्य औसत या सामानुपातिक है, वहीं Globular Clusters एवं Dwarf Galaxies का Mass — Solar Mass की तुलनामें $१०^{६}$ है। अति विशाल नभोगंगाओं (Large cluster of Galaxies) का Mass — $१०^{१५}$ Solar Mass के बराबर है, पर $१०^{१६}$ से अधिक नहीं।

विश्वकी रहस्यमय संरचना विषयक खोजका कार्य मानवकी उत्पत्तिके साथ ही प्रारम्भ हो चुका था, क्योंकि उसका समुद्भव इस कार्यके लिए ही हुआ है — द्रष्टाके बिना दृश्यरूप विश्व अर्थशून्य है। पर नवीन विज्ञानके सन्दर्भमें इस अन्वेषणका कार्य १९१७ से हुआ — Albert Einstein की स्थापना है —

'विश्व एक प्रसरणधर्मी वक्र दिगन्तराल' है। इसके प्राय: एक दशक पश्चात् Hubble ने कहा — समीपवर्ती प्रतीयमान नीहारिकाएँ (Nebulae) वे नभोमन्दाकिनियाँ हैं, जो परस्पर एक दूसरीसे बड़ी शीघ्रताके साथ दूर जा रही हैं। इन महत्त्वपूर्ण सूचनाओंके द्वारा सर्वप्रथम विज्ञान जगत्में ब्रह्माण्डविद्या (Cosmology) का उदय होता है। विज्ञानमें यह स्थिति इस विषय पर आयोजित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण Kona, Hawaii, Conference से साठ-सत्तर वर्ष पूर्वकी है। Alan Dressler (Samurai) का कथन है — यह स्फीतधर्मी विश्व (Inflationary Universe) हो या Great Attractor यह शीतल कृष्णद्रव्य (Cold Dark Matter) से आपूरित है। विज्ञानमें अभी तक Great Attractor की स्थिति अत्यन्त रहस्यमय बनी हुई है। नभोभौतिकीके इतिहासमें यह Samurai data भी अन्ततोगत्वा एक ऐसे छलावेमें परिणत हो गया, जिसमें प्रत्येक वैज्ञानिक अपने निष्कर्षोंकी प्रतिछवि खोजनेमें लगा है। यह Seven Samurai भी विज्ञानका सामान्य गोष्ठीचक्र नहीं था — इस परिसंघमें सात उल्लेखनीय वैज्ञानिकोंकी मण्डली विद्यमान थी — Sandra Faber, David Burstein, Alan Dressler, Donald Lynden-Bell, Roger Davies, Roberto Terlevich एवं Gray Wegner, ये विज्ञान जगत्में अपने क्षेत्रके महत्त्वपूर्ण नाम हैं। इधर Superstring का सिद्धान्त अभीतककी उपलब्धियोंको आत्मसात् कर लेनेकी मुद्रामें आ चुका है, वैसे तो विज्ञानमें विगत चार दशकोंसे आकाशके निरीक्षण-परीक्षण और प्रयोगोंका क्रम सदैव आगे बढ़ता रहा है। दार्शनिक Aristotle के भूसंकेन्द्रित विश्वके सिद्धान्त (Geocentric Universe) के स्थानपर Copernicus का सूर्यसंकेन्द्रित विश्व (Heliocentric Universe) का सिद्धान्त चला आया। इस सिद्धान्तका स्थान Newton ने ले लिया। इससे आगे कालान्तरमें २० वीं शतीमें Einstein का विश्व सिद्धान्त स्थापित हो गया — आज हम इसके ही सैद्धान्तिक विश्वमें विद्यमान हैं। अब विभिन्न कारणोंसे यह विश्व भी हमसे शीघ्र ही विदा ग्रहण करने वाला है, और हम २१ वीं शतीमें पुन: एक नवीन विश्वको अपने साथ लेकर चले आए हैं। इसके लिए विज्ञान जगत्में नवीन सम्भावनाएँ प्रकट हो चुकी हैं। पुरानी पीढ़ीके Baade, Hubble एवं Shapley एवं नई पीढ़ीके ब्रह्माण्डशास्त्रियोंमें बहुत कुछ अन्तर है। नवीन सम्भावनाओंका द्वार विज्ञानमें १९७० में ही मुक्त हो चुका था। इससे पूर्व ज्योतिषशास्त्र (Astronomy) एवं

कणभौतिकी (Particle Physics) दोनों पृथग्भावसे कार्यरत थे, विज्ञानकी इन दोनों विधाओंमें एक नया सामञ्जस्य स्थापित हुआ, इससे वैज्ञानिक अन्वेषणका मार्ग और भी प्रशस्त हो गया। इस समन्वयका ही परिणाम है — आज प्रयोग और सिद्धान्त दोनों एक होकर सृष्टिके आदिम कालचक्रको रेखाङ्कित कर रहे हैं, जिसके अनुसार कालका सूक्ष्मतममान — $१०^{-४२}$ सेकेन्ड्स, अर्थात्- one millionth of a trillionth of a trillionth of a trillionth of a second है।

नवीन सृष्टिशास्त्र (Cosmogony) के अनुसार विश्वका प्रारम्भ परमकणसे होता है। प्रकाशवर्षोंके संख्यातीत प्रसंख्यानवाला प्रसरणधर्मी महाविश्व — एक ऐसे परमबीजसे उत्पन्न होता है — जिसका आकार प्रकार Proton की तरह परम सूक्ष्म है — कारणरूप बीज सर्वदा सूक्ष्म होता है, अपने फलपरिणतिरूप कार्यसे परम सूक्ष्म। यह कितना आश्चर्यजनक है — Proton जैसे परमसूक्ष्म कणसे उत्पन्न होती हैं — १००० अरबसे भी अधिक नभोमन्दाकिनियाँ (Galaxies)। विज्ञानके पास क्यों और कैसे का कोई प्रामाणिक उत्तर नहीं। इस आश्चर्यमय बीजका हेतु वा जनक भी परम आश्चर्यमय है, जिसके परम बीजसे अनन्त कोटि आकाशगंगाओंका जन्म होता है। Superstring एवं Cosmicstring की समस्याएँ वहाँ और भी जटिलताएँ उत्पन्न कर देती हैं। प्रसरणधर्मी विश्वका सिद्धान्त विज्ञानमें Big Bang के नामसे प्रसिद्ध है — विज्ञानकी मुख्यधारामें इसकी प्रभावी स्वीकृति विगत तीन-चार दशकोंसे विद्यमान है। इस सिद्धान्त का जन्म १९२७ से १९३३ के मध्य हुआ, इसके जनक Georges Lemaitre हैं — १९६४ से यह सिद्धान्त विज्ञानके क्षेत्रमें विवेचना-विचारणाका प्रधान विषय बना हुआ है।

परम्परागत विज्ञानके विकासोन्मुख क्षेत्रमें String सिद्धान्तने नई हलचल उत्पन्न कर दी — वह जिस सिद्धान्त भूमिपर अग्रसर हो रहा है, उस पर उसने अपनेमें सम्पूर्ण सत्यको समाहित करनेके अधिकारकी घोषणा कर दी है — वह है — Theories of Everything — इस सन्दर्भमें John D. Barrow का ग्रन्थ विचारणीय है।[३४१] String Theory का प्रथम प्रारूप १९५० में Heavier Elementary Particles पर किए गये अनुसन्धानके माध्यमसे प्रस्तुत हुआ, जो Chicago विश्वविद्यालयके उल्लेखनीय आचार्य Nambu Yoichiro के द्वारा किया गया था। १९७० तक पहुँचते पहुँचते इस सिद्धान्तमें अनेक अन्तर्विरोध

उपस्थित हो गए, फलतः वैज्ञानिकोंने इसकी उपेक्षा करते हुए, इसके विकल्प रूपसे Supersymmetry एवं Grand Unified Theory पर सोचना समझना प्रारम्भ कर दिया। वहीं महान् वैज्ञानिक John Schwarz और Michael Green कहीं भी निराश नहीं थे, उनके अनवरत श्रम और अनुसन्धानने String सिद्धान्तको नई ऊर्जा प्रदान की, १९८४ में सहसा बहुत कुछ बदलने लगा — The Theory of Everything के रूपमें String सिद्धान्तका नया जन्म हो गया। इस सिद्धान्तने न मात्र Elementary Particles पर ही अपनी व्याख्या प्रस्तुतकी, इसने दिक्-कालके स्वरूपको स्पष्ट करते हुए — Big Bang के जगत्को भी व्याख्यायित कर दिया है। विज्ञानके सर्वाधिक प्रतिष्ठित Journal — 'Science' ने String सिद्धान्तकी इस नवीन क्रान्ति पर लिखा — "no less profound than the transition from real numbers to complex numbers in mathematics" वहाँ यहाँतक लिख दिया गया — "a profound generalization" इसके पश्चात् इसकी क्षमताको लक्ष्यमें रखते हुए कहा गया "unify gravity with the other fundamental forces in an almost unique manner"[३४२], आज Superstrings सिद्धान्त Particle Physics की मुख्यधारामें विद्यमान और विचारणीय हो गया है। Subatomic द्रव्य अब Quantum Strings के रूपमें समझा जा रहा है — जिसकी परम सूक्ष्म लम्बाई $१०^{-३३}$ C.M. है, यह कल्पना किसीके लिए भी असम्भव है। String का सूक्ष्मतमकण अपनी लम्बाईमें एक से दूसरे छोर तक एक सेण्टीमीटरका — १,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० वाँ विभाग है। इसका तात्पर्य है, विश्व की द्रव्यभूता अवस्थाकी अन्तिम परिसीमा।[३४३]

विश्वद्रव्यकी यह String स्वरूपा परमसूक्ष्म पदार्थस्थिति जहाँ Elementary Particles के संरचनात्मक गठनकी विधायिका है, वहीं वह प्रकृतिमें अन्तर्व्याप्त बलमात्रक (Forces) एवं उनकी क्रियाशक्तिको एक नया अर्थ प्रदान करती है — साथ ही यथासम्भव दिक् और कालकी स्वरूपभूता अवस्थिति को भी। अभी यह सिद्धान्त विज्ञानके प्रयोगधर्मी गर्भमें सुस्थित है, जहाँ प्रतिवर्ष शताधिक शोधपत्र नये-नये प्रारूपों (Models) के साथ प्रस्तुत होते चले जा रहे हैं। हर समय वहाँ गाणितिक भाषाका नया संशोधित प्रारूप एक नवीन वैज्ञानिक

यथार्थके साथ उपस्थित होता है। विज्ञान जगत्‌के परम उल्लेखनीय आचार्य Roger Penrose ने अपने सर्वथा नवीन गणितके एक नये आयामके द्वारा इस सिद्धान्तके साम्प्रतिक परिवेशपर एक बहुत क्रान्तिकारी छलाँग लगाई है — जो Twistor के नामसे प्रसिद्ध है। String की तरह ही Penrose के ये नवीन Twistors आजके विज्ञानकी वह वस्तुनिष्ठता है — जो मात्र Elementary Particles के गठनात्मक आभ्यन्तर स्वरूपकी व्याख्या तक ही परिसीमित नहीं, अपितु इससे बहुत आगे बढ़कर Quantum जगत्‌के दिक्-कालके अर्थको भी स्पष्ट कर देती है। Penrose की इस सिद्धान्त पद्धतिके समुद्भवका मूल सर्वथा भिन्न है — और इसे वहाँ भिन्न प्रकारके गाणितिक प्रारूपोंके द्वारा प्रस्तुत किया गया है, तथापि इसकी नवीन सिद्धान्त भूमिपर यह भलीभाँति सम्भाव्य है — यह मूलतत्त्वको Superstrings और Twistors दोनोंके नये समन्वयके साथ प्रस्तुत कर देगी — इस दिशामें प्रयास बहुत आगे तक बढ़ते चले आए हैं।[३४४] Twistors की तरह ही विज्ञानके क्षेत्रमें उभरता हुआ Sheldrake, Rupert का — Formative Causation Hypothesis पर आधारित Morphogenetic Field का सिद्धान्त भी जीवनके संरचनात्मक स्वरूपके सन्दर्भमें अपना विशेष महत्त्व रखता है। श्रेष्ठ वैज्ञानिक Sheldrake अपने समयके प्रसिद्ध दार्शनिक Bergson Henri से बहुत प्रभावित थे। इनका अनुमान है, चेतना केवल Brain-Mind की विषय वस्तु नहीं, वह सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त है। यदि एक पत्तेमें काट कर छिद्र कर दिया जाए तो — उस छिद्रके भीतर पत्तेकी सम्पूर्ण आकृति उभर आएगी, यह प्रतीति Sheldrake के Morphogenetic Field सिद्धान्तके अनुसार है। इनका यह सिद्धान्त सर्वत्र सफल है — फोटोन (Photon) से लेकर वानस्पत्य चेतना Plant Consciousness तक, इसी प्रकार मानवके सचेतन जगत् तक। इसे नवीन पद्धतिकी फोटोग्राफी Holographic Phenomenon के माध्यमसे जाना गया, जीवनके इस चिद्घन स्वरूपकी अभिव्यक्ति प्रकृतिमें कहीं भी आकस्मिक नहीं है। इनका क्षेत्र सिद्धान्त विश्वके उस स्वरूपको भी अभिव्यक्त करता है, जहाँ प्रकृतिका संरचनात्मक विधान — परमाणुओंका गठन, उनका पश्चाद्भावी आणविक संयोजन आदि अपने स्वभावसिद्ध अभ्यास द्वारा स्वयंको पुनरावर्तित करता रहता है। Sheldrake प्रकृतिके नियमको सनातन नहीं, एक विकास मानते हैं।[३४५] David Böhm के अनुसार जीवनका आविर्भाव अणुओंका परस्पर अन्धसंयोजन नहीं — यह बहु

उसमें निहित आभ्यन्तर स्वरूप ही वहाँ अभिव्यक्त हो गया है। इनके अनुसार पदार्थका जैवद्रव्य (Organic) और अजैवद्रव्य (Inorganic) जैसा विभाजन नितान्त सामान्य या आभास मात्र है, तत्त्वत: दोनों अस्तित्वके सन्दर्भमें संश्लिष्ट हैं।[३४६] नोबेल पुरस्कारसे सम्मानित वैज्ञानिक Prigogine के सिद्धान्तका अपना अलग वैशिष्ट्य है। इनके अनुसार जैव और अजैव दोनों ही पदार्थस्थितियाँ 'असन्तुलित अवस्था' Nonequilibrium situations में प्रकट होती हैं, जो सार्वत्रिक हैं। १९वीं शतीकी Thermodynamics हमारे समक्ष एक ऐसे विश्वको उपस्थित करती है — जहाँ Entropy ज्योंही बढ़ जाती है — त्योंही आकृतिमूलक संरचना ध्वस्त हो जाती है। Ilya Prigogine ने Thermodynamics की उस अवस्था विशेष — Equilibrium Situation का पता लगाया जिससे परे संरचनात्मक आकृतियाँ अनिवार्य रूपसे आकार ग्रहण करती हैं। आकृतियोंकी इस संरचनात्मक गतिशीलताको इन्होंने Order Through Fluctuation की संज्ञा प्रदान की है।[३४७] सांख्यदर्शन भी गुणात्मक असन्तुलनके द्वारा जैव और अजैव आकृतियोंकी संरचना स्वीकार करता है, एवं सन्तुलन द्वारा उनका विनाश। इस दर्शनशास्त्रके अनुसार गुणत्रयके असन्तुलनसे ही विश्व और उसका सम्पूर्ण विकास अस्तित्व ग्रहण करता है।

आज जगत् हो या जीवन वहाँ सर्वत्र विचारोंमें नई क्रान्ति हो रही है, जिसे रेखाङ्कित करना परम आवश्यक है। पिछले कई दशकोंसे पुराने प्रारूप Paradigm के आधार पर सोचा जा रहा था — हमारा मस्तिष्क एक विद्युत्परिचालित कम्प्यूटर की तरह है। आज सम्पूर्ण स्थितियाँ विज्ञानमें बदल चुकी हैं, पुन: वह दो हजार वर्ष पुरानी मान्यता पर पहुँच गया — जिसके अनुसार मस्तिष्क एक संयन्त्र या कम्प्यूटरकी तरह नहीं, वह ग्रन्थि या Gland की तरह है —

The realization that the brain is a gland, controlled by the hormones within it, is less than ten years old. In the past decade, scientists of all kinds have acknowledged that the brain is 'wet'. It is suddenly clear that the unravelling of the mysteries of behaviour can come through a better under-

standing of brain hormones. But more than that: many kinds of illnesses, especially those related to stress, will be more easily treated by understanding the hormonal signals that move back and forth between the body and the brain.

Less than a decade after scientists began to look at the brain as a gland, psychiatrists are concerned not only with warped relationships but also with crooked molecules. Neurologists are searching for 'missing' hormones, believing that certain brain diseases can be treated by hormone replacement as simply as diabetes is treated with the hormone, insulin. Neurosurgeons have begun to measure the peptides, the tiniest hormones, in the ventricles of the brain; noting that gland tissue transplanted into the brains of animals can cure an experimental Parkinson-like disease, surgeons stand ready to do the same thing for patients with Parkinson's disease. Psychologists are looking for memory peptides, not memory circuits.[३४८]

Brain को computer कार्य प्रणालीकी तरह देखने और सोचने वाले व्यक्तियोंके लिए १९वीं सदीके वैज्ञानिक चिन्तक T.H.Huxley (1887) की तरह इस सन्दर्भमें देखना और सोचना ज्यादा हितकर होगा— 'The known is finite, the unknown infinite; intellectually we stand on an island in the midst of an illimitable ocean of inexplicability. Our business in every generation is to reclaim a little more land' [३४९] आज मस्तिष्क या Brain की आभ्यन्तर सक्रियताके स्वरूपको नई-नई शब्दावलियोंके माध्यमसे समझनेका प्रयास किया जा रहा है, कहीं इस सन्दर्भमें Electricity शब्दका प्रयोग है, कहीं Ideas का, कहीं Models of Thought शब्दका प्रयोग प्राप्त है। भारतीय दर्शनमें 'चित्त' शब्दका प्रयोग बहुत प्रचलित है, —'चित्तवृत्ति' या मात्र 'वृत्ति' या 'वृत्तिज्ञान' आदि बहुश: प्रयोग वहाँ उपलब्ध होते हैं। Douglas Hofstadter ने अपने महापाण्डित्य सुलभ ग्रन्थ — Godel, Escher and Bach में इसके लिए एक सर्वथा नए शब्दको आविष्कृत

किया है – वह है 'विचार तन्त्री' या Idea Chord. इसके विषयमें इनका कथन है – 'Perhaps what differentiates highly creative thoughts from ordinary ones is some combined sense of beauty, simplicity, and harmony – deeply related ideas are often superficially disparate. The analogy to chord is natural : physically close notes are harmonically distant and harmonically close notes are physically distant...harmonious *idea-chords* are often widely separated as measured on an imaginary keyboard of concepts.[३५०] Godel ने संख्या (गणित) का प्रयोग किया है, एवं Escher ने चित्रका और Bach ने संगीतका, पर Hofstadter वहीं Idea chord का प्रयोग करते हैं। मस्तिष्ककी रहस्यमय कार्यप्रणालीको समझने और परीक्षण करनेकी दृष्टिसे प्रयोग भिन्न होते हुए भी इनका उद्देश्य एवं लक्ष्य एक ही है। विज्ञानविद् Richard Dawkins ने इस सारे सन्दर्भको आनुवंशिक शास्त्र Genetics की नवीन भावभूमि पर Brain के क्रियात्मक गतिशास्त्रको अपनी विषयविधाकी दृष्टिसे सर्वथा नवीन सन्दर्भमें प्रस्तुत किया है। अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक The Selfish Gene में उन्होंने एक नवीन शब्द – Memes के माध्यमसे अपने कथ्यको इस प्रकार स्पष्ट किया है – जो क्षण-क्षणमें बदलते हमारे विचार हैं। इन्होंने शरीरकी कोशिकाओं (Cells) पर होने वाले Genes के महत्त्वपूर्ण प्रभाव पर अधिक बल दिया है, उनका तर्क है कि Memes किसी प्रकारके नियन्त्रणको Mind या मन पर अत्यन्त क्रियाशील बना देती हैं। आनुवंशिक सूत्र – Genetic Distinction का पार्थक्य सुलभ प्रभाव, उदाहरण रूपसे देखा जाए तो – Beethoven या – Einstein के तीन-चार पीढ़ियों तक पहुँचते-पहुँचते लुप्त या विलीन हो जाता है। पर इनके ये भव्य Genes जब एक बार भी मानवीय आनुवंशिकीके सुविशाल असाधारण महाकुण्डमें निक्षिप्त हो जाते हैं (Once poured into the extraordinarily large vat of the human genetic pool), वे वहाँ सदाके लिए विलीन हो जाते हैं। पर Beethoven या Einstein के Memes – अर्थात् उनके परिष्कृत विचार युग-युगान्तर तक संक्रान्त होते रहते हैं। सम्पूर्ण पशु जगत् जहाँ आनुवांशिक सूत्र पर आश्रित है, वहीं हमारी मानवीय सभ्यता और संस्कृति Memes पर समाश्रित है। Genes हमारी देहाकृतिके निर्माता हैं, यथार्थमें वे ही

हमारी कोशिकाओंके आकारको निर्धारित करते हैं — जब वे हमारे भीतर विद्यमान हैं — यहाँ Dawkins का कथन है .....they cause it to 'selfishly' replicate more and more identical genes. Memes, Dawkins contends, are mind-shapers which pass from brain to brain like an infectious virus, इनके अनुसार मस्तिष्कसे मस्तिष्क तक संक्रमित होने वाले सभी विचार उत्तम नहीं — उनमें भूल भी सम्मिलित है। इन्होंने इसका नामकरण 'Mis-memes' किया है।[३५१] ये सभी, एक प्रकारसे देखा जाय तो, हमारे विचारोंके प्रारूप — Models of thoughts हैं, — जिनका मस्तिष्कके साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित है। इसके लिए विज्ञानके क्षेत्रमें प्रयुक्त होने वाला सर्वाधिक उपयुक्त शब्द Paradigm है। विज्ञानके सैद्धान्तिक इतिहासके उल्लेखनीय निर्माता Thomas Kuhn ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ — 'The Structure of Scientific Revolutions' में इसे इस प्रकार सुस्पष्ट किया है —

Without commitment to a paradigm there can be no science......the study of paradigms is what prepares a student for membership in a particular scientific community. Men whose research is based on shared paradigms are committed to the same rules and standards for scientific practice.... scientific revolutions are inaugurated by a growing sense that an existing paradigm has ceased to function adequately in the exploration of an aspect of nature.[३५२]

Neurology एवं Neurosurgery के सुप्रसिद्ध विद्वान् Richard Bergland ने आजके विज्ञानचिन्तनको वैदिक विज्ञानके सन्दर्भमें भलीभाँति प्रस्तुत करते हुए भारतीय ऋषिचिन्तनकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन निम्न प्रकारसे किया है —

The miracle of the antler, like the miracle of gravity and memory, demands a new 'force' of some kind - a unifying force. It is not explained by any of the four forces that the physicists talk about; neither brain hormones nor brain electricity can move cleverly into 'nothingness'.

Wise men from India predicted that mystical forces regulated the activities of the brain and the body. Inherent in much of what they taught was the notion that the body can be taught to 'think'. Paracrinology verifies their view: the chemical machinery that produces rational thought rests within the body and outside the brain. It is this view of the stuff of thought that provides those in the East a respect for karma - the mysterious life-giving force that flows from life to life. Their view of karma is in every way like the modern physicists view of electrons. They say it is not 'matter' but a 'force'. The Hindu commitment to reincarnation is a wager that karma moves from one moving life to another moving life by the same 'magic' that moves atomic electrons between orbits.

With the discovery of the non-substantial nature of atomic particles and the prediction of a unifying force, Western science has validated much of the ancient, holistic wisdom written 5,000 years ago in Vedic scriptures. The karma of the Eastern mind is so similar to the interdependent forces that scientists such as Schrodinger claim are both the stuff of matter and the stuff of thought that the yogis might rightly claim that karma does exist because Western science has proved it.

The reductionists in the West, however, cannot accept the holistic wisdom of Eastern mysticism even though, at the most fundamental level, their own tools have verified it, and their best physicists are committed to the conceptual need for a unifying force that defies reduction.[३५३]

गगनगंगा हो या सूर्य, चाहे मानव -- विश्वके सम्पूर्ण संरचनात्मक विकासके मूलमें परमसत्ताके अहं-इदम् विमर्शकी ब्लू-प्रिण्ट सर्वत्र विद्यमान है , जिसे सृष्टिकी परम लघुतम इकाई (String) से लेकर उसके परम विस्तार तक सर्वत्र पढ़ा जा सकता है। इसे ग्रन्थके द्वितीय परिच्छेदमें भलीभाँति प्रस्तुत कर दिया गया है। इस ब्लू-प्रिण्ट की वर्णमालाके प्रथम अक्षर 'नाद-बिन्दु-कला'

हैं, जो संरचनाके महाक्रममें 'शक्ति-चेतना और द्रव्य' रूपसे प्रस्तुत होते हैं जिससे 'अग्नीषोमात्मक' विश्वका निर्माण होता है — फलतः सुविशाल अपरिमित गगनगंगाएँ अपने अस्तित्वको ग्रहण करती हैं, ब्रह्माण्डोंके अनन्त चक्रवाल प्रकट हो जाते हैं। सोम ही सामतत्त्वमें बदलता हुआ इनके 'देश-काल-द्रव्य-भाव' का निर्धारण कर देता है, यही है विश्वके चिन्मय सामका परमस्वरूप जो मानवसे परमविश्व तक एक सूत्रताकी छन्दोगतिकी लयबद्धताके साथ विद्यमान है। अभिनयके जगत्में सामकी विविध धाराओंके व्यावर्तनका स्वरूप मानवमें इस प्रकार व्यक्त या प्रकट होता है —

कण्ठेन लम्बयेद्गीतम् हस्तेनार्थं प्रदर्शयेत्।
चक्षुर्भ्यां दर्शयेद्भावं पादाभ्यां तालमाचरेत्॥[३५४]

सामतत्त्वका चाक्षुष रूपविधान भगवान् परमशिवका ताण्डव नृत्य है। सृष्टिके बृहत्सामकी दृष्टिसे उसके सात भेद हैं — (१) कालिका ताण्डव,(२) गौरी ताण्डव, (३) संध्या ताण्डव, (४) संहार ताण्डव, (५) त्रिपुर ताण्डव, (६) ऊर्ध्व ताण्डव एवं (७) आनन्द ताण्डव। आनन्द ताण्डवमें सम्पूर्ण विश्वके पाँच स्वरूप समाहित हैं — सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह। पौराणिक वाङ्मयके अनुसार परमशिवने ताण्डवका प्रदर्शन तीन बार किया था — सर्वप्रथम दारुवनमें अहंकार विमूढ ऋषियोंको उनकी स्वरूप स्थिति प्रदान करनेके लिए, द्वितीय सनक-सनन्दनको ज्ञानोपदेश देनेके लिए एवं तृतीय बार चिदम्बरम्में महाभाष्यकार पतञ्जलि एवं व्याघ्रपादके लिए। भारतीय कलाके इतिहासका सबसे बड़ा प्रतिमान चिदम्बरम्में परमशिवके ताण्डव नृत्यका अधिब्रह्माण्डीय परिसीमामें वह साकार स्वरूप है, जो सृष्टिके सम्पूर्ण अर्थको अपनी भावमुद्राओंके द्वारा अभिव्यक्त कर देता है। डॉ० पोद्दारके शब्दोंमें — 'विश्वके परमव्योम व्यापी स्पन्दमान नृत्यका मूर्त्तवैभव है — व्योमकेश नटराजकी मूर्त्तिका परमविभव। कला यहाँ अनादि-अनन्तके साथ अपना बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव बना लेती है, द्रष्टाके लिए यह कहना बहुत कठिन हो जाता है कौन किसका बिम्ब है कौन प्रतिबिम्ब — ऊँचाइयोंपर स्वयं द्वैतका भेद विगलित हो जाता है — यही तो है भारतीयदर्शनकी अद्वैतसिद्धि। अपनी शिल्पगत परम उदात्ततामें पहुँचकर मूर्त्ति स्वयं गतिशील अनन्तका स्थिर प्रतिबिम्ब बन जाती है'।[३५५]

विश्वके सन्दर्भमें जहाँ बृहत्साम सत् और चिद्रूप है, वहीं वह आनन्दघन है। उसका ही उन्मेष हमारे पार्थिव धरातल पर रथन्तर साम कहा गया है। श्रुतिके अनुसार सामकी पाँच भक्तियाँ हैं — (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) उद्गीथ, (४) प्रतिहार एवं (५) निधन। डॉ० पोद्दारने इसे निम्न प्रकारसे स्पष्ट किया है — 'ओमूके उच्चारणसे विशेष प्रकारके सामकी अभिव्यक्ति होती है, उद्गीथका विज्ञान इसके स्वरूपको भलीभाँति स्पष्ट करता है। सामके प्रस्ताव तो अनेक हैं — पर निधन एक ही है। अनेक स्थानसे प्रवाहित होनेवाली सोमधाराएँ अन्तमें एक ही केन्द्रमें पहुँचती हैं, जिस प्रकार नदियोंके उद्गमस्थल या प्रस्ताव अनेक हैं — पर निधन — जहाँ वे सब एकाकार हो जाती हैं, वह समुद्र एक ही है। प्रस्तावका अर्थ है उत्स या उद्गमभूमि — निधन इन उद्गतोंकी मिलन भूमि है ; जिस स्थानसे सोमकी गति अपने केन्द्रकी ओर गमन करती है — वह प्रस्ताव है, जहाँ जाकर वह समाप्त हो जाती है वही निधन है। श्रुतिके अनुसार प्राण सामरूप हैं, अर्चि ही ऋक् — इसीलिए ऋचा पर आरूढ़ साम ही गाया जाता है — **ऋच्यध्यूढं साम गीयते** यही वैदिक सिद्धान्त है'।[३५६] फलत: वेद द्वारा प्रतिपादित साम तत्त्वके छ: पृष्ठ हैं, जिनमें सृष्टिका समग्र स्वरूप भलीभाँति समाहित है, इनमें तीनका सम्बन्ध हमारी पृथ्वीसे है — उनके नाम — (१) रथन्तर, (२) वैरूप, (३) शाक्कर, उसी प्रकार सूर्यकी सन्निधिसे व्यक्त होनेवाले सामके भी आकाशस्थानीय तीन स्वरूप हैं — (१) बृहत् साम, (२) वैराज साम और (३) रैवत साम। यही परमविश्वका समयोग या सामयोग कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीताने हमारे जीवनके सन्दर्भमें यही कहा है — **समत्वं योग उच्यते**[३५७] — अत: इसे समत्वयोग कहें या सामयोग — तत्त्व एक ही है। सामतत्त्वका सम्पूर्ण विज्ञान सामवेद पर समाश्रित है — अत: गीताकार भगवान् श्रीकृष्णने चारों वेदोंमें मात्र सामवेदको ही अपना स्वरूप बताया है — **वेदानां सामवेदोऽस्मि**[३५८] सामकी परिभाषा यही है — **यच्च सर्वस्मिन् कार्ये समरूपेण तिष्ठति तत्सामेत्युच्यते**, यही सामकी तत्त्ववाची परिभाषाका स्वरूप है — व्यक्तिसे लेकर परमविश्वकी समज्यामिति तक। महाविश्वका परमवैविध्य सामतत्त्वका ही प्रतिफलन है। श्रुतिने परमसे लेकर इसके विस्तारोन्मुख प्रतिनिधि स्वरूपका परिगणनात्मक प्रसङ्ख्यान इन पदोंके माध्यमसे प्रस्तुत किया है — वह प्रकाशस्वरूप परम स्थानका अधिवासी अन्तरिक्षमें निवास करने वाला वसु है, वही हमारे घरोंमें उपस्थित होनेवाला अतिथि है, यज्ञकी वेदी पर विराजमान अग्नि भी वही है, उसमें हवन करने

वाला होता भी वही। मानवमें, देवमें, ऋतमें, आकाशमें अधिष्ठित होने वाला भी वही है, वही अनेक रूपोंमें जलमें, पृथ्वी पर और हमारे सत्कर्मोंमें प्रकट होता है, वही पर्वतों पर विद्यमान है, वही सृष्टिका 'ऋतं बृहत्' सबसे बड़ा सत्य है –

ह ९ सः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षस-
द्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥[३५९]

ऋषियोंने ध्यान योगमें स्थित होकर सृष्टिके परम रहस्योंका पता लगाया था – उन्होंने अपने ही गुणोंसे ढकी हुई देवात्मशक्तिको देखा, वह एक ही – कालसे लेकर आत्मा तक सम्पूर्ण कारणों पर शासन करती है –

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥[३६०]

व्यक्तिको जब दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है, तब भौतिक यन्त्रोंकी साधनिका बहुत पीछे छूट जाती है – वह सम्पूर्ण विश्वको हस्ततल पर रखे हुए आमलककी तरह देखता है, चाहे वह परमसूक्ष्म अधिसूत्रात्मक जगत् हो या परम बृहद् गगनगगाओंका चक्रवाल। मुण्डक श्रुतिके अनुसार ध्यानयोगमें प्रकट होने वाला प्रकाश तो आत्मज्योतिका परमप्रकाश है – जिसके समक्ष न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्र और तारक समूह, न विद्युत्की चमक, अग्निका प्रश्न ही नहीं उठता, उसके प्रकाशसे ही ये सभी प्रकाशित होते हैं, सम्पूर्ण विश्व उसके आलोकसे ही आलोकित है[३६१] –

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

परिशिष्ट

भारतीय वाङ्मयमें काल-तत्त्वका स्वरूप अवधारणा और प्रतीति

काल भारतीय दृष्टिसे अक्षरतत्त्वकी क्षरक्रिया है, इतिहास इसका क्षरकर्म। कालतत्त्वके इस क्षरकर्मको खोजते हुए भारतीय दर्शन और विज्ञानके आचार्य महाकालके उस मान और मेय तक पहुँच चुके थे — जहाँ नीहारिकायें महापिण्डोंके रूपमें परिणत होती हैं। यह सम्पूर्ण भूत-भवत्-भविष्यत्के रूपमें उपस्थित होने वाला जगत् 'ॐ'कारस्वरूप अक्षरतत्त्वका ही उपव्याख्यान है — **ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।**[३६२] अनन्त विश्वकी संरचना, इसके भुवन-कोशोंका संख्यातीत विस्तार, आकाशगंगाका सीमातीत उपबृंहण, अपरिमित ब्रह्माण्डपिण्डोंका समुद्भव, मानव सहित इनका विपुल प्रजातीय विस्तार — सब कुछ कालद्रव्यके भीतर समाहित है। इस अनन्त उपबृंहणकी समग्र 'ब्लू-प्रिण्ट' को काल अपने भीतर सुरक्षित रखते हुए परिणमनके क्रमपर गतिशील होता है। काल आकाशतत्त्वका भी जनक है। भारतीय काल-गणनाके अनुसार सन्दोलनात्मक विश्वके आदिहिरण्यगर्भका प्रथम शब्द-स्फोट — १५,५५,२१९७२९,४९०९९ वर्ष पूर्व हुआ था। काल सृष्टिका परम छन्द है — यह सृष्टि इस छन्दका छन्दोबद्ध अनुशासन। **छादनात्-छन्दः** — जो कालके कलांशको आच्छादित करता है, वही तो सृष्टिका परम आच्छादक तत्त्व है। कवि कालके कलनात्मक स्वरूपको आच्छादित करता है और विश्वके परम रहस्यपर आरूढ़ हो जाता है —

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः॥[३६३]

यही तो ऋक्‌के परावाक्‌का 'अजर-धर्मी' मन्त्र देह है, यही सृष्टिका परम सामनामका तत्त्व है – इसके भीतर प्रविष्ट होकर कवि कालातीत हो जाता है। कवि सूर्यका नाम है – मन्त्र-द्रष्टा ऋषि भी कवि कहा गया है। सम्पूर्ण भुवन-कोशकी यह सम्पूर्ण प्रतिष्ठा छन्दोमयी है। काल और छन्दका स्वरूप सम्बन्ध है। परमसत्ता जो कार्य कालको संक्षुब्ध करके करती है – कवि वही कार्य छन्दके संक्षोभसे सम्पन्न करता है। कवि (सूर्य अर्थमें भी) जब कालको नियंत्रित करता है – सर्ग-सृष्टिका कार्य प्रारम्भ हो जाता है। इसे लक्ष्यमें रखते हुए ही लक्षणा वृत्तिका आश्रय लेकर कालान्तरमें कहा गया – **सर्गबद्धो महाकाव्यः**, जो काव्यके सन्दर्भ तक ही रूढ़ होकर रह गया है। यह विराट् विश्व महाकालका परम निध्वान है। प्राय: सभी भारतीय दर्शन कहीं अल्प और कहीं विस्तारके साथ इस कालतत्त्वकी मीमांसामें प्रवृत्त होते हैं। प्रबन्धके विवेच्य विषयका यहाँ पुंखानुपुंख क्रमके स्थानपर सम्प्रदाय-परम्पराके क्रमसे ही ग्रहण किया गया है।

१) **वेद** – ऋग्वेदके अनुसार काल-तत्त्वकी सत्ताका स्वरूप जहाँ निरपेक्ष है, वहीं सापेक्ष भी है। काल स्वयं निराधार होते हुए भी अखिल विश्वका आधारतत्त्व है। ऋग्वेदमें कालकी सत्ता एक नित्य तत्त्वके रूप में स्वीकार की गई है। **अस्यवामस्य सूक्त** के द्वितीय मंत्रमें स्पष्ट कहा गया है –

त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।[३६४]

यहाँ काल की नित्यसत्ता को स्वीकार करते हुए ही उसे संवत्सर प्रधान कहा गया है। इसी सूक्त के अगले मन्त्र में कहा है –

पंचपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम्।[३६५]

यहाँ **पितरम्** पदके द्वारा कालका सर्वोत्पत्ति-स्थिति-कारणत्व प्रतिपादित हुआ है। श्रीदुर्गाचार्यने निरुक्तकी टीकामें इसी अर्थका ग्रहण किया है – **पितरं पालकं सर्वभूतानामुत्पादयितारं वेति** – इसके पूर्व वे कहते हैं – **पितरमित्यनेन कालस्य सर्वोत्पत्तिस्थितिकारणत्वं प्रत्यपादि।**

अथर्ववेदके अनुसार कालतत्त्व परमसत्तासे पृथक् नहीं, वह परमात्म स्वरूप है। यहाँ कालपरक आठवें सूक्तमें दस मन्त्र एवं नवम सूक्तमें पाँच मन्त्र हैं। सायणके अनुसार काल यहाँ परमेश्वरसे भिन्न नहीं **अनेन सूक्तद्वयेन**

सर्वजगत्कारणभूत: कालरूप: परमात्मा स्तूयते।[366] शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद सम्बन्ध होनेके कारण यहाँ 'काल' ब्रह्मकी स्वातन्त्र्य-शक्तिका ही नामान्तर है। अत: कालतत्त्वको यहाँ ब्रह्मसे पृथक् करके नहीं देखा जा सकता, लगता है आचार्य भर्तृहरिके सिद्धान्तका आधार ये सूक्त-द्वय ही हैं।

२) **उपनिषद्** — उपनिषदोंके अनुसार काल न नित्य है, न ईश्वरस्वरूप। माण्डूक्य उपनिषद् इसे अक्षरतत्त्वसे समुद्भूत मानता है, जैसा कि अध्यायके प्रारम्भमें ही कहा जा चुका है। काल अन्य तत्त्वोंकी तरह एक उत्पत्तिधर्मी तत्त्व है, जिस प्रकार ईश्वरसे यह सम्पूर्ण वस्तुजगत् उत्पन्न होता है, उसी तरह यह काल भी उसीसे उत्पन्न होता है —

तस्मादृच: साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोका: सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य: ॥[367]

कालके स्थान पर यहाँ 'संवत्सर' पदका प्रयोग हुआ है, आचार्य श्रीशंकरने कालअर्थमें ही इस पदका निर्वचन किया है — **संवत्सरश्च काल: कर्माङ्गम्।** बृहदारण्यक उपनिषद्‌के अनुसार भी कालकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं, वह ईश्वराधीन है — **एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा ऋतव: संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्ति।**[368] भगवत्पाद श्रीमाधवाचार्यने भी सूतसंहिताकी व्याख्यामें इस श्रुतिका आश्रय लेकर ही कहा है — **कालस्य हि शिवायत्तता श्रूयते।**[369]

३) **स्मृति** — मनुसंहितामें कथित कालके स्वरूपको लेकर टीकाकारोंमें पर्याप्त मतभेद है। मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायमें ही काल-तत्त्वका उल्लेख किया गया है **कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा।**[370] यहाँ प्रथम **कालम्** पदमें एक वचनका व्यवहार होनेके कारण 'एकत्व-युक्त' कालतत्त्वका ग्रहण है, द्वितीयमें 'कालविभक्ति' पदसे व्यावहारिक कालके खण्ड अवयवोंका संकेत है। प्रसिद्ध एवं प्राचीन भाष्यकार आचार्य मेधातिथिने अनेक दृष्टियोंको सामने रखकर इस श्लोककी व्याख्या की है — **द्रव्यात्मा कालो वैशेषिकाणाम्, क्रियारूपोऽन्येषामादित्यादिगतिप्रतान आवृत्तिमान्। कालविभक्तयो विभागा मासर्त्वयनसंवत्सराद्या:।**[371]

मेधातिथि ही नहीं, अन्य कुल्लूक, राघवानन्द नन्दन आदि प्रसिद्ध टीकाकार सूर्यादिसे परिस्पन्दित गतिको ही काल अर्थमें प्रधानता देते हैं। आचार्य सर्वज्ञनारायणने सामान्य कालको पुरुष रूपमें ग्रहण करते हुए — कालतत्त्वके भीतर चेतनाके अस्तित्वको स्वीकार किया है। 'काल-विभक्ति' पदसे वे 'क्षण-दिन-मास-वर्ष-कल्प' आदिको भी चेतन अभिमानी देवताके रूपमें ही प्रतिपादित करते हैं। आचार्य श्रीरामचन्द्रने ऋग्वेदका आश्रय लेते हुए 'सामान्य-काल' की व्याख्या 'संवत्सर' के अर्थमें ही की है, 'काल-विभक्ति' पदका व्याख्यान ऋतु आदिके सन्दर्भमें किया गया है जो स्वयं सम्वत्सरके अन्तर्गत है।

४) **रामायण** — भारतीय साहित्यमें सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायणमें कालतत्त्वका मूर्तिमान् स्वरूप 'कथा-रूपक' की सीमामें रखा गया है। 'अवतारतत्त्व' की मर्यादामें निर्गुण निराकार ब्रह्म जब देह धारण करता है — तब निराकार काल स्वयं वहाँ कैसे पृथक् रह सकता है। परमधाम गमनके समय ब्रह्मासे प्रेरित काल 'पुरुषाकृति' धारण कर श्रीरामके सम्मुख उपस्थित होता है। उनसे ब्रह्मलोक चलनेकी प्रार्थना करता हुआ — अपने जन्यजनक भाव सम्बन्धको स्पष्ट करता है — 'इस विश्वका उपसंहारकर शेषशय्यापर शयन करते समय आपने मुझे उत्पन्न किया था।'

संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि।
महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः।[३७२]

यहाँ काल उत्पत्तिधर्मी एवं परतन्त्र कहा गया है, साथ ही सृष्टि निर्माणसे पूर्व इसकी तात्त्विक स्थिति स्वीकार की गई है।

५) **महाभारत** — महाभारतकी तत्त्वदृष्टि सांख्यशास्त्र प्रधान है — साथ ही ब्रह्माद्वैतका प्रभाव दिखलाई देता है। अतः यहाँ कालका विवेचन तत्त्वप्रधान न होकर गौण ही है। कालतत्त्वका उल्लेख यहाँ व्यावहारिक या प्रासंगिक है, फिर भी कालका सन्दर्भ यत्र-तत्र तत्त्वप्रधान भी उपलब्ध हो जाता है। शान्तिपर्वके मोक्षधर्म प्रस्थानमें संसार-चक्रमें जीवात्माकी स्थितिपर विचार करते हुए, कालतत्त्व पर भी विचार किया गया है। यहाँ कार्य-कारण सम्बन्धके शृंखलास्थापनमें कालको ही हेतु रूपसे कहा गया है — उसके

अभावमें इस शृंखलाका चक्राकार प्रवर्त्तन नहीं हो पाता।

नाभ्येति कारणं कार्यं न कार्यं कारणं तथा।
कार्याणां तूपकरणे कालो भवति हेतुमान्।[३७३]

महाभारतका कथन है — जो भी परिदृश्यमान है, वह युगादिमें कालतत्त्वके संयोगसे ही प्रकट होता है —

अथ यद्यद् यदा भाति कालयोगाद् युगादिषु।
तत्तदुत्पद्यते ज्ञानं लोकयात्राविधानजम्॥[३७४]

कालको सम्पूर्ण प्रजाओंका जनक एवं संहारकर्त्ता भी कहा गया है —

विहितं कालनानात्वमनादिनिधनं तथा।
कीर्तितं तत्पुरस्तात्ते तत्सूते चात्ति च प्रजा:॥[३७५]

आगे चलकर 'व्यास-शुक-सम्वाद' स्थलपर महाप्रलयके समय सृष्टिके लय-क्रम प्रतिपादनके संदर्भमें कालतत्त्वका व्याख्यान हुआ है। सभी तत्त्वोंका अन्यान्यमें विलय कहते हुए — कालका बलमें लय कहकर पुन: बलका कालमें लय कहा है —

कालो गिरति विज्ञानं कालं बलमिति श्रुति:।
बलं कालो ग्रसति तु तं विद्वान् कुरुते वशे॥[३७६]

यहाँ पाठभेदसे 'विद्वान्' पदके स्थानपर 'विद्या' पद भी प्राप्त है।

६) **गीता** — सांख्यप्रधान होनेके कारण गीतामें कालका तत्त्व-पक्ष गौण ही है। तात्त्विक सन्दर्भसे देखा जाय तो यहाँ 'काल' पदका प्रयोग तीन विशिष्ट अर्थोंमें हुआ है, पर तीनों स्थलोंमें ही काल भगवान्से पृथक् नहीं, वह उनका ही स्वरूप है —

१ - 'काल का संख्यात्मक स्वरूप मैं ही हूँ' — **काल: कलयतामहम्**[३७७], २ - 'कालका नित्यस्वरूप मैं ही हूँ' — **अहमेवाक्षय: कालो**[३७८], ३ - 'संहार-मूर्त्ति काल भी मैं ही हूँ' — **कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्ध:**[३७९] अन्यत्र गीता में 'काल' शब्दका प्रयोग पाँच या छ: स्थलोंमें व्यावहारिक ही है, यथा — **स कालेनेह**

महता योगो नष्टः परंतप[३८०] आदि। तात्त्विक दृष्टिसे भगवद्गीतामें काल 'कलनात्मक', 'अक्षय' एवं 'संहारमूर्त्ति' के रूपमें गृहीत है, जो परमब्रह्मसे भिन्न नहीं।

७) **पुराण** – पुराण ३० तत्त्वोंको स्वीकार करता है, जिनमें २४ तत्त्व तो सांख्यस्वीकृत हैं, इनमें छः तत्त्व-महान्, काल, प्रधान, माया, अविद्या और पुरुषका योग कर देने पर यह संख्या पूर्ण हो जाती है –

महान् कालः प्रधानं च मायाऽविद्ये च पूरुषः।
इति पौराणिकाः प्राहुस्त्रिंशत्तत्त्वानि तैः सह॥[३८१]

पौराणिक मतानुसार काल ईश्वरकी चेष्टाका नाम है। विष्णुपुराण विवर्तवादका निरूपण करता हुआ – तात्त्विक जगत्के पदार्थोंका ग्रहण विवर्तके अर्थमें ही करता है। विवर्तका अर्थ है – एक ही अद्वितीय तत्त्वका भ्रान्तिवश अनेक रूपोंमें प्रतिभास। एक ही ब्रह्म व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और काल रूपसे प्रतिभासित होता है -

तदेव सर्वमेवैतद् व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत्।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम्॥[३८२]

पुनः कालके सन्दर्भमें इसी सिद्धान्तको बड़ी दृढ़ताके साथ दुहराया गया है –

कालस्वरूपं रूपं तद् विष्णोर्मैत्रेय वर्त्तते॥

यह विष्णुस्वरूपकाल आदित्यपरिस्पन्दजन्य काल नहीं, यह नित्यकाल है। प्रकृति और पुरुषके संयोगमें यही हेतुभूत है – जिससे सृष्टि और प्रलयके चक्रका प्रवर्त्तन होता है। यह विष्णुकी आदिअन्तरहित अनादि 'काल-मूर्त्ति' है। यही निर्माण और विध्वंसकी कारणस्वरूपा है –

अनादिर्भगवान् कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः॥[३८३]

भागवतके अनुसार काल-तत्त्व ईश्वरकी शक्ति है, जैसे काष्ठमें अग्नि अपनी दाहात्मिका शक्तिको छिपाकर रखती है, उसी प्रकार परमात्माने अपने शरीरमें प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरोंको लीनकर आधारभूत जलमें शयन किया, सृष्टिकाल

आने पर उन्हें पुन: जागृत करनेके लिए प्रथम काल-शक्तिको अभिप्रेरित कर दिया —

सोऽन्त:शरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्म: कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाण: ।
उवास तस्मिन् सलिले पदे स्वे यथानलो दारुणि रुद्धवीर्य: ।।[३८४]

वहाँ काल-तत्त्वका आकलन इस प्रकार है —

स काल: परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स काल: परमो महान् ।।[३८५]

इस श्लोकके अनुसार जो काल परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्थामें व्याप्त रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है, जो सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर समस्त अवस्थाओंका भोग करता है वह काल परम महान् है। इसी अध्यायमें आगे चलकर कहा गया है — ग्रह-नक्षत्र और समस्त तारामण्डलके अधिष्ठाता कालरूप सूर्य परमाणुसे लेकर संवत्सरपर्यन्तकालमें द्वादशराशिपूर्ण सम्पूर्णभुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं —

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थ: परमाण्वादिना जगत् ।
संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभु: ।।[३८६]

आचार्य श्रीधरने इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है — सूर्यको परमाणुका अतिक्रमण करनेमें जितना समय लगता है — वह कालका सूक्ष्मतम मान है। प्रकाशकी गति एक सेकन्डमें ३ लाख किलोमीटर है, हाइड्रोजन परमाणुका व्यास (Diameter) १.०५८३२ x $१०^{-८}$ C M है ; अत: गणितके अनुसार सम्पूर्ण परमाणुके व्यासको पार करनेमें प्रकाशको एक सेकण्डकी इकाई पर १८ शून्यवाँ भाग और फिर इसका भी एक तिहाई भाग लगेगा, अर्थात् — एक सेकण्डके महाशंखवें भागका यह तीसरा भाग है। आचार्य श्रीधरने परमाणु-गत कालविज्ञानका संकेत स्पष्टत: इन शब्दोंमें किया है ..... **तत्र सूर्यो यावता परमाणुदेशमतिक्रामति तावान् काल: परमाणु:**.....[३८७] यहाँ सम्पूर्ण पुराणवाङ्मयके कालसन्दर्भोंका उल्लेख सम्भव नहीं, अत: नामोल्लेखकी दृष्टिसे विष्णुपुराण और भागवतका ही आश्रय लिया गया है।

८) **सांख्यदर्शन** — सांख्यशास्त्रमें कालपदार्थका अभाव सर्वत्र उपलक्षित होता है। ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्यपर रत्नप्रभाकारने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है — सांख्य कालकी सत्ताको स्वीकार नहीं करता— **सांख्यैः कालस्यानङ्गीकारात्......**[३८८] ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिकाकी टीका 'तत्त्वकौमुदी' में भी आचार्य वाचस्पति मिश्रका यही अभिमत है।[३८९] सांख्यशास्त्रके अधिकांश ग्रन्थ आज लुप्तप्राय होनेके कारण निश्चितरूपसे कुछ भी कहना सम्भव नहीं, पर लगता है, अपनी मूलभूत तात्त्विक प्रतिबद्धताके कारण सांख्यदर्शन कालशब्दके स्थानपर परिणामशब्दका प्रयोग करता है —

परिणामः पृथग्भावो व्यवस्थाक्रमतः सदा।
भूतैष्यद्वर्त्तमानात्मा कालरूपो विभाव्यते ।।[३९०]

इस आप्तवाक्यसे प्रतीत होता है — कुछ आचार्योंके मतसे प्रकृतिका परिणमन ही काल है। सांख्यमें कालतत्त्वकेअभावको देखकर ही पराशरसंहिताके प्रसिद्ध भाष्यकार श्रीमाधवाचार्यने सांख्यके 'प्रधान' नामक तत्त्वको कालरूपसे व्यवहृत करनेकी सलाह दी है —**प्रधानवादे पञ्चविंशतितत्त्वेभ्यो बहिर्भूतस्य कालतत्त्वस्याभावात् प्रधानमेव कालशब्देन व्यवह्रियताम्।**[३९१] युक्तिदीपिकाकारने सांख्यकारिकाकी टीकामें कालपदार्थके अभावकी ओर संकेत करते हुए, कालको क्रियारूप कहकर स्वीकार किया है **न कालो नाम कश्चित् पदार्थोऽस्ति, किं तर्हि क्रियासु कालसंज्ञा।**[३९२] यह टीका प्राप्त टीकाओंमें प्राचीनतम एवं एक प्रौढ़ टीका है, पर लेखकका नाम अज्ञात ही है।

महर्षि कपिलके नामसे प्रचलित सांख्यसूत्रमें कालतत्त्वका उल्लेख हुआ है। **दिक्कालावाकाशादिभ्यः**[३९३] पर विद्वानोंको इसकी प्राचीनता एवं साथ ही इसके कपिलकृत होनेमें भी सन्देह है। इस सूत्रके भाष्यकार आचार्य विज्ञानभिक्षुने कालतत्त्वके नित्य और अनित्य दो भेद स्वीकार किये हैं। वृत्तिकार आचार्य अनिरुद्ध इस सूत्रकी व्याख्या करते समय इन दो भेदोंको स्वीकार नहीं करते, इनके मतसे 'खण्ड-काल' की सत्ता है, वे इसे आकाशतत्त्वकी उपाधि कहते हुए — आकाशतत्त्वमें ही कालका अन्तर्भाव करते हैं — **तत्तदुपाधिभेदादाकाशमेव दिक्कालशब्दवाच्यम्। तस्मादाकाशेऽन्तर्भूतौ।**[३९४] यही मत वेदान्ती महादेवका भी है। भगवत्पाद आचार्य श्रीशंकरके 'दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र' पर आचार्य

श्रीसुरेश्वरका 'मानसोल्लास' वार्त्तिक एवं उसपर श्रीरामतीर्थपादकी लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पुरानी 'वृत्तान्त' नामक टीका है, इसमें प्रसंगत: निरीश्वर सांख्यदर्शनका कथन हुआ है। यहाँ भूत-भविष्य-वर्तमानरूपमें कालकी व्यावहारिकसत्ता स्वीकार की गई है — **कालश्च भूतं भवद् भविष्यदिति व्यवह्रियमाणपदार्थव्यतिरेकेण न स्वतन्त्रोऽस्ति।**[३९५]

९) **योगदर्शन** — योग और सांख्यदर्शन समानतन्त्र कहे गये हैं — अत: योगदर्शन सेश्वरसांख्यके नामसे भी प्रसिद्ध है। इस दर्शनमें 'क्षणात्मक' विभागी कालको ही काल शब्दसे सम्बोधित किया गया है — मुहूर्त्त, अहोरात्र, मास, वर्ष आदिकी सत्ता तात्त्विक न होकर बुद्धि परिकल्पित कही गई है। पातञ्जलसूत्र — **क्षणतत्क्रमयो: संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्**[३९६] के व्यासभाष्य पर विज्ञानभिक्षुने व्याख्या करते हुए लिखा है — **इदानीं क्षणातिरिक्त: कालो नास्ति मुहूर्त्तादिरूपो महाकालपर्यन्त इति....** वे आगे चलकर कहते हैं — **मुहूर्त्ताहोरात्रादयो बुद्धिकल्पितसमाहार एव।**[३९७] व्यासभाष्यमें 'क्षण' को — .....**क्षणस्तु.......वस्तुपतित.....** कहा है।[३९८] आचार्य श्रीवाचस्पति मिश्रने 'तत्त्ववैशारदी' में इसका भाष्य करते हुए लिखा है — **वस्तुपतितो वास्तव:** [३९९] जो वस्तुपतित है, वही तो वास्तविक है, पातञ्जलदर्शन अविभागी 'क्षण' को ही कालतत्त्वके रूपमें स्वीकार करता है।

१०) **मीमांसादर्शन** — मीमांसा दर्शन कहनेसे भट्ट, मिश्र और गुरु तीनोंके मतका ग्रहण होता है, पर आचार्य मुरारि मिश्रका निर्वचन अभीतक अनुपलब्ध-सा ही है। अत: यहाँ आचार्य कुमारिलभट्ट और प्रभाकर गुरुके मतका उपन्यास ही अभिमत है। आचार्य भट्टपादके अनुसार 'काल' विभु एवं नित्य द्रव्य है। इस मतमें ग्यारह द्रव्य स्वीकार किये गये हैं, इनमें 'काल' एक स्वतन्त्र द्रव्य है — **द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजो-वाय्वाकाशकालदिगात्ममनोऽन्धकारशब्दरूपाण्येकादश**[४००] द्रव्य मीमांसकोंके अनुसार 'परिमाण गुणाधार' है — **परिमाणगुणाधारं द्रव्यं द्रव्यविदो विदु:।**[४०१] इनके मतसे काल-द्रव्यकी सत्ता छहों इन्द्रियोंसे ग्राह्य है — **स च काल: षडिन्द्रियग्राह्य:।**[४०२] शास्त्रदीपिकाके अनुसार

इन्द्रियाँ कालद्रव्यका ग्रहण स्वतन्त्र रूपसे न कर विशेषणतासम्बन्धसे करती हैं।[४०३] इस मतको अद्वैतसिद्धिकार आचार्यप्रवर श्रीमधुसूदन सरस्वतीपादने भी अपने ग्रन्थके प्रथम परिच्छेदमें मीमांसक सम्मत कहते हुए कालके इन्द्रिय प्रत्यक्षविषयत्वको इस प्रकार प्रस्तुत किया है — **कालस्य च रूपादिहीनस्य मीमांसकादिभिः सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वाभ्युपगमाद्**[४०४] मीमांसकोंके मतसे घ्राण आदि पाँच बाह्य इन्द्रियाँ हैं एवं मन आभ्यन्तर इन्द्रिय है।

लघुचन्द्रिकाकार श्रीमद्ब्रह्मानन्दस्वामीने इस प्राचीन उक्तिका प्रकारान्तरसे प्रयोग करते हुए — कालके सन्दर्भमें मीमांसकोंकी दृष्टिसे एक बात विशेषरूपसे कही है — **न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते।**[४०५] ज्ञान स्वयं कालसे अवच्छिन्न होकर ही अपने विषयका ग्रहण करता है। ज्ञानमात्रका अज्ञातज्ञापकत्व धारावाहिक ज्ञानस्थलमें अपने अधिकरणभूत क्षणकी विशिष्टताको ग्रहण करते हुए ही बोधजन्य व्यापारका सम्पादन करता है। पके हुए 'रक्त-घट' में 'श्याम' वर्णका ज्ञानजन्य विनिश्चय पाकदशासे पूर्वक्षणकी अविच्छिन्नताके कारण होता है। स्मृति 'स्व-कारणगृहीत' कालावच्छिन्न होनेसे ही स्मृतिज्ञानका स्व-विषय बनती है। 'क्षण' में स्वतः प्रत्यक्षायमानत्व नहीं है, क्योंकि 'क्षण' अतीन्द्रिय है। अतः नवीन भाट्टमतके अनुसार 'क्षण' सम्पूर्ण ज्ञानमात्रके प्रति —'विषयविशेषणता' सम्बन्धसे ही बोधका हेतु होता है। उपर्युक्त श्रीब्रह्मानन्दपादकी पंक्तिका यही आशय है।

आचार्य प्रभाकर गुरुका मत वैशेषिकोंकी तरह ही कालके द्रव्यत्व, विभुत्व, अतीन्द्रियत्वको स्वीकार करता है। गुरुमतमें उपाधिभेदसे ही क्षण, मास, सम्वत्सर आदिका ग्रहण है। इस मतमें काल पर कोई मौलिक चिन्तन पृथग् रूपसे नहीं हुआ है, यहाँ वैशेषिकोंके मतको ही शब्दतः स्वीकार कर लिया गया। श्रीरामानुजाचार्यका गुरुमत पर 'तन्त्ररहस्य' नामक प्रसिद्ध प्रकरणग्रन्थ है, जिसमें काणादमतके स्वारस्यका ग्रहण इन शब्दोंके साथ किया गया — **तत्र चाभ्युपगमसिद्धान्तन्यायेन काणादतन्त्रसिद्ध एव प्रमेयवर्गोऽङ्गीक्रियते।**[४०६]

११) **वेदान्त** — अद्वैतवेदान्त परमअर्थमें ब्रह्मको छोड़कर किसी भी अन्य तत्त्वकी मौलिक सत्ता स्वीकार नहीं करता। जब यह 'सम्पूर्ण' ब्रह्म है,

तो कालकी स्वतन्त्र सत्ताका प्रश्न ही नहीं उठता। भगवत्पाद आचार्य शंकरने सत्ताका निर्वचन त्रिविध प्रकारसे किया है — १— पारमार्थिकी सत्ता, २— व्यावहारिकी सत्ता एवं ३— प्रातिभासिकी सत्ता। परम अर्थमें ग्रहण की हुई सत्ता वह है, जो तीनों कालोंमें व्यभिचरित नहीं होती — यथा ब्रह्म। ब्रह्म साक्षात्कारके पूर्व संसारदशामें आकाश पृथ्वी आदिकी सत्ता व्यावहारिक है ; भ्रमवश शुक्तिमें रजत, रज्जुमें सर्प आदि प्रातिभासिक सत्ताके उदाहरण हैं। अत: अद्वैतवेदान्तके अनुसार कालकी सत्ता परमअर्थमें नहीं, वह व्यावहारिक है। खण्डनखण्डखाद्यके चतुर्थ परिच्छेदके 'कारणत्व-खण्डन' प्रसंगमें वर्तमान, भूत आदि कालके विभागोंका प्रत्याख्यान करते हुए महापण्डित श्रीहर्षने बड़ी तर्जनाके साथ सम्पूर्ण कालतत्त्वका ही प्रत्याख्यान कर दिया है — **नियमे च प्राक्कालीनतयाऽभिधीयमाने प्रागित्यस्य व्यवच्छेद्यौ वर्त्तमानभविष्यत्कालौ प्राक्कालश्च व्यवच्छेदको विवेचनीय:, न च तद्विवेचनं शक्यम्....** [४०७]

व्यवहारदशामें अद्वैतवेदान्त कालकी प्रत्यक्ष सत्ताको स्वीकार करता है। श्री धर्मराजाध्वरीन्द्रने 'वेदान्त-परिभाषा' में सर्वप्रथम प्रमाण लक्षणमें लिखा है — **अनधिगताबाधितार्थविषयज्ञानत्वमिति**[४०८] प्रमाणका लक्षण किया गया है — 'अनधिगत' और 'अबाधित' विषयका ज्ञान ही प्रमा है। धारावाहिक प्रत्यक्षस्थलमें अव्याप्तिको बाधित करनेके लिए कहा — **नीरूपस्यापि कालस्येन्द्रियवेद्यत्वाभ्युपगमेन धारावाहिकबुद्धेरपि पूर्वपूर्वज्ञानाविषय-तत्तत्क्षणविशेषविशिष्टविषयकत्वेन न तत्राव्याप्ति:।**[४०९] इस पंक्तिका तात्पर्य है — जिस द्रव्यमें उद्भूत रूप और महत्त्व परिमाण होता है, वही चाक्षुष विषयका प्रत्यक्ष है, ऐसी तार्किकोंकी मान्यता है। 'इस कालमें घट है'— यह अनुभव सभीको होता है। यहाँ — 'इस काल में' यह शब्द-व्यवहार वर्तमान कालका ज्ञान करा रहा है, अत: यहाँ वेदान्तमतसे रूपरहित होने पर भी कालका इन्द्रिय-विषयत्व माना गया है। इस ग्रन्थकी 'शिखामणि' टीकामें कालका प्रत्यक्षज्ञान विशेषणतया स्वीकार किया गया है।

ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें आचार्य श्रीशंकरने आकाशादिकी व्यावहारिक सत्ताकी चर्चा तो की है, पर वहाँ कालकी व्यावहारिक सत्ताका उल्लेख नहीं

हुआ है। इसी प्रकार अद्वैतवेदान्तके निबन्ध ग्रन्थोंमें भी कालकी स्वतन्त्र व्यावहारिक सत्ताके विवरणका अभाव है। श्रीमधुसूदनसरस्वतीपादने सिद्धान्त-बिन्दुके अष्टम श्लोककी टीकामें कालका उल्लेख अविद्याके अन्तर्गत किया है — **कालस्तु अविद्यैव, तस्या एव सर्वाधारत्वात्।**[४१०] अद्वैतब्रह्मसिद्धिके 'प्रथम मुद्गरप्रहार' में ही काश्मीरक सदानन्दने भी कालको अविद्यात्मक कहा है — **कालस्याविद्यात्मकत्व- स्वीकाराद्।**[४११] लगता है — कुछ न्यूनसंख्यक आचार्योंको यह मत स्वीकार्य नहीं। वे अविद्याके स्थानपर कालका सम्बन्ध 'ब्रह्म-विद्या' से स्वीकार करते हैं। यह सम्बन्ध 'मायाचित्सम्बन्ध' के रूपमें वहाँ चर्चित हुआ है। इस मतका उल्लेख श्रीसदानन्दपादने 'एकदेशिनः' पद-व्यवहारके साथ किया है — **मायाचित्सम्बन्ध एव काल इति तदेकदेशिनः।**[४१२] मानसोल्लासमें कालको ब्रह्मकी क्रियाशक्ति कहा गया है —

कालरूपक्रियाशक्त्या क्षीरात्परिणमेद्दधि[४१३]

वाक्यपदीयकार भगवान् हरिने कालकी 'संकलनात्मक' बुद्धिके रूपमें चर्चा की है। क्षण, मास, संवत्सरादिका व्यवहार संकलनात्मक बुद्धिका ही व्यापार है। वैसे आचार्य हरिने 'केचित्' शब्दके द्वारा किसी प्राचीनमतको ही यहाँ उद्धृत किया है — **केचिद्बुद्ध्यनुसंहारलक्षणं तं (कालं) प्रचक्षते।**[४१४] श्रीमृगेन्द्रवृत्तिदीपिकाके अनुसार यह मत जहाँ वेदान्तसम्मत है, वहीं आचार्य हेलराजके अनुसार यह बौद्धसिद्धान्त है।

१२) **वैशेषिकदर्शन** — महर्षि कणादके सिद्धान्तमें काल नौ द्रव्योंमें एक महत्त्वपूर्ण द्रव्य है। यह द्रव्य नित्य, विभु और एक है, नानात्व की प्रतीति व्यवहारवशतः औपाधिक है। काणादसूत्र पर प्रशस्तपाद भाष्य इस प्रकार है — **काललिङ्गाविशेषादञ्जसैकत्वेऽपि** इस पर न्यायकन्दलीकार श्रीधर भट्टने कालके एकत्वका प्रतिपादन करते हुए, उसके भेद प्रतिपादकत्वको इस प्रकार स्वीकार किया है — **काललिङ्गानां परापरादिप्रत्ययानामविशेषाद् भेदाप्रतिपादकत्वादञ्जसा मुख्यया वृत्त्या कालस्यैकत्वेऽपि सिद्धे नानात्वोपचारान्नानात्वव्यपदेशः।**[४१५] वैशेषिकोंके सिद्धान्तानुसार काल प्रत्यक्ष प्रमाका विषय नहीं है, इसके विपरीत भाट्टमतके मीमांसक कालको प्रत्यक्ष प्रमाका विषय स्वीकार करते हैं। कालकी सत्ताका विनिश्चय

काणादतन्त्रमें अनुमानप्रमाणसे ही किया जाता है। आचार्य उदयनने इसे किरणावलीमें अनुमान द्वारा ही सिद्ध किया है।[४१६]

आचार्य प्रशस्तपादने काल-द्रव्यके पाँच गुण कहे हैं:— १—संख्या, २—परिमाण, ३—पृथक्त्व, ४—संयोग और ५—विभाग। **तस्य गुणा: संख्या-परिमाण पृथक्त्वसंयोगविभागा:** ।[४१७] कालको 'काणादसिद्धान्तचन्द्रिका' में सर्व उत्पत्तिका निमित्तकारण एवं विश्वका आधारतत्त्व भी कहा गया है — **सर्वोत्पत्तिनिमित्तं जगदाधारश्च काल:** ।[४१८]

१३) **न्यायदर्शन** — न्याय और वैशेषिक समानतन्त्र कहे गये हैं, जो तत्त्व वैशेषिकोंका सिद्धान्तसम्मत है, वही नैयायिकोंका भी अनुमत है। वैशेषिक दर्शन प्रमेयप्रधान है, न्यायदर्शन प्रमाणप्रधान, जिस तत्त्वचर्चाको कालके सन्दर्भमें वैशेषिकोंने उठाया है — वह नैयायिकोंका भी मत है। आचार्य जयन्तभट्टने न्यायमञ्जरीमें वैशेषिकोंके मतको ही दुहराया है —

दृष्ट: परापरत्वस्य दिक्कृतस्य विपर्य्यय: ।
युवस्थविरयो: सोऽपि विना कालं न सिध्यति ।।[४१९]

जिसप्रकार परत्व और अपरत्व दिक्कृत विपर्य्यय हैं, उसी प्रकार युवावस्था और वार्धक्यकी सिद्धि कालतत्त्वके बिना नहीं होती। नैयायिकप्रवर जयन्तभट्ट कालको वैशेषिकोंकी तरह मात्र अनुमानगम्य ही नहीं, मीमांसकोंकी तरह प्रत्यक्षगम्य भी मानते हैं —

सिद्ध: कालश्चाक्षुषो लैङ्गिको वा ।
तन्नानात्वं सिद्धमौपाधिकं च ।।[४२०]

यहाँ कालकी सिद्धि चाक्षुष एवं लैंगिक अर्थात् प्रत्यक्ष एवं अनुमान दोनोंसे ही स्वीकार की गई है, कालके क्षण, अहोरात्र आदि नानात्वको उपाधिसिद्ध कहा है। प्राचीन एवं नव्यन्यायके इतिहासमें एक मात्र दीधितिकार श्रीरघुनाथशिरोमणि ही ऐसे आचार्य हैं, जो काल-द्रव्यकी अतिरिक्त सत्ताको स्वीकार नहीं करते।[४२१] इनके मतका खण्डन इनके ग्रन्थकी टीकामें ही श्रीरामभद्र सार्वभौमने कर दिया है, एतद् अतिरिक्त इन्होंने इस मतका सांगोपांग खण्डन अपनी मुक्तावलीकी

दिनकरी नामक प्रसिद्ध टीकामें भी तृतीयकारिकावलीके व्याख्यानमें किया है।

१४) **प्रत्यभिज्ञादर्शन** – शैवमत काश्मीरसे कन्याकुमारी तक अनेक सम्प्रदाय और सिद्धान्तभेदके साथ विस्तृत है। काश्मीरका शैवमत 'प्रत्यभिज्ञा' दर्शनके नामसे प्रसिद्ध है। इस मतके प्रधानआचार्य श्रीसोमानन्दनाथ, श्रीउत्पलाचार्य एवं श्रीअभिनवगुप्तपाद शैव-दर्शनके इतिहासमें अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शनमें कालतत्त्व – 'मायीयमलान्तर्भूता' कालशक्ति है। महार्थमञ्जरी परिमलमें मायाके कार्यत्वके कारण कालको मायाविभूति (स्वरूपत्व) के रूपमें कहा है – **मायाविभूत्यात्मकं कालादिपञ्चकम्।**[४२२] माया तो स्वयं परमेश्वरकी मोहनाख्य-शक्ति कही गई है, वह स्वभावसे 'चिदेकरस-स्वरूपा' होते हुए भी भेदकल्पिका है –

एकरसे स्वभावे उद्भावयन्ती विकल्पशिल्पानि।
मायेति लोकपतेः परमस्वतन्त्रस्य मोहिनी शक्तिः।।[४२३]

काल ईश्वरेच्छाका ही अपर पर्याय है, यही क्रिया-शक्ति कही गई है। प्रत्यभिज्ञादर्शनमें इच्छा और क्रियाका अभेद स्वीकार किया गया है। इनके मतसे काल प्रमातृनिष्ठ है, वहीं वह उसी माध्यमसे प्रमेयनिष्ठ भी होता है। – **कालः क्रममासूत्रयन् प्रमातरि विजृम्भमाणस्तदनुसारेण प्रमेयेऽपि प्रसरति**[४२४] वैसे प्रत्यभिज्ञादर्शन 'आभासवाद' के नामसे भी प्रसिद्ध है।

१५) **माहेश्वरमत** – माहेश्वरमतके आगमशास्त्रोंके अनुसार इसके चार और अवान्तर भेद हैं– शैव, पाशुपत, कारुणिक और कापालिक। माहेश्वर मतावलम्बी शैव सम्प्रदायमें कालतत्त्वकी कोई चर्चा नहीं है। इनका मत प्रकारान्तरसे सांख्यशास्त्रका ही अनुगमन करता है, अन्तर इतना ही है – यह मत प्रकृतिको सांख्यकी तरह स्वतन्त्र नहीं मानता।

१६) **पाशुपतदर्शन** – माण्डूक्यकारिका-२-२६ के शांकरभाष्यकी टीकामें आचार्य आनन्दगिरिने पाशुपतमतका उल्लेख करते हुए – इकतीस पदार्थोंकी चर्चा की है, इनमें २५ पदार्थ तो सांख्यप्रतिपादित ही हैं, अतिरिक्त ६ पदार्थ १ राग, २ अविद्या, ३ नियति, ४ काल, ५ कला और ६ माया हैं। इस दर्शनमें भी प्रत्यभिज्ञामतकी तरह ही कालको 'जन्यत्व'

के अर्थमें स्वीकार किया गया है। इस मतके अनुसार 'काल' जीवोंके भोगमें सहकारीकारण बनता है, जीवके स्वरूपत: नित्य होनेके कारण कालसे उसका सम्बन्ध तात्त्विक दृष्टिसे सम्भव नहीं।[४२५] ब्रह्मसूत्रभाष्यमें पाशुपतदर्शनपर आचार्य शंकरका यही अभिमत है।

१७) **सिद्धान्तागम** — इस आगमके अनुसार परमेश्वरमें अधिष्ठित माया द्वारा सर्वप्रथम कालतत्त्वकी उत्पत्ति होती है। कालके पश्चात् मायातत्त्वके द्वारा नियतितत्त्व उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् उसी परमेश्वरमें अधिष्ठित मायाके द्वारा कालतत्त्वका पुन: प्रादुर्भाव होता है। कालतत्त्वसे पुन: तीन अवान्तरभेद विद्या, राग और अव्यक्त उत्पन्न होते हैं। नित्य होनेपर भी जीव काल, कला, नियति, विद्या, रागसे आसक्त हो जानेपर भोक्तृत्व भावको प्राप्त होते हैं —

तत्त्वैरेभि: कलितो भोक्तृत्वदशां यदा पशुर्नीत:।
पुरुषाख्यतां तदाऽयं लभते तत्त्वेषु गणनाञ्च॥[४२६]

काल आदि तत्त्वोंसे परिकलित जीव ही भोग्य-भोजकभावको प्राप्त होता है। जीवोंके कर्मजनित सुखदु:खादिके भोगमें काल स्वयं एक हेतुभूत प्रेरकतत्त्व है — **प्रेरणात्मकं कालम्।**[४२७] ऐसा नहीं है कि कालतत्त्व नियतितत्त्वमें गतार्थ स्वीकार कर लिया जाय, नियतितत्त्वका कार्य है — जीवोंके स्वजनितकर्मोंका नियमन, कालका कृत्य या कार्य तो प्रेरणामात्र ही है — **असौ (नियति:) पशुं कर्मजनिते सुखदु:खोपभोगे नियच्छति। न चायं कालस्य व्यापार:, तस्य कलनमात्रे चरितार्थत्वात्।**[४२८] सिद्धान्तागमकी दृष्टिमें काल चेतन नहीं, जड़तत्त्व है। इस मतके अनुसार काल अनित्य, अव्यापक और अनेकरूप है। इसकी प्रकारता भूत, भविष्य आदिरूपमें त्रिविध है। इस मतमें काल शुद्ध और अशुद्ध दो भेदोंमें विभाजित होकर ही विवेचित हुआ है। सिद्धान्तागमका साहित्य विशाल है — यहाँ आगमोंकी संख्या २८ है। ये पुन: शैवागम और रौद्रागम भेदसे द्विविध हैं। शैवागमके भी कामिकादि दस भेद हैं, कामिक आगमके पुन: नारसिंह, वक्त्रार-भैरव एवं उत्तर नामक तीन भेद हैं।

१८) **शैवविशिष्टाद्वैत** — यह मत बहुत कुछ सिद्धान्तागमपर ही आधारित है, श्रीकण्ठाचार्यने अपने शैवविशिष्टाद्वैत ब्रह्मसूत्र भाष्यमें इसी मतका

प्रतिपादन किया है। इनका मत भी परिणामवादको स्वीकार करता है। इस सिद्धान्तके अनुसार सकलतत्त्वातीत परमेश्वर स्वशक्तिसे अभिन्नरूपसे समवेत होकर ही इस विश्वका निमित्तकारण बनता है।[४२९] कालतत्त्वकी दृष्टिसे इनकी अपनी कोई स्वतन्त्र मौलिक मान्यता नहीं, सिद्धान्तागमका पक्ष ही इनका अपना सिद्धान्तपक्ष है।

१९) **वीरशैवमत** — यह दर्शन अन्य शैवमतावलम्बियोंकी तरह ही 'पति-पशु-पाश' तीन तत्त्वोंको स्वीकार करता है। श्रीलिंगराजने विवेकचिन्तामणि ग्रन्थके प्रथम परिच्छेदमें वीरशैव सिद्धान्तका निरूपण किया है।[४३०] विशुद्ध चितूस्वरूप ब्रह्ममें अधिष्ठित यह मिथ्या माया एक होती हुई भी तीन रूपोंमें विभक्त होती है — विशुद्ध सत्त्वप्रधान माया, मलिन सत्त्वप्रधान अविद्या और तमःप्रधान प्रकृति। मायामें प्रतिफलित ब्रह्म-चैतन्य ही सर्वज्ञादि गुणोंसे युक्त ईश्वर है, वही पतिपदार्थके नामसे प्रसिद्ध है। अविद्यामें प्रतिबिम्बित ब्रह्मचैतन्य ही जीव है, उसे ही पशुपदार्थ कहा गया है। प्रकृति ही जीवोंके भोगहेतु पाश नामक पदार्थरूप होती है। यह सांख्यके क्रमसे ही पुरुषके भोगार्थ उसके सन्निधान मात्रसे परिणमन करती है। इस क्रममें ही प्रकृति कालतत्त्वको प्राप्त होती हुई, तदनन्तर वह कालतत्त्वकी वशवर्तिनी होकर ही महत्तत्त्वादि रूपेण परिणमन करती है। सांख्य स्वयं कालकी सत्ताको स्वीकार नहीं करता पर वीरशैवमत सांख्यके आधारका ग्रहण करते हुए भी कालकी सत्ताको परिणमनके क्रममें स्वीकार करता है। यह मत उन वीरशैववादियोंका है,जो अद्वैतवादको स्वीकार करते हैं।

२०) **द्वैतवीरशैव** — द्वैत सिद्धान्तानुसार वीरशैवमतका निरूपण शिवतत्त्वरत्नाकरमें श्रीवासवराजेन्द्रने किया है। यहाँ पदार्थ निरूपणकी पद्धति वही है, जो सिद्धान्तागममें है। अन्तर इतना ही है — सिद्धान्तागममें ३६ तत्त्वोंका ग्रहण है, यहाँ तत्त्वोंकी संख्या ५२ है। इनका कालतत्त्व विषयक सिद्धान्त भी सिद्धान्तागमके अनुसार ही है — **कालः कला च नियतिः साक्षान्मायोद्भवानि च**[४३१] और भी यथा — **कालस्त्रिविध एव च।**[४३२]

२१) **नकुलीशपाशुपत** - इस मतका साहित्य आज अनुपलब्धसा है। ब्रह्मसूत्र २-२-३७ के शांकरभाष्यपर 'ब्रह्मविद्याभरण' एवं 'वेदान्तकल्पतरुपरिमल'

के व्याख्यानमें इस दर्शनका विवरण संक्षेपमें प्राप्त होता है। आचार्य माधवने 'सर्वदर्शनसंग्रह' में भी इस मतका संक्षिप्त संग्रह किया है, वैसे देखा जाए तो इस मतका केवल एक ही ग्रन्थ – 'गणकारिका' रत्नटीकाके साथ उपलब्ध है। इस ग्रन्थके प्रणेता 'न्यायसार' नामक प्रसिद्ध न्याय निबन्धके रचयिता आचार्य भासर्वज्ञ हैं। लगता है इस मतमें कालतत्त्वकी कोई उल्लेखनीय चर्चा नहीं है। कालतत्त्वको यहाँ 'संहार-कर्तृत्वरूप' से ही स्मरण किया गया है, जो कारण पदार्थ है –

अन्तरसृष्ट्यामपि संहारकर्त्तृत्वं कालत्वम्।[४३३]

इस मतके अनुसार दो प्रकारकी सृष्टि है – महासृष्टि और अन्तरसृष्टि। प्रथमका सम्बन्ध पृथ्वी आदि तत्त्वोंकी संरचनासे है और अन्तरसृष्टिका सम्बन्ध घट-पट आदि पदार्थोंसे है। दीक्षाके पाँच अंगोंमें भी कालका ग्रहण किया गया है –

द्रव्यं कालः क्रिया मूर्त्तिर्गुरुश्चैवेह पञ्चमः[४३४]

२२) **शाक्ताद्वैत** – शाक्तमतमें कालकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। कालतत्त्वका ग्रहण परमात्माके जीवभावसम्पादक पाँच कंचुकोंके अन्तर्गत ही है। मायातत्त्वकी व्यवहार दशामें ही 'काल' जीवका उपकरणभूत तत्त्व है। दिक्की तरह ही 'काल' का भी भावना सापेक्ष अल्पत्व-महत्त्व रूपसे प्रतिभास होता है –

देशः कालोऽथवा किञ्चिद् यथा येन विभावितम्।
तथा तत् तत्र भासेत दीर्घसूक्ष्मत्वभेदतः॥[४३५]

एक ही कालतत्त्वमें भावनाभेदसे शीघ्रत्व-मन्दत्व आदिका अवभास होता रहता है – **भावनाभेदेनैव एकस्मिन्नेव काले चिरशीघ्रत्वभासनम्।**[४३६] शाक्तदर्शनके अनुसार परमार्थतः न 'दिक्' का अस्तित्व है, न 'काल' की ही सत्ता है। श्रीदुर्गासप्तशती में कला, काष्ठादि 'काल' के विभिन्न रूपोंको भगवतीका ही स्वरूप कहा गया है –

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते॥[४३७]

२३) **शाक्त-द्वैतवाद** — द्वैतवादी शाक्तमतका आधार ग्रन्थ श्रीपरानन्द मुनिकृत —'पारानन्दसूत्र' है। इस मतके अनुसार चार ही तत्त्व हैं — १— कोई पदार्थ आदि और अन्तसे रहित है, २— किसी पदार्थका आदि तो है, पर अन्त नहीं है, ३— कोई पदार्थ अनादि होने पर भी सान्त है, ४— कुछ पदार्थ सादि और सान्त हैं।

अनाद्यनन्त-साद्यनन्तानादिसान्त-सादिसान्ताः।[४३८]

इस मतके अनुसार काल आदि और अन्तसे हीन और व्यापक है। अनादि और अनन्त पदार्थोंके नाम इस प्रकार हैं **परमात्मेश्वरा जीवा दिक्काला-काशपरमानन्दलोकाश्चानाद्यनन्ताः**[४३९] **दिक्कालाकाशाज्ञानानां च व्यापकत्वम्।**[४४०] शाक्तद्वैतकी दृष्टिसे कालतत्त्वमें परिच्छेदक-परिच्छिन्न भाव भी है — **कालः परिच्छेदकः परिच्छिन्नश्च।**[४४१]

२४) **प्रपञ्चसार** — इस मतके अनुसार तीन ही नित्य पदार्थ हैं — १—प्रकृति २— पुरुष और ३— काल। आचार्य श्रीपद्मपादने प्रपञ्चसारविवरणमें इन्हीं तीन पदार्थोंका पर और अपर भेदसे व्याख्यान किया है। परम्परासे यह माना जाता है — प्रपञ्चसारके निर्माता आचार्य श्रीशंकर ही हैं, इसकी पुष्टि भी श्रीपद्मपादके विवरणसे होती है — वे स्वयं आचार्य श्रीशंकरके प्रधान शिष्य थे। कालके 'पर' स्वरूपको चिद्रूप कहा गया है, प्रकृतिमें सृष्टिकी प्रेरणा 'पर' कालसे ही होती है — कालका यह प्रेरकस्वरूप पुरुषके कर्मानुसार बनता है —

सा तु कालात्मना सम्यग् मयैव ज्ञायते सदा।[४४२]
पुरुषकर्मानुसारेण तस्य प्रेरकत्वादित्याह — कालेनेति[४४३]

'अपर' कालका स्वरूप औपाधिक है, यह जड़ प्रकृतिका क्षण, अहोरात्र, मास आदि विकृत स्वरूप है।

२५) **पाञ्चरात्र** — वैष्णवागमके प्रधान ग्रन्थ 'अहिर्बुध्न्य संहिता' में ज्ञानको ही परमात्माका परमरूप कहा गया है — जगत्‌का प्रकृतिभाव — यह ब्रह्मकी शक्ति ही है। यह मत शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद विशेष्य-

विशेषण भावसे स्वीकार करता है। अतः वस्तुतः शक्ति भगवान्से भिन्न नहीं, वह तदाकार है, तल्लीन है। इस भगवत् शक्तिके दो भेद हैं – क्रियाशक्ति और भूतिशक्ति। भूतिशक्तिका ही अपर नाम सृष्टिशक्ति है, क्रियाशक्ति ही भूतिशक्तिका प्रवर्त्तक तत्त्व है। भगवान्का संकल्प ही प्रेक्षणस्वरूपको प्राप्त करता है, तदनन्तर वही क्रियाके स्वरूपको धारण कर लेता है। सृष्टिके निर्माणके पूर्व संरचनाके संदर्भमें किया गया पर्यालोचन ही प्रेक्षण है। स्पन्दनात्मक परिणमन ही वहाँ 'सुदर्शन' चक्रके नामसे अभिहित है। प्रकृति-पुरुष और कालके जन्यत्व हेतुसे ही भूतिशक्ति तीन भागोंमें विभक्त होती है

.... भूतिः सा च त्रिधा मता।
अव्यक्तकालपुंभावात्....... ॥[४४४]

आगे कहा गया है –

पुरुषश्चैव कालश्च गुणाश्चेति त्रिधोच्यते।
भूतिः शुद्धेतरा विष्णोः .... ॥[४४५]

पाञ्चरात्र आगममें कालतत्त्वको दो भागों – नियति और कालमें बाँटकर व्याख्यायित किया गया है। नियतिको सूक्ष्म कहकर प्रद्युम्नतत्त्वसे संयुक्त किया गया है। नियतिकी उत्पत्तिके सन्दर्भमें कहा गया है –

कालस्य पाचनं रूपं यत्तु तत्कलनात्मकम्।
उदेति नियतेः सोऽथ कालः संकल्पचोदितः ॥[४४६]

इस मतमें क्षण, अहोरात्र आदि व्यावहारिक कालके ही स्वरूप हैं।

२६) **विशिष्टाद्वैतवाद** – आचार्य रामानुजके अनुसार तीन तत्त्व हैं – चित्, अचित् और ईश्वर। जीववर्ग चित्-तत्त्व है। यह जीव अणुपरिमाण और प्रत्येक शरीरमें भिन्न है। ईश्वरतत्त्व सम्पूर्ण विश्वका सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता है, अर्थात् तत्त्व तीनवर्गोंमें विभक्त है – शुद्ध तत्त्व, मिश्र तत्त्व एवं सत्त्व-शून्य। श्रीरामानुजके मतमें काल 'सत्त्व शून्य' तत्त्व है, यही

तत्त्व कला, काष्ठा, मुहूर्त आदि रूपसे प्रकृतपदार्थोंके परिणमन हेतु — प्रकृति है, इसे ही ईश्वरका 'क्रीड़ा-परिकर-देह' कहा गया है — **सत्त्वशून्यं कालः। अयं च प्रकृतिप्राकृतानां परिणामहेतुः कला-काष्ठादिरूपेण परिणत नित्य ईश्वरस्य क्रीडापरिकरः शरीरं च।**[४४७]

कालिक सम्बन्धसे कालका लक्षण यहाँ — 'सर्वाधारत्व' किया गया है, यह अतीत वर्तमान और भविष्यका व्यावहारिक हेतु भी है — **अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः। कालिकेन सम्बन्धेन सर्वाधारत्वं तल्लक्षणम्।**[४४८] आगे चलकर कालको गुणत्रयरहित जड़-तत्त्व कहा गया है — **कालो नाम गुणत्रयरहितो जडद्रव्यविशेषः।**[४४९] सत्त्व-शून्यका अर्थ ही है सत्त्वादि गुणत्रयसे रहित तत्त्व। यही प्रकृतिके महत्तत्त्वादिके परिणमनमें हेतुरूप होता है। काल-तत्त्वका उपयोग रामानुजदर्शनमें ईश्वरकी लीला-विभूतिकी दृष्टिसे है, नित्य-विभूतिको कालकी अपेक्षा नहीं। श्रीलोकाचार्यके अनुसार काल दोनों विभूतियोंके साथ नित्य है। कुछ आचार्योंके मतानुसार लीलाविभूतिमें निमेष, अहोरात्ररूप काल उत्पत्ति-विनाश-धर्मी होनेके कारण अनित्य है, पर परमपद अवस्थामें उत्पत्ति आदि व्यवहारके अभावमें काल नित्य है, इस मतको मानने वाले आचार्य कालका षडिन्द्रिय प्रत्यक्ष स्वीकार करते हैं।

२७) **द्वैताद्वैतवाद** — आचार्य निम्बार्कके मतमें चित्, अचित् और माया तीन तत्त्व स्वीकार्य हैं। यहाँ मायातत्त्वसे सत्त्व, रज और तम तीनों गुणोंका ग्रहण है। कर्तृत्व-ज्ञातृत्व धर्मयुक्त जीव प्रत्येक शरीरमें भिन्न एवं चित्पदार्थ स्वरूप हैं। अचित्पदार्थ भी संख्यामें तीन हैं — प्राकृत, अप्राकृत एवं काल। त्रिगुणात्मक मायाश्रित द्रव्य — प्राकृत, नित्य और परिणामी हैं। यही तत्त्व कालान्तरमें जगत्रूपसे परिणत होता है। अप्राकृततत्त्व — माया, काल और प्रकृतिसे अत्यन्त भिन्न है — वह ब्रह्मपद वाच्य है। यह कालातीत एवं परिणाम आदि विकारोंसे शून्य है। अतः आचार्य निम्बार्कके मतसे काल प्राकृत और अप्राकृतसे भिन्न एक अचेतन द्रव्य विशेष है। कालतत्त्व इस सिद्धान्तमें नित्य, विभु, भूत-भविष्य आदि व्यवहारमें असाधारण हेतु एवं विश्वकी संरचनामें सहकारी कारणरूपसे गृहीत है।[४५०]

२८) **शुद्धाद्वैत** — आचार्य श्रीवल्लभके तत्त्व-जगत्में कालके लिए कोई

तात्त्विक स्थान सुरक्षित नहीं है। इस दर्शनके अनुसार तत्त्वत: आत्मा ही अपनी स्वतन्त्रइच्छासे प्रपञ्चरूपमें परिणत होती है। परमसत्ताके प्रपंचरूपसे परिणमनमें परमेश्वरकी अपनी स्वतन्त्र इच्छा पर्याप्त है — उसे किसी अन्य तत्त्वके आश्रयकी आवश्यकता नहीं — तत्त्वान्तर और तत्त्वसमुद्भव उसकी इच्छामात्रसे हो जाता है —

उत्पत्तिस्थितिनाशानां जगत: कर्त्तृ वै बृहत्।
वेदेन बोधितं तद्धि नान्यथा भवितुं क्षमम्॥
न हि श्रुतिविरोधोऽस्ति कल्पोऽपि न विरुध्यते।
सर्वभावसमर्थत्वादचिन्त्यशक्ति वै बृहत्॥[४५१]

२९) **द्वैतवाद** — आचार्य मध्वके मतमें दस पदार्थ एवं बीस द्रव्य स्वीकृत हैं। इन द्रव्योंमें काल १९ वाँ द्रव्य है। द्वैतमतमें काल-तत्त्वका असाधारण महत्त्व है — इसे आयु-व्यवस्थापक तत्त्व कहा गया है — **आयुर्व्यवस्थापक: काल:।**[४५२] कालके सम्बन्धाभावके कारण परमात्मा और मुक्तात्मा दोनों ही इसके बन्धनसे परे हैं — **परमात्मनो मुक्तानां च कालसम्बन्धाभावान्नायुर्मर्यादा।**[४५३] इस मतमें काल अखण्डद्रव्य नहीं, वह क्षण, लवादि अनेकरूपी है। काल उत्पत्ति-विनाश-धर्मयुक्त होनेके कारण अनित्य है। प्रकृतिको भी यहाँ कालका उपादान कहा गया है — **कालोपादानं प्रकृतिरेव।**[४५४] पूर्व-पूर्व काल ही उत्तर-उत्तर कालका उपादान है। कालको सर्व-उत्पत्ति हेतु कहते हुए भी, उसकी सत्ताको प्रलयमें भी स्वीकार किया गया है। द्वैतदर्शनके अनुसार सम्पूर्णपदार्थ साक्षिविषय हैं। यहाँ तक कि अतीन्द्रियपदार्थ भी ज्ञात और अज्ञात रूपसे साक्षिविषय होते हैं, अत: काल भी साक्षिविषय कहा गया है।

३०) **अचिन्त्यभेदाभेद** — यह मत आचार्य मध्वके मतका अनुवर्त्तक मत कहा जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुपादने इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तन किया था, फिर भी इस मतमें मध्वमतकी तुलनामें उल्लेखनीय भिन्नता है। इस दर्शनमें ईश्वर, जीव, माया और काल इन चार तत्त्वोंको नित्य माना गया है। ईश्वरको छोड़ कर शेष तीनों तत्त्व परतन्त्र कहे गये हैं।

ईश्वर व्यापक एवं ज्ञानस्वरूप है, जीव अणुज्ञान स्वरूप। ईश्वर मायातत्त्वका नियन्ता है, जीवको उससे नियम्य कहा गया है। माया इस दर्शनके अनुसार गुणत्रयविशिष्ट जड़द्रव्य है, काल — गुणत्रयसे रहित अतीत-वर्तमान आदि व्यवहाररूप जड़द्रव्य। यहाँ भी कालतत्त्वके नित्य एवं औपाधिक दोनों स्वरूपोंको स्वीकार किया गया है।[४५५]

३१) **लोकायत** — लोकायत या चार्वाकमतमें कालका कोई तात्त्विकस्वरूप नहीं है। यह मत प्रत्यक्षको स्वीकार करता है — आकाश और काल दोनों ही इस मतमें प्रत्यक्षकी सीमामें नहीं आते। अतः यह दर्शन चार पदार्थोंकी सत्ता स्वीकार करता है — पृथ्वी, जल, तेज और वायु — **अथ चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनिलानलाः।**[४५६] यह मत सर्वदर्शन-संग्रह एवं तर्कसंग्रहकी भास्करोदय टीकाके मंगलवादमें भी इसी प्रकार संगृहीत है। जब हम कहते हैं **'इदानीं घटः'** उस कालमें कालकी प्रतीति प्रत्यक्षसे ही है। कालकी सत्ताको न स्वीकार करने पर 'इस कालमें घट है' यह प्रतीति ही आधारशून्य हो जायेगी। अतः इस मतके अनुसार काल अतिरिक्त तत्त्व न होकर वस्तुकी तत्तद् अवस्था विशेष ही है।

३२) **जैनमत** — जैनदर्शनके अनुसार पुद्गल तथा अन्य द्रव्योंके परिणमनका कारण काल है। जैनदर्शन कालके अभावको स्वीकार नहीं करता, अतः पुद्गल सदैव गतियुक्त होता है। आचार्य उमास्वामिन्ने द्रव्योंकी वर्त्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व-अपरत्वमें कालको ही हेतुरूपसे कहा है — **वर्त्तना-परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य।**[४५७] काल आकाशतत्त्वकी तरह प्रत्यक्षका विषय नहीं, वह इस मतमें अनुमानप्रमाणसे ही ग्रहण किया जाता है। यहाँ वर्त्तना, परिणाम, क्रिया आदिसे ही अनुमान द्वारा कालकी सिद्धि स्वीकार की गई है। इसे 'समय' शब्दसे भी कहा गया है। 'यह निश्चय' कालका ही स्वरूप है। जीव तथा पुद्गलकी गतिसे व्यक्त होनेके कारण इसे 'परिणामभव' भी कहते हैं। 'वर्त्तना' कालके बिना सिद्ध नहीं होती, प्रत्येक क्षणमें वर्त्तमान रहना ही वर्त्तनाका लक्षण है। इस दर्शनमें काल पाँच अस्तिकायद्रव्योंमें नहीं है, यह एक अखण्डद्रव्य कहा गया है, सर्वत्र एक कालकी ही युगपत्स्थिति है।[४५८] कायावान्

द्रव्य ही अपने विभिन्न अंशोंके द्वारा आकाशके विभिन्न अंशोंमें 'वर्त्तना' धर्मसे युक्त होता है — वर्तमान रहता है। जैनदर्शनमें कहीं कालके दो भेद किये गये हैं — पारमार्थिक और व्यावहारिक। वर्त्तनाका हेतु पारमार्थिक काल है, अन्य परिवर्तनका कारण या हेतु व्यावहारिक काल। समय आदि-अन्तसे युक्त है — पारमार्थिक काल निराकार और नित्य है। 'समय' का स्वरूप क्षणिक है और इसे 'कालाणु' भी कहते हैं; 'कालाणु' समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं। ये परस्पर संयुक्त नहीं हैं। ये पृथक् अमूर्त, अक्रिय और अनन्त हैं। कालद्रव्य एकप्रदेशी है, शक्ति और व्यक्तिकी अपेक्षासे कालाणुओंमें मिलनशक्ति स्वीकार नहीं की गई, इसीलिए कालद्रव्यको कायवंत नहीं कहा गया। आचार्य कुन्दकुन्दने स्पष्ट कहा है — पुद्गलादि द्रव्योंका परिणमन ही लिंग है जिसका — वही काल नामका द्रव्य है, इस द्रव्यसे संयुक्त होने पर ही पञ्चास्तिकाय द्रव्यके स्वरूपको प्राप्त होते हैं। यहाँ कालके पर्यायको जाननेके लिए पुद्गलका परिणमन बहिरंग-निमित्त है। पुद्गल-परमाणु जब एक प्रदेशसे अन्य प्रदेशमें गमन करता है — तब उसका नाम सूक्ष्मकालका पर्याय 'अविभागी' होता है। अतीत, अनागत आदि भाव वहाँ गुणपर्याय कहे गये हैं —

ते चे व अत्थिकाया ते कलिय भावपरिणदाणिच्चा।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता॥[४५९]

छहों द्रव्य एक स्थानपर रहते हुए भी, अपनी सत्ताको कोई भी द्रव्य नहीं छोड़ता; अत: ये द्रव्य मिलकर एक नहीं हो पाते, सभी द्रव्य अपने-अपने स्वभावके साथ पृथक्-पृथक् अविनाशी ही रहते हैं। व्यवहारनयमें बंधकी अपेक्षासे जीव पुद्गल एक हैं, पर निश्चयनयकी दृष्टिसे वे अपने स्वरूपको नहीं छोड़ते। तात्त्विकदृष्टिसे देखा जाए तो जैनदर्शन वैज्ञानिक विश्लेषणके साथ प्रस्तुत होता है। पञ्चास्तिकायकी २५ वीं गाथाकी टीकामें श्रीअमृतचन्द्राचार्यने कालके सूक्ष्मतम स्वरूपका ग्रहण भागवतकारकी तरह ही परमाणुसे किया है — **परमाणु प्रचलनायत्त: समय:**।[४६०]

३३) **बौद्धमत** — बौद्धदर्शन कालतत्त्वकी सत्ताको स्वीकार नहीं करता, यत्र-तत्र इसका खण्डन ही दिखलाई देता है। श्रीशान्तरक्षितने 'तत्त्वसंग्रह' में

द्रव्य पदार्थकी परीक्षाके समय दिक्-कालका खण्डन किया है। कमलशीलने पञ्जिकामें इसके लिए युक्तियाँ दी हैं।आचार्य शान्तरक्षितका कथन है –

विशिष्टसमयोद्भूतमनस्कारनिबन्धनम्।
परापरादिविज्ञानं न कालान्न दिशश्च तत्॥
निरंशैकस्वभावत्वात् पौर्वापर्याद्यसंभवः।
तयोः संबन्धिभेदाच्चेदेवं तौ निष्फलौ ननु॥[४६१]

क्रमसे उत्पन्न होने वाली वस्तुओंके लिए 'पूर्व' और 'पर' का व्यवहार सर्वत्र प्रचलित है, जिससे मनके भीतर संस्कार बनता है, उसीसे 'पूर्व' और 'पर' की प्रतीति होती है। यह संकेत ज्ञानजनित संस्कार है, जो आभोग शब्दके साथ व्यवहृत होता है। अतः बिना दिक् और कालके ही यह व्यवहार निष्पन्न हो जाता है। ये दोनों ही निरवयव होनेके कारण इनका स्वतः 'पूर्व'–'पर' भाव नहीं बन पाता। यदि यह मान लिया जाय कि दिक्-कालका सम्बन्ध वस्तुओंसे होने पर पूर्वापरका व्यवहार होता है, तो इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। यह पूर्वापर भाव तो वस्तुओंका ही है जो बिना दिक्-कालकी सत्ताके निष्पन्न हो जाता है। आचार्य चन्द्रकीर्तिने नागार्जुनकी माध्यमिककारिकाकी वृत्तिमें स्पष्ट 'काल' की सत्ताका निषेध किया है।[४६२] श्रीवरवर मुनिने तत्त्वत्रयके भाष्यमें स्पष्ट कहा है – **कालो नास्तीति बौद्धादिभिरभिधानात्।**[४६३] शिवार्कमणिदीपिकाका भी यही मत है – **बौद्धमते वस्तुतः कालो नास्ति।**[४६४]

३४) **आयुर्वेद** – चरकसंहिताकी आधारभूमि सांख्य होते हुए भी सूत्रस्थानमें वैशेषिक समर्थित नवद्रव्योंका ही ग्रहण किया गया है। अतः इनके मतसे कालका द्रव्यत्व नित्यसिद्ध है – **खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः।**[४६५] चरकके अनुसार द्रव्य चेतन और अचेतनके भेदसे द्विविध है – इन्द्रिययुक्तद्रव्य चेतन है, इन्द्रियरहित अचेतन। **सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्।** अतः चरकके सिद्धान्तानुसार काल अचेतन द्रव्य है, एकवचनके प्रयोगसे लगता है – यहाँ कालतत्त्वके एकत्वका प्रतिपादन किया गया है।

सुश्रुतसंहिताकी टीकामें श्रीडल्हणाचार्यने कालको त्रिगुणात्मिकाप्रकृतिमें अन्तर्भुक्त किया है — **क्रियात्वेन रजोगुणपरिणामत्वान्महाभूतपरिणाम-विशेषत्वाच्च न कालस्य प्रकृतेरन्यत्वम्।**[४६६] लगता है — आयुर्वेदके मूल-आधार सांख्यको प्रधानता देनेके लिए ही श्रीडल्हणाचार्यने वैशेषिकोंके स्थानपर सांख्यको यह समादर दिया है।

३५) **कामशास्त्र** — कामसूत्रकार वात्स्यायनने अपने ग्रन्थमें कालकी लक्षण-परीक्षा न कर, उसे मात्र जय, पराजय, सुख-दुःखमें हेतुरूप कहा है — **काल एव हि पुरुषानर्थानर्थयोर्जयपराजययोः सुखदुःखयोश्च स्थापयति।**[४६७] इस सूत्रग्रन्थके प्रसिद्ध टीकाकार यशोधरने 'जयमंगला' टीकामें 'काल' के द्रव्यत्व और नित्यत्वका उल्लेख किया है।[४६८] **तत्सर्वं कालकारितम्** सूत्रके व्याख्यानमें कहा है — **कालो नाम द्रव्यपदार्थो नित्यः**[४६९] लगता है काल-तत्त्वके सन्दर्भमें कामशास्त्र प्रकारान्तरसे वैशेषिकोंके मतका ही पोषण करता है। यहाँ कार्यमात्रके प्रति नित्यद्रव्य 'काल' की कारणता स्वीकार की गई है।

३६) **व्याकरण** — कालतत्त्वका सम्बन्ध दर्शनकी तरह ही व्याकरणसे बहुत निकट का है। महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलिने कालका लक्षण बड़े ही वैज्ञानिक ढंगसे किया है। उनका कथन है — मूर्त्तिमात्रमें जो क्षय और अभिवृद्धि देखी जाती है, वह कालतत्त्वकृत है — **येन मूर्त्तीनामुपचयाश्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते तं कालमाहुः**[४७०] महाभाष्यके प्रसिद्ध व्याख्याकार आचार्य कैयटने प्रदीपमें इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा — **येन मूर्त्तीनामिति। तरुतृणलताप्रभृतीनां कदाचिदुपचयोऽन्यदात्वपचयः स प्रत्यया-न्तराविशेषेऽपि यत्कृतः सः काल इत्यर्थः।**[४७१] वैयाकरण कालके एकत्वको ही स्वीकार करते हैं, यहाँ आचार्य पतञ्जलिने 'येनेति' पदमें एक वचनका ही प्रयोग किया है। 'काल' के अनेकत्वमें सूर्यकी क्रियाके सम्बन्धसे ही दिन, रात्रि, मास, संवत्सर आदि व्यवहार को महाभाष्यकार स्वीकार करते हैं।[४७२] महर्षि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें एवं वार्त्तिककार कात्यायनने कालतत्त्वके विषयमें कुछ भी नहीं कहा है।

महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलिके सिद्धान्तको वाक्यपदीयकार आचार्य

हरिने तृतीय काण्डमें स्पष्ट किया है। वस्तुओंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाशमें उपाधिभेद भिन्न होने पर भी एकत्वभूत काल ही हेतु है। यह इस समग्र विश्वका नियमन प्रतिबन्ध और अनुज्ञासे करता है, यह जिस वस्तुकी उत्पत्तिमें अवरोधक या प्रतिबन्धक बनता है – वह वस्तु उत्पन्न ही नहीं होती, जो अभिव्यक्ति इसकी अनुज्ञा (अनुजानाति) का विषय बनती है – वही वस्तु व्यक्त होती है। यह प्रतिबन्ध और अनुज्ञा कालतत्त्वमें न हो तो वस्तुओंकी अवस्थामें पूर्व और पर, ज्येष्ठ और कनिष्ठका भाव ही उत्पन्न नहीं होगा, यह दोनोंकी युगपत्प्रसक्तिसे ही सम्भव हो पाता है।

वस्तुएँ स्वयं भेद और अभेद से शून्य हैं, सम्बन्धित वस्तुके कारण ही भेद-भिन्नताका व्यवहार होता है – काल एक होते हुए भी आदित्यकी क्रियारूप उपाधिके कारण क्षण, दिन, मास आदि व्यवहारभेदसे वस्तुओंके अवस्थाभेदमें हेतु बनता है।[४७३] वाक्यपदीयकारने इस सर्वव्यापी कालको स्फोट शब्दसे अभिहित किया है, यह स्फोट शब्द-ब्रह्मकी स्वतन्त्रशक्ति है। विश्वकी संरचनामें प्रवृत्त 'कला' शब्दसे कही गई ब्रह्मकी शक्ति काल-शक्तिके अन्तर्गत है –

अव्याहताः कला यस्य कालशक्तिमुपाश्रिताः।
जन्मादयो विकाराः षड्भावभेदस्य योनयः॥[४७४]

इस कारिकापर आचार्य पुण्यराजने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है – **कालाख्येन स्वातन्त्र्येण सर्वाः परतन्त्रा जन्मादिमय्यः शक्तयः, तत्समाविष्टाः कालशक्तिवृत्तिमनुपतन्ति.....**।[४७५] सहकारी कारणके रूपमें काल विश्वका नियामकतत्त्व होनेके कारण यह निमित्त कारण है – 'कला' स्वयं सृष्टिका उपादान कारण है। कालकी स्वतन्त्रशक्तिके द्वारा ही ब्रह्म जगत्कर्त्तृत्वकी उपाधिसे विभूषित होता है। इस परमस्वातन्त्र्यके कारण ही व्याकरणशास्त्रमें कर्त्तव्यप्रयोजकत्वकी सिद्धि होती है – भगवान् पाणिनिका निर्घोष है – **स्वतन्त्रः कर्त्ता**।[४७६] यहाँ कालतत्त्वकी स्थिति विश्वके सन्दर्भमें जल-यन्त्रके चक्राकार भ्रमण जैसी सी है –

जलयन्त्रभ्रमावेशसदृशीभिः प्रवृत्तिभिः।
स कलाः कालयन् सर्वाः कालाख्यां लभते विभुः॥[४७७]

३७) **ज्योतिषशास्त्र** – ज्योतिषशास्त्र ग्रहनक्षत्रादिकी क्रियाको ही काल

कहता है। सूर्य-ग्रह आदिके परिस्पन्दसे, उनके भ्रमणकी आवृत्तिके भेदसे व्यावहारिक कालका सम्बन्ध है। श्रीमृगेन्द्रवृत्तिदीपिकामें ज्योतिषशास्त्रकी काल-दृष्टिका उल्लेख इसप्रकार हुआ है।

आदित्यग्रहतारादिपरिस्पन्दमथापरे।
भिन्नमावृत्तिभेदेन कालं कालविदो विदुः ॥[४७८]

आचार्य जयन्त भट्टकी न्यायमञ्जरीमें भी इस मतका कथन इस प्रकार हुआ है —....**ग्रहनक्षत्रादिपरिस्पन्दनिबन्धनाः, स एव ग्रहतारादि परिस्पन्दः काल इत्युच्यते। तत्कृत एवायं यामाहोरात्रमासादिव्यवहारः...कालविदश्च ज्योतिर्गणकास्त एवैनं बुध्यन्ते।**[४७९] कालका संख्यात्मक विस्तार प्रायः सभी पुराणोंमें बताया गया है। कालकी सूक्ष्मतम इकाईका मान सिद्धान्तदृष्टिसे परमाणुसे प्रारम्भ होता है। सूर्यकी रश्मिको परमाणुको पार करनेमें जो समय लगता है — वह कालका सूक्ष्मतम मान है, जिसका उल्लेख पूर्वतः पुराणमतके सन्दर्भमें किया जा चुका है।

व्यावहारिक कालका स्वरूप-काष्ठा-निमिष-कला-मुहूर्त्त-अहोरात्र-मास-अयन-वर्ष-युग-मन्वन्तर-कल्प आदि पारिभाषिक शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है। इस व्यावहारिक कालकी उत्पत्ति हमारे नेत्रोंके पक्ष्मनिपातसे होती है — एक बार पलकके गिरनेको निमेष कहते हैं। इस क्रमसे १५ निमेषकी १ काष्ठा, ३० काष्ठा की १ कला, ३० कलाका १ मुहूर्त्त, ३० मुहूर्त्तका १ अहोरात्र, ३० अहोरात्रके २ पक्ष, २ पक्षका १ मास, ६ मासका १ अयन। यह अयन भी दो प्रकारका है — (१) उत्तरायण और (२) दक्षिणायन। उत्तरायणको देवताओंका दिन और दक्षिणायनको उनकी रात्रि कहा गया है। इन दो अयनोंका १ मानववर्ष होता है। यही कालमान देवताओंका १ दिन-रात है, जिसे दिव्यदिन कहा जाता है। कृत-त्रेता-द्वापर-कलि इन चार युगोंका एक महायुग होता है। इनका क्रमशः संख्यात्मक परिमाण ४-३-२-१ दिव्य सहस्र वर्ष है। प्रतियुगके प्रारम्भ और अन्तका काल सन्धि-काल कहा जाता है — वह भी क्रमशः इसी क्रमसे ४-३-२-१ दिव्य शतवर्षका है, सन्ध्या और सन्ध्यांशके मध्यवर्ती कालका नाम ही युग है। इस प्रकार दिव्य १२००० (द्वादशसहस्र) वर्षोंका एक चतुर्युग होता है, इन १ सहस्र महायुगोंका योग, ब्रह्मा या प्रजापतिका १ दिन है, इतनी बड़ी ही ब्रह्माकी रात्रि कही गई है।

प्रजापतिके इस कालमें १४ मनु होते हैं — इस प्रकार ब्रह्माका १ दिन — १४ मन्वन्तरोंमें बँटा है। एक मन्वन्तरका काल — ३०,६७,२०,००० मानव वर्ष है।

इस प्रकार पौराणिक दृष्टिसे काल-चक्रका संख्यात्मक विस्तार इस प्रकार है कृतयुग — १७,२८,००० वर्ष, त्रेता - १२,९६,००० वर्ष, द्वापर - ८,६४,००० वर्ष, कलि — ४,३२,००० वर्ष है। इनका सम्पूर्ण योग — ४३,२०,००० मानववर्ष होता है। एक मन्वन्तरमें ७१ $^{१}/_{१४}$ महायुग स्वीकार किये गये हैं। इन १४ मन्वन्तरोंके समग्र कालमानको १ कल्प शब्दके द्वारा कहा जाता है। १ कल्पमें १००० महायुग एवं ४,३२,००,००,००० मानवीय वर्ष हैं। विष्णुपुराणमें यह विवरण इस प्रकार दिया गया है।

काष्ठाः पञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम।
काष्ठास्त्रिंशत्कला त्रिंशत्कला मौहूर्त्तिको विधिः ॥८॥
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥९॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ॥१०॥
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ॥११॥
प्रोच्यते तत्सहस्रं च ब्रह्मणो दिवसं मुने ॥१५॥
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ॥१६॥
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसंचर ॥२२॥[४८०]

कुछ विद्वान् दिव्यवर्ष शब्दका व्यवहार देखकर इसका अर्थ मानववर्ष ही कर लेते हैं, पर दिव्यवर्ष या देववर्षका मान सर्वत्र निश्चित है। ३६० मानवदिनका १ देवदिवस होता है, अतः ३६० मानववर्षोंका १ देववर्ष होता है। इसमें सबसे बड़ा प्रमाण तो स्वयं वेद ही है —

एक वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सरः ॥[४८१] अर्थात् एक संवत्सर एक देवदिन होता है। यह मत वेदसे लेकर पुराण एवं सिद्धान्त ज्योतिष तक सर्वमान्य है। सूर्यसिद्धान्तमें स्वयं आचार्य भास्करने ९ प्रकारके वर्षोंकी चर्चा की है — उनमें देववर्ष द्वितीय स्थानपर है —

ब्राह्मं दैवं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरश्च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव ॥[४८२]

व्यावहारिक दृष्टिसे भी यदि 'देव' वर्षकी संख्याको मानववर्षकी संख्यामें बदल कर न रखा जाय तो महायुगकी संख्याका मिलान, मन्वन्तर और कल्पकी वर्षसंख्यासे नहीं होगा। अतः महायुगको १२,००० वर्षोंका नहीं माना जा सकता, यह तो देववर्षोंकी संख्या है, मानव वर्षमें इसकी गणना करनेपर १२,००० x ३६० = ४३,२०,००० वर्ष ही होगी।

कालका विभाजन दो प्रकारसे किया गया है — अमूर्त्त और मूर्त्त। अमूर्त्तकाल सूक्ष्म होनेसे योगजप्रत्यक्षका विषय माना गया है। कालकी प्रथम मात्रा 'तत्पर' स्वीकार की गई है — सुप्त स्वस्थ मनुष्यके नेत्रके खुलनेमें जितना समय लगता है — वह 'तत्पर' है। इस 'तत्पर' के शतांशको त्रुटि एवं त्रुटिके सहस्रांशको लग्न कहते हैं। यह कालकी सूक्ष्म गणना है। मूर्त्तकालकी व्यावहारिक गणना इस प्रकार है —

२	अणु	=	१ त्रसरेणु	२	नाड़ी	=	१ मुहूर्त्त
३	त्रसरेणु	=	१ त्रुटि	१५	मुहूर्त्त	=	१ अहोरात्र
१००	त्रुटि	=	१ वेध	७	अहोरात्र	=	१ सप्ताह
३	वेध	=	१ लव	२	सप्ताह	=	१ पक्ष
३	लव	=	१ निमेष	२	पक्ष	=	१ मास
३	निमेष	=	१ क्षण	२	मास	=	१ ऋतु
५	क्षण	=	१ काष्ठा	३	ऋतु	=	१ अयन
१५	काष्ठा	=	१ लघु	२	अयन	=	१ वर्ष
१५	लघु	=	१ नाड़ी	३०	मानववर्ष	=	१ पितृवर्ष

३६० मानववर्ष = १ देववर्ष

चारों युगोंका 'दिव्यवर्ष' मान इस प्रकार है:—

	सन्ध्या	नियतकाल	सन्ध्यांश	सर्वयोग
१ सत्ययुग	४००	+४०००	+४००	=४८००
२ त्रेतायुग	३००	+३०००	+३००	=३६००

३ द्वापरयुग	२००	+२०००	+२००	=२४००
४ कलियुग	१००	+१०००	+१००	=१२००

सम्पूर्ण योग — १२,००० = देववर्ष

१२,००० x ३६० = ४३,२०,००० = मानववर्ष

चारों युगोंका 'मानववर्ष' मान इस प्रकार है:—

	सन्ध्या	नियतकाल	सन्ध्यांश	सर्वयोग
१ सत्ययुग	१,४४,०००	+१४,४०,०००	+ १,४४,०००	= १७,२८,०००
२ त्रेतायुग	१,०८,०००	+१०,८०,०००	+ १,०८,०००	= १२,९६,०००
३ द्वापरयुग	७२,०००	+ ७,२०,०००	+ ७२,०००	= ८,६४,०००
४ कलियुग	३६,०००	+ ३,६०,०००	+ ३६,०००	= ४,३२,०००

सम्पूर्ण योगफल — ४३,२०,००० = मानव वर्ष

मन्वन्तर एवं कल्पकी गणना इस प्रकार हैं —

१ मन्वन्तर = ७१ महायुग = ४३,२०,००० x ७१ = ३०,६७,२०,०००

२ मन्वन्तरका मान =३०,६७,२०,०००

३ सन्ध्या सन्ध्यांश २५,९२,०००

४ कल्प ४,३२,००,००,००० = १००० महायुग = ब्रह्माका एक दिन

सूर्यसिद्धान्त — १/१९ श्लोकके अनुसार १४ मन्वन्तरमें प्रथमसे अन्तिम तक १५ सन्धियाँ कही गई हैं। यहाँ १ सन्धिका परिमाण सत्ययुगके बराबर १७,२८,००० वर्ष माना गया है, अत: — १७,२८,००० x १५ = २,५९,२०,००० मानववर्ष यहाँ सन्ध्यांशके रूपमें जोड़े गये हैं।

ब्रह्माकी आयुका मान इस प्रकार है:—

२४,००,०००	मानववर्ष	= ब्रह्माका १ पल
१४,४०,००,०००	मानववर्ष	= ब्रह्माकी १ घटी
४,३२,००,००,०००	मानववर्ष	= ब्रह्माका १ दिन
८,६४,००,००,०००	मानववर्ष	= ब्रह्माका १ दिन और रात

२,५९,२०,००,००,००० मानववर्ष = ब्रह्माका १ मास

३१,१०,४०,००,००,००० मानववर्ष = ब्रह्माका १ वर्ष

३१,१०,४०,००,००,००,००० मानववर्ष = ब्रह्माका १०० वर्ष

१,८६,६२,४०,००,००,००,००,००,००० मानववर्ष = विष्णुका कालमान

४४,७८,९७,६०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,०० मानव वर्ष= शिवका कालमान

४,४७,८९,७६,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मानववर्ष= श्रीमाता महाशक्तिस्वरूपा भगवतीकी एक त्रुटिका कालमान

ब्रह्माकी सम्पूर्ण आयु विष्णुका एक घड़ी काल है, १२ लाख विष्णुका काल रुद्रका कालार्ध होता है। एक अर्बुद रुद्रोंका काल अक्षरब्रह्म कहा गया है। यही अक्षरब्रह्मकी महासत्ता है। बृहत्पाराशर स्मृतिमें भी ऐसा उल्लेख है ; अन्यत्र भी महाशक्तिके कालमानका उल्लेख प्राप्त है, जिसे ऊपर लिख दिया गया है —

तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिति स्मृतम्।
मन्वन्तरद्वयेनेह शक्रपात: प्रकीर्तित: ॥
एतन्मानेन वर्षाणां शतं ब्रह्मक्षय: स्मृत:।
ब्रह्मक्षयशतेनापि विष्णोरेकमहर्भवेत् ॥
एतद्दिवसमानेन शतवर्षेण तत्क्षय:।
तत्क्षयस्त्रिगुणोऽष्टाभी रुद्रस्य त्रुटिरुच्यते ॥
एवमाब्दिकमानेन प्रयातेऽब्दशते द्विजा:।
रुद्रश्चात्मनि लीयेत निरालम्बे निरामये ॥[४८३]

कालगणनाका यही सन्दर्भ अन्यत्र भी प्राप्त होता है —

चतुर्युगसहस्राणि दिनं पैतामहं भवेत्।
पितामहसहस्राणि विष्णोश्च घटिका मता ॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि कलार्धं रौद्रमुच्यते।[४८४]
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
पितामहसहस्राणि विष्णोरेका घटी मता ॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि निमेषार्धं महेशितु:।
दशकोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपका: ॥[४८५]

उपर्युक्त गणनाके अनुसार अभी ब्रह्माकी आयुके ५१ वें वर्षका प्रथम दिन चल रहा है, उसकी १३/४२/३/४३/३४/०/३५/२४/४ घट्यादि बीत चुकी है, अत: चैत्र शुक्ला १ सं० २०५६ सोमवार ता० १७-३-१९९९ तक १५,५५,२१,९७,२९,४९,०९० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, एवं १५,५५,१८,०२,७०,५०,९०० वर्ष अभी और शेष हैं। (इस कालमानमें ६००० बार सृष्टि बनकर प्रलय हो चुकी है — इस क्रममें हमारी यह सृष्टि ६००१ वीं है, और एक कम इतने ही बार प्रलय और निर्माण पुन: होगा। ब्रह्मा अपनी सम्पूर्ण आयुमें सृष्टिके सन्दोलनचक्रोंका ध्वंस और निर्माण १२००० बार करते हैं।

संवत् २०५६ तक इस कल्पाब्दके अभी तक १,९७,२९,४९,०९९ वर्ष बीत चुके हैं — सृष्टि रचनामें १,७०,६४,००० वर्षका समय ब्रह्माको लगा, इसे कल्पाब्दकी संख्यासे घटाने पर १,९५,५८,८५,०९९ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला प्रतिपदा रविवारके दिन प्रात:काल सूर्योदयके समय अश्विनी नक्षत्र मेष राशिके आदिमें सब ग्रह थे — यही हमारी सृष्टिका रचना काल है।

मधौ सितादावुदये दिनेशस्त्वजानने व्योमचरैरशेषै: ।
कालप्रकृत्यापि जगत्प्रवृत्तिर्बभूव मासाब्दयुगादिका हि ॥[४८६]
अधिमासकोनरात्रग्रहदिनतिथिदिवसमेषचन्द्रार्क: ।
अयनत्वार्क्षगतिनिशा: समं प्रवृत्ता युगस्यादौ ॥[४८७]

अर्थात् कल्प, मन्वन्तर एवं युगके प्रारम्भमें अधिमास, क्षयतिथि, ग्रह, सावन-दिन, तिथि, मेष राशि पर चन्द्र, सूर्य, अयन, ऋतु, नक्षत्र-गति, रात्रि सभी एक ही कालमें प्रकट हुए थे। यही भारतीय कालमानकी संक्षिप्त रूपरेखा है।

महाकवि आचार्य क्षेमेन्द्रने ठीक ही कहा है — 'काल-समुद्र' का परम विस्तार अलक्षित है — इसकी अन्तहीन गहराइयोंके भीतर बड़े-बड़े युगान्त, पर्वतोंकी तरह समाहित होते चले जाते हैं।

अहो कालसमुद्रस्य न लक्ष्यन्तेऽति संतता: ।
मज्जन्तोऽन्तरनन्तस्य युगान्ता: पर्वता इव ॥

प्रबन्धग्रन्थमें उद्धृत द्रष्टव्यसन्दर्भ

१ – भारतीयदर्शन और आधुनिक विज्ञान

१. ईशावास्योपनिषद् – १६

२. कठोपनिषद् – १-२-२०

३. ब्रह्मसूत्र – १-२-२२

४. Astronomy – A Dictionary of Space and the Universe – By – Iain Nicolson – P.P.128. Arrow Reference Books, London. 1977.

५. Lectures on Cybernetics – International Conference on Cybernetics at the Imperial College. By – Dr. David Foster – London, 1969.

६. महाभारत – शान्तिपर्व – १०९-११

७. तैत्तिरीयारण्यक – (कृष्णयजुर्वेद) – १०-६३

८. महाभारत

९. वैशेषिकदर्शन सूत्र – १-१-२

१०. तैत्तिरीयोपनिषद् – ३-५

११. संक्षेपशारीरकम् – श्रीसर्वज्ञात्ममुनि – २-६१

१२. ब्रह्मसूत्र – शांकरभाष्य – जिज्ञासाधिकरण – १-१-१

१३. ब्रह्मसूत्र – शांकरभाष्य पर वाचस्पति मिश्रकृत – भामती – १-१-१

१४. ब्रह्मसूत्र – श्रीभाष्य – आचार्य श्रीरामानुजाचार्यकृत – १-१-१

१५. ब्रह्मसूत्र – सूत्रार्थचन्द्रिका – आचार्य हालास्यनाथ – जिज्ञासाधिकरण – १-१-१

१६. तैत्तिरीयोपनिषद् – ३-१

१७. तैत्तिरीयोपनिषद् – २-६-१

१८. तैत्तिरीयारण्यक – ३-११-१

१९. विष्णु पुराण – १-१२-५५

२०. ब्रह्मसूत्र – श्रीकण्ठभाष्य पर श्रीमदप्पयदीक्षितेन्द्रकृत – शिवार्कमणिदीपिका – जिज्ञासाधिकरण – १-१-१

२१. मीमांसादर्शनसूत्र – १-१-२

२२. मीमांसासूत्र — १-१-२, आचार्य शबरस्वामीकृत भाष्य
२३. शबरभाष्य — १-१-२ पर मीमांसाकण्ठीरव श्रीवैद्यनाथशास्त्री प्रणीत — प्रभा व्याख्या
२४. बृहट्टीका, तन्त्ररहस्य — श्रीकुमारिल भट्टपाद (गायकवाड ओ० सी०, पृ० ३६, १९५६)
२५. बृहदारण्यकोपनिषद् — २-४-१२
२६. बृहदारण्यकोपनिषद् — श्रीशांकरभाष्य — २-४-१२
२७. श्रीमद्भगवद्गीता — ७-२

२ — भारतीय दर्शनकी विज्ञान यात्रा

२८. शैवागम
२९. ऐतरेयोपनिषद् — १-१-४
३०. भागवत पुराण — ३-२०-१५
३१. मनुस्मृति — आचार्य कुल्लूक भट्टकी टीका — १-९
३२. मार्कण्डेयपुराण — ४२-७३
३३. The First Three Minutes — By Steven Weinberg, Fontana Paperbacks, London, 1983
३४. सांख्यकारिका — आचार्य श्रीईश्वरकृष्णकृत — १२
३५. सांख्यकारिका — आचार्य श्रीवाचस्पति मिश्रकृत — तत्त्वकौमुदी — का० १२
३६. सांख्यकारिका — १३
३७. ऋग्वेद — १-३५-२
३८. ऋग्वेद — १-३५-४
३९. ऋग्वेद — १०-१२१-१
४०. तैत्तिरीयसंहिता — ५-५-१-२
४१. ऋग्वेद — आचार्य श्रीसायणकृत भाष्य १०-१२१-१
४२. निरुक्त — आचार्य यास्ककृत — दे० कां० — १०-२
४३. निरुक्त — आचार्य श्रीदुर्गकृत टीका — दे० कां० १०-२
४४. निघण्टु — १-२
४५. अमरकोश — २-९-९९
४६. अभिधान — आचार्य श्रीमहेश्वरकृत — अमरकोशकी टीका विवेकाख्य — २-९-९९ से उद्धृत
४७. Broc's Brain — By Carl Sagan, Ballantine Books, New York, 1979
४८. अमरकोश — २-९-९४
४९. वायु पुराण — पूर्वार्द्धम् — २-१६
५०. अमरकोश — आचार्य नीलकण्ठकृत — सुबोधिनी टीका — २-९-९४

५१. निरुक्त – आचार्य यास्ककृत; एवं दुर्गाचार्यकी टीका – २-३
५२. ब्रह्मसूत्र – २-१-३३
५३. शतपथब्राह्मण – ११-१४-३-३
५४. शारदातिलक – १-७
५५. कुमारसम्भव – महाकवि कालिदासकृत – १-३२
५६. ऋग्वेद – १०-११०-३
५७. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा – उत्पलाचार्य – ३-१-६
५८. तत्त्वसन्दोह – ५-५
५९. ललितासहस्रनामपर श्रीभास्कररायकी टीका – सौभाग्यभास्कर श्लोक सं० १३२
६०. A Dictionary of Science – By E.B.Uvarov and D.R. Chapman P.P. 237-1944
६१. तत्त्वसन्दोह – ५-११
६२. तत्त्वसन्दोह – ५-१२
६३. तत्त्वसन्दोह – ५-१३
६४. तत्त्वसन्दोह – ५-१४
६५. तैत्तिरीय ब्राह्मण – १-७-५-५
६६. तन्त्रालोक टीका राजानक जयरथ – विवेक – प्रथमाह्निक श्लोक – १
६७. नेत्रतन्त्र – अधिकार – २१ और २२
६८. ईश्वरप्रत्यभिविमर्शिनी – श्रीअभिनवगुप्तपादकृत पर श्रीभास्करकण्ठकृत भास्करी टीका श्लोक ४ से उद्धृत
६९. मनुस्मृति – १-९
७०. मुण्डकोपनिषद् – २-१-१
७१. मुण्डकोपनिषद् – १-१-७
७२. मार्कण्डेय पुराण – ४२-४६
७३. तैत्तिरीय ब्राह्मण – ३-१२-९-१
७४. यजुर्वेद – ५-३५
७५. ऐतरेयोपनिषद् – १-१-२
७६. बृहदारण्यकोपनिषद् – १-४-६
७७. Nature – Cooling Flows in Clusters of Galaxies. By A.C.Fabian. P.E.J. Nulsend C.R.Canizares.Vol. 310. 30 August 1984.
७८. ऋग्वेद – १-२३-२०
७९. महाभारत – शान्तिपर्व – ३४१-५०
८०. बृहदारण्यकोपनिषद् – १-४-६
८१. छान्दोग्योपनिषद् – ४-१७-१

८२. शतपथ ब्राह्मण – १४-९-७-२०, बृहदारण्यक – ६-४-२२
८३. भागवत पुराण – ३-२६-१९
८४. ऐतरेय ब्राह्मण – १-२०-१०
८५. शतपथ ब्राह्मण – ४-३-१-१०, ६-१-३-१०
८६. निरुक्त आचार्य यास्क – १०-१-७
८७. The Tao of Physics. – Fritjof Capra. Boulder Colorado Shambhala, 1975.
८८. ऋग्वेद – ७-६३-४
८९. ब्रह्म पुराण – ३३-४
९०. निरुक्त – आचार्य यास्ककृत दैवतकाण्ड – ४-३१
९१. ऋग्वेद – १०-१४९-१
९२. तैत्तिरीयारण्यक – १-७-१
९३. ऋग्वेद – १०-७२-८
९४. तैत्तिरीय ब्राह्मण (कृष्ण यजुर्वेद) – दिवोक्म मन्त्रके भाष्यमें आचार्य सायणकृत सूर्यनमस्कार
९५. मार्कण्डेय पुराण – १०५-१, २
९६. ऋग्वेद – १-८९-१०
९७. भागवत पुराण – १०-३-२०
९८. श्वेताश्वतरोपनिषद् – ३-३-४
९९. श्वेताश्वतरोपनिषद् – ३-३-२
१००. श्वेताश्वतरोपनिषद् – ३-४-१
१०१. छान्दोग्योपनिषद् – ६-२-३
१०२. The Seven Mysteries of Life. By Guy Murchie – 1979.
१०३. शाक्तआगम शास्त्र
१०४. योगिनीहृदय
१०५. आगमकल्पद्रुम
१०६. लिंग पुराण
१०७. श्वेताश्वतरोपनिषद् – ४-४-५
१०८. मुण्डकोपनिषद् – १-२-४
१०९. श्वेताश्वतरोपनिषद् – ४-४-४

३ – विश्व – महाशक्तिका संगठितक्षेत्र

११०. प्रत्यभिज्ञाहृदय – शक्तिसूत्र – १
१११. अहिर्बुध्न्य संहिता – २-२-३, ४,५
११२. यजुर्वेद – ३१-१९

११३. लक्ष्मीतन्त्र – ३१०-१२

११४. विष्णु पुराण – ६-७-६२

११५. विष्णु पुराण – ६-७-६१

११६. विष्णु पुराण – १-३-२

११७. ऋग्वेद – १०-१२५-१

११८. भागवत पुराण – ४-९-१६

११९. श्रीमद्भगवद्गीता – १३-२

१२०. श्रीमद्भगवद्गीता – १३-१५,१६

१२१. ऋग्वेद – १०-९०-३

१२२. श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद् – २-२

१२३. श्रीभैरवयामल तन्त्र

१२४. देवीभागवत पुराण – १२-७-३२

१२५. मातृकाचक्र विवेकतन्त्र

१२६. प्रपञ्चसार पटल प्रथम – ४१

१२७. प्रपञ्चसार पटल प्रथम – ४२

१२८. मातृकाचक्र विवेकतन्त्र

१२९. विष्णु पुराण – प्रथम अंश – २-३१

१३०. श्रीमद्भगवद्गीता – ७-५

१३१. श्रीविष्णुसहस्रनाम – शांकरभाष्य

१३२. बृहद्देवता – २६९

१३३. ऋग्वेद – १-२२-१७

१३४. मनुस्मृति – १-१०

१३५. The phenomenon of Man – by –Teilhard de Chardin. London, E.T. London, 1959.

१३६. तैत्तिरीयोपनिषद् – ३-५

१३७. कठोपनिषद् – १-३-९

१३८. प्रश्नोपनिषद् – ४-११

१३९. तैत्तिरीयोपनिषद् – २-५-१

१४०. मुण्डकोपनिषद् – ३-२-६

१४१. तैत्तिरीयोपनिषद् – २-१-१

१४२. बृहदारण्यकोपनिषद् – ३-९-२८

१४३. ऐतरेयोपनिषद् – ५-३

१४४. बृहदारण्यकोपनिषद् – ४-४-२२

१४५. श्रीमद्भगवद्गीता – १४-३,४
१४६. Seimei No Kigen (Origin of Life) Noda, Haruhiko
१४७. पातञ्जलयोगदर्शन – कैवल्यपाद – २

४ – जैवद्रव्यका ब्रह्माण्डीय एवं पराब्रह्माण्डीय विकास

१४८. Life Itself – F H C Crick. Simon & Schuster, New York, 1982
१४९. Evolution From Space – F. Hoyle and Chandra Wickramasinghe.
१५०. Intelligent Universe – F. Hoyle. Michael Joseph, London, 1983
१५१. Astronomical Journal – 975 (196 - 99)
१५२. ऋग्वेद – १-१५४-५
१५३. मार्कण्डेय पुराण दुर्गासप्तशती – ८०-३७
१५४. Nature – August 1959
१५५. छान्दोग्योपनिषद् – ८-१५-१
१५६. विष्णु पुराण – १-५-५७
१५७. प्रश्नोपनिषद् – १-१-८
१५८. प्रश्नोपनिषद् – १-१-१०
१५९. प्रश्नोपनिषद् – १-१-५
१६०. प्रश्नोपनिषद् – १-१-६
१६१. प्रश्नोपनिषद् – १-१-७
१६२. शतपथ ब्राह्मण – १०-५-२-१-२
१६३. तैत्तिरीय ब्राह्मण – ३-१२-९-१-२
१६४. श्रीमद्भगवद्गीता – ८-२६
१६५. ऐतरेयब्राह्मण – ३-२४
१६६. शतपथ ब्राह्मण – ८-१-१-६
१६७. शतपथ ब्राह्मण – ८-१-२-३
१६८. मुण्डकोपनिषद् – २-१-८
१६९. मुण्डकोपनिषद् – २-१-९
१७०. ब्रह्मसूत्र – १-१-१०
१७१. ब्रह्मसूत्र – १-१-११
१७२. ब्रह्मसूत्र – १-१-२३
१७३. छान्दोग्योपनिषद् – १-११-५
१७४. कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् – ३-३
१७५. भागवत पुराण – १-५-२०
१७६. महाकालसंहिता तन्त्र

१७७. Stalking the Wild Pendulum, Itzhak Bentov. Chapter 5 and 6, Wildwood House Ltd. London, 1977
१७८. श्रीपतञ्जलिकृत महाभाष्य — ३-१-७
१७९. कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता — १-३-१३-१
१८०. Stalking the Wild Pendulum, Itzhak Bentov. Chapter 5and 6, Wildwood House Ltd. London, 1978
१८१. भागवत पुराण — ३-१२-५२
१८२. ऐतरेयोपनिषद् — १-२-४
१८३. ब्रह्मसूत्र — २-३-२५
१८४. ब्रह्मसूत्र — २-४-२१
१८५. ब्रह्मसूत्र — ३-१-२
१८६. छान्दोग्योपनिषद् — ६-८-६
१८७. शतपथ ब्राह्मण — २-१-१३
१८८. पातञ्जलयोगदर्शन विभूतिपाद — २५
१८९. गोपथ पू० ब्राह्मण — २-८-(९)
१९०. श्रीमद्भगवद्गीता — १०-४२
१९१. संक्षेपशारीरकम् — आचार्य श्रीसर्वज्ञात्ममुनि — १-६

५ — परमविश्वका पुरुषविध सिद्धान्त

१९२. Beyond the Black-hole — Stephen Hawking Universe — by John Boslough — P.P.104. Fontana / Collins, 1986
१९३. सांख्यकारिका — श्रीईश्वरकृष्णकृत — कारिका — ४
१९४. सांख्यतत्त्वकौमुदी — सांख्यकारिका ४ पर श्रीवाचस्पति मिश्रकी टीका।
१९५. सांख्यसूत्र — १-८७
१९६. Discover — May 1987 P.P.98
१९७. The Anthropic Cosmological Principle — by John D. Barrow & Frank J.Tipler. Oxford University Press, 1988
१९८. यजुर्वेद — ३१-१
१९९. मुण्डकोपनिषद् — २-१-२
२००. मुण्डकोपनिषद् — १-१-७
२०१. ब्रह्मसूत्र — १-२-२३
२०२. सांख्यकारिका — ५९
२०३. Lonely Hearts of the Cosmos — Dennis Overbye P.P.371 Harper Collins Publisher, New York, 1991
२०४. श्वेताश्वतरोपनिषद् — ६-२०

२०५. स्तुतिकुसुमाञ्जलिः – प्रस्तावनास्तोत्रम् श्लोक २१ आचार्य महाकवि श्रीजगद्धरभट्टकृत, अच्युत ग्रन्थमाला संवत् २०२१
२०६. मुण्डकोपनिषद् – २-१-१०
२०७. तैत्तिरीयारण्यक – ३-१४
२०८. मुण्डकोपनिषद् – २-१-४
२०९. कठोपनिषद् – २-२-९
२१०. मुण्डकोपनिषद् – २-१-३
२११. यजुर्वेद – ३१-१-२, ऋग्वेद – १०-९०-१,२, अथर्ववेद – १९-६-१,४. श्वेताश्वतरोपनिषद् – ३-१५
२१२. कठोपनिषद् – १-३-११
२१३. महाभारत अनुशासनपर्व अ० १५८ श्लोक १६
२१४. दक्षिणामूर्ति स्तोत्र – श्लोक १
२१५. Looking Glass Universe – by John P. Briggs and F. David Peat. P.P. 35 – Fontana Paperbacks, 1985.
२१६. Discover – May 1987 P.P. 95
२१७. मुण्डकोपनिषद् – २-१-१
२१८. सिद्धान्तवाद – महामहोपाध्याय श्रीमधुसूदन ओझा कृत
२१९. Infinite In All Directions – by Freeman Dyson. P.P. 18 (Harper & Raw, Publishers, New York) year1988.
२२०. Infinite In All Directions – by Freeman Dyson. P.P.18-19
२२१. Lonely Hearts of the Cosmos – by Dennis Overbye P.P. 353 – Harper Collins, Publisher, New York, 1991
२२२. ईशावास्योपनिषद् – १६
२२३. माण्डूक्यकारिका – आचार्य गौड़पादकृत कारिका अ० प्र० १७
२२४. भागवत पुराण – २-९-३३
२२५. दर्पण – ब्रह्मसूत्र पर आचार्य श्रीअमलानन्दकृत भाष्य
२२६. वेदान्तशास्त्र
२२७. माण्डूक्यकारिका – आचार्य गौड़पादकृत अ० प्र० – ३१
२२८. माण्डूक्यकारिका – आचार्य गौड़पादकृत वै० प्र० – ३२
२२९. भागवत पुराण – २-६-४१
२३०. तैत्तिरीयोपनिषद् –३-५-१
२३१. छान्दोग्योपनिषद् – ६-२-१
२३२. मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत – श्रीदुर्गासप्तशती १-६४
२३३. यजुर्वेद – अ० १७ का० १९
२३४. श्रीगुरुगीता

२३५. अध्यात्म रामायण – १-३-२५
२३६. ब्रह्मवैवर्त पुराण – कृष्णजन्म २९०५ ४७-१०७-१०८
२३७. श्रीरामचरितमानस – बालकाण्ड, दोहा-२०१
२३८. विष्णु पुराण – २-१२-३९
२३९. सांख्यसूत्र – १-६७
२४०. तैत्तिरीयोपनिषद् – ३-१
२४१. दृग्दृश्यविवेक – २०
२४२. सिद्धान्तशिरोमणि आचार्य भास्करकृत गोलाध्याय, भुवनकोश – २-१
२४३. सूर्यसिद्धान्त – श्रीभास्कराचार्य - १२-१२
२४४. बृहदारण्यकोपनिषद् – २-३-६, ३-९-२६, ४-२-४, ४-४-२२, ४-५-१५
२४५. बृहदारण्यकोपनिषद् – ४-४-१९
२४६. छान्दोग्योपनिषद् – ३-१४-१
२४७. बृहदारण्यकोपनिषद् – २-४-६, ४-५-७
२४८. श्रीमद्भगवद्गीता – १३-१६
२४९. बृहदारण्यकोपनिषद् – २-३-६
२५०. ऋग्वेद – १०-१२९-१
२५१. सिद्धान्तवाद – महामहोपाध्याय श्रीमधुसूदन ओझाकृत
२५२. ऋग्वेद – १०-९०-३
२५३. Discover – Volume 8 Number 9 (September1987) P.P.83
२५४. योगसूत्र कैवल्यपाद – २
२५५. प्रश्नोपनिषद् – १-४
२५६. The Phenomenon of Man – by Teilhard de Chardin. London, E.T. London, 1959.
२५७. Something Called Nothing – R. Podolny – P.P.19(1986)
२५८. The Cosmic Code – Heinz Pagels – P.P. 243, Simon & Schuster, New York, 1982
२५९. Bohr, Niels – Atomic Physics and Human Knowledge in Daedalus Vol. 87-N0. 2, New York, 1958
२६०. Quantum Theory – David Böhm, Englewood Cliffs, N.U. Prentice Hall, 1951.
२६१. The Mysterious Universe – Sir James Jeans, Cambridge University Press, Cambridge, 1931.
२६२. Savitri – VI, Canto 2 – by Shri Aurobindo, Sri Aurobindo Ashram Trust, 1970
२६३. The Evolution of the Physicist's Picture of Nature, by Paul Dirac – Scientific American.P.208 May, 1963

२६४. Quasi Particles – by Kagonov. M.I; Lifshits, I.M. P.P. 15 Mir, Publishers, Moscow, 1979
२६५. The Strange Story of the Quantum – by Banesh Hoffman P.P.217 – 1963 (Wheeler's Vision)
२६६. De Signatura Rerum – by Jacom Böhme
२६७. The World as Will and Representation – by Schopenhauer., A.Dover Publication, New York, 1966
२६८. छान्दोग्योपनिषद् – ६-२-३
२६९. ऐतरेयोपनिषद् – १-१-१,२
२७०. प्रश्नोपनिषद् – ६-३,४
२७१. ब्रह्मसूत्र – १-१-५
२७२. The Nature of the Physical World – Sir Arthur Eddington, Foleroft Library Edition, Foleroft, Pennsylvania,1933
२७३. The Mysterious Universe – by Sir James Jeans, Cambridge University Press, Cambridge, 1931
२७४. Wholeness and the Implicate Order – by Böhm, David, Routledge & Kegan Paul, London,1980
२७५. Physics as Spiritual Discipline – E.C.G.Sudershan – Nehru Memorial Lecture,1977
२७६. Diary – Leonardo da Vinci
२७७. The World As I See It – by Einstein, Albert, New York, 1934
२७८. सांख्यकारिका – श्रीईश्वरकृष्णकृत – का० २२
२७९. Implications of Metaphysics for Psychoenergetic Systems – Psychoenergetic Systems Vol. I (1974) – Sarjatti, J.
२८०. तैत्तिरीय ब्राह्मण – २-८-८-४
२८१. काव्यादर्श – १-४- आचार्य दण्डी

६ – इतिहासका तत्त्वशास्त्र – पूर्व एवं पश्चिम – कालपुरुष और इतिहासपुरुष

२८२. शतपथ ब्राह्मण – १३-४-३-१५
२८३. कात्यायन श्रौतसूत्र – १
२८४. भागवत पुराण – १२-३-१४
२८५. The Idea of History – R.G.Collingwood – P.No. 27. Oxford, 1946.
२८६. The Origin and Goal of History – Karl Jaspers P – 1 Routledge & Kegan Paul Ltd., 1953.

२८७. The Origin and Goal of History – Karl Jaspers P – 11 Routledge & Kegan Paul Ltd., 1953.

२८८. The Origin and Goal of History – Karl Jaspers Routledge & Kegan Paul Ltd., 1953.

२८९. Guide to Science – Vol 2 The Biological Sciences by Asimov – P.P.335-336, Penguin Books,1979

२९०. Cosmos – Carl Sagan – P.P.81, Random House, New York, 1980

२९१. The Universe – Asimov – P.P.124, Allen Lane, The Penguin Press, London, 1967

२९२. The Origin and Goal of History – Karl Jaspers P – 15

२९३. Mankind and Mother Earth – Toynbee A.J. .P. 22 O. U. P. New York, 1976.

२९४. ऋग्वेद – १-११५-१

२९५. The Idea of History – R.G.Collingwood, Oxford,1946.

२९६. Historiography – by Butterfield from Dictionary of the History of Ideas. Ed. Phillip, P.Wiener, – Vol 2, Charles Scribner's Sons. New York, 1973

२९७. The Philosophy of Hans – Georc Gadamer – Edited by Lewis Edwin Hahn – Published by The Library of Living Philosophers, 1987

२९८. – Do –

२९९. ऋग्वेद – १-१-२

३००. Life Itself – by F H C Crik.

३०१. The Seven Mysteries of Life by – Guy Murchie – 1979

३०२. वायु पुराण – उपोद्घातपाद – २६-३९

३०३. भागवत पुराण — १२-७-१५

३०४. निरुक्त – आचार्य श्रीयास्कमुनिकृत – १०-१-८

३०५. निरुक्त – आचार्य श्रीयास्कमुनिकृत – श्रीदुर्गाचार्यकृत ऋज्वर्थाख्यव्याख्यानुसारिण्या टीकया सह – १०-१-८

३०६. तैत्तिरीय संहिता – ७-१-५

३०७. पदनिरुक्ति

३०८. ऋग्वेद – ८-७७-१०

३०९. ऋग्वेद – १०-६७-७

३१०. निरुक्त – आचार्य श्रीयास्कमुनिकृत – ५-१-४

३११. नाट्यशास्त्र – श्रीभरतमुनिकृत – २०-१०
३१२. अथर्ववेद – ८-२-२१
३१३. यजुर्वेद – ३०-१८
३१४. चतुर्वर्ग चिन्तामणि – आचार्य श्रीहेमाद्रिकृत संकल्प
३१५. सूर्यसिद्धान्त – आचार्य श्रीभास्कराचार्यकृत – १-५७
३१६. पञ्चसिद्धान्त
३१७. भागवत पुराण – १२-२-३१
३१८. गर्गसंहिता
३१९. Theogony of Hindus by Count Bjornstjerna P.P. 32
३२०. ब्रह्माण्ड पुराण – १-१-१७३
३२१. अभिधानचिन्तामणि
३२२. भाषापरिच्छेद – श्रीविश्वनाथ न्यायपञ्चाननकृत – २,३
३२३. भागवत पुराण – ३-११-४
३२४. भागवत पुराण – ३-११-१३
३२५. भागवत पुराण – आचार्य श्रीधरकृतटीका – ३-३-११
३२६. पञ्चास्तिकाय – श्रीअमृतचन्द्राचार्यकी टीका – गाथा – १५
३२७. भागवत पुराण – ३-८-११
३२८. यजुर्वेद – २०-२३
३२९. महाभाष्य – २-२-५
३३०. महाभाष्य – आचार्य श्रीकैयटकृत प्रदीप – २-२-५
३३१. महाभाष्य – २-२-५
३३२. वाक्यपदीय – आचार्य श्रीभर्तृहरिकृत – १-३
३३३. वाक्यपदीय – आचार्य श्रीपुण्यराजकी टीका – १-३
३३४. अष्टाध्यायी – महर्षि पाणिनिकृत – १-४-५४
३३५. वाक्यपदीय – ३-९-१४
३३६. माण्डूक्योपनिषद् – १-१
३३७. महाभारत – आश्वमेधिकपर्व – ९१-३४
३३८. सामवेद – १-४-३१३

७ – सृष्टिका बृहत्साम – महासत्ताका स्वरूप, आधार और सिद्धान्त

३३९. भागवत पुराण – २-९-३३
३४०. The Body Quantum – The new physics of the human body – by Fred Alan Wolf – Heinemann : London, 1887
३४१. Theories of Everything – John D. Barrow, Vintage, London, 1922

३४२. Science – Journal
३४३. Super Strings and the Search for the Theory of Everything – F.David Peat, Cardinal, Sphere Books Ltd., 1991
३४४. The Emperor's New Mind – Roger Penrose, Oxford University Press, New York, 1989
३४५. A New Science of Life – Sheldrake Rupert, Los Angels : J.P.Tarcher, 1982
३४६. Wholeness and the Implicate Order – by Bohm, David, Routledge and Kegan Paul, 1980
३४७. From Being to Becoming : Time and Complexity in the Physical Sciences – by Prigogine Ilya, San Francisco : W.H.Freeman and co. 1980
३४८. The Fabric of Mind – by Richard Bergland. Penguin Books Australia Ltd. 1988
३४९. Collected Essays, by Huxley, T.H. Macmillan, London, 1906
३५०. Godel, Escher, Bach : An Eternal Golden Braid by Hofstadter D. R., Penguin Books, England,1986
३५१. The Selfish Gene, by Dawkins R., Oxford University Press, Oxford, 1976
३५२. The Structure of Scientific Revolution, by Kuhn,T.S., University of Chicago Press, 1962
३५३. The Fabric of Mind, by Richard Bergland. Penguin Books Australia Ltd. New York, 1988
३५४. अभिनयदर्पण
३५५. भारतपुत्र – खण्ड २ – प्रज्ञाभारती डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर अभिनन्दिनिका, सम्पादक – मिलाप दूगड़ – प्रकाशक – श्रीवर्णेकर अशीतितम जन्मोत्सव आयोजन समिति – लेख – संस्कृति और संस्कृत – दशा और दिशा – डॉ० वासुदेव पोद्दार – पृ० – ४४, १९९८
३५६. प्रणव तत्त्व – सम्पादक – कल्याणमल लोढा – ओंकारका तत्त्वदर्शन, लेखक डॉ० वासुदेव पोद्दार – पृ० – ३५०
३५७. श्रीमद्भगवद्गीता – २-४८
३५८. श्रीमद्भगवद्गीता – १०-२२
३५९. कठोपनिषद् – २-२-२

३६०. श्वेताश्वतरोपनिषद् — १-३

३६१. मुण्डकोपनिषद् — २-२-१०

परिशिष्ट

३६२. माण्डूक्योपनिषद् — १

३६३. ऋग्वेद — १-१६४-२४

३६४. ऋग्वेद — १-१६४-२

३६५. ऋग्वेद — १-१६४-१२

३६६. अथर्ववेद संहिता — सायणभाष्य — १९-६-८-१

३६७. मुण्डकोपनिषद् — २-१-६

३६८. बृहदारण्यकोपनिषद् — ३-८-९

३६९. सूतसंहिता — शिवमाहात्म्य खण्ड — श्रीमध्वाचार्यकृत व्याख्या — ८-२७

३७०. मनुस्मृति — १-२४

३७१. मनुस्मृति — मेधातिथि भाष्य — १-२४

३७२. श्रीवाल्मीकि रामायण (गीताप्रेस) — उत्तरकाण्ड — १०४-४

३७३. महाभारत (गीताप्रेस) — शान्ति पर्व — २११-११

३७४. महाभारत (गीताप्रेस) — शान्ति पर्व — २१०-१८

३७५. महाभारत (गीताप्रेस) — शान्ति पर्व — २३२-४१

३७६. महाभारत (गीताप्रेस) — शान्ति पर्व — २३३-१६

३७७. श्रीमद्भगवद्गीता — १०-३०

३७८. श्रीमद्भगवद्गीता — १०-३३

३७९. श्रीमद्भगवद्गीता — ११-३२

३८०. श्रीमद्भगवद्गीता — ४-२

३८१. मानसोल्लास — २-४१, ४२

३८२. विष्णु पुराण — प्र० अ० — २-१४

३८३. विष्णु पुराण — प्र० अ० — २-२६

३८४. भागवत पुराण — ३-८-११

३८५. भागवत पुराण — ३ - ११ - ४

३८६. भागवत पुराण — ३-११ - १३

३८७. भागवत पुराण श्रीधरकृत टीका — ३-११-१३

३८८. ब्रह्मसूत्र — शांकरभाष्य पर रत्नप्रभा २ अ० २ पा० (रचनानुपपत्त्यधिकरण)

३८९. सांख्यकारिका — तत्त्वकौमुदी — कारिका — ३३

३९०. श्रीमृगेन्द्रवृत्तिदीपिका — १० प्र० १४ का०

३९१. श्रीमाधवाचार्यकृत पाराशरसंहिता भाष्य — १-२०

३९२. युक्तिदीपिका – का० ५०
३९३. सांख्यसूत्र – २-१२
३९४. अनिरुद्धवृत्ति – २-१२
३९५. मानसोल्लास-वृत्तान्तव्याख्या – ४१
३९६. योगसूत्र – ३-५२
३९७. आचार्य विज्ञानभिक्षुकृत – योगवार्तिक – ३-५२
३९८. योगसूत्र पर व्यासभाष्य
३९९. योगसूत्र पर तत्त्ववैशारदी
४००. भाट्ट चिन्तामणि – १-१-४
४०१. मानमेयोदय – प्रमेय परिच्छेद – ६
४०२. मानमेयोदय
४०३. शास्त्रदीपिका – १-१-५
४०४. आचार्य मधुसूदनकृत – अद्वैतसिद्धि – प्रथम परिच्छेद
४०५. गौड़ श्रीब्रह्मानन्द स्वामीकृत – लघुचन्द्रिका
४०६. श्रीरामानुजाचार्यकृत – तन्त्ररहस्य-प्रमेय-परिच्छेद
४०७. श्रीहर्षकृत खण्डनखण्डखाद्य – चतुर्थ परिच्छेद-कारणलक्षण खण्डन प्रसंग
४०८. श्रीधर्मराजाध्वरीन्द्रकृत – वेदान्तपरिभाषा-प्रथम-परिच्छेद
४०९. श्रीधर्मराजाध्वरीन्द्रकृत – वेदान्तपरिभाषा-प्रथम-परिच्छेद
४१०. श्रीमधुसूदनकृत – सिद्धान्तबिन्दु – श्लोक – ८
४११. काश्मीरक सदानन्दकृत – अद्वैतब्रह्मसिद्धि-प्रथम मुद्गर
४१२. काश्मीरक सदानन्दकृत – अद्वैतब्रह्मसिद्धि-प्रथम मुद्गर
४१३. मानसोल्लास – २-१४
४१४. वाक्यपदीय – ३-५७
४१५. न्यायकन्दली – द्रव्यग्रन्थ
४१६. आचार्य उदयनकृत – किरणावली
४१७. प्रशस्तपाद भाष्य – द्रव्यग्रन्थ
४१८. काणादसिद्धान्त चन्द्रिका
४१९. आचार्य जयन्तभट्टकृत – न्यायमञ्जरी – २-५
४२०. आचार्य जयन्तभट्टकृत – न्यायमञ्जरी – २-५
४२१. आचार्य रघुनाथशिरोमणिकृत – पदार्थतत्त्वनिरूपण
४२२. महार्थमञ्जरी परिमल – पृ० – ५०
४२३. महार्थमञ्जरी गाथा – १७
४२४. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी – ३-१-९
४२५. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य – उद्धृत पाशुपतमत – २-२-३७

४२६. तत्त्वप्रकाश – ४९
४२७. श्रीमृगेन्द्रवृत्ति दीपिका – १-१०-१४
४२८. श्रीमृगेन्द्रवृत्ति – १-१०-१४
४२९. ब्रह्मसूत्र श्रीकण्ठभाष्यपर – शिवार्कमणिदीपिका – २-२-३८
४३०. श्रीलिंगराजकृत – विवेकचिन्तामणि-प्रथम परिच्छेद
४३१. शिवतत्त्वरत्नाकर
४३२. शिवतत्त्वरत्नाकर
४३३. रत्नटीका – ६
४३४. गणकारिका – ५
४३५. त्रिपुरारहस्य ज्ञानखण्ड – १४-८३
४३६. त्रिपुरारहस्य ज्ञानखण्ड – तात्पर्यदीपिका – १४-८५
४३७. श्रीदुर्गासप्तशती – ११-९
४३८. पारानन्द सूत्र – ५-७-९६
४३९. पारानन्द सूत्र – ५-७-९७
४४०. पारानन्द सूत्र – ५-८-२
४४१. पारानन्द सूत्र – ५-८-६
४४२. प्रपञ्चसार – १-२८
४४३. प्रपञ्चसार विवरण
४४४. अहिर्बुध्न्य संहिता – ३-२८,२९
४४५. अहिर्बुध्न्य संहिता – ६-८
४४६. अहिर्बुध्न्य संहिता – ६-४९
४४७. तत्त्वत्रय – अचित्प्रकरण
४४८. अनन्ताचार्यकृत – वेदान्त वादावली सिद्धान्तसिद्धांजन – जड़परिच्छेद
४४९. श्रीनिवासदासकृत – यतीन्द्रमतदीपिका – ५
४५०. श्रीनिम्बार्काचार्यकृत – ब्रह्मसूत्र भाष्य – वेदान्त पारिजात सौरभ – १-१-१
४५१. श्रीवल्लभकृत – अणुभाष्य – १-१-२
४५२. श्रीपद्मनाभकृत – पदार्थ संग्रह
४५३. श्रीपद्मनाभकृत – पदार्थ संग्रह
४५४. मध्वसिद्धान्तसार – काल प्रकरण
४५५. श्रीबलदेव विद्याभूषणकृत – तत्त्वसन्दर्भ टीका
४५६. आचार्य हरिभद्रकृत – षड्दर्शनसमुच्चय
४५७. आचार्य उमास्वामी – तत्त्वार्थसूत्र – ५-२१-२२
४५८. षड्दर्शनसमुच्चयपर गुणभद्रकी टीका
४५९. आचार्य कुन्दकुन्दकृत – पञ्चास्तिकाय-गाथा – ६

४६०. पञ्चास्तिकायपर श्रीअमृतचन्द्राचार्य की टीका – गाथा – २५

४६१. आचार्य शान्तरक्षितकृत – तत्त्व संग्रह – ६२९-६३०

४६२. नागार्जुनकृत – माध्यमिककारिकापर चन्द्रकीर्तिकृत वृत्ति-प्रकरण – १४ कालपरीक्षा

४६३. श्रीवरवर मुनिकृत – तत्त्वत्रय भाष्य

४६४. शिवार्कमणिदीपिका – २-२-१९

४६५. चरकसंहिता – सूत्रस्थान – १-४७

४६६. सुश्रुतसंहिता – आचार्य डल्हणकृत टीका-शरीरस्थान-प्रथम अध्याय – ११ व्याख्या

४६७. कामसूत्र साधाराधिकरण – २ अ०

४६८. कामसूत्र साधाराधिकरण – २ अ०

४६९. कामसूत्रपर श्रीयशोधरकृत – जयमंगला टीका

४७०. महाभाष्य – २-२-५

४७१. महाभाष्यपर कैयटकृत – प्रदीप

४७२. महाभाष्य – २-२-५

४७३. वाक्यपदीय – ९-३ से ८ तक

४७४. वाक्यपदीय – १-३

४७५. वाक्यपदीयपर पुण्यराजकृत टीका – १-३

४७६. आचार्य पाणिनिकृत – अष्टाध्यायी – १-४-५४

४७७. वाक्यपदीय – ३-९-१४

४७८. श्रीमृगेन्द्रवृत्तिदीपिका

४७९. आचार्य जयन्तभट्टकृत – न्यायमञ्जरी – १-१-५

४८०. विष्णु पुराण – १-३-८, ९, १०, ११, १५, १६, २२

४८१. तैत्तिरीयब्राह्मण – ३-९-३२

४८२. आचार्य श्रीभास्करकृत – सूर्यसिद्धान्त

४८३. वृहत्पाराशर स्मृति – १२ – १८८ से १९१

४८४. देवीमीमांसा भाष्य, उत्पत्तिपाद सूत्र – ४

४८५. शक्तिरहस्य

४८६. ज्योतिर्विदाभरण

४८७. पञ्चसिद्धान्त

द्रष्टव्य-सूचीके अतिरिक्त सहायक सन्दर्भग्रन्थ

१. अग्नि पुराण
२. अथर्ववेद
३. अनुभवसूत्र
४. ऋजुविमलापञ्जिका – श्रीशालिकानाथ
५. काणादसिद्धान्तचन्द्रिका
६. कामकला विलास – योगीन्द्र पुण्यानन्द
७. कूर्म पुराण
८. गरुड़ पुराण
९. तत्त्वप्रदीपिका – श्रीचित्सुखाचार्य
१०. तन्त्रालोक – श्रीअभिनवगुप्त पादाचार्य
११. तर्कामृत – आचार्यप्रवर श्रीजगदीश भट्टाचार्य
१२. नारद पुराण
१३. न्यायकन्दली – श्रीधराचार्य
१४. न्यायकोश – श्रीवामनाचार्य झलकीकर
१५. न्यायमञ्जरी – आचार्य जयन्त भट्ट
१६. न्यायरत्नमाला – श्रीपार्थसारथि
१७. न्यायलीलावती – श्रीवल्लभाचार्य
१८. न्यायसूत्र – वात्स्यायनभाष्य
१९. पदार्थतत्त्व निरूपण – आचार्यप्रवर श्रीरघुनाथ शिरोमणि
२०. पद्म पुराण
२१. परमार्थसार – श्रीअभिनवगुप्त पादाचार्य
२२. पुराणपर्यालोचनम् – आचार्य श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
२३. प्रत्यभिज्ञा सूत्र – आचार्य श्रीउत्पल देव
२४. प्रत्यभिज्ञाहृदय
२५. प्रपञ्चसार – श्रीशंकराचार्यकृत
२६. बृहती – आचार्य श्रीप्रभाकर मिश्र (गुरुजी)
२७. बृहद्देवता – आचार्य शौनक
२८. ब्रह्मतर्कस्तव – आचार्यप्रवर श्रीअप्पयदीक्षितेन्द्र

२९. ब्रह्मसूत्र – शांकरभाष्य एवं वाचस्पति मिश्रकृत भामती
३०. ब्रह्मसूत्र – श्रीकण्ठभाष्य एवं श्रीअप्पयदीक्षितेन्द्रकृतशिवार्कमणिदीपिका
३१. ब्रह्मसूत्र पर श्रीकरभाष्य आचार्य श्रीपतिकृत
३२. ब्रह्मसूत्र – श्रीभाष्य – आचार्य श्रीरामानुज
३३. भाट्टमत – आर्चाय श्रीखण्डदेव
३४. मत्स्य पुराण
३५. महानिर्वाण तन्त्र
३६. मानमेयोदय – आचार्य श्रीनारायण भट्ट
३७. मालिनी विजयतन्त्र – श्रीअभिनवगुप्त पादाचार्य
३८. मीमांसादर्शन – शबरभाष्य
३९. मैत्रायणी उपनिषद्
४०. युक्तिदीपिका
४१. योगवाशिष्ठ
४२. योगसूत्र – व्यासभाष्य, तत्त्ववैशारदी, राजमार्तण्ड
४३. योगिनीहृदय दीपिका – योगीन्द्र अमृतानन्द
४४. विज्ञानभैरव
४५. विरूपाक्षपंचाशिका
४६. वेदान्तपरिभाषा – श्रीधर्मराजाध्वरीन्द्र
४७. वैशेषिकसूत्र – श्रीशंकर मिश्रकृत उपस्कार
४८. वैशेषिकदर्शन – प्रशस्तपाद भाष्य
४९. शक्तिसंगम तन्त्र
५०. शास्त्रदीपिका – श्रीपार्थसारथि मिश्र
५१. शिवरत्नाकर
५२. शिवदृष्टि – आचार्य सोमानन्दकृत
५३. शिवसूत्र – आचार्य भास्करकृत वार्तिक
५४. शिवसूत्र विमर्शिनी – आचार्य क्षेमराज
५५. श्रीललिता सहस्रनाम – सौभाग्य भास्कर – आचार्य भास्कररायकृत
५६. श्लोकवार्तिक – श्रीकुमारिल भट्ट
५७. सात्वतसंहिता
५८. सांख्यसूत्र प्रवचनभाष्य, अनिरुद्धवृत्तिसहित
५९. सिद्धान्तबिन्दु – श्रीमधुसूदन सरस्वती
६०. सिद्धान्तलेश संग्रह – आचार्य श्रीअप्पय दीक्षितेन्द्र
६१. सौन्दर्य लहरी – आचार्य शंकरभगवत्पादकृत
६२. स्कन्द पुराण

६३. स्तवचिन्तामणि
६४. स्पन्दकारिका – आचार्य वसुगुप्त
६५. स्पन्दसन्दोह
६६. आन्तरिक वाङ्मयमें शाक्तदृष्टि – महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज
६७. भारतीय कालगणना – ज्योतिर्विद् देवकीनन्दन खेड़वाल
६८. भारतीय दर्शन – भाग १, भाग २, सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन
६९. रामायण महाभारतका कालप्रवाह - वासुदेव पोद्दार
७०. वैदिक सम्पत्ति – आचार्य रघुनन्दन शर्मा
७१. हिन्दुत्व – रामदास गौड़
७२. कल्याण मासिक पत्र – गीता प्रेस, गोरखपुर, विशेषाङ्क –
(१) वेदान्त अंक, (२) शक्ति अंक, (३) शिव अंक, (४) विष्णु अंक
(५) साधनांक, (६) योगांक, (७) सूर्यांक, (८) हिन्दू संस्कृति अंक और
(९) देवतांक
73. Albright, W. F., From the Stone Age to Christianity. Baltimore 1946
74. Asimov Issac., Asimov's Biographical Encyclopedia of Science and technology. Pan Books, London 1966.
75. Asimov Issac, Extra-terrestrial Civilization. New York Fawcett 1979.
76. Aurobindo, The life Divine. Sri Aurobindo Ashram Pondicherry 1980.
77. Berdyaev, N. The Destiny of Man. Harper and Row, 1960
78. Berdyaev, N. The Meaning of History. London 1936.
79. Boris A. Vorontsov, Vel'Yaminov, Essays about the Universe. Mir Publishers, Moscow 1985
80. Bracewell, Ronald. The Galactic Club. W.N.Freeman, New York 1975.
81. Brandon S.G.F., Man and His Destiny in the Great Religions. Manchester University Press, 1962
82. Carlos Castaneda, The Teaching of Don Juan. A Yagui Way of Knowledge. Penguin Books, U.S.A., 1981
83. Child, V.Gordon., Man Makes Himself. Thinker's Library, London, 1941
84. Clark, W.F.Legros, The Fossil Evidence for Human Evolution. Chicago, University of Chicago Press. 1955
85. Coon, Carleton. The Origin of Races. New York. Alfred A.Knopf. 1963.

86. Coveney. Peter and Highfield, Roger. The Arrow of Time. W.H.Allen. London, 1990
87. Danielou, Alain. Hindu Polytheism. Routledge & Kegan Paul. London, 1964.
88. Darwin, Charles. On the Origin of Species. New York, Atheneum, 1964.
89. Davies, Paul. The Accidental Universe. Cambridge University Press, 1982
90. Davies, Paul. The Mind of God. Simon and Schuster, New York, 1991
91. Davies, Paul. The Runaway Universe. Dent, London. 1978.
92. Donald C.Johanson. & Maitland A.Edey.
    The Dramatic Discovery of our Oldest Human Ancestor Lucy. A Paladin Book. Granada Publishing Ltd., 1982
93. Einstein and the Philosophical Problems of 20th Century Physics. Progress Publishers, Moscow. English Translation, 1983.
94. Einstein A. Ideas and Opinions. Trans., by Sonja Bargmann, Pub, Alwin Redman, London, 1956.
95. Gary Zukov, The Dancing WU LI MASTERS. An Over View of the New Physics. Published by Fontana Paperbacks, London, 1982.
96. George Smoot & Klay Davidson. Wrinkles in Time. Avon Books, New York, 1994
97. Goldsmith D. and Owen T. The Search for Life in the Universe. Menlo Park; Benjamin/Cummins, 1980.
98. Gregory Bateson. Mind and Nature. Wildwood House, London, 1979
99. G.J.Whitrow, What is Time? Thames and Hudson, London, 1972.
100. Hawking, Stephen. A Brief History of Time. Bantam, New York, 1988
101. Heisenberg, W. Physics and Beyond. Allen & Unwin. London, 1971.
102. Holger Kalweit. Dreamtime Inner Space. Shambhala, Boston, 1988
103. Howard Gardner. The Mind's New Science. A History of the Cognitive Revolution. Basic Books Inc, Publishers. New York, 1985
104. Howell, F.Clark, Early Man. Revised Edition. Time Life Books. New York, 1973.
105. Jacques Monod. Chance and Necessity. An Essay on the Natural Philosophy of Modern Biology. Collins/Font Paperbacks, 1979
106. Maharaja. Vedic Metaphysics. Motilal Banarasidas, Varanasi, 1983
107. James R.Beerbower. Search for the Past. An Introduction to Palaeontology. Prentice Hall, London, New Delhi, 1965

108. James Cornell. Bubbles, Void and Bumps in Time. The New Cosmology, New York. Cambridge University Press, 1989
109. Jean Pierre Changeux & Alain Connes. Conversations of Mind, Matter and Mathematics. Princeton University Press. Princeton. New Jersey, 1996
110. Jeremy Campbell.Winston Churchill's Afternoon Nap. Paladin Grafton Book, London, 1989
111. J. Campbell. Edited Man and Time. Papers from the Eranos Yearbooks. Routledge & Kegan Paul, London, 1958
112. John D.Barrow. Theories of Everything. Vintage, London, 1992
113. John D.Barrow. The World Within the World. Oxford University Press, 1991
114. John L. Casti. Paradigms Lost. William Marrow & Co. Inc. New York, 1989
115. Kamshilov, M. M. Evolution of the Biosphere. Mir Publishers, Moscow, 1976.
116. Karl R.Popper. The Logic of Scientific Discovery. Hutchinson, London, 1980
117. Karl R.Popper. Unended Quest. The Library of Living Philosophers Inc.,1976
118. Ken Wilber. Eye to Eye. The Quest for the New Paradigm. Anchor Books Edition. 1989
119. Koestler, A. Janus. A Summing Up. Hutchinson, London, 1958.
120. Kohnt, H. The Restoration of the Self. International Universities Press, 1977
121. Krober, A. Anthropology, Harcourt Brace. New York, 1948
122. Le Gros Clark, W.E. The Fossil Evidence For Human Evolution. University of Chicago Press. Chicago. 1978.
123. Lovelock, James. The Ages of Gaia. Oxford University Press, 1988
124. Milner & Smart. The Loom of Creation. Neville Spearman. London, 1975
125. Morris, D. Naked Ape.
126. Murchie, Guy. Music of the Spheres. The Material Universe from Atom to Quasar. Rider/Hutchinson, Revised Edition, London, 1979.
127. Murray Gell Mann. Quark and the Jaguar. Abacus,1995
128. Nelson, H. and R. Jurmain, Introduction of Physical Anthropology. West Publishing Co., 1979.
129. Onspensky. R. A New Model of the Universe. Vintage. New York. 1971
130. Orgel. L. The Origins of Life. New York. Wiley, 1973.

131. Pannekoek' Anton. A History of Astronomy. London : George Allen, 1961.
132. Paolo Arduini, Giorgio Teruzzi. The Macdonald Encyclopedia of Fossils. Macdonald Books.1986
133. Passmore John. A Hundred Years of Philosophy.
134. Paul Davies & John Gribbin. The Matter Myth. Simon & Schuster. New York, 1992
135. Popper, K.R. The Logic of Scientific Discovery. Hutchison & Co. (Revised) 1980.
136. Ilya Prigogine, & Strangers, Isabelle. Order out of Chaos. Heinemann. London, 1984
137. R.D.Laing. The Voice of Experience. Penguin Books. 1983
138. Rdpath, Ian, Rings of Life. The Search for Life in Space, Penguin Books, London, 1977.
139. R.D.Pearson. Intelligence Behind the Universe. The Headquarters Publishing Co. Ltd., London, 1990
140. Richard L.Gregory. Mind in Science. A History of Explanations in Psychology and physics. Weidenfeld and Nicolson. London, 1981
141. Richard P. Feynman. The Character of Physical Law. Penguin Books, 1992
142. Richard Wilhelm. (Translated and Explained) C.G.Jung. (Commentary) The Secret of the Golden Flower. A Chinese Book of Life. Routledge & Kegan Paul Ltd., London, 1957
143. Roger Jones, Physics as Metaphor. ABACUS edition Published Sphere Books, 1983.
144. S.G.F.Brandon. History, Time and Deity. Barnes & Noble Inc., New York,1965.
145. Sagan Carl (ed) Communication with Extra-terrestrial Intelligence. CETI, MITpress, Cambridge, Mass,1973.
146. Sagan Carl, The Cosmic Connection. Anchor Press, New York,1973; Hodder & Stoughton, London, 1974.
147. Sagan Carl, The Dragons Of Eden ; Random House. New York, 1977.
148. Sarfatti, J. Implications of Metaphysics for Psychoenergetic Systems. Vol. I 1974
149. Sarton George, A History of Science. Vols 1 and 2. Cambridge Harvard University Press, 1952, 1959.
150. Sir James Frazer. The Golden Bough. A Study in Magic and Religion. Wordsworth Reference. Hertfordshire,1993
151. Stan Gibilisco, Black Holes Quasars and Other Mysteries of the Universe. TAB Books Ine. 1984.

152. Shkjovaskii, I.S. and Sagan Carl, Intelligent Life in the Universe. New York 1966 ; Pan Boks London, 1977.
153. Silk Joseph. The Big Bang ; The Creation and Evolution of Universe. W.H.Freeman & Co. San Francisco., 1989.
154. Simpson, G.G. The Meaning of Evolution. New Haven, Yale University Press, 1967.
155. Sorokin Pitirm A. Social and Cultural Dynamics. New York and London, 1937-1941.
156. Sorokin Pitirm A. Society, Culture and Personality; Their Structure and Dynamics. New York, 1947.
157. Spengler. O. Decline of the West. Vol. 1, 11 New York, 1947.
158. Steven Weinberg. Dreams of a Final Theory. Hutchinson Radius. London, 1993
159. Stoneley, Jack and A.T.Lawton, Is Anyone There? W.H.Allen London, 1975.
160. Sullivan Walter, Black Holes ; The Edge of space, The end of Time. New York ; Donbleday, 1979.
161. Suzuki, D.T. Essays in Zen Buddhism. Rider, London,1970
162. Teilhard de Chardin, P. The Future of Man. Harper, New York & Collins, London, 1964.
163. Todd Silver. Breaking the Mind Barrier. The Artscience of Nuro-Cosmology. Simon & Schuster. New York,1990
164. Toynbee, Arnold. A Study of History. (Single Volume edition) Oxford University Press, Thames Hudson, London, 1972.
165. Weisskopf, V. Physics in the Twentieth Century. Cambridge Mass. M.I.T. Press, 1972.
166. Whitehead, A.N. Science and the Modern World. New York, Mentor, 1964
167. Wilford W. Spardling ; Patricia Porterfield. The Search for Certainty. Springer-Verlag, NewYork,1984
168. Wittgenstein, L. Tractatus Logico-Philosophicus. Trans. By D.F.Pears and B.F.Maljninness. Routledge & Kegan Paul, 1961 Original work published in 1921
169. Zeilik, Michael, Astronomy ; The Evolving Universe. New York. Harper and Row, 1979.
170. Zin Yutan. (Edited and Translated) The Wisdom of Confucius. Random House, Inc., 1943

चित्रानुक्रम

मूलग्रन्थकी संक्षिप्त रूपरेखा

कालपुरुष और इतिहासपुरुष

विश्व, काल, विकास और इतिहास

ऋषि-प्रज्ञाका विज्ञानदर्शन

उपोद्धात संगति — सम्प्रश्न और सिद्धान्त ।

१. भारतीय दर्शनका तत्त्व-सन्दर्भ — परमसत्ता-विश्व-जीवन और इतिहास।
२. परमचेतनाका स्वरूप एवं विश्व-चेतनाका विकास।
३. विश्व-चेतना, संरचना और नियति।
४. कालप्रवाह — कारणता और तत्त्वदृष्टि।
५. विश्व संरचनाके आधारतत्त्व — प्रकृति-पुरुष-व्यक्त और काल।
६. इतिहासपदका निर्वचन — प्रतीक-रूपक-मिथक और परम्परा।
७. पूर्व और पश्चिमका इतिहास दर्शन।
८. इतिहासका तत्त्व-सन्दर्भ — अतीतस्मृति और भविष्यदर्शन।
९. विश्वचेतना और व्यष्टिचेतना — काल-संरचना और इतिहास।
१०. पूर्व और पश्चिमकी प्रमाण पद्धति — काल — अस्तित्व एवं इतिहास।
११. विकासवाद या संरचनात्मक परिणामवाद।
१२. काल और सृष्टितत्त्व।
१३. पूर्व और पश्चिमकी तुलनात्मक कालदृष्टि।
१४. मनुष्य — ब्रह्माण्ड और जीवन।
१५. विज्ञान — संरचना और सौन्दर्य।
१६. प्रस्थान — प्रतिपाद्य — प्रकार और परिसीमा।

परमसत्ता — परसत्ता और अपरसत्ता।

१. अस्तित्व — परसत्ता और अपरसत्ता।
२. परमसत्ता एवं भाषाका प्रतीक संविधान — ज्ञाता — ज्ञान और ज्ञेयका स्वरूप और सिद्धान्त।
३. परमतत्त्व और संरचना।
४. विश्व — संरचना और रसतत्त्व।
५. सृष्टि— बल और क्रिया।
६. परमसत्ताका कूटस्थस्वरूप और विश्व।
७. मायातत्त्व — विभूतिमाया, योगमाया और माया।
८. पुरुषतत्त्व — अव्यय, अक्षर एवं क्षर-पुरुष।

३. **विश्व – जीवन – प्राण और पुरुष।**

१. भारतीय दर्शनकी तत्त्वभूमि।
२. प्रकृति और गुणत्रयका सिद्धान्त।
३. व्यक्त – अव्यक्त – ज्ञतत्त्वका विज्ञान एवं त्रिलक्षण परिणामवाद।
४. त्रिगुणात्मक विश्व और परिणामवाद।
५. विश्वका मनोभौतिक स्वरूप।
६. विश्व-संरचना एवं शक्तित्रयका सिद्धान्त।
७. व्यष्टि और समष्टि अहं एवं विश्वकी आधिदैविकसत्ता।
८. तन्मात्रा और पञ्चमहाभूत।
९. विश्वकी संरचना, विस्तार और विकास।
१०. अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म।
११. प्रजातीय विस्तारके सन्दर्भमें प्राणतत्त्वका स्वरूप और गति।
१२. जीवनका द्रव्य रासायनिक चक्र – पुरुषके विकासकी पाँच अवस्थाएँ।
१३. देवयान और पितृयान।
१४. प्राणतत्त्व और रयितत्त्व।
१५. विश्व-संस्था और देवतातत्त्व।
१६. प्राणतत्त्वका भौतिक एवं मनोभौतिक आयतन और ज्ञेयरूप प्राणका स्वरूप।
१७. ज्ञानस्वरूप प्राण एवं मन।
१८. प्राणात्मा और देह।

४. **विश्वकी संरचना – जीवन और इतिहास।**

१. विश्वसत्ताका आधारतत्त्व – सत्-चित् और आनन्द।
२. पूर्वकल्पित विश्वका सिद्धान्त।
३. विश्व और मानव।
४. कालतत्त्व – परिणाम और इतिहास।
५. भारतीय धर्मशास्त्र और विज्ञान।
६. सौरमण्डलका उद्भव – एक भारतीय विज्ञान दृष्टि।
७. विश्वकी संरचनाका काल और इतिहास।
८. पिण्ड और ब्रह्माण्डमें प्राणकी सत्ताका स्वरूप और जीवनका विकास।
९. इतिहासकी परम्परा, अन्वेषण और भ्रमका मूल आधार।
१०. आर्योंका मूल निवास और विश्व-इतिहासकी समस्या।
११. ऐतिहासिक सामग्रीका प्रामाण्य शास्त्र।
१२. इतिहासका नवीन तत्त्वदर्शन एवं चक्राकार गतिका सिद्धान्त।
१३. भारतीय इतिहास विज्ञानका सर्पिल एवं चक्राकार युगबोध।

५. **भारतीय अध्यात्मदर्शन और आधुनिक विज्ञान।**

१. आध्यात्मिक दर्शन और विज्ञानकी परिसीमा – क्षेत्र एवं प्रतिबद्धताएँ।
२. भारतीय अध्यात्म दर्शनकी तत्त्वभूमि – सांख्यशास्त्र और वेदान्त।

३. दर्शन और विज्ञानके परिप्रेक्षमें महाजागतिक विकासका सैद्धान्तिक आधार।
४. विश्व — प्रकृति एवं भौतिक जगत्‌की संरचना।
५. मूलतत्त्व — प्रकृति और विश्व।
६. परमसत्ताका स्वरूप और 'नेति-नेति' की सैद्धान्तिक अवधारणा।
७. महाजागतिक रश्मि और विश्व।
८. प्रसरणशील विश्वका सिद्धान्त।
९. महाविश्वकी वैज्ञानिक कल्पना।
१०. विश्व-ब्रह्माण्डका स्वरूप — आकृति और प्रकृति।
११. महाविस्फोटका सिद्धान्त।
१२. सम्प्रसरण और संकोचसिद्धान्त।
१३. स्थिरसंतुलित विश्वका सिद्धान्त।
१४. कार्यकारणविधि और परमाणु विज्ञान।
१५. पश्चिमकी विज्ञान परम्परा — जीव और विश्व।
१६. केयासका सिद्धान्त — जगत्‌की उत्पत्ति।
१७. सेवरनेटिक्स और विश्वकी प्रज्ञानघनसत्ता।
१८. भारतीय तत्त्वदर्शनके वैज्ञानिक कथा रूपक और विश्व।
१९. रुद्रतत्त्व और विष्णुतत्त्व — ब्लैक होल और ह्वाइट-होल।
२०. माया — क्षेत्र — क्षेत्रज्ञ — पुरुष और पुरुषोत्तम।

६. **विश्वमें जीवन और चेतनका स्वरूप — संरचना और सम्भावना।**

१. ब्रह्माण्डीय आयाममें जीवनका स्वरूप और उसके विकासकी सम्भावना।
२. जीवनका पार्थिव स्वरूप और वैज्ञानिक मतवाद।
३. जीवनकी प्रज्ञानघनसत्ता और विश्व-चेतनाका विकास।

७. **विकासवादके प्राचीन और नवीन प्रतिमान।**

१. मानवीय विकासके सन्दर्भमें नृतत्त्वशास्त्रका सिद्धान्त — सीमा और सम्भ्रम।
२. प्रत्नअश्मशास्त्र (पैलेऑन्टोलॉजी) — मानवीय जीवाश्मकी खोज एवं निष्कर्ष।
३. नवीन स्थापनाओंके अनुसार वानरसे मानवके विकासका निषेध।
४. विकासवादका प्रकृति निरीक्षण — भूल और सम्भ्रम।
५. विकासवादके अनुसार मानव-मस्तिष्ककी संरचना और विकास—मस्तिष्कशास्त्रमें की गई विविध कल्पनाएँ — भूल एवं भ्रम।

८. **विज्ञानके नवीन परिवेशमें डार्विनवादका स्वरूप और स्थिति।**

१. भौतिक विज्ञानमें तापगति शास्त्र (थर्मोडाइनामिक्स) का सिद्धान्त।
२. गणितशास्त्र एवं सम्भावना सिद्धान्तका नियम।
३. आणविक जीवविज्ञान (मॉलीक्यूलरबायोलॉजी) का प्रतिषेध।
४. भ्रूणविज्ञान (इम्ब्रोयोलॉजी) का निषेध।
५. सदृश संस्थान शास्त्र (होमोलॉजी) का प्रतिषेध।
६. प्रत्नअश्मभूतिशास्त्र (पैलेऑन्टोलॉजी) के नवीन सूचना सन्दर्भ।
७. डार्विनवाद एवं नव्यडार्विनवादका खण्डन एवं विज्ञानके अद्यतन सूचना सन्दर्भ।

९. **आत्म संस्थाका स्वरूप एवं जैवसत्ताका प्राण परिमित विकास।**

१. यह सब कुछ आत्मा है।
२. विश्व एक आत्मक्रीड़ा -- एक महारास।
३. विश्व एक आत्मयज्ञ -- वैदिक कर्म-काण्डका दिव्यरसायन विज्ञान।
४. मनोविज्ञान एवं देहान्तर्गमन और मुक्ति।
५. देवयान और पितृयानके मार्ग एवं द्युलोक।
६. कर्मका सिद्धान्त -- बन्धन और मुक्ति।
७. प्रकृतिकी कार्यविधि और पुरुष।
८. सर्गसृष्टि एवं प्रजातीय विकासका योनिपरिवर्तन।
९. विश्वका प्राणयज्ञ -- समष्टिप्राण और जैवप्राण।

१०. **विश्व एक शक्ति-चक्र।**

१. भारतीयचिन्तनदर्शनमें शक्तितत्त्वकी अवधारणा।
२. शक्तितत्त्वशास्त्र और विज्ञान।
३. पदार्थ और शक्ति।
४. द्रव्य और विद्युद् अभियुक्ति।
५. परमाणु और शक्ति।
६. शक्ति और मूलतत्त्व।
७. शक्तिके विविध रूप।
८. शक्तितत्त्वका आधिदैविक एवं आधिभौतिक स्वरूप -- विश्वका संरचनात्मक विकास।
९. हिरण्यगर्भका स्वरूप, विकास और विस्फोट।
१०. हिरण्यगर्भके महास्वन विस्फोटसे विश्वद्रव्यका विकास।
११. विश्वातीत चेतनाका अहं इदं विमर्श -- नाद-बिन्दु और कला।
१२. विश्वका कलातत्त्वात्मक विकास।
१३. ब्रह्माण्ड एक शक्तिपीठ।
१४. विश्व एक शक्ति चक्र।

११. **परमचेतनाका विस्फोट और विश्व सत्ताका विकास।**

१. शक्तितत्त्वका वैदिक स्वरूप -- विश्व द्रव्यका अग्नीषोमात्मक विकास।
२. दश महाविद्या -- सृष्टि और प्रलय।
३. श्रीमहाकाली शक्तिका विश्व संहारात्मक स्वरूप।
४. श्रीउग्रतारा शक्तिका सौर -- प्रलयात्मक स्वरूप।
५. श्रीषोडशी शक्तिका कल्पविकासात्मक स्वरूप।
६. श्रीभुवनेश्वरी शक्तिका लोकविकासात्मक स्वरूप और विकास।
७. श्रीछिन्नमस्ता शक्तिका जैवविकासात्मक स्वरूप और विकास।
८. शक्तितत्त्वका अवान्तर विकास -- सृष्टि एवं प्रलयके सन्दर्भमें श्रीमहाकाली, श्रीमहालक्ष्मी और श्रीमहासरस्वतीतत्त्व।
९. विश्वके सचेतन विकासका सिद्धान्त और भारतीय दर्शनका समन्वय प्रस्थान।
१०. गुणत्रय -- परिणाम और विकास।

११. महत्तत्त्व, अहंकार, तन्मात्रा और इन्द्रियाँ -- प्रगतिशील विकासवादका गतिमय स्वरूप।
१२. अवयवात्मक विकासका विश्वभूतात्मकतत्त्व।
१३. प्राणतत्त्वका दिव्यरासायानिक विकास।

१२. भारतीय दर्शनमें कालतत्त्वकी अवधारणा और प्रतीति।

१ वेद, २ उपनिषद्, ३ स्मृति, ४ महाभारत, ५ गीता, ६ पुराण, ७ सांख्यदर्शन, ८ योगदर्शन, ९ मीमांसादर्शन,१० वेदान्तदर्शन,११वैशेषिकदर्शन, १२ न्यायदर्शन, १३ प्रत्यभिज्ञादर्शन, १४ माहेश्वरमत, १५ पाशुपतदर्शन, १६ सिद्धान्तागम, १७ शैवविशिष्टाद्वैत, १८ वीरशैवमत, १९ द्वैतवीर शैवदर्शन, २० नकुलीशपाशुपतमत, २१शाक्ताद्वैत, २२ शाक्तद्वैतवाद, २३ प्रपञ्चसार, २४ पाञ्चरात्र, २५ विशिष्टाद्वैतवाद, २६ द्वैताद्वैतवाद, २७ शुद्धाद्वैतवाद, २८ द्वैतवाद, २९ भेदाभेदवाद, ३० लोकायत, ३१ जैनदर्शन, ३२ बौद्धदर्शन, ३३ आयुर्वेद, ३४ कामशास्त्र, ३५ व्याकरण और ३६ ज्योतिषशास्त्र।

१३. भारतीय इतिहासशास्त्र – परम्परा – दर्शन – युगबोध।

१. पश्चिमकी इतिहास परम्परा और बदलते प्रतिमान -- इतिहासका युग विभाजन।
२. भारतीय इतिहासशास्त्रका तत्त्वदर्शन और युगबोध।
३. इतिहास शब्दकी व्युत्पत्ति और उसका अर्थ विकास।
   (क) प्राचीन व्याकरणका सिद्धान्त।
   (ख) नवीन व्याकरणका सिद्धान्त।
४. पुराणसाहित्य – इतिहास शब्दके अर्थ विकासकी परम्परा।
५. ऐतिहासिक सामग्रीका विषय विभाजन – पौराणिक इतिहासके पाँच लक्षण।
६. भारतीय इतिहास दृष्टिका तत्त्व-सन्दर्भ और महर्षि वेदव्यासकी प्रामाणिक इतिहास परम्परा।
७. पौराणिक इतिहासकी विपुल संरचनाका सम्प्रश्न और समस्या।
८. पौराणिक इतिहासके सूचनात्मक अन्तर्विरोध एवं समाधान।
९. कलियुगके राजवंशोंकी सूचना और उसका सन्दर्भ एवं महत्त्व।
१०. पाठभेद और क्रमभेदकी समस्या और समाधान।
११. पौराणिक साहित्यके भाषातत्त्वका स्वरूप और उसकी प्राचीनताका सन्दर्भ।
१२. महर्षि वेदव्यास और उनके पूर्व और उत्तरकालकी इतिहास एवं पुराण परम्परा।
   (क) पौराणिक वाङ्मयकी देवधारा।
   (ख) श्रीवेदव्यासके पूर्वकी ऋषिधारा।
   (ग) व्यासधारा।
   (घ) व्यासोत्तरसूत्रधारा।
   (ङ) पौराणिक इतिहासकी सम्प्रदाय परम्परा।

१४. कालपुरुष और इतिहासपुरुष।

१. कालातीतपुरुष, कालपुरुष और इतिहासपुरुष।
२. ब्राह्मकल्प, पाद्मकल्प और वाराहकल्प।
३. परसत्ता और विश्वरूप अपरसत्ता।
४. विश्वके इतिहासका वैज्ञानिक ऋषिदर्शन।

आंग्लभाषाका शब्दकोश

Amino acids. The molecular building blocks of proteins.

Anthropic principle. The set of ideas which maintains that the fact that we are present in the universe puts constraints on its properties. More extreme versions of the principle border on the claim that the universe was designed for our benefit.

Antimatter. Matter made of *particles* with identical *mass* and spin as those of ordinary matter, but with opposite charge. Antimatter has been produced experimentally, but little of it is found in nature. Why this should be so is one of the questions that must be answered by any adequate theory of the early universe.

Astrophysics. The science that studies the physics and chemistry of extraterrestrial objects. The alliance of physics and astronomy, which began with the advent of *spectroscopy*, made it possible to investigate *what* celestial objects are and not just *where* they are.

Attractor. A way to describe the long-term behaviour of a dissipative system in phase space. Equilibrium and steady-states correspond to fixed-point attractors, periodic states to limit-cycle attractors and chaotic-states to strange attractors.

Baryons. Massive elementary particles with half-integral spin that experience the strong nuclear force. Protons and neutrons are baryons.

'Big Bang' Cosmology. The theory that the expansion of the universe began at a finite time in the past, in a state of enormous density and pressure.

Big Crunch. Similar to the Big Bang, but marking the end of the universe (presupposing that it contains sufficient matter).

Black hole. An object that is so dense that nothing, not even light, can escape from it except by quantum mechanical means.

Bosons. Elementary particles with integer spin that do not obey the *Pauli exclusion principle*. They include the *photons* and the *W and Z particles*, carriers of the *electromagnetic* and the *electroweak* forces respectively.

Brownian motion. Erratic motions of minute particles, such as smoke particles in air, due to irregular bombardment by surrounding molecules.

Chaos. Term used to describe unpredictable and apparently random behaviour in dynamical systems.

Closed system. One that exchanges energy but not matter with its surroundings.

Closed universe. A universe with sufficient matter to recollapse to a Big Crunch.

Cohomology. A branch of mathematics concerned with the patching together of spaces.

Cosmic background radiation. Microwave radio emission coming from all directions and corresponding to a *black body curve*, its properties coincide with those predicted by the *big bang theory* as having been generated by *photons* released from the big bang when the universe was less than one million years old. The big bang theory suggests the existence of *neutrino* and *gravitational* background radiations as well, though the means to detect such do not yet exist.

Cosmic strings. Some contemporary cosmological theories suggest that boundaries were formed between different regions of the universe at the moment of creation. These boundaries survive today as "cosmic strings," incredibly thin but very massive strings many light years in length.

Cosmogony. The study of the origin of the universe.

Cosmology. The study of the origin and nature of the universe.

Dark matter. Matter whose existence is inferred on the basis of dynamical studies – e.g., the orbits of stars in galaxies – but which does not show up as bright objects such as stars and nebulae. Its composition is unknown: It might consist of subatomic particles, or of dim dwarf stars or black holes, or a combination of various sorts of objects.

Darwinism. Theory that species arise through the *natural selection* of random mutations that better fit changing conditions in a generally *uniformitarian* Earth.

Deoxyribonucleic acid (DNA) – The molecular basis of heredity, made up of linear chains of nucleotides, themselves formed of an organic base, a sugar (deoxyribose), and phosphate. Usually two complementary DNA chains or a double helix.

Doppler Effect. The change in frequency of any signal, caused by a relative motion of source and receiver.

Electrodynamics. Study of the behavior of *electromagnetic force* in motion.

Electron. An elementary particle of negative electric charge which orbits the nucleus of an atom and carries electrical current.

Electroweak force. A unification of electromagnetism and the weak nuclear force.

Entropy. In thermodynamics, a measure of the capacity of an isolated macroscopic system for change.

Evolution. (1) In biology,the theory that complex and'multifarious living things develop from generally simpler and less various organisms. (2) In astronomy, the theory that more complex and varied atoms develop from simpler ones, as through the synthesis of heavy atomic nuclei in stars.

Expansion of universe. Constant increase, with time, in the distance separating distant galaxies from one another. Expansion does not take place within individual galaxies or clusters of galaxies, which are bound together gravitationally, but evidences itself on the supercluster level.

Fermions. Elementary particles with fractional spins. The proton, electron, neutron, and other elementary particles are all fermions.

Fossils. Geological remains of what was once a living thing.

Galaxy. A large aggregation of stars, bound together gravitationally. They are three major classifications of galaxies – spiral, elliptical, and irregular – and several subclassifications. The sun belongs to a spiral galaxy, the *Milky Way galaxy.*

Gauge Theory. A theory that treats force in a geometrical way in terms of global and local symmetries.

Gene. A unit of heredity comprised of DNA, responsible for passing on specific characteristics from parents to offspring.

Gluon. The hypothetical particle that carries the force between quarks.

Gravitinos. Hypothetical force-carrying particles predicted by *supersymmetry* theory. The gravitino's spin would be $^1/_2$. Its mass is unknown.

Graviton. The hypothetical quantum particle of the gravitational field. It could also be thought of as a quantized element of space-time curvature.

Hadrons. Strongly interacting elementary particles. The hadrons all tend to have high masses.

Half-life. The time it takes for half of a given quantity of radioactive material to decay.

Hertzsprung Russel diagram. Plot that reveals a relationship between the colours and absolute *magnitudes* of stars.

Higgs field. Mechanism operating in symmetry-breaking events; in *electroweak theory*, the Higgs field is said to have imparted mass to the *W and Z particles.*

Hubble constant. The rate at which the universe expands, equal to approximately fifty kilometers of velocity per *megaparsec* of distance.

Hubble diagram. Plot of galaxy *redshifts* against their distances. This was the first evidence of the *expansion of the universe.*

Hubble law. That distant galaxies are found to be receding from one another at velocities directly correlated to their distances apart.

Implicate order. A term coined by the physicist David Böhm to describe the sort of enfolded order that is characteristic of quantum theory. It is to be contrasted with the explicate orders of Newtonian physics. Böhm believes that this implicate order has a universal importance and will be useful in understanding the nature of consciousness.

Inflationary universe. Theory that the expansion of the very early universe proceeded much rapidly than it does today – at an exponential rather than a linear rate.

Leptons. Elementary particles like the electron and neutrino that do not experience the strong nuclear force. Unlike the strongly interacting hadrons, the leptons have small masses.

Light-year. The distance light travels in one year, equal to 5.8 x 10^{12} (about six trillion) miles.

Magnetic monopole. A massive particle with but one magnetic pole, the production of which is indicated in some theories of the early universe.

Megaparsec. The study, in physics, of the influence of *forces.*

Muon. Short-lived elementary particle with negative electrical charge. Muons are *leptons.* They resemble *electrons,* but are 207 times more massive.

Nebulae. Indistinct, nonterrestrial objects visible in the night sky, 'Bright' nebulae glow with light emitted by the gas of which they are composed ('emission' nebulae) or by reflected starlight ('reflection' nebulae) or both. 'Dark' nebulae consist of cloud of gas and dust that are not so illuminated. 'Planetary' nebulae are shells of gas ejected by stars. *Spiral nebulae are galaxies.*

Neuron. The nerve cell, formed of a cell body (or soma) containing the nucleus, and outgrowths of two types; dendrites, converging toward the cell body,

and a single axon leaving it.

Neutrinos. Electrically neutral, massless particles that respond to the *weak nuclear force* but not the *strong nuclear* and *electromagnetic* forces.

Neutrons. Electrically neutral, massive particles found in the nuclei of *atoms*. Each neutron is composed of one up *quark* and two down quarks; its mass is 939.6 MeV, slightly more than that of the proton. Stable within the nucleus, the neutron if isolated decays, with a *half-life* of fifteen minutes.

Neutron stars. Stars with gravitational fields so intense that most of their matter has been compressed into neutrons. They are formed when massive stars run out of nuclear fuel and collapse. Many rotate rapidly and generate radio pulses; when detected by *radiotelescopes*, they are known as *pulsars*.

Open system. One that can exchange energy and matter with its surroundings.

Open universe. A universe with insufficient matter to collapse to a Big Crunch.

Oscillating universe. Cosmological model in which the universe is 'closed' and its expansion is destined to stop, to be succeeded by collapse and 'then' (if ordinary temporal terms may be said to apply) by a rebound into a new expansion phase.

Parsec. Astronomical unit of distance, equal to 3.26 light-years.

Peptide. A linear chain of amino acids, like a protein, but shorter (upto twenty amino acids). Some examples are enkephalin, substance P, and LHRH.

Photon. A quantum 'particle' carrying the energy in electromagnetic radiation.

Positron. The positively charged anti-particle of an electron.

Pulsar. A celestial object that emits very regular pulses of radiation. It is thought to be a rapidly rotating neutron star.

Quantum mechanics. The mechanics that rules the microscopic world, where energy changes occur in abrupt quantum jumps.

Quantum physics. Physics based upon the quantum principle, that energy is emitted not as a continuum but in discrete units.

Quarks. Fundamental particles from which all *hadrons* are made. According to the theory of quantum chromodynamics, *protons*, *neutrons*, and their higher-energy cousins are composed of trios of quarks, while the

mesons are each made of one quark and one antiquark. Held together by the *strong nuclear force*, quarks are not found in isolation in nature today; see *asymptotic freedom*.

Quasar. Quasi-stellar radio sources -- heavenly bodies first detected by their radio emissions, believed to be the most distant objects in the universe.

Radioactivity. Emission of *particles* by unstable elements as they decay.

Relativity. A physical theory of gravity due to Einstein (1879-1955), according to which the presence of mass is intimately related to the curvature of the geometry of space-time.

Relativity, general theory of. Einstein's theory of the electrodynamics of moving systems.

Relativity, special theory of. Einstein's theory of *gravitational force*.

Ribonucleic acid (RNA). A linear macromolcule related to DNA and important in transcribing and translating DNA to produce proteins.

Schrodinger's equation. An equation for the wavefunction which describes the propagation of matter-waves in time.

Singularity. A point of infinite curvature of space where the equations of general relativity break down. A *black hole* represents a singularity; so, perhaps, did the universe at the first moment of time.

Space-time. Arena in which events are depicted in the theory of *relativity*. The orbit of a planet, for instance, can be described as a 'world line' in a fourdimensional space-time continuum.

Star clusters. Gravitationally bound aggregations of stars, smaller and massive than galaxies. 'Globular' clusters are the largest category; they are old, and may harbour hundreds of thousands to millions of stars, and are found both within and well away from the *galactic disk*. 'Open' clusters are smaller, have a wide range of ages, and reside within the disk.

Steady-state theory. The cosmological theory developed by Bondi, Gold, and Hoyle, in which the average properties of the universe never change with time; new matter must be continually created to keep the density constant as the universe expands.

Stellar evolution. The building of complex atomic nuclei from simpler nuclei in stars, with the result that succeeding generations of stars and planets contain a greater variety of chemical elements than did their predecessors.

String theory. A recent Quantum Field Theory of extended objects suggesting that particles are string-like objects (i.e., extended and onedimensional). It is hoped that on the basis of this theory a satisfactory account can be given of Quantum Gravity.

Supercluster. A cluster of clusters of galaxies. Superclusters are typically about one hundred million (10^8) light-years in diameter and contain tens of thousands of galaxies.

Supersymmetry. Class of theories that seek to identify symmetrical relationships linking fermions and bosons -- i.e., particles of half-integral spin, like electrons, protons, and neutrinos, with those of integral spin, like photons and gluons. If attainable, a fully realized supersymmetry theory would provide a unified account of all four fundamental forces, and might well shed light on the very early evolution of the universe as well.

Thermodynamics. The study of the behavior of heat (and, by implication, other forms of energy) in changing systems.

Twistor. The twistor is a sort of generalization of a spinor, being a massless object having both linear and angular momentum. It can be defined in terms of a pair of spinors. Twistors are the coordinates of twistor space, but they also have a geometrical interpretation in space-time. Twistors with zero helicity correspond to null lines while more general twistors must be pictured as congruences of null lines.

Unified theory. In *particle physics*, any theory exposing relationships between seemingly disparate classes of *particles*. More generally, a theory that gathers a wide range of fundamentally different phenomena under a single precept, as in Maxwell's discovery that light and magnetism are aspects of a single, *electromagnetic force*.

Veneziano Theory. A formula that accounted for the experimental results of the dual resonance model. Nambu discovered that a string theory would reproduce the results of the Veneziano approach.

Wave-particle duality. Quantum realization that *particles* of matter and energy also exhibit many of the characteristics of wave.

World line. The path in space-time traced by a body.

Z particles. Massive *bosons* thought to have been abundant in the early universe, when the unified *electroweak* force was manifest.

शब्दकोश

अक्षर	Eternal, imperishable, undecaying, inexhaustible.
अक्षरपुरुष	The superconscious being ; Śiva or its divine power mahāśakti.
अणु	Fine, minute, atomic.
अण्ड	Cosmic egg.
अदिति	Free, unbound, boundlessness, infinity, freedom, personified as mother of the gods called Adityas.
अद्वैत	Non-dualism.
अधिकरण	Base, location.
अधिष्ठान	Substratum, support, base.
अधिसूत्रात्मकस्वरूप	Pertaining to 'String' or 'Superstring', the cosmic subtle form stringing together all the universal subtle individual bodies.
अनात्मवाद	The predominantly Buddhist doctrine of the unsubstantiality of the ātmā.
अन्तरात्मा	The 'inner self'; spiritual centre of man.
अन्त:संविधान	Internal law.
अन्तर्मुखता	Introversion of consciousness.
अन्तर्यामी	The inner 'Controller', the ātman conceived of as the inner presence and internal guide of every being.
अन्योन्यजननवृत्ति	The tendency, power or function of producing one another.
अन्योन्यमिथुनवृत्ति	The tendency, power or function of cooperating one another.
अन्योन्याभिभववृत्ति	The tendency, power or function of overpowering one another.
अन्योन्याश्रयवृत्ति	The tendency, power or function of depending on one another.

अभिभव	Overcoming, overpowering, influencing.
अभिभूत	Overcome, overpowered, influenced.
अयस्	Iron.
अर्द्धनारीश्वर	Half woman and half man, the Lord being half woman, the androgynous nature of the Godhead Śiva.
अर्बुदांश	Trillionth part.
अवस्थापरिणाम	The transformation or change of condition of newer objects into that of older ones and vice-versa.
अवधारणा	Concept.
अविद्या	Ignorance, absence of the liberating and true knowledge.
अविनाभावसम्बन्ध	Necessary connection of one thing with another.
अव्यक्त	Unmanifest.
असत्	Non-being.
असु	Life, Prāṇa or lifebreath.
अस्तव्यस्त	Chaotic.
अस्तित्व	Existence, being.
अहङ्कार	The ego sense (of aham), principle of individuality and egoistic limitations.
अहन्ता	I-ness, I-consciousness.
अहम्	The first personal pronoun, Ahaṁ Brahmāsmi (I am Brahma), an ontological principle.
आकाश	Air, sky, space, ether.
आतिवाहिक (शरीर)	A temporal rocket-like body that arries the migrating subtle body of an individual with its puryaṣṭaka.
आद्यस्पन्द	The first oscillation.
आधाराधेयभाव	The relation between the location and the located, or between the supporter and the supported.
आधिदैविक	Relating to the gods, one of the three ways of enterpreting Vedic texts, the theological dimension.
आधिभौतिक	Relating to the beings (bhutas), one of the three levels on which Vedic texts can be interpreted, the cosmological dimension.
आध्यात्मिक	Relating to the self (atman), the way of interpreting Vedic texts centred on the real atman, the anthropological or spiritual dimension.

आप:	The waters both earthly and heavenly, the first cosmogonic element.
आभास	The immanent aspect of the 'Ultimate Principle', the manifest world is said to be merely an appearance or 'ābhāsa'.
आभ्यन्तर	Inner, interior.
आर्तव	Derived from ṛtu, season, belonging to the seasons, related to time.
इतिहासपुरुष	The conceptualization of 'History'as human-being or as deity.
इदन्ता	This-consciousness, objective consciousness.
इदम्	'This' nominative sing-n, of the demonstrative pronoun, it usually stands for this universe.
इन्द्रिय	Sense organs.
ईक्षण	Looking, seeing, considering, beholding, viewing.
उद्गीथ	An important part of the sāman chant. ÓM-AUM.
उन्मनी अवस्था	The state transcending the waking, dreaming and sleeping states.
उन्मनी अवस्थापन्न शक्ति	The Śakti or Supramental power of Parama Śiva agitated or excited to let the creation go out of her.
उन्मेष	The opening of eyelids, creation.
उपपत्ति	Accomplishing, ascertaining or demonstrating the conclusion, proof, evidence.
उपष्टम्भ	Support, strengthening, encouragement, incitement.
उपादान	Material cause.
उपाधि	Limiting adjunct or condition.
ऋत	Cosmic and sacred order.
क	Interrogative pronoun 'who', one of the names of Prajāpati.
कञ्चुक	The coverings of Māyā. throwing a pall over pure consciousness and converting 'Śiva' into 'Jīva'. They are: Kalā. Vidya, Raga, Niyati and Kalā.
कञ्चुकित	Covered, enveloped, enclosed.
करण	The means of knowledge and action, antahkaraṇa, the inner psychic apparatus and bahiskarana the external senses.

कला	The power of consciousness by which all the thirty-six principles evolved.
कलियुग	The side of the die with one dot, the last and most degenerate of the four `cosmic periods (yugas), we are now living in the Kaliyug.
कश्यप	A mythological sage, sometimes said to be the husband of Aditi, Diti and Danu.
कालपुरुष	The infinite starry sky consisting ot stars, planets, satellites and numerous galaxies.
कालाग्निरुद्र	Paramśiva taking through his supramental power the form of an undefin able black point of Tamas at the time of 'Final Destruction'overpowering rajas and sattva and assimilating them into His being.
कूटस्थ	The Sākṣī or the witness of all the individual or phenomenal objecrs, eternal power, real form of the individual.
कृतयुग	The side of the die with four dots, the first of the four yugas also called Satya, the golden age.
क्षर	Perishable, decayable
क्षेत्र	Field both in literal and metaphoric senses.
क्षेत्रज्ञ	The knower, lord, protector of the field.
गुण	String, quality, property, in the Sāmkhya system the three qualities or fundamental genetic constituents of prakṛti (nature) viz sattva, rajas and tamas; string.
गुणक्षोभ	Chaos, perturbation in the balanced state of nature at the time of creation.
चिति	The power of the absolute consciousness that brings about the world process.
चिदाभास	The limitation or reflection or merely a glimpse of the superconsciousness appearing falsely into the subtle bodies of the individuals.
चेत्य	Knowable, object of consciousness.
जैवपुरुष	The individual soul.
ज्योतिर्लिंग	Black but illumining point or body of Parama Śiva.
तत्त्व	Thatness, principle, reality, the very being of a thing, essence, true nature, philosophical principle.
तत्त्वमसि (तत् त्वम् असि)	That you are, one of the four great utterances (mahavakyas).

तद्	Demonstrative pronoun 'that' contrary to idam (this). it refers to Brahman.
तन्मात्र	That alone, the primary elements of perception, the objects of the five senses.
तपस्	Heat, hence inner energy.
तमस्	The forces of darkness, the inertia of matters, in Sānkhya one of the three gunas of prakṛti, the principle of inertia.
तुरीयातीत	The state of consciousness transcending the turīya state or the fourth.
त्रेतायुग	The side of the die with three dots, the second of the four ages (yugas).
त्वम्	Personal pronoun, second person sing, you.
देश	Space.
दोलायमान	Oscillating.
द्रव्य	Matter.
द्वन्द्व	Pairs of opposites such as heat and cold, pleasure and pain.
द्वापरयुग	The side of the die with two dots, the name of the third of four cosmic periods (yugas).
द्वैत	Duality.
द्वैतवाद	Dualism.
धर्मपरिणाम	The appearance of disciplined or cultured qualities of intellect having suppressed the natural ones.
धातुविकीर्णन	The radiation of metals or elements.
धातुशास्त्र	Metallurgy.
नभोगङ्गा	Galaxy.
नार	Water, pleasure, bliss.
नित्यत्व	Eternity.
नित्याऽनित्यवस्तुविवेक	The discrimination between the real (eternal) and unreal (temporal).
निमेष	Closing of the eye, dissolution of the world.
नियति	Destiny, limitation by cause-effect relation, spatial limitation.
निर्ऋति	Dissolution, destruction.
निर्गुण ब्रह्म	Brahman without qualities, the unqualified transcendent absolute.
निष्क्रिय अवस्था	Inert state.

नीहारिकाएँ	Nebulae.
नेति-नेति	'Not this, not this' (na-iti) i,e, the denial of any characterization of the ātman or Brahman.
पञ्चकृत्य	The fivefold acts of srsti sthiti samhāra, vilaya and anugraha, or the five-fold acts of ābhāsan, rakti, vimarṣaṇa, vijāvasthāpana, and vilāpana.
पञ्चाग्नि विद्या	The doctrine of the five fires, a teaching in the B.U. about the process of life and death.
पदार्थ	Substance, matter, element.
पर	The highest, the absolute, the subtle, the fine.
पर बिन्दु	Absolute point, super point.
परम पदार्थ	Super element, super being.
परम पुरुष	Super existence, absolute consciousness.
परम व्योम	Highest heaven, ultimate realm of freedom also the place where the mystery is hidden.
परम शिव	The highest reality.
परम संकोचका सिद्धान्त	The theory of absolute contraction.
परमसत्ता	Supreme being, superconscious existence.
परमार्थ	Absolute sense, ultimate goal.
पराचेतना	Super consciousness.
परावाक्	The highest of the gradations of speech.
परिच्छेदक	That which cuts, separates or divides.
परिमाण	Quantity.
पर्जन्य	God of rain and of the thunderstorm, bringer of fertility to the earth.
पर्याय	Synonym.
पाद्मकल्प	The second creative stage of the universe in which the formation of galaxies takes place.
पाश	Bondage.
पुराण	Ancient and preancient cultural history of man, earth and universe.
पूर्णपुरुष	Absolute being or consciousness.
पूर्णत्व	Perfection.
प्रजापति	'The Lord of creatures' the primordial God.
प्रतिद्वन्द्वी पदार्थ	Rival element, rival substance.
प्रतिबिम्ब	Reflection.
प्रत्यक्ष	Realized, standing or having come face to face with, one of the six means of knowledge by senses.

प्रत्यभिज्ञा	Recognition, memorisation.
प्रत्यभिज्ञादर्शन	The advait Śaiva Philosophy of Kashmir.
प्रमा	Exact knowledge.
प्रमाण	Means of knowledge.
प्रमाणप्रमेयात्मक	Having the combined form of both the means and the object of knowledge.
प्रमातृ	Knower, subject, experient.
प्रमेय	Knowable, object of knowledge.
प्रवृत्तिनिमित्तात्मकता	The quality of having the cause or ground for a tendency.
प्रलय	Cosmic destruction or disintegration occuring periodically.
प्रसरणधर्मी	Expanding (Universe).
ब्रह्मवाद	Śaṅkara Vedānta.
ब्रह्मा	God the Creator.
ब्रह्माण्ड	Cosmos.
ब्रह्माण्डातीत नाद	Ultramundane vibration, ultramundane sound, ultramundane resonance.
ब्राह्मकल्प	The first creative stage of the universe.
मनस्तत्त्व	The properties of the mind.
मनु	The father of humanity, the man parexcellence, also the first priest who established the sacrifices.
मन्वन्तर	The changing of the ages of the fourteen Manus.
महत्तत्त्व	Cosmic Intelligence, according to Sāmkhya philosophy — the first product of the cosmic substance — Prakṛti.
महाकल्प	Greater cycles of cosmic creation, time scale of one Kalpa is — 4 billion, 32 crore years.
महामाया (अपरा)	The state below śuddhā vidyā and above Māyā in which resides the vijñāna, kalā.
महामाया (परा)	The lower stratum of śuddhā vidyā in which reside the Vidyesvaras who take the world to be different from the self.
महायुग	The largest span of age.
मात्रक	The unit meant for measurement.
युग	Generation, one of the four cosmic ages that are repeated in the same order kṛta (satya), tretā, dvāpara and kaliyuga.
रजोगुण	The exciting, creating or causing quality of nature.

रयि	Matter.
रस	Water.
लक्षणपरिणाम	The absorbed and balanced state of mind in which the three conceptions of time cease to seem.
लीला (क्रीडा)	Divine play, the world viewed as God's sports.
वर्चस्	Brilliance, energy.
विकल्प	Difference of perception, diversity, option.
विकीर्णन	Radiation.
विभु	All-pervading, all-permeating.
विभूति	Splendour, power.
विमर्श	That aspepect of consciousness that creates and cognises the objective world.
विमर्शप्रक्रिया	The process of bringing about the universe with every capacity of knowledge.
विराट्पुरुष	The macrocosmic existence.
विवर्त	The forms that manifest in the phenomenal world regarded as illusions.
विवर्तवाद	The Vedānta doctrine that the phenomenal world is mere illusion.
विश्वके सम्प्रसरणका सिद्धान्त	The theory of the expansion of the universe.
विश्वात्मा	Universal soul.
व्यापकत्व	All pervasiveness.
शक्तिका संगठितक्षेत्र	Unified field theory of energy.
शक्तिचक्र	Universal cycle of energy.
शक्तिपञ्चक	The five fundamental powers of Śiva viz, cit, ānanda, icchā, jñāna and kriyā.
शून्य, शून्यता	Void, absolute emptiness as the ultimate reality in Buddhism.
श्वेतवाराहकल्प	The final creative stage of the universe in which the evolution of life takes place.
संकोच	Contraction, limitation.
संवित्	Consciousness, supreme consciousness in which there is coplete fusion of prakāśa and vimarśa.
सकल	All the jivas from gods down to the minerals who rest in Māyā tattva. They have no knowledge of the real self and their consciousness is only that of diversity.
सत्	Being.
सत्कार्यवादी	The doctrine that the effect exists in the cause, this is the distinguishing feature of the Sāmkhya system.

सत्त्वगुण	The quality of being pure, the nature of light and brilliance.
सनातन	Everlasting, eternal.
सन्दोलनात्मक	Oscillating.
सन्दोलनात्मकविश्व (सिद्धान्त)	The oscillating universe (theory).
सम्प्रसरण सिद्धान्त	The theory of expanding universe.
सर्ग	Creation of world.
सर्पिल	Spiral.
सर्वगतत्व	Omnipresence.
सर्वज्ञत्व	Omniscience.
सहकारी कारण	The helping means, the assisting cause.
सिद्धान्त	Theory, established theory or conclusion.
सूक्ष्मशरीर	The inner, subtle or fine body, puryaṣṭaka.
सूत्र	String, aphorism.
सूत्रात्मा	The cosmic subtle or fine body which strings together all the subtle bodies of the individuals.
स्कम्भ	The cosmic pillar understood to be stable, centre or axis of the universe, its hidden support.
स्पन्दमान विश्व	Vibrating or pulsating universe, oscillating universe.
स्पन्दन	Vibration, pulsation, oscillation.
स्फोट	Bursting and sound created by it. In Grammar and philosophy of language the eternal indivisible element of the word, and its creative power, the carrier of meaning.
हिरण्यगर्भ	'The golden germ', the primordial egg.
हेतु	Cause.
हेतुमत् (कार्य, फल)	Effect.

द्रष्टव्य – सहायक ग्रन्थ सूची: –

1. A Sanskrit English Dictionary by M. Monier Williams.
2. The Student's Sanskrit English Dictionary by Vaman Shivram Apte.
3. Glossary of Spanda Karikas by Jaideva Singh.
4. Glossary of Parvatidarpana by Harsha V. Dehejia.
5. Glossary of Hindu Philosophy by Theos Bernard.

आङ्ग्ल भाषाकी पदानुक्रमणिका

पदानुक्रमणिका

द्रष्टव्य — यहाँ पदानुक्रमणिकामें प्रबन्धग्रन्थमें उद्धृत द्रष्टव्य सन्दर्भोंसे अतिरिक्त पदोंका संग्रह हुआ है।